श्रीः ।

श्रीमच्छुक्राचार्यविनिर्मित—

शुक्रनीति ।

लाँखग्रामनिवासिपंडितमिहिरचंद्रजीकृत

भाषाटीकासमेत ।

जिसको

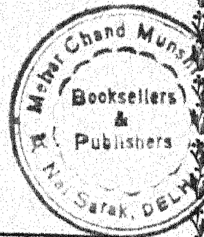
खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

मुद्रित कर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९८२, शके १८४७.



इस पुस्तकको खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन 'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया।

प्रस्तावना ।

सर्व सज्जन विद्यानुरागी धार्मिक महाशय इस बातको भली भाँति जानते हैं कि "धर्माधारं हि जीवितम्" आयुष्य धर्मकेही आधार पर है. हमारे पूर्वज ऋषि, महर्षि, देवर्षि निर्व्याज धर्माचरणसे कैसे प्रतापी, दीर्घायु और पूज्य होगये हैं । वे तपोधन अपने वंशजोंके कल्याणके लिये उत्तम २ उपदेश कर गये हैं कि जिनके विधिपूर्वक पालन करनेसे सदा मनुष्य इस लोकमें विविध सुख और परलोकमें स्वर्गादिनिवाससे अनन्त लाभ उठा सकते हैं । अर्थात् उनके निर्दिष्ट आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्तोंके सेवन करनेसे ही मनुष्य उन्नति साधन कर सकते हैं और कभी उनके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते । मन्वादिमहर्षियोंने उपदेश किया है कि राजाके विना क्षणमात्र भी इस संसारका व्यवहार नहीं चल सकता । चोर डाकू आदि दुर्वृत्त लोग प्रजाके धन, धर्म और जीवनमें महाकष्ट उत्पन्न कर देते हैं । इससे "राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् । राजन्यसति लोकेऽस्मिन्कुतो भार्या कुतो धनम् " के अनुसार दुष्टनिग्रह पूर्वक सज्जनोंके सुखके निमित्त धार्मिक राजाका होना अत्यावश्यक है । वह राजा किस प्रकार प्रजाओंका संरक्षण करे और नानाजाति विविध धर्मवाली प्रजाके पालनमें किन २ नियमोंकी आवश्यकता है इत्यादि कितने ही व्यवहार इस नीतिमें महात्मा शुक्राचार्यने लिखे हैं कि जिनका विद्वान् शिरसे आदर करते हैं ।

बहुत लोगोंकी कल्पना है कि तोप, बन्दूक इत्यादि अस्त्र तथा सैनिकोंकी परिचालन-शिक्षा (कवायद) आदि जैसी आजकल पाश्चात्यद्वीपनिवासियों (अङ्गरेजों) ने उन्नत की है पहिले समयमें ऐसी नहीं थी । पर यह निर्मूल कल्पना है । इसी शुक्रनीतिमें इनका वर्णन बहुत उत्तमताके साथ किया गया है । वह इस बातकी साक्षी देता है कि पहिले जो २ उन्नति इन सबकी भारतवर्षमें हो गयी है वह अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती । इस ग्रन्थमें मुख्य कर तो राजनीति ही वर्णन की गयी है, पर प्रासाङ्गिक धर्मतत्त्व तथा व्यवहारपाटव भी इतना है कि एक इसी ग्रन्थसे मनुष्य सब व्यवहारोंमें निपुण हो सकता है ।

इन्द्रके सामने कामने अपने बलकी प्रशंसामें कहा है कि "अध्यापितस्योशनसापि नीतिं प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते । कस्यार्थधर्मौविह पीडयामि सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः" अर्थात् 'शुक्राचार्यने भी जिसको नीति पढ़ाई हो ऐसा मनुष्य यदि आपका शत्रु हो तो अनायाससे उसके धर्म और अर्थकी हानि कर सकता हूं' इससे भी स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्रमें सबकी शिरमौर यही "शुक्रनीति" है ।

हमारे कितने ही अनुग्राहक ग्राहकोंने इस नीतिशास्त्रके भाषानुवाद सहित प्रकाश होनेकी इच्छा प्रकाश की थी, इससे हमने पण्डितवर्य महामहोपाध्याय लाँखग्रामनिवासी श्रीमिहिरचन्द्रजी द्वारा इसकी भाषाटीका कर शुद्धतापूर्वक इसे मुद्रित कराया था। थोड़े ही समयमें प्रथम संस्करणकी सब पुस्तकें बिक गयीं। तदनन्तर सुपरिमार्जित द्वितीय संस्करणकी सब प्रतियां हाथो हाथ बिकगयीं। अब इसका तृतीय संस्करण हुआ है। इस बार और भी उत्तमता पर ध्यान देकर यथाशक्ति पुस्तककी शुद्धि, छपाई, सफाई इत्यादि की गयी है। आशा है कि विद्यानुरागी इसके अध्ययनसे लाभ उठावेंगे, जिससे हमारा परिश्रम सफल हो।

निवेदक–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.



श्रीः

भाषाटीकासहित शुक्रनीति-

अनुक्रमणिका ।

इति युवराजादिकृत्यकथननामक द्वितीयाऽध्याय ।

अध्याय ३.

साधारणनीतिशास्त्रकथन.

इति तृतीयाध्याय।

अध्याय ४.

मिश्रप्रकरणकथन.

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीः ॥

शुक्रनीतिः ।

(भाषाटीकासहिता)

अध्याय १ ला.

प्रणम्यजगदाधारंसर्गस्थित्यंतकारणम् ॥
संपूज्यभार्गवःपृष्टोवंदितःपूजितःस्तुतः ॥१॥
पूर्वदेवैर्यथान्यायंनीतिसारमुवाचतान् ।
शतलक्षश्लोकमितंनीतिशास्त्रमथोक्तवान् ॥२॥

रचने और पालने और नाशके कारण जगत्के आधार (आश्रय) भगवानको नमस्कार करिके पूर्वदेवताओंने सत्कार-पूर्वक नमस्कार और पूजा और स्तुति की जिनकी ऐसे शुक्राचार्यके न्यायके अनुसार प्रश्न किया वे शुक्राचार्य देवताओंके प्रति नीतिका सार कहते भये शुक्र कहते हैं एक कोटी नीतिशास्त्र ब्रह्माने वर्णन किया ॥ १ ॥ २ ॥

स्वयंभूर्भगवाँल्लोकहितार्थंसंग्रहेणवै ॥
तत्सारंतुवसिष्ठाद्यैरस्माभिर्वृद्धिहेतवे ॥ ३ ॥

जगत्के कल्याणके अर्थ संक्षेपसे उसका सार वशिष्ठ आदि हम संपूर्ण ऋषियोंने बढनेके अर्थ वर्णन किया ॥ ३ ॥

अल्पायुर्भूभृताद्यर्थंसंक्षिप्तंतर्कविस्तृतम् ।
क्रियैकदेशबोधीनिशास्त्राण्यन्यानिसंतिहि ॥४॥

तर्कोंसे किया है विस्तार जिसका ऐसा नीतिशास्त्र अल्प है अवस्था जिनकी ऐसे राजाओंके लिये वशिष्ठ आदिकोंने संक्षेपसे किया इतर जो शास्त्र सो एक २ कार्यके बोधक हैं ॥ ४ ॥

सर्वोपजीवकंलोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम् ।
धर्मार्थकाममूलंहिस्मृतंमोक्षप्रदं यतः ॥ ५ ॥

जिससे धर्म, अर्थ, काम, इनका कारण और मोक्षका दाता कहा है इससे नीतिशास्त्र सम्पूर्ण जगत्का उपकार और मर्यादा पालक है ॥ ५ ॥

अतःसदानीतिशास्त्रमभ्यसेद्यत्नतोनृपः ।
यद्विज्ञानान्नृपाद्याश्चशत्रुजिल्लोकरंजकाः ॥ ६ ॥

इससे राजा नीतिशास्त्रका यत्नसे अभ्यास करै जिसके ज्ञानसे राजा और मंत्री आदि शत्रुओंके जेता और जगत्के प्रिय होते हैं ॥ ६ ॥

सुनीतिकुशलानित्यंप्रभवंतिचभूमिपाः ।
शब्दार्थानांनकिंज्ञानंविनाव्याकरणाद्भवेत् ।

राजा इस शास्त्रके ज्ञानसे सुन्दर नीतिमें कुशल होते हैं शब्द और अर्थका ज्ञान विना व्याकरण क्या नहीं होता ॥ ७ ॥

प्राकृतानांपदार्थानांन्यायतर्कैर्विनानाकिम् ।
विधिक्रियाव्यवस्थानांनकिंमीमांसयाविना ॥८॥

प्राकृत अर्थात जगतके पदार्थोंका ज्ञान न्याय और तर्कके विना और कर्मकांडकी व्यवस्थाओंका ज्ञान मीमांसाके विना क्या नहीं होता ॥ ८ ॥

देहादिनश्वरत्वंवेदांतैर्नविनाहिकिम् ।
स्वस्वाभिमतबोधीनिशास्त्राण्येतानिसंतिहि ॥९॥

शरीर आदि जगत् नाशवान है यह ज्ञान वेदांतके विना क्या नहीं हो सकता अपने २ वांछित एक २ वस्तुके बोधक वे पूर्वोक्त संपूर्ण शास्त्र हैं ॥ ९ ॥

तत्तन्मतानुगैःसर्वैर्विधृतानिजनैःसदा ।
बुद्धिकौशलमेतद्धितैःकिंस्याद्व्यवहारिणाम् ॥ १० ॥

तिस २ मतके अनुयायी संपूर्ण जनोंने सदैव रचे हैं परन्तु वे संपूर्ण शास्त्र बुद्धिकी चतुराईरूप हैं इससे व्यवहारियोंका कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥

सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्याविनानाहि ।
यथाशनैर्विनादेहस्थितिर्नस्याद्धिदेहिनाम् ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण लोकके व्यवहारकी स्थिति नीतिके विना इस प्रकार नहीं हो सकती जब देहधारियोंके देहकी स्थिति भोजनके बिना असंभव है ॥ ११ ॥

सर्वाभीष्टकरंनीतिशास्त्रंस्यात्सर्वसंमतम् ।
अत्यावश्यंनृपस्यापिससर्वेषांप्रभुर्यतः ॥ १२ ॥

सबके वांछितका कारक नीतिशास्त्र सम्पूर्ण मनुष्योंको संमत है और राजाको भी अत्यन्त अवश्य युक्त है क्यों कि यह सम्पूर्णका सम्मत है ॥ १२ ॥

शत्रवोनीतिहीनानांयथाऽपथ्याशिनांगदाः ।
सद्यः केचिच्चकालेनभवंतिनभवंतिच ॥ १३ ॥

जिस प्रकार अपथ्य भोजन करवाले मनुष्योंके रोग इसी प्रकार नीतिसे हीन राजाओंके शत्रु कोई शीघ्र, और कोई कालांतरमें होते हैं फिर वे नीतिहीनोंका तिरस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

नृपस्यपरमोधर्मः प्रजानांपरिपालनम् ।
दुष्टनिग्रहणंनित्यंननीत्यातौविनाह्युभे ॥ १४ ॥

प्रजाओंका पालन और दुष्टोंका नाश ये दो राजाओंके परमधर्म हैं ये दोनों नीतिके विना नहीं हो सकते ॥ १४ ॥

अनीतिरवसंछिद्रंराज्ञोनित्यंभयावहम् ॥
शत्रुसंवर्धनंप्रोक्तंबलहासकरंमहत् ॥ १५ ॥

राजाका अन्याय महान् छिद्र(दोष) है और भयदायक, शत्रुओंका बढानेवाला और सेनाकी हानि करनेवाला होता है॥ १५ ॥

नातिर्त्यक्त्वावर्ततेयःस्वतंत्रः सहिदुःखभाक् ।
स्वतंत्रप्रभुसेवातुह्यसिधारावलेहनम् ॥ १६ ॥

नीतिका परित्याग करके जो राजा स्वतंत्र वर्त्ताव करता है वह दुःखका भागी होता है और स्वतंत्र राजाकी सेवा तलवारकी धारके चाटनेके तुल्य है ॥ १६

स्वाराध्योनीतिमान्राजादुराराध्यस्त्वनीतिमान् ।
यत्रनीतिबलेचोभेतत्रश्रीःसर्वतोमुखी ॥ १७ ॥

नीतिमान् राजा सुखसे आराधना करनेके योग्य हैं, और अनीतिमान् राजा दुःखसे आराधना करनेके योग्य हैं जिस राजाके नीति और बल दोनों हैं उसको चारों ओरसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

अप्रेरितहितकरंसर्वराष्ट्रंभवेद्यथा ॥
तथानीतिस्तुसंधार्यानृपेणात्महितायवै ॥ १८ ॥

जिस प्रकार बिना आज्ञाके हितकारी सम्पूर्ण देश हों इस प्रकार अपने कल्याणके अर्थ राजा नीतिको धारण करै ॥ १८ ॥

भिन्नंराष्ट्रंबलंभिन्नंभिन्नोऽमात्यादिकोगणः ।
अकौशलंनृपस्यैतदनीतेर्यस्यसर्वदा ॥ १९ ॥

जिस राजाके देश, सेना, मन्त्री आदिकोंमें परस्पर भेद हैं यह सर्वकाल नीति हीन राजाओंकी अकुशलता है ॥ १९ ॥

तपसातेजआदत्तेशास्त्रोपाताचरंजकः ।
नृपःस्वप्राक्तनाद्धत्तेतपसाचमहीमिमाम् ॥ २० ॥

तपसे राजा तेजधारी और शास्त्रका ज्ञाता और रक्षाका कर्ता सबका प्रिय होता है और राजा अपने पूर्वजन्मके तपसे इस पृथ्वीकी पालना करता है ॥ २० ॥

वृष्टिशीतोष्णनक्षत्रगतिरूपस्वभावतः ।
इष्टानिष्टाधिकंन्यूनाचारैःकालस्तुभिद्यते ॥ २१ ॥

वर्षा, शीत, उष्ण, नक्षत्रोंकी गति आदिके स्वभावसे इष्ट, अनिष्ट, अधिक और न्यून आचरणसे कालका भेद होता है अर्थात् एक ही काल अनेकप्रकारका प्रतीत होता है ॥ २१ ॥

आचारप्रेरकोराजाह्येतत्कालस्यकारणम् ।
यदिकालःप्रमाणंहिकस्माद्धर्मोस्तिकर्तृषु २२॥

आचरणका प्रेरक राजा है इससे कालका कारण है, जो केवल काल ही प्रमाण हो तो देहधारियोंमें धर्म कहांसे हो, अर्थात् राजाके विना कालसे भी धर्मकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती ॥ २२ ॥

राजदंडभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरोभवेत् ।
योहिस्वधर्मनिरतःसतेजस्वीभवेदिह ॥ २३ ॥

राजदंडके भयसे जगत् अपने २ धर्ममें तत्पर होता है और जो अपने धर्ममें स्थित है वही इस लोकमें तेजधारी होता है ॥ २३॥

विनास्वधर्मान्नसुखंस्वधर्मोहिपरंतपः ।
तपः स्वधर्मरूपंयद्वर्धितंयेनवैसदा ॥२४ ॥

अपने धर्मके विना सुख नहीं होता और अपना धर्म ही परम तप है जिससे तप स्वधर्मरूप है इससे वह स्वधर्मकी सदा वृद्धि करता है ॥ २४॥

देवास्तुकिंकरास्तस्यकिंपुनर्मनुजाभुवि ।
सुदण्डैर्धर्मनिरतःप्रजाःकुर्यान्महाभयैः ॥२५॥

धर्मज्ञ मनुष्यके देवताभी सेवक होते है पृथिवीपर मनुष्य तो क्यों न होंगे धर्ममें स्थित राजा उत्तम और भयानक दंडोंसे प्रजाओंको धर्ममें तत्पर करै ॥ २५ ॥

नृपःस्वधर्मनिरतोभूत्वा तेजःक्षयोन्यथा ।
अभिषिक्तोनाभिषिक्तोनृपत्वंतुयदाप्नुयात्२६॥

राजाको अभिषेक (पिता आदिके उपदेशद्वारा शास्त्रोक्त विधि) अथवा स्वयं जब राजपदवीको प्राप्त हो तब राजा धर्ममें तत्पर रहै जो धर्ममें स्थित नहीं उसके तेजका क्षय (नाश) होता है ॥ २६॥

बुद्ध्याबलेनशौर्येणततोनीत्यानुपालयन् ।
प्रजाः सर्वाः प्रतिदिनमच्छिद्रोदंडधृक्सदा२७।

बुद्धि, बल, शूरवीरता और नीतिसे संपूर्ण प्रजाका पालन करता हुआ राजा अच्छिद्र (दोषरहित) होकर दंडको सदा धारण करै ॥ २७ ॥

नित्यंबुद्धिमतोप्यर्थःस्वल्पकोपिविवर्धते ।
तिर्यञ्चोपिवशंयांतिशौर्येनीतिबलैर्धनैः ॥

बुद्धिमान् राजाका अत्यंत अल्प भी अर्थ नित्य वृद्धिको प्राप्त होता है सर्प आदि भी शूरता,बल,नीति धनसे बश हो जाते हैं ॥ २८ ॥

सात्त्विकंतामसंचैवराजसंत्रिविधंतपः।
यादृक्तपतियोत्यर्थंतादृग्भवतिसोनृपः ॥२९॥

सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, तीन प्रकारका तप होता है, जो राजा सात्विकगुणी होकर तपता है वह वैसा ही होता है ॥ २९ ॥

योहिस्वधर्मनिरतःप्रजानांपरिपालकः ।
यष्टाचसर्वयज्ञानांनेताशत्रुगणस्यच ॥ ३० ॥
दानशौंडःक्षमीशूरोनिःस्पृहोविषयेष्वपि ।
विरक्तःसात्त्विकःसोहिनृपोंतेमोक्षमान्वियात्३१

जो राजा धर्मनिष्ठ होकर प्रजाका पालक होता है, और सपूर्ण यज्ञोंको करता है शत्रुओंका जेता है और दानी है और क्षमावान् है, शूरवीर है निर्लोभी है, विषयोंसे विरक्त है, वह सात्त्विक राजा अंतसमयमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

विपरीतस्तामसःस्यात्सोंतेनरकभाजनः ।
निर्घृणश्चमदोन्मत्तोहिंसकः सत्यवर्जितः ३२॥

पूर्वोक्त लक्षणोंसे विपरीत है लक्षण जिसमें ऐसा राजा तामसी और निर्दयी, मदोन्मत्त, हिंसाप्रिय, सत्यहीन, अन्तमें वह नरकगामी होता है ॥ ३२ ॥

राजसोदांभिकोलोभीविषयीवंचकश्शठः ।
मनसान्यश्चवचसाकर्मणाकलहप्रियः ॥ ३३॥

नीचप्रियः स्वतंत्रश्चनीतिहीनश्छलांतरः ।
सतिर्यक्त्वंस्थावरत्वंभावितांतेनृपाधमः ३४ ॥

दंभी, लोभी, विषयी, वंचक, शठ, मनसा अन्य (मनमें कपटी) वाणी और कर्मसे कलहकारी, नीचोंमें प्रेमी, स्वतंत्र, नीतिहीन, मनसे छली ऐसा राजाओंमें अधम राजा रजोगुणी होताहै, वह अन्तमें तिरछी अथवा स्थावरयोनिको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

देवांशान्सात्त्विकोभुंक्तेराक्षसांशांस्तुतामसः।
राजसोमानवांशांस्तुसत्त्वेधार्यंमनोयत ३६॥

सत्वगुणी देवांशोंको, तमोगुणी राक्षसांशोंको, रजोगुणी मनुष्यांशोंको भोगताहै,इससे सत्त्वगुणहीमें मनकी धारणा करै ॥ ३५ ॥

सत्त्वस्यतमसःसाम्यान्मानुषंजन्मजायते ।
यद्यदाश्रयतेमर्त्यस्तत्तुल्योदिष्टतोभवेत् ॥

सत्त्वगुणी, और तमोगुणीकी साम्यतासे मनुष्यजन्म होता है, तिस २ गुणका, आश्रय करता है अपने प्रारब्धके अनुसार तिसके ही तुल्य होता है ॥ ३६ ॥

कर्मैवकारणंचात्रसुगतिंदुर्गतिंप्रति ।
कर्मैवप्राक्तनमपिक्षणंकिंकोस्तिचाक्रियः ३७

इस जगत्में सुगति और दुर्गतिके प्रति कर्म ही कारण है पूर्वकर्मकोही प्रारब्ध कहते हैं क्या कोई जीव क्षणमात्र भी कर्मरहित रह सकता है अर्थात् नहीं रह सकता ॥ ३७ ॥

नजात्याब्राह्मणश्चात्रक्षत्रियोवैश्यएवन ।
नशूद्रोनचवैम्लेच्छोभेदितागुणकर्मभिः ३८

इस जगत्में जन्मसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, नहीं होते हैं किन्तु गुण और कर्मके भेदसे होते हैं ॥ ३८ ॥

ब्रह्मणस्तुसमुत्पन्नाः सर्वेतेकिंनुब्राह्मणाः ।
नवर्णतोनजनकाद्ब्राह्मतेजः प्रपद्यते ॥३९॥

संपूर्ण, जीव ब्रह्मासे उत्पन्न होनेसे क्या ब्राह्मण हो सकते हैं, अर्थात् नहीं, वर्णसे और पितासे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधनेरतः ।
शांतोदांतोदयालुश्चब्राह्मणश्चगुणैःकृतः ३९॥

ज्ञान, कर्म, देवता आदिकी उपासना, देवताके आराधनमें तत्पर, और शांत, दांत और दयालु, ऐसा जो मनुष्य वही गुणोंसे ब्राह्मण होता है ॥ ४० ॥

लोकसंरक्षणेदक्षश्शूरोदांतः पराक्रमी ।
दुष्टनिग्रहशीलोयः सवैक्षत्रियउच्यते ॥ ४१ ॥

लोककी रक्षा करनेमें चतुर शूरवीर दांत और पराक्रमी, दुष्टोंको दंडका दाता ऐसा जो मनुष्य उसे क्षत्रिय कहते हैं ॥ ४१ ॥

क्रयविक्रयकुशलायेनित्यंपण्यजीविनः ।
पशुरक्षाकृषिकरास्तेवैश्याः कीर्तिताभुवि ४२॥

लेने देनेमें चतुर, व्यवहार है जीवन जिनका और पशुओंकी रक्षा और खेतीके करनेहारे जीव वे पृथ्वीमें वैश्य कहते हैं ॥ ४२ ॥

द्विजसेवार्चनरताःशूराः शांताजितेन्द्रियाः ।
सीरकाष्ठतृणवहास्तेनीचाःशूद्रसंज्ञकाः ॥४३॥

ब्राह्मणकी सेवा और पूजनमें तत्पर शूर, वीर, शांत और जितेन्द्रिय, हल काष्ठ और तृण इनको ले जानेहारे जो नीच जीव वे शूद्र कहाते हैं ॥ ४२ ॥

त्यक्तस्वधर्माचरणानिर्घृणाः परपीडकाः ।
चंडाश्चाहिंसकानित्यंम्लेच्छास्तेह्यविवेकिनः ४४॥

त्याग दियाहै अपने धर्मका आचरण जिन्होंने ऐसे निर्दयी परको पीड़ादेनेहारे चंड और नित्य हिंसक जो अविवेकी मनुष्य वे म्लेच्छ हैं॥४४॥

प्राक्कर्मफलभोगार्हाबुद्धिःसंजायतेनृणाम् ।
पापकर्माणिपुण्येवाकर्तुंशक्तोनचान्यथा॥ ४५॥

पूर्वकर्मके फल भोगने योग्य मनुष्यकी बुद्धि पापकर्म अथवा पुण्यमें जब होती है तबही

बुद्धिके अनुसार कर्म कर सकता है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥

बुद्धिरुत्पद्यतेतादृग्यादृक्कर्मफलोदयः ॥
सहायास्तादृशाएवयादृशीभवितव्यता ॥४६॥

जैसे कर्मके फलका उदय होता है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, और जैसी भवितव्यता (होनी) होतीहै वैसेही सहायक होतेहैं ॥ ४६ ॥

प्राक्कर्मवशतः सर्वंभवत्येवेतिनिश्चितम् ।
तदोपदेशाव्यर्थाःस्युःकार्याकार्यप्रबोधकाः४७॥

जो यह निश्चय है कि पूर्वकर्मके अधीन ही संपूर्ण होता है तो कार्यके जतानेहारे उपदेश व्यर्थ हो जायँगे ॥ ४७ ॥

धीमंतोवंद्यचरितामन्यंतेपौरुषंमहत् ।
अशक्तापौरुषंकर्तुंक्लीवादैवमुपासते ॥४८ ॥

बुद्धिमान और माननीयचरित्र मनुष्य पुरुषार्थको बड़ा मानतेहैं और जो नपुंसक पुरुषार्थ करनेको असमर्थ हैं वे दैव (प्रारब्ध) की उपासना करते हैं ॥ ४८ ॥

दैवेपुरुषकारेचखलुसर्वंप्रतिष्ठितम् ।
पूर्वजन्मकृतंकर्मेहार्जितंतद्द्विधाकृतम् ॥४९॥

प्रारब्ध और पुरुषार्थमेंही निश्चयसे सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है पूर्वजन्मका कर्म प्रारब्ध और इस जन्मका कर्म पुरुषार्थ होनेसे एक ही कर्मसे दो प्रकारका होता है॥ ४९ ॥

बलवत्प्रतिकारिस्याद्दुर्बलस्यसदैवहि ।
सबलाबलयोर्ज्ञानंफलप्राप्त्यान्यथानहि ॥५०॥

दुर्बलका प्रतिकार करनेवाला उपकारी बलवान् कर्म सर्वदा होताहै और प्रबल और दुर्बलके ज्ञान फलप्राप्तिसे हैं अन्यथा नहीं होते ॥ ५० ॥

फलोपलब्धिः प्रत्यक्षहेतुनानैवदृश्यते ।
प्राक्कर्महेतुकासातुनान्यथैवेतिनिश्चयः॥५१॥

फलकी प्राप्तिका हेतु कोई प्रत्यक्ष नहीं दीखता क्योंकि यह निश्चय है कि फलकी प्राप्ति पूर्वकर्मके अनुसार होती है अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ५१ ॥

यज्जायतेल्पक्रिययानृणांवापिमहत्फलम् ॥
तदपिप्राक्तनादेवकेचित्प्रागिहकर्मजम् ॥५२॥

जो मनुष्यको अल्प कर्मसे महान् फल होता है वह भी पूर्वकर्मसे ही होता है क्योंकि इस जन्मके कर्मसे पूर्व किंचित् भी नहीं हो सकता॥ ५२ ॥

वदंतीहैवक्रियाजायतेपौरुषंनृणाम् ।
सस्नेहवर्तिदीपस्यरक्षावाताप्रयत्नतः ॥५३ ॥

कोई मतवादी कहते हैं कि इस जन्मके ही कर्मसे मनुष्योंका पुरुषार्थ होता है जैसे तेलबत्ती सहित दीपककी रक्षा पवनसे और यत्नसे करते हैं ॥ ५३ ॥

अवश्यंभाविभावानांप्रतीकारोनचेद्यदि ।
दुष्टानांक्षपणंश्रेयोयावद्बुद्धिबलोदयम्॥५४॥

अवश्य होनेवाली वस्तुका जो प्रतिकार न होता तो अपने बुद्धि और बलके अनुसार दुष्टोंके नाशसे कुशल कैसे होती अर्थात् पुरुषार्थसे भावी भी अन्यथा हो सकतीहै॥५४॥

प्रतिकूलानुकूलाभ्यांफलाभ्यांचनृपोप्यतः ।
ईषन्मध्याधिकाभ्यांचत्रिधादैवंविचिंतयेत् ५५॥

इससे राजा भी अपने प्रतिकूल, अनुकूल और अल्प, मध्यम, उत्तम फलोंसे तीन प्रकारके दैवका विचार करै ॥ ५५ ॥

रावणस्यचभीष्माद्वनभंगेचगोगृहे ।
प्रातिकूल्यंतुविज्ञातमेकस्माद्वानरान्नरात् ५६॥

रावणके वनका भंग एक वानर (हनुमान) से हुआ और भीष्मका गोगृहमें एक नर (अर्जुन) से भंग भया इससे कर्मकी प्रतिकूलता भी ज्ञाता होती है ॥ ५६ ॥

कालानुकूल्यंविस्पष्टंराघवस्यार्जुनस्यच ।
अनुकूलेयदादैवेक्रियाल्पासुफलाभवेत् ५७॥

रामचन्द्र और अर्जुनकी काल सम्बन्धी अनुकूलता स्पष्टतर है क्योंकि जब

दैव अनुकूल होता है तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती है ॥ ५७ ॥

महती सत्क्रियानिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके ।
बलिर्दानेनसंबद्धोहरिश्चंद्रस्तथैवच ॥ ५८ ॥

प्रारब्धकी प्रतिकूलतामें महान् भी सत्कर्म अनिष्ट फलदायक होता है बलि और राजा हरिश्चंद्र दानसेभी बंधनको प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥

भवतीष्टंसत्क्रियया निष्टंतद्विपरीतया ॥
शास्त्रतः सदसज्ज्ञात्वात्यक्त्वाऽसत्सत्समा-
चरेत् ॥ ५९ ॥

सत्कर्मसे इष्ट और असत्कर्मसे अनिष्ट होता है इससे शास्त्रद्वारा सत् और असतका ज्ञान और असतका परित्याग करके सत (श्रेष्ठ) कर्मकाही आचरण करै ॥ ५९ ॥

कालस्यकारणंराजासदसत्कर्मणस्त्वतः ।
स्वक्रौर्योद्यतदंडाभ्यांस्वधर्मेस्थापयेत्प्रजाः ६० ॥

कालका कारण राजा है सत् और असत् कर्मके प्रभावसे अपनी क्रूरता और उसे अपने २ कर्ममें प्रजाका स्थापन राजा करै ॥ ६० ॥

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानिच ।
सप्तांगमुच्यतेराज्यंतत्रमूर्धानृपः स्मृतः ६१ ॥

राजा, मन्त्री, मित्र, कोश, देश, दुर्ग, किला, सेना ये सात अंग राज्यकेहैं तिन सातों में राजा प्रधान है ॥ ६१ ॥

दृगमात्यासुहृच्छ्रोत्रंसुखंकोशाबलंमनः ।
हस्तौपादौदुर्गराष्ट्रौराज्यांगानिस्मृतानिहि ६२ ॥

मन्त्री, नेत्र, मित्र, कर्ण, कोश मुख, सेना, मन, दुर्ग हाथ, देश पाद, ये राज्यके अंग कहे हैं ॥ ६२ ॥

अंगानांक्रमशोवक्ष्येगुणान्भूतिप्रदान्सदा ।
यैर्गुणैस्तुसुसंयुक्तावृद्धिंमंतोभवंतिहि ॥ ६३ ॥

भूतिके देनेवाले अंगोंके गुण क्रमसे कहते हैं जिन गुणोंसे संयुक्त मनुष्य वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥

राजास्यजगतोहेतुर्वृद्धेर्वृद्धाभिसंमतः ।
नयनानंदजनकः शशांकइवतोयधेः ॥ ६४ ॥

राजा इस जगत्की वृद्धिका हेतु है और वृद्धोंका मान्य है नेत्रोंको इस प्रकार आनंद देता है जैसे चन्द्रमा समुद्रको ॥ ६४ ॥

यदिनस्यान्नरपतिः सम्यङ्नेताततः प्रजाः ।
अकर्णधाराजलधौविप्लवेतेहनौरिव ॥ ६५ ॥

जो उत्तम नीतिमान् राजा न हो तो प्रजा इस प्रकार नष्ट हो जाय जैसे मलाहके विना समुद्रमें नाव ॥ ६५ ॥

नतिष्ठंतिस्वस्वधर्मेविनापालनेनवैप्रजाः ।
प्रजयातुविनास्वामीपृथिव्यांनैवशोभते ६६ ॥

पालकके विना प्रजा अपने २ धर्ममें नहीं टिकती और पृथिवीपर प्रजाके विना स्वामी भी शोभाको प्राप्त नहीं होता ॥ ६६ ॥

न्यायप्रवृत्तोनृपतिरात्मानमथचप्रजाः ।
त्रिवर्गेणोपसंधत्तेनिहंतिध्रुवमन्यथा ॥ ६७ ॥

न्यायमें प्रवृत्त राजा अपनी और प्रजाकी धर्म अर्थ काममें धारणा करता है और अन्यथा पूर्वोक्तोंको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

धर्माद्वैपवनोराजाविधायबुभुजेभुवम् ।
अधर्माच्चैवनहुषः प्रतिपेदेरसातलम् ॥ ६८ ॥

धर्मसे पवन राजा पृथ्वीको जीतकर भोगता भया और राजा नहुष अधर्मसे पातालमें प्राप्त हुआ ॥ ६८ ॥

वेनोनष्टस्त्वधर्मेणपृथुर्वृद्धस्तुधर्मतः ।
तस्माद्धर्मंपुरस्कृत्ययतेतार्थायपार्थिवः ६९ ॥

राजा वेन अधर्मसे नष्ट हुआ, और राजा पृथु धर्मसे वृद्धिको प्राप्त हुआ तिससे राजा धर्मको प्रधान रखकर द्रव्यके संचयमें यत्न करै ॥ ६९ ॥

योहिधर्मपरोराजादेवांशोन्यश्चरक्षसाम् ।
अंशभूतोधर्मलोपीप्रजापीडाकरोभवेत् ॥७० ॥

जो राजा धर्ममें तत्पर हैं वह देवताओंके अंश हैं और इतर राजा राक्षसोंके अंश है राक्षसोंका अंश धर्मका लोपकर्त्ता प्रजाका पीडा करनेहारा होता है॥ ७० ॥

इंद्रानिलयमार्काणामग्रेश्ववरुणस्यच ।
चन्द्रवित्तेशयोश्चापिमात्रानिर्हृत्यशाश्वतीः ॥
जंगमस्थावराणांचहीशः स्वतपसाभवेत् ।
भागभाग्रक्षणेदक्षोयथेंद्रोनृपतिस्तथा ७२ ॥

इंद्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चंद्र, कुबेर इनके स्वभाविक अंशोंसे और अपने तपके प्रतापसे जंगम और स्थावरोंका स्वामी, राजा होता है राजा अपने अंश (कर) का भोगनेहारा रक्षा करनेमें चतुर इस प्रकार होता है जैसा स्वर्गका रक्षक इंद्र ॥७१॥ ७२ ॥

वायुर्गंधस्यसदसत्कर्मणःप्रेरकोनृपः ।
धर्मप्रवर्त्तकोऽधर्मनाशकस्तमसोरविः॥७३॥

पवन सुगंधका जैसे प्रेरक है तैसे सत् और असत् कर्मका प्रेरक राजा होता है। धर्मका प्रवर्त्तक और अधर्मका नाशक राजा इस प्रकार होता है जैसे अंधकारका नाशक सूर्य होता है ॥ ७३ ॥

दुष्कर्मदंडकोराजायमः स्याद्दंडकृद्यमः ।
अग्निश्शुचिस्तथाराजारक्षार्थंसर्वभागभुक् ॥

दुष्टकर्मके दंडका दाता होनेसे यमराजके समान दंडका कारक होता है राजा अग्निके समान शुद्ध होता है और रक्षाके अर्थ अपने भाग (कर) को भोगता है॥ ७४॥

पुष्यत्यपांरसैः सर्वंवरुणः स्वधनैर्नृपः ।
करैश्चंद्रोह्लादयतिराजास्वगुणकर्मभिः॥७५ ॥

जलोंसे सबका पोषक राजा जलरूप और अपने धनोंसे पुष्ट करनेसे वरुणरूप है चंद्रमाकी किरणोंके समान अपने गुण और कर्मोंसे सबको प्रसन्न रखता है॥ ७५ ॥

कोशानांरक्षणेदक्षःस्यान्निधीनांधनाधिपः ।
चंद्रांशेनविनासर्वैरंशैर्नोभातिभूपतिः ॥७६॥

धनकी रक्षा करनेमें चतुर और कोशमें कुबेरके समान सर्वगुणी भी राजा चंद्रमांश (प्रकाश) के विना शोभित नहीं होता॥ ७६ ॥

पितामातागुरुर्भ्रातावंधुर्वैश्रवणोयमः ।
नित्यंसप्तगुणैरेषांयुक्तोराजानचान्यथा ॥७७॥

पिता, माता, गुरु, भ्राता, बंधु, कुबेर, यम इनके सात गुणोंसे युक्त ही राजा होता है अन्यथा नहीं होता॥ ७७ ॥

गुणसाधनसंदक्षः स्वप्रजायाःपिता यथा ।
क्षमयित्र्यपराधानांमातापुष्टिविधायिनी ७८॥

पिताके समान अपनी प्रजाके गुणोंकी सिद्धिमें तत्पर रहै और प्रजाके अपराधोंको क्षमा करिके पुष्टि इस प्रकार करै जैसे माता पुत्रके अपराधोंको क्षमा करिके पुष्टि करती है॥ ७८ ॥

हितोपदेष्टाशिष्यस्यसुविद्याध्यापकोगुरुः ।
स्वभागोद्धारकृद्भ्रातायथाशास्त्रंपितुर्धनात् ॥

जिस प्रकार गुरु शिष्यको उत्तम विद्याध्ययन कराता है और उसके हितोंको उपदेश भी कराता है जिस प्रकार भ्राताके धनमेंसे शास्त्रके अनुसार अपने भागको ग्रहण करता है इस प्रकार राजा भी पितोपदेशपूर्वक शास्त्रके अनुसार ही कर (दंड) कग्रहण करै॥ ७९ ॥

आत्मस्त्रीधनगुह्यानांगोप्तावंधुस्तुमित्रवत् ।
धनदस्तुकुबेरःस्याद्यमः स्याच्चसुदंडकृत् ८०॥

बन्धु जिस प्रकार मित्रके समान अपने स्त्री धन गोप्य वस्तु इनकी रक्षा करता है इसी प्रकार राजा भी करै और प्रजाकी विपत्तिमें धनके देनेसे कुबेर और अपराधके अनुसार दंड देनेसे यमरूप राजा होता है॥ ८० ॥

मन्त्राद्धिमतिसंराज्ञिनिवसंतिगुणाअमी ।
एतेसप्तगुणाराज्ञानहातव्याः कदाचन ॥८१॥

श्रेष्ठ बुद्धिमान् उत्तम राजामें ये पूर्वोक्त सातों गुण वसते हैं इससे राजा इन सातों गुणोंका कदाचित् भी परित्याग न करै ॥८१॥

क्षमतेयोपराधं स शक्तः स दमनेक्षमी ।
क्षमयातुविनाभूपोनभात्यखिलसद्गुणैः ८२॥

जो अपराधोंकी क्षमा करै वह राजा क्षमावान् है और जो दमन दंड देनेमें समर्थ है वह शक्त है क्षमाके विना राजा सम्पूर्ण भी उत्तम गुणोंसे शोभित नहीं होता है ॥ ८२ ॥

स्वान्दुर्गुणान्परित्यज्यह्यतिवादांस्तितिक्षते ।
दानैर्मानैश्चसत्कारैः स्वप्रजारंजकः सदा ॥

अपने निन्दित गुणोंका परित्याग करिके निन्दाका सहन करै दान मान सत्कारसे अपनी प्रजाको सदा प्रसन्न रक्खै ॥ ८३ ॥

दांतः शूरश्चशस्त्रास्त्रकुशलोरिनिषूदनः।
अस्वतंत्रश्चमेधावीज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥८४ ॥

दमनशील शूरवीर शस्त्र और अस्त्रमें कुशल शत्रुओंका नाशक शास्त्रके अनुसार आचरण करनेहारा बुद्धिमान् ज्ञान और विज्ञानसंयुक्त राजा सदा रहै ॥ ८४ ॥

नीचहीनोदीर्घदर्शीवृद्धसेवीसुनीतियुक् ।
गुणिजुष्टस्तुयोराजासज्ञेयोदेवतांशकः ८५॥

नीचोंसे रहित दीर्घदर्शी वृद्धोंका सेवक उत्तम नीतिमान् गुणियोंसे युक्त ऐसाजो राजा वह देवताओंका अंश है ॥ ८५ ॥

विपरीतस्तुरक्षोंशः सवैनरकगोजनः ॥
नृपांशसदृशोनित्यंतत्सहायगणः किल॥ ८६॥

पूर्वोक्त गुणोंसे विपरीत हैं गुण जिसमें वह राजा राक्षसोंका अंश है और जिस अंशका राजा होता है उसके सहायकोंका समूह भी उसी अंशका होता है ॥ ८६ ॥

तत्कृतंमन्यतेराजासंतुष्यतिचमोदते ।
तेषामाचरणैर्नित्यंनान्यथानियतेर्बलात्॥८७॥

सहायकोंके लिये कार्यको उनके आचरणोंसे राजा मानता है और संतोष करता है और दैवके अनुसार प्रसन्न होता है अन्यथा नहीं ॥ ८७ ॥

अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतकर्मफलंनरैः ॥
प्रतिकारैर्विनानैवप्रतिकारेकृतेसति ॥ ८८ ॥

किये हुए कर्मोंका फल मनुष्यको अवश्य ही भोगना पडताहै प्रतिकारके विना प्रतिकार (निवृत्तिका उपाय) किये पीछे भी अवश्य भोगने योग्य है ॥ ८८ ॥

तथाभोगायभवतिचिकित्सितगदोयथा ।
उपादिष्टोनिष्टहेतौतत्तत्कर्तुंयतेतकः ॥ ८९ ॥

जिस प्रकाररोगीकी चिकित्सा होगी उसी प्रकारके भोगोंकी प्राप्ति होगी जो अनिष्ट फलके हेतुका उपदेश करता है उसके करनेमें कोई भी यत्न नहीं करता ॥ ८९ ॥

रज्यतेसत्फलेस्वांतंदुष्फलेनहिकस्यचित् ।
सदसद्बोधकान्येवदृष्ट्वाशास्त्राणिचाचरेत् ९०

मनुष्यका मनउत्तम है फल जिसका ऐसे कर्ममें लगताहै और अनिष्ट है फल जिसका उसमें किसीका भी मन नहीं लगता है इससे सत् और असत्के बोधक शास्त्रोंको देखकर ही राजा आचरण करै ॥ ९० ॥

नयस्यविनयोमूलंविनयः शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयस्येंद्रियजयस्तद्युक्तःशास्त्रमृच्छति ॥९१

नीतिका कारण विनय है विनय शास्त्रके निश्चयसे होता है विनयका हेतु इन्द्रियोंका जय है इन्द्रियोंके जयसे ही शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ ९१ ॥

आत्मानंप्रथमंराजाविनयेनोपपादयेत् ।
ततःपुत्रांस्ततोमात्यांस्ततोभृत्यांस्ततःप्रजाः

इससे राजा प्रथम अपने आत्माके निरन्तर विनययुक्त करै फिर पुत्रोंको फिर अमात्योंको फिर सेवकोंको फिर प्रजाको विनय युक्त करै ॥ ९२ ॥

परोपदेशकुशलः केवलोनभवेन्नृपः ।
प्रजाविकारहीनःस्यात्सगुणोपिनृपःक्कचित् ९३

दूसरेके उपदेशोंमें ही केवल राजा कुशल न रहै किन्तु आप भी विनयशील रहै क्योंकि विनयहीन सगुण भी राजा प्रजाके अधिकारसे कदाचित् हीन होजाताहै ॥ ९३ ॥

नतुनृपाद्विहीनस्याद्दुर्गुणाह्यपितुप्रजा ।
यथानविधवेंद्राणीसर्वदातुतथाप्रजा ॥९४॥

दुर्गुण भी प्रजा राजासे हीन सर्वदा इस प्रकार नहीं होती जैसे इन्द्रकी स्त्री कभी विधवा नहीं होती है ॥ ९४ ॥

भ्रष्टश्रीः स्वामिताराज्ञोनृपएवनमंत्रिणः ।
तथाविनीतदायादोदांताः पुत्रादयोपिच ९५

जैसे राजाकी भ्रष्टश्रीका कारण राजा ही है मंत्री नहीं तिसी प्रकार जिस राजाके पुत्र आदि अविनीत होते हैं वही राजा भ्रष्टश्री अर्थात् राज्यसे हीन हो जाता है ॥ ९५ ॥

सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः ।
विनीतात्माहिनृपतिर्भूयसींश्रियमश्नुते॥९६॥

जिस राजामें प्रजाका अनुराग होता है और जो प्रजाके पालनमें तत्पर है और विनीत है; वह राजा अत्यन्त श्रीको भोगता है ॥ ९६ ॥

प्रकीर्णविषयारण्यधावंतंविप्रमाथिनम् ।
ज्ञानांकुशेनकुर्वीतवशमिंद्रियदंतिनम् ॥९७ ॥

राजा गहन विषयरूपी वनमें मदसे दौडते हुए इन्द्रियरूपी हस्तीको ज्ञानरूपी अंकुशसे वशमें करै ॥ ९७ ॥

विषयामिषलोभेनमनःप्रेरयतींद्रियम् ।
तन्निरुंधेत्प्रयत्नेनजितेतस्मिञ्जितेन्द्रियः ॥९८

विषयरूप मांसके लोभसे इन्द्रियोंको मन प्रेरता है तिसके प्रयत्नसे मनको रोके क्योंकि मनके जीतनेसे राजा जितेन्द्रिय होता है ॥ ९८ ॥

एकस्यैवहियोशक्तोमनसः सन्निबर्हणे ।
महींसागरपर्यंतांसकथंह्यवजेष्यति ॥ ९९ ॥

जो राजा एक मनके वश करनेमें असमर्थ है वह राजा सागरपर्यंत पृथ्वीको किस प्रकार जीतेगा ॥ ९९ ॥

क्रियावसानविरसैर्विषयैरपहारिभिः ।
गच्छत्याक्षिप्तहृदयः करीवनृपतिर्ग्रहम् ॥

नाशमान और अन्तमें विरस विषयोंसे आक्षिप्त (वशीभूत) मन जिसका ऐसा राजा हस्तीके समान बंधनको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥

शब्दः स्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चपंचमः ।
एकैकस्त्वलमेतेषांविनाशप्रतिपत्तये ॥ १ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इनमेंसे एक २ भी विषय विनाश करनेको समर्थ है ॥ १ ॥

शुचिदर्भांकुराहारोविदूरभ्रमणेक्षमः ।
लुब्धकोद्गीतमोहेनमृगोमृगयतेवधम् ॥२॥

शुद्ध, और कुशाओंके अंकुरोंका भक्षक, और अत्यन्त दूर देशमें भ्रमणशील मृग लुब्धकके गीतसे मोहित होकर वधको प्राप्त होता है अर्थात् एक श्रवण इन्द्रियकेही वश होकर मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

गिरींद्रशिखराकारोलीलयोन्मूलितद्रुमः ।
करिणीस्पर्शसंमोहाद्बंधनंयातिवारणः ३ ॥

पर्वतकी शिखरके समान है आकार जिसका और लीलासे उखाड़े हैं वृक्ष जिसने ऐसा हस्ती हस्तिनीकेभोगके समोहसेबंधनको प्राप्त होता है अर्थात् लिंगइन्द्रियकेही वशीभूत होकर बंधनको भोगता है ॥ ३ ॥

स्निग्धदीपशिखालोकविलोलितविलोचनः ।
मृत्युमृच्छतिसंमोहात्पतंगः सहसापतन् ४ ॥

स्निग्ध (रमणीय) दीपककी शिखाके देखनेसे चंचल हैं नेत्र जिसके ऐसा पतंग

दीप शिखापर गिरता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् नेत्र इन्द्रिय ही इसके वधका हेतु हो जाता है ॥ ४ ॥

अगाधसलिलेमग्नोदूरोऽपिवसतोवसन् ।
मीनस्तुसामिषंलोहमास्वादयति मृत्यवे ५॥

अगाधजलमें डूबा हुआ और दूर बसता हुआ भी मीन अपनी मृत्युके अर्थ मांस सहित लोहेको ग्रहण करता है अर्थात् एक जिह्वा इन्द्रियसेही मर जाता है ॥ ५ ॥

उत्कर्तितुंसमर्थोपिगंतुंचवसपक्षकः ।
द्विरेफोगंधलोभेनकमलेयातिवंधनम् ॥ ६॥

कमलके कतरनेमें समर्थ और अपने पंखोंसे गमन करनेमें संपन्न भी भ्रमर गंधके लोभसे कमलके विषे बँध जाता है अर्थात् घ्राण इंद्रियसे मरणको प्राप्त होता है ॥ ६

एकैकशोविनिघ्नन्तिविषयाविषसन्निभाः ।
किंपुनः पंचमिलिताः नकथंनाशयंतिहि ७ ॥

विषके तुल्य विषय एक २ भी हनते हैं तौ पांचों मिलकर नाश क्यों नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य करेंगे ॥ ७ ॥

द्यूतंस्त्रीमद्यमेवैतात्रितयंवह्वनर्थकृत् ।
अयुक्तंयुक्तियुक्तंहिधनपुत्रमतिप्रदम् ॥८ ॥

अयोग्य द्यूत, स्त्री, मदिरा, अत्यंत अनर्थके कर्ता हैं, यदि युक्त अर्थात् इनका सेवन योग्यतापूर्वक होय तो क्रमसे धन, पुत्र, मति इनके दायक होते हैं ॥ ८ ॥

नलधर्मप्रभृतयः सुद्यतेनविनाशिताः ।
सकापटंधनायालंद्यूतंभवतितद्विदाम् ९ ॥

नल और युधिष्ठिर आदि राजाओंको द्यूतने नष्ट कर दिया, द्यूतके जाननेवालोंको कपट सहित द्यूत धनके देनेमें समर्थ है ॥ ९ ॥

स्त्रीणांनामापिसंह्लादिविकरोत्येवमानसम् ।
किंपुनर्दर्शनंतासांविलासोल्लासितभ्रुवाम् १०॥

आनन्दका दाता स्त्रियोंका नाम भी मनको विकारी करता है और विलाससकरिके उल्लास (शोभा) को प्राप्त हुई है भ्रुकुटी जिनकी उनका दर्शन तौ क्यों नहीं विकारको करैगा अर्थात् अवश्य करैगा ॥ १० ॥

रहःप्रचारकुशलामृदुगद्गदभाषिणी ।
कंननारीवशीकुर्यान्नरंरक्तांतलोचना ॥ ११ ॥

एकान्त कार्यमें कुशल और कोमल गद्गद बोलनेमें तत्पर लाल है नेत्रोंका समीप जिसका ऐसी स्त्री किस मनुष्यको वशमें न करैगी अपितु सबकोही वश कर सकती है ११

मुनेरपिमनोवश्यंसरागंकुरुतेंगना ।
जितेंद्रियस्यकावार्ताकिंपुनश्चाजितात्मनाम्॥

जितेंद्रिय मुनिके मनकोभी वशीभूत और सराग (विषयाभिलाषी) स्त्री कहती है, अजितात्माओंके मनको तो वशीभूत क्यों नहीं करैगी ॥ १२ ॥

व्यायच्छंतश्चवहवः स्त्रीपुनाशंगताअमी ।
इंद्रदंडकयनहुषरावणाद्याः सदाह्यतः १३ ॥

परस्त्रियोंकी इच्छा करनेहारे ये राजा नाशको प्राप्त हुए, इन्द्र, दंडक्य, नहुष और रावण आदि ॥ १३ ॥

अतत्परनरस्यैवस्त्रीसुखायभवेत्सदा ।
साहाय्यंनगृहेह्यकृत्येतांविनान्यानविद्यते ॥

जो मनुष्य स्त्रीके विषे तत्पर (अधीन) नहीं उसीको स्त्री सुखदायक होती है क्योंकि गृहके कार्यमें उसके विना और कोई भी सहायक नहीं है ॥ १४ ॥

अतिमद्यंहिपिवतोबुद्धिलोपोभवेत्किल ।
प्रतिभांबुद्धिवैशद्यंधैर्यंचित्तविनिश्चयम् ॥१५॥
तनोतिमात्रयापीतंमद्यमन्याद्विनाशकृत् ।
कामक्रोधौमद्यतमौनियोक्तव्यौयथोचितम् १६

अत्यंत मदिरा पीनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका लोप होता है, और परिमित पिई हुई मदिरा बुद्धिकी स्फुरणा और श्रेष्ठता, धीरता, चित्तको निश्चय इनको विस्तार करतीहै,अधिक मदिरा विनाश करती है और मदिरासे भी काम, क्रोध होता है इनको यथोचित रोकै १५ १६॥

कामः प्रजापालनेचक्रोधःशत्रुनिर्बर्हणे ।
सेनासंधारणेलोभोयोज्योराज्ञाजयार्थिना ॥

विषयकी इच्छावाला राजा प्रजाके पालनमें कामना और शत्रुओंके नष्ट करनेमें क्रोध और सेनाकी धारणामें लोभको क्रमसे नियुक्त करै अन्यत्र नहीं ॥ १७ ॥

परस्त्रीसंगमेकामोलोभोनान्यधनेषुच ।
स्वप्रजादंडनेक्रोधोनैवधार्योनृपः कदा १८॥

परस्त्रीके संगममें काम और अन्यके धनमें लोभ और अपनी प्रजाके दंडमें क्रोधका धारण राजा कदापि न करै ॥ १८ ॥

किमुच्येतकुटुंबीतिपरस्त्रीसंगमान्नरः ।
स्वप्रजादंडनाच्छूरोधनिकोन्यधनैश्चकिम् ॥

परस्त्रीके सङ्गसे कुटुंबी और अपनी प्रजाको दंड देनेसे शूरवीर और अन्यके धनोंसे धनिक क्या मनुष्य कहा जाता है अपितु कदाचित् भी नहीं कहाता ॥ १९ ॥

अरक्षितारंनृपतिंब्राह्मणंचातपस्विनम् ।
धनिकंचाप्रदातारंदेवाघ्नंतित्यजंत्यधः ॥ २०॥

रक्षाके न करनेहारे राजाको और अतपस्वी ब्राह्मणको और अदाता धनिकको देवता हतते हैं और नरकमें गेरते हैं ॥ २० ॥

स्वामित्वंचैवदातृत्वंधनिकत्वंतपःफलम् ।
एनसः फलमर्थित्वंदास्यत्वंचदारिद्रता ॥२१॥

स्वामिता दातृता धनिकता ये तपका फल है और याचकता दासता दरिद्रता ये पापका फल है ॥ २१ ॥

दृष्ट्वाशास्त्राण्यतोमानंसन्नियम्ययथोचितम् ॥
कुर्यान्नृपःस्ववृत्तंतुपरत्रेहसुखायच ॥ २२॥

इससे राजा शास्त्रोंको देख और मनको रोककर यथोचित अपने आचरणको इसलोक और परलोकके सुखके अथ करै ॥२२ ॥

दुष्टनिग्रहणंदानंप्रजायाःपरिपालनम् ।
यजनंराजसूयादेः कोशानांन्यायतोर्जनम् ॥

करदीकरणंराज्ञांरिपूणांपरिमर्दनम् ।
भूमेरुपार्जनंभूयोराजवृत्तंतुचाष्टधा ॥२४ ॥

दुष्टोंको दंड और प्रजाका पालन और राजसूय आदि यज्ञोंका करना और न्यायसे कोश खजानेका बढाना और राजाओंको कर का दाता करना शत्रुओंका मर्दन करना और भूमिका वारंवार सम्पादन करना यह आठप्रकारका राजाओंका वृत्त आचरण है ॥२३॥ २४

नवर्धितंबलंयैस्तुनभूपाः करदीकृताः ।
नप्रजाः पालिताः सम्यक्तेवैषंढतिलान्नृपाः ॥

जिन राजाओंने सेनाओंकी वृद्धिन की और अन्य राजाओंका करके दाता न किया और प्रजाओंकी सम्यक् पालना न की वे राजा निष्फल तिलके समान हैं ॥ २५ ॥

प्रजासूद्विजेतयस्माद्यत्कर्मपरिनिंदति ।
त्यज्येतधनिकैर्यस्तुगुणिभिस्तुनृपाधमः ॥

जिस राजासे प्रजा कांपती है और प्रजा जिस राजके कायकी निंदा करती है तिस राजाको धनी और गुणी त्यागते हैं वह राजा अधम है ॥ २६ ॥

नटगायकगणिकामल्लषंढाल्पजातिषु ।
योतिशक्तोनृपोनिंद्यः सहिशत्रुमुखेस्थितः ॥

नट गायक वेश्या नपुंसक और नीचजातियोंमें जो राजा अत्यन्त आसक्त है वह राजा निंद्य है और शत्रुके मुखमें विद्यमान है ॥ २७ ॥

बुद्धिमंतंसदाद्वेष्टिमोदतेवंचकैः सह ।
स्वदुर्गुणंनवै वेत्तिस्वात्मनाशायसोनृपः २८॥

जो राजा बुद्धिमान्से सदा द्वेष करै वंचकोंसे सदा प्रसन्न और अपने दुर्गुणको न जाने वह राजा अपने नाशका कारण होता है ॥

नापराधेहिक्षमतेप्रदंडोधनहारकः ।
स्वदुर्गुणश्रवणतोलोकानांपरिपीडकः २९ ॥
नृपेयदातदालोकः क्षुभ्यतेभिद्यतेयतः ।
गूढचारैः श्रावयित्वास्ववृत्तंदूषयंतिके ॥३० ॥

जो राजा अपराधकी क्षमा न करै, उत्तम दंडको दे, धनको हरै और अपने दुर्गुणोंको श्रवण करिके लोगोंको राजा जब पीडित करता है तब लोक क्षोभ और भेदको प्राप्त होता है इसवे गुप्त दूतोंके द्वारा अपने वृत्त (आचरण) को कौन दूषित करता है यह श्रवण करावै ॥ २९ ॥ ३० ॥

भूषयंतिचकैर्मेवृत्तैर्मात्याद्याश्चतद्विदः ।
अथिकीदृक्चसंप्रीतिः केषामप्रीतिरेववा ॥

और कौन २ वृत्तके ज्ञाता मन्त्री आदि मेरे वृत्तकी प्रशंसा करते हैं और मेरे विषे किस २ की उत्तम प्रीति और अप्रीति है ॥ ३१ ॥

ममागुणैर्गु[illegible]पिगूढसंश्रुत्यचाखिलम् ॥
चारैःस्वदुर्गु[illegible] लोकतः सर्वदानृपः ३२॥
सुकीर्त्यैसंत्यजेन्नित्यंनावमन्येतवैप्रजाः ।
लोकोनिंदातिराजंस्त्वांचारैः संश्रावितोयदि ॥

मेरे गुण और दुर्गुणोंसे कौन २ प्रसन्न और अप्रसन्नहैं इस प्रकार सम्पूर्ण गुप्तव्यवहारश्रवण करके सम्पूर्ण कालमें लोकसे अपने दुर्गुणोंको राजा जानकर अपनी सुकीर्तिके अर्थ प्रजाको त्याग (छोड) दे अर्थात् दंड न दे और प्रजाका अपमान न करे जिस राजाने लोकोंसे यह श्रवण किया हो कि हे राजन् ! लोक तेरी निंदा करते हैं ॥ ३२ ॥ ३३॥

कोपंकरोतिदौरात्म्यादात्मदुर्गुणलोपकः ।
सीतासाध्व्यपिरामेणत्यक्तालोकापवादतः ॥

जो राजा अपने दुर्गुणोंके छिपानेके निमित्त कोप करता है वह दुरात्मा है साधुस्वभाव भी सीताजी लोकके अपवादसे रामचन्द्रजीने त्याग दी ॥ ३४ ॥

शक्तेनापिहिनधृतोदंडोल्पोरजकेक्वचित् ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नेराजदत्ताभयोपिच ३५॥

समर्थ होकर भी ज्ञानविज्ञानयुक्त राजाने दिया है, अभयदान जिसका ऐसे रजक धोबी) को अल्प भी दंड न दिया ॥ ३५॥

समक्षंवाक्तैनभयाद्राज्ञोगुर्वेपिदूषणम् ।
स्तुतिप्रियाहिवैदेवाविष्णुमुख्याइतिश्रुतिः ३६॥

राजाके अधिक दूषण कोई नहीं कहता है विष्णु आदि देवताभी स्तुतिको प्रिय मानते हैं यह श्रुति है ॥ ३६ ॥

किंपुनर्मनुजानित्यंनिंदाजःक्रोधइत्यतः ।
राजासुभागदंडीस्यात्सुक्षमीरंजकःसदा॥ ३७॥

मनुष्य तो नित्य स्तुतिप्रिय क्यों न होंगे जिससे क्रोध निन्दासे उत्पन्नहोता है इस से राजा सुभाग (सूक्ष्म) दंड दाता और उत्तम क्षमाशील और प्रजाका रंजक (प्रसन्न कारक) सदा रहै ॥ ३७ ॥

यौवनंजीवितंवित्तंछायालक्ष्मीश्चस्वामिता ।
चञ्चलानिषडेतानिज्ञात्वाधर्मरतोभवेत् ॥ ३८॥

यौवन, जीवन, वित्त, छाया, लक्ष्मी, स्वामिता ये छै ६ चञ्चल हैं यह जानकर राजा धर्ममें तत्पर रहै ॥ ३८ ॥

अदानेनापमानेनछलाच्चकटुवाक्यतः ।
राज्ञःप्रबलदंडेननृपंमुंचातिवैप्रजा ॥ ३९ ॥

कृपणता, तिरस्कार, छल, कटुवचन, राजाका प्रबलदंड, इनसे राजाको प्रजा त्याग देती है ॥ ३९ ॥

विपरीतगुणैरेभिःसान्वयारज्यतेप्रजा ।
एकस्तनोतिदुष्कीर्तिंदुर्गुणःसंघशोनकिम् ॥

और पूर्वोक्तगुणोंके विपरीत गुणोंसे प्रजा सदा प्रसन्न रहती है, एक भी दुर्गुण कुकीर्ति करता है तौ दुर्गुणोंका समूह दुष्कीर्ति क्यों नहीं करैगा ॥ ४० ॥

मृगयाक्षास्तथापानंगर्हितानिमहीभुजाम् ।
दृष्टास्तेभ्यस्तुविपदोपांडुनैषधवृष्णिषु ॥४१॥

मृगया, द्यूत, मदिरा, ये तीनों राजाओंको निंदित हैं, क्योंकि इन तीनोंसे ही नैषध पांडु यादवोंमे विपत्ति देखी है ॥ ४१ ।

कामक्रोधस्तथामोहोलोभोमानोमदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्तेसुखीनृपः ४२॥

काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, मद इन छःओंको राजा त्यागदे क्योंकि इनके त्यागगनेसे राजा सुखी होता है ।। ४२ ॥

दंडक्योनृपतीःकामात्क्रोधाच्चजनमेजयः ।
लोभादैलस्तुराजर्षिर्मोहाद्वातापिरासुरः ॥४३॥
पौलस्त्योराक्षसोमानान्मदाद्दंभोद्भवोनृपः ॥
प्रयातानिधनंह्येतेशत्रुषड्वर्गमाश्रिताः॥४४ ॥

दंडक्य कामसे, जनमेजय,क्रोधसे, ऐल राजर्षि लोभसे, वातापि असुर मोहसे, रावण राक्षस मानसे, दंभसे उत्पन्न राजा मदसे ये पूर्वोक्त राजा षड्वर्ग रूप शत्रुओंके आश्रयसे मरणको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यःप्रतापवान् ॥
अंबरीषोमहाभागोबुभुजेतिचिरंमहीम् ॥४५॥

और शत्रुओंके षड्वर्गको त्यागकर प्रतापी परशुराम और महाभाग अम्बरीषचिरकालतक पृथ्वीको भोगते भये ॥ ४५ ॥

वर्धयन्निहधर्मार्थौसेवितौसद्भिरादरात् ।
निगृहीतेंद्रियग्रामोकुर्वीतगुरुसेवनम् ४६ ॥

सज्जनोंने किया है सेवन जिनका ऐसे धर्म और अर्थकी वृद्धिके अर्थ इन्द्रियोंको वशीभूत (जीत) कर गुरुका सेवन करै ॥ ४६ ॥

शास्त्रायगुरुसंयोगःशास्त्रंविनयवृद्धये ॥
विद्याविनीतोनृपतिःसतांभवतिसंमतः ॥४७॥

गुरुका संयोगशास्त्रके अर्थ और शास्त्र विनय (नम्रता)की वृद्धिके अर्थ विद्या और विनयसे युक्त राजा सत्पुरुषोंको सम्मत होता है ॥४७॥

प्रेर्यमाणोप्यसद्वृत्तैर्नाकार्येषुप्रवर्तते ।
श्रुत्यास्मृत्यालोकतश्चमनसासाधुनिश्चितम्४८
यत्कर्मधर्मसंज्ञंतद्व्यवस्यतिचपंडितः ।
आददानप्रतिदानकलासम्यङ्महीपतिः ४९॥

असत् है आचरण जिनका तिनकी प्रेरणासे भी जो निन्दित कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता और वेद और स्मृति (धर्मशास्त्र) और लोकसे मनके द्वारा साधु निश्चित किया जो धर्मसम्बन्धी कर्म उसे जो करता है वह राजा पण्डित है समयके अनुसार धनलेने और देनेसे राजा साधु होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

जितेंद्रियस्यनृपतेर्नीतिशास्त्रानुसारिणः।
भवंत्युच्चलितालक्ष्म्यःकीर्तयश्चनभस्पृशः ५०॥

जितेन्द्रिय और नीतिशास्त्रके अनुसारी राजाको लक्ष्मी अधिक और कीर्ति स्वर्गगामिनी होती है ॥ ५० ॥

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादंडनीतिश्चशाश्वती ।
विद्याश्चतस्रएवैता अभ्यसेन्नृपतिःसदा॥५१॥

ब्रह्मविद्या, वेदान्त, वेदत्रयी, (३ वेद) वार्त्ता, दण्डनीति, ये चारों विद्याओंका राजा सदा अभ्यास करै ॥ ५१ ॥

आन्वीक्षिक्यांतर्कशास्त्रंवेदांताद्यंप्रतिष्ठितम् ।
त्रय्यांधर्मोह्यधर्मश्चकामेऽकामःप्रतिष्ठितः५२॥

आन्वीक्षिकीमें न्यायशास्त्र और वेदान्त आदि है और वेदत्रयीमें धर्म अधर्म कामना और मोक्ष है ॥ ५२ ॥

अर्थानर्थौतुवार्तायांदंडनीत्यांनयानयौ ।
वर्णाःसर्वाश्रमाश्चैवविद्यास्वासुप्रतिष्ठिताः५३॥

अर्थ और अनर्थ वार्त्तामें,न्याय और अन्याय दंडनीतिमें वर्ण, और आश्रम इन सम्पूर्ण विद्याओंमें विद्यमान है ॥ ५३ ॥

अंगानिवेदाश्चत्वारोमीमांसान्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रपुराणानित्रयीदंसर्वमुच्यते ॥५४॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द ये वेदके ६ अङ्ग हैं, और ४ वेद, मीमांसा न्यायका विस्तार,धर्मशास्त्र,पुराण इनसम्पूर्णोंको त्रयी कहते हैं ॥ ५४ ॥

कुसीदकृषिवाणिज्यंगोरक्षावार्तयोच्यते ।
संपन्नोवार्तयासाधुर्नवृत्तेर्भयमृच्छति ॥५५॥

सूदलेना खेती व्यापार गोरक्षा इन्हें वार्त्ता कहते हैं वार्त्तासे सम्पन्न जो राजा वह आचरणसे भयको प्राप्त नहीं होता ॥ ५५ ॥

दमोदंडइतिख्यातस्तस्माद्दंडोमहीपतिः ।
तस्यनीतिर्दंडनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते ॥५६॥

दमको दंड कहते हैं इससे राजा दंडरूप है तिस राजाकी नीतिको दंडनीति कहते हैं और नय (न्याय) को नीति कहते हैं ॥ ५६ ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानाद्धर्षशोकौव्युदस्यति ॥ उभौलोकाववाप्नोतित्रय्यांतिष्ठन्यथाविधि ॥ ५७ ॥

आन्वीक्षिकी विद्या आत्माके ज्ञानसे आनन्द और शोकको नष्ट करती है, त्रयीमें टिकता हुआ राजा दोनों लोकोंको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

आनृशंस्यंपरोधमर्स्सर्वप्राणभृतांयतः ।
तस्माद्राजानृशंस्येनपालयेत्कृपणंजनम्॥५८॥

जिससे सम्पूर्ण जीवोंकाआनृशस्य(अहिंसा) परम धर्म है तिससे राजा अहिंसासे दुःखी जनकी रक्षा करै ॥ ५८ ॥

नाहिस्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणंजनम् ।
कृपणःपीड्यमानःस्वमृत्युनाहंतिपार्थिवम्५९

अपने सुखकी इच्छा करता हुआ राजा कृपण (दीन) मनुष्यको दुःख न दे क्यों कि पीड्यमान कृपण मृत्युसे राजा को हनता है ॥ ५९ ॥

सुजनैःसंगमंकुर्याद्धर्मायचसुखायच ।
सेव्यमानस्तुसुजनैर्महानातिविराजते ॥६० ॥

उत्तम जनोंके साथ, धर्म और सुखके अर्थ सङ्ग करै, सुजनोंसे सेवित राजा अत्यंत महत्त्वको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

हिमांशुमालीवतथानवोत्फुल्लोत्पलैःसरः ॥
आनंदयतिचेतांसियथासुजनचेष्टितम् ६१ ॥

सुजनकी चेष्टा इस प्रकार चित्तको आनन्द करती है जैसे चन्द्रमा नवे खिले हैं कमल जिसमें ऐसे तलावको ॥ ६१ ॥

ग्रीष्मसूर्यांशुसंतप्तमुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुस्थलमिवोद्ग्रंत्यजेद्दुर्जनसंगतम् ६२ ॥

ग्रीष्मकालके सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त और कम्पनका हेतु और आश्रय रहित मरुदेशके समान उद्दंड दुर्जनके समागमको त्याग करै ॥ ६२ ॥

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः ।
वरमाशीविषैःसंगंकुर्यान्नत्वेवदुर्जनैः ॥ ६३ ॥

श्वाससे उत्पन्न अग्निके धूएँसे श्याम है मुख जिनका ऐसे सर्पोंका सङ्ग तौ उत्तम है परन्तु दुर्जनका सङ्ग कदापि उत्तम नहीं है ॥ ६३ ॥

क्रियतेभ्यर्हणीयायसुजनाययथांजलिः ।
ततःसाधुतरःकार्योदुर्जनायहितार्थिना ६४॥

जिस प्रकार सुजनके प्रति पूजाके अर्थ, अञ्जलि की जाती है उससे अच्छी तरह दुर्जनकी पूजाके अर्थ, अञ्जली, अपने हितका अभिलाषी करै ॥ ६४ ॥

नित्यंमनोपहारिण्यावाचाप्रह्लादयेज्जगत् ।
उद्वेजयतिभूतानिक्रूरवाग्धनदोपिसन् ६५

मनोहरवाणीसे सदा जगत्को प्रसन्न रक्खे क्योंकि कुबेरके समान भी कठोरवाणी पुरुष भूतोंको कंपित करता है ॥ ६५ ॥

हृदिविद्धइवात्यर्थंयथासंतप्यतेजनः ॥
पीडितोपिहिमेधावीनतांवाचमुदीरयेत् ६६॥

जिस वाणीसे हृदयमें तपायमानके समान जन दुःखी हो उस वाणीको पीडित हुआभी बुद्धिमान् न कहै ॥ ६६ ॥

प्रियमेवाभिधातव्यंनित्यंसत्सुद्विषत्सुवा ।
शिखीवकेकामधुरांवाचंब्रूतेजनप्रियः ६७॥

सुजन और दुर्जनोंके प्रति नित्य जो प्रिय वचन ही कहता है वह मनुष्य मधुरवाणी कहनेहारे मयूरके समान सबको प्रिय होता है ॥ ६७ ॥

मदरक्तस्यहंसस्यकोकिलस्याशिखंडिनः ।
हरंतिनतथावाचोयथावाचोविपश्चिताम्॥६८॥

मदसे संयुक्त हंस और कोकिल और मयूर इनकी वाणी एसी मनको नहीं

हरती, जैसी पंडितोंकी वाणी मनको हरती है ॥ ६८ ॥

येप्रियाणिप्रभाषंतेप्रियमिच्छंतिसत्कृतम् ।
श्रीमंतोवंद्यचरितादेवास्तेनरविग्रहाः ६९ ॥

जो मनुष्य प्रिय वचन बोलते हैं, और प्रियके सत्कारकी इच्छा करते हैं वे श्रीमान् नमस्कारके योग्य हैं चरित्र जिनके मनुष्यके और शरीर भारी देवताका है ॥ ६९ ॥

नहीदृशंसंवननंत्रिषुलोकेषुविद्यते ।
दयामैत्रीचभूतेषुदानंचमधुराचवाक् ॥ ७० ॥

सब भूतोंपर दया और मित्रता और दान और मधुरवाणी ऐसा वशीकरण और कोई तीनों लोकोंमें नहीं है ॥ ७० ॥

श्रौतरास्तिक्यपूतात्मापूजयेद्देवतांसदा ।
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्चसुहृज्जनान् ॥७१॥

वेदकी आस्तिकता (सत्य बुद्धिसे पवित्र) है आत्मा जिसका ऐसा राजा देवताओंका सदा पूजन करै, देवताओंके समान गुरुजनोंका और आत्माके समान मित्रजनोंका पूजन करै ॥ ७१ ॥

प्रणिपातेनहिगुरून्सतोनूचानचेष्टितः ।
कुर्वीताभिमुखान्देवान्भूत्यैसुकृतकर्मणाम् ।७२

वेदपाठियोंसे संयुक्त होकर राजा अपनी कीर्तिके अर्थ प्रणामसे गुरु और सत्पुरुषोंको और उत्तम कर्मसे देवताओंको अपने अभिमुख (अनुकूल) करै ॥ ७२ ॥

सद्भावेनहरेन्मित्रंसद्भावेनचबांधवान् ।
स्त्रीभृत्यौप्रेममानाभ्यांदाक्षिण्येनेतरजनम् ७३

श्रेष्ठभाव (प्रीति) से मित्रको और बंधुओंको, प्रेमसे स्त्रीको, मानसे भृत्य (सेवक) को चतुरतासे इतर जनोंको वश करै ॥ ७३ ॥

बलवान्बुद्धिमाञ्शूरोयोहियुक्तपराक्रमी ।
वित्तपूर्णांमहींभुंक्तेसभूपोभूपतिर्भवेत् ७४॥

जो राजा बलवान् और बुद्धिमान् और शूरवीर और युक्त पराक्रमी है वह राजा द्रव्यसे पूर्ण पृथ्वीको भोगता है और वही राजा भूमिका पति होता है ॥ ७४ ॥

पराक्रमोबलंबुद्धिःशौर्यमेतेवरागुणाः ।
एभिर्हीनोन्यगुणयुग्महीभुक्सधनोपिच ७५

पराक्रम, बल, बुद्धि, शूरता ये गुण उत्तम हैं इन गुणोंसे हीन और इतर गुणोंसे युक्त राजा बहुत धनवाला होय तो भी ॥७५॥

महास्वल्पांनैवभुंक्तेक्षिप्रंराज्याच्चिनश्यति ।
महाधनाच्चनृपतेर्विभात्यल्पोपिपार्थिवः ॥७६॥

पूर्वोक्त राजा स्वल्प भी मही (भूमि) को नहीं भोगता और शीघ्र राज्यसे भ्रष्ट होता है और महाधनी राजा अल्प ही शोभाको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

अव्याहताज्ञस्तेजस्वीएभिरेवगुणैर्भवेत् ।
राज्ञःसाधारणास्त्वन्येनशक्ताभूप्रसाधने॥७७॥

पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त राजा अनाहताज्ञ (जिसकी आज्ञाका कोई भी अवलंघन न करे) और तेजस्वी होताहै और राजाके साधारण गुण पृथ्वीके वश करनेमें समर्थ नहीं है ॥७७॥

खानिः सर्वधनस्येयंदेवदैत्यविमर्दिनी ।
भूम्यर्थेभूमिपतयःस्वात्मानंनाशयंत्यपि ७८॥

यह पृथ्वी सम्पूर्ण धनोंकी खानि है और देव दैत्योंकी नाशक है क्योंकि भूमिके अर्थ भूमिपति (राजा) अपने आत्माको भी नष्ट कर देते हैं ॥ ७८ ॥

उपभोगायचधनंजीवितंयेनरक्षितम् ।
नरक्षितातुभूर्येनकिं तस्यधनजीवितैः ७९॥

जीवितकी रक्षाकारक धन उपभोगके अर्थ है जिस राजाने भूमिकी रक्षा नहीं की उसके धन और जीवनसे क्या है ॥ ७९ ॥

नयथेष्टव्ययायालंसंचितंतुधनंभवेत् ।
सदागमाद्विनाकस्यकुबेरस्यापिनांजसा॥८०॥

सदा प्राप्तिके विना कुबेरकाभी धन सुखपूर्वक इच्छाके अनुसार व्यय (खर्च) करनेको

समर्थ नहीं होता और तो किसका संचित धन समर्थ होगा ॥ ८० ॥

पूज्यस्त्वेभिर्गुणैर्भूपोनभूपःकुलसंभवः ।
नकुलेपूज्यतेयादृग्बलशौर्यपराक्रमैः॥८१ ॥

इन गुणोंसे ही राजा पूजाके योग्य होता है और उत्तम कुलके उत्पन्न होनेसे पूज्य नहीं होता क्योंकि जैसा बलबुद्धि पराक्रमसे पूजित होता है ऐसा कुलसे नहीं होता ॥८१॥

लक्षकर्षमितोभागोराजतोयस्यजायते ।
वत्सरेवत्सरेनित्यंप्रजानांत्वविपीडनैः ॥८२॥
सामंतःसनृपःप्रोक्तोयावल्लक्षत्रयावधि ।
तदूर्ध्वंदशलक्षांतोनृपोमांडलिकःस्मृतः ८३
तदूर्ध्वंतुभवद्राजायावद्विंशतिलक्षकः ।
पंचाशल्लक्षपर्यंतोमहाराजःप्रकीर्तितः ८४ ॥

जिस राजाके राज्यमें वर्ष वर्षमें विना प्रजाकी पीडाके भी एकलक्ष राजाका भाग सञ्चित होता है उस सामन्त कहते हैं उससे अधिक तीन लक्ष पर्यंत जिसका भाग संचित हो वह राजा मांडलिक कहाता है और दश १० लक्षसे बीस लक्ष पर्यंतका भागी राजा और बीसलक्षसे पचासलक्ष पयतका भागी महाराज होता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

ततस्तुकोटिपर्यंतःस्वराट्सम्राट्ततःपरम् ।
दशकोटिमितोयावद्विराट्तुतदनंतरम् ८५ ॥
पंचाशत्कोटिपर्यंतःसार्वभौमस्ततःपरम् ॥
सप्तद्वीपाचपृथिवीयस्यवश्याभवेत्सदा ॥८६॥

दश लक्षसे कोटि पर्यंतका भागी स्वराट् और एककोटिसे दश कोटि पर्यंतका भागी सम्राट् और दशकोटिसे पचास कोटि पर्यंतका भागी विराट् और जिसके सप्तद्वीपा पृथ्वी वशमें हो वह राजा सार्वभौम होपा है ॥ ८५॥

स्वभागभृत्यादास्यावेप्रजानांचपनुःकृतः ।
ब्रह्मणा स्वमिरूपस्तुपालनार्थंहिसर्वदा ॥

राजाके भागरूप भृति (वेतन) के देनेसे प्रजाओंको दासरूप और प्रजाओंके पालनसे स्वामिरूप राजा ब्रह्माने कियाहै ॥ ८७ ॥

सामंतादिसमायेतुभृत्याअधिकृताभुवि ।
तेनसामंतसंज्ञाःस्यूराजभागहराः क्रमात् ॥

जो भूमिमें अधिकृत भृत्य (नौकर) सामंतादिक तुल्य हैं और राजाके भागको ग्रहण करते हैं ये अनुसामंतकहोते हैं ॥ ८८ ॥

सामंतादिपदभ्रष्टास्तत्तुल्यंभृतिपोषिताः ॥
महाराजादिभिस्तेतुहीनसामंतसंज्ञकाः ॥ ८९

जो सामंत आदि पदवीसे तो महाराजादिकोंने भ्रष्ट कर दिये हैं परन्तु सामंतोंके समान भृति (नौकरी) को भोगते हैं वे हीनसामंत कहाते हैं ॥ ८९ ॥

शतग्रामाधिपोयस्तुसोपिसामंतसंज्ञकः ॥
शतग्रामेचाधिकृतोनुसामंतोनृपेणसः ९० ॥

शतग्रामोंका जो अधिपति वह भी सामंत कहाता है और ग्रामोंपर जो राजाका अधिकारी (नियमित) है वह अनुसामंत कहाता है ॥ ९० ॥

अधिकृतोदशग्रामेनायकः सचकीर्तितः ॥
आशापालोयुतग्रामभागभाक्चस्वराडपि ।

दश ग्रामोंमें जो अधिकृत वह नायक कहाता है दश सहस्र ग्रामोंके भागोंका जो भागी वह आशापाल और स्वराट्भी कहाता है ॥ ९१ ॥

भवेत्क्रोशात्मकोग्रामोरूप्यकर्षसहस्रकः ।
ग्रामार्धंकपल्लिसंज्ञंपल्ल्यर्धंकुंभसंज्ञकम् ९२॥

एक कोशका जिसका प्रमाण और एक हजार रुपयेका जिसमें राजाका भाग हो उसे ग्राम कहते हैं और ग्रामका आधापल्ली और पल्लीका आधा कुंभ होता है ॥ ९२ ॥

करैःपंचसहस्रैर्वाक्रोशःप्रोक्तःप्रजापतेः ॥
हस्तैश्चतुःसहस्रैर्वा मनोः कोशस्यविस्तरः ९३

पांच हजार हाथका कोशविधि ब्रह्माका होता है और चार हजारका मनुका होता है ॥ ९३ ॥

सार्धद्विकोटिहस्तैश्चक्षेत्रंकोशस्यब्रह्मणः ।
पंचविंशशतैःप्रोक्तंक्षेत्रंताद्विनिवर्तनैः ॥९४॥

अढाईकोटि कोशका ब्रह्माका क्षेत्र पच्चीस से कोशका क्षेत्र विनिवर्तनोंसे मनु आदिकोंने कहा है ॥ ९४ ॥

मध्यमामध्यमंपर्वदैर्ध्ययच्चतदंगुलम् ।
यवोदरैरष्टभिस्तैर्दैर्ध्येस्थौल्यंतुपंचभिः॥९५॥

मध्यमा बीचकी अंगुलीके मध्यम पर्व अर्थात् मध्यमरेखाओंके बीचके भागके तुल्य और आठ जौ लंबा और पांच जौ मोटा उसे अंगुल कहते हैं ॥ ९५ ॥

चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैःप्राजापत्यःकरःस्मृतः ।
सश्रेष्ठोभूमिमानेतुतदन्यास्त्वधमामताः ९६ ॥

चौबीस २४ अंगुलोंका कर प्रजापति कहाता है वही कर पृथिवी प्रमाणोंमें श्रेष्ठ है और इतर कर अधम हैं ॥ ९६ ॥

चतुःकरात्मकोदंडोलघुः पंचकरात्मकः ।
तदङ्गुलपंचयवैर्मानवंमानमेवतत् ॥ ९७ ॥

चार हाथका दंड लघु और पांच हाथका दंड दीर्घ होता है उस करके अंगुल पांच यवके होते हैं क्योंकि ये पूर्वोक्त दंड मनुके मानसे हैं ॥ ९७ ॥

वसुषण्मुनिसंख्याकैर्यवैर्दंडः प्रजापतेः ।
यवोदरैः षट्शतैस्तुमानवोदंडउच्यते ॥ ९८॥

सातसौ अडसठ ७६८ यवोंका प्रजापतिका और ६०० छे सै यवोंका मनुका दंड होता है ॥ ९८ ॥

पंचविंशतिभिर्दंडैरुभयोस्तुनिवर्तनम् ।
त्रिंशच्छतैरंगुलैर्यवैर्वास्त्रिपंचसहस्रकैः ९९ ॥

पच्चीससै २५०० दंडोंका दोनोंका निवर्त्तन होता है अथवा तीससै ३००० अंगुलोंका अथवा तीन सहस्रयवोंका अथवा पांच सहस्रयवोंका दोनोंका दंड क्रमसे होता है ॥ ९९ ॥

सपादशतहस्तैश्चमानवंतुनिवर्तनम् ।
ऊनविंशतिसाहस्रैर्द्विशतैश्चयवोदरैः ॥ १००॥

सवासै १२५ हाथका मानव (मनुका) निवर्त्तन अथवा उन्नीसहजार दोसौ १९२०० यवोंका पूर्वोक्त निवर्त्तन होता है ॥ १००॥

चतुर्विंशशतैरेवह्यंगुलैश्चनिवर्तने ।
प्राजापत्यंतुकथितंशतैश्चैवकरैः सदा ॥ १ ॥

चौबीससौ २४०० अंगुलों का अथवा सौ१०० करोंका प्रजापतिका निवर्त्तन कहा है ॥ १ ॥

सपादषट्शतंदंडाउभयोश्चनिवर्तने ।
निवर्तनान्यपिसदोभयोर्हिपंचविंशतिः ॥ २ ॥

सवाछैसे ६२५ दंड दोनोंके निवर्तनमें होते हैं निवर्तनभी दोनोंके सदा पच्चीस होते हैं ॥२॥

पंचसप्ततिसाहस्रैरंगुलैःपरिवर्तनम् ।
मानवंषष्टिसाहस्रैःप्राजापत्यंतथांगुलैः॥३॥

पचहत्तर हजार ७५००० अंगुलोंका मानव और साठहजार ६०००० अंगुलोंका प्रजापतिका परिवर्तन होता है ॥ ३ ॥

पंचविंशाधिकैर्हस्तैरेकात्रिंशच्छतैर्मनोः ।
परिवर्तनमाख्यातंपंचविंशशतैःकरैः ॥ ४ ॥

सवाइकत्तीश ३१२५ शत हस्तोंका मनुका और पच्चीससै २५०० हस्तोंका प्रजापतिका प्ररिवर्तन कहा है ॥ ४ ॥

प्राजापत्यंपादहीनचतुर्लक्षयवैर्मनोः ।
अशीत्यधिकसाहस्रचतुर्लक्षयवैःपरम् ५ ॥

तीनलाख यवोंका प्रजापतिका और चार लाख अस्सीहजार ४८०० यवोंका मनुका निवर्तन होता है ॥ ५ ॥

निवर्तनानिद्वात्रिंशन्मनुमानेनतस्यवै ।
चतुःसहस्रहस्ताःस्युर्दंडाश्चाष्टशतानिहि ॥

मनुके मानसे बत्तीस निवर्तनोंके चार हजार हाथ और आठसै दंड होते हैं ॥ ६ ॥

पचविंशतिभिर्दंडैर्भुजःस्यात्परिवर्तने ।
करैरयुतसंख्याकैःक्षेत्रं तस्यप्रकीर्तितम् ७ ॥

पचीसदंडोंकी परिवर्तनकी भुज होती है दश हजार हाथोंका परिवर्तनका क्षेत्र होता है ॥ ७ ॥

चतुर्भुजैःसमंप्रोक्तंकष्टभूपरिवर्तनम् ।
प्राजापत्येनमानेनभूभागहरणंनृपः ॥ ८ ॥
सदाकुर्याच्चस्वापत्तौमनुमानेननान्यथा ।
लोभात्संकर्षयेद्यस्तुहीयतेसप्रजोनृपः ॥ ९ ॥

भूमिका परिवर्त्तन चतुर्भुजके सम कहा है। राजा पृथिवीके भागका ग्रहण प्रजापतिके प्रमाणसे करै और अपनी आपत्तिके समय मनुके मानसे करै अन्यथा नहीं जो राजा लोभसे प्रजाको संकर्षित अर्थात् प्रजासे अधिक कर लेता है वह प्रजासहित हीनताको प्राप्त होता है॥ ८ ॥ ९ ॥

नद्याद्द्व्यंगुलमपिभूमेःस्वत्वानिवर्तनम् ।
वृत्त्यर्थंकल्पयेद्वापियावद्गाहस्तुजीवति ॥१०॥

दो अंगुलकी भूमिको भी कर (भाग) के विना न छोडै अथवा अपनी आजीविकाके अर्थ भागका ग्रहण करै, क्योंकि इतनेकर करका ग्रहण करैगा तबतकही जीवैगा ॥१०॥

गुणीतावद्देवतार्थंविसृजेच्चसदैवहि ।
आरामार्थंगृहार्थंवादद्याद्दृष्ट्वाकुटुंबिनम् ॥

गुणवान् राजा देवताओंके मंदिर बगीचेके निमित्त और कुटुंबवारे मनुष्यको देखकर गृहके निमित्त पृथ्वीको देदे ॥११॥

नानावृक्षलताकीर्णेपशुपक्षिगणावृते ।
सुबहूदकधान्येचतृणकाष्ठसुखेसदा १२ ॥
आसिंधुनौगमाकूलेनातिदूरमहीधरे ।
सुरम्यसमभूदेशेराजधानींप्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

अपनी राजधानी राजा ऐसी जगह बनावे जहां नानाप्रकारके वृक्ष और लता हों और पशु और पक्षियोंके गणसे युक्त देश हो और जिसमें अधिक अन्न और जल हो और जिसमें काष्ठ और तृणका सुख हो और समुद्रपर्यंत नावके गमनकाजहां अनुकुल हो और जहां पर्वत समीप हो रमणीक और समभूमि जहां हो ॥१२॥ १३ ॥

अर्धचंद्रांवर्तुलांवाचतुरस्रांसुशोभनाम् ।
सप्राकारांसपरिखांग्रामादीनांनिवेशिनीम् १४॥

अर्धचन्द्रके आकार हो और गोल अथवा चौकोर हो शोभायमान हो प्राकार सहित हो परिखा (खांई) युक्तहो ग्राम और पुर जिसके मध्य बसते हैं ऐसी राजधानी राजा बनावै ॥ १४ ॥

सभामध्याकूपवापीतडागादियुतांसदा ।
चतुर्दिक्षुचतुर्द्वारांसुमार्गारामवीथिकाम् १५॥

और सभा जिसके मध्यमें हो, कूप, वापी (बावडी) तलाव इनसे सदा युक्त हो और चारों ओर दिशोंमें जिसके चार द्वार हों और मार्ग बगीचे गली जिसमें सुंदर हों ॥ १५ ॥

दृढसुरालयमठपांथशालाविराजिताम् ।
कल्पयित्वावसेत्तत्रसुगुप्तःसप्रजोनृपः ॥१६ ॥

दृढ देवस्थान, मठ, धर्मशाला इनसे शोभित ऐसी पूर्वोक्तराजधानीको रचकर गुप्त होकर प्रजासहित राजा उसमें बसै॥१६॥

राजगृहंसभामध्यंगवाश्वगजशालिकम् ।
प्रशस्तवापीकूपादिजलयंत्रैःसुशोभितम् १७॥

सभा जिसके मध्यमें हो, गौ, अश्व, हस्ती इनकी शाला जिसमें हों और उत्तम बावडी कूप आदि जलयंत्रोंसे शोभित राजा गृहको बनावे ॥१७॥

सर्वतःस्यात्समभुजंदाक्षिणोच्चमुदङ्नतम् ।
शालांविनानैकभुजंतथाविषमबाहुकम् १८

जिसकी चारों भुजा सम हों दक्षिणकी ओर ऊंचा और उत्तरको नीचा हो और शालाके बिना एक भुज (पाखा) विषम भुज न हो ॥ १८ ॥

प्रायःशालानैकभुजाचतुःशालंविनाशुभा ।
शस्त्रास्त्रधारिसंयुक्तंप्राकारंसुष्ठुयन्त्रकम् १९॥

बहुधा शाला एकभुज नहीं होती चौकोरके विनाभीशुभहै शस्त्र और अस्त्रधारियोंसे संयुक्त

और उत्तम यंत्रोंसे संयुक्त प्राकार (परकोटा) बनावे ॥१९॥

सत्रिकक्षचतुर्द्वारंचतुर्दिक्षुसुशोभनम् ।
दिवारात्रौसशस्त्रास्त्रैःप्रतिकक्षासुगोपितम् ॥
चतुर्भिःपंचभिःषड्भिर्यामिकैःपरिवर्तकैः ।
नानागृहोपकार्याद्दसंयुतंकल्पयेत्सदा॥ २१ ॥

तीन कक्षा (श्रेणी) से युक्त चारों दिशाओंसे चार शोभायमान द्वार हों, रात्रि दिन शस्त्र और अस्त्रोंसे संपूर्ण कक्षाओंमें गुप्त हो ॥ २० ॥ चार पांच छै परिवर्त्तक (चौकीदार) प्रहर२ में घूमनेवाले हों जिसमें और नाना प्रकारकी सामग्रीसहित अट्टाअटारी संयुक्त गृहको बनावे ॥२१॥

वस्त्रादिमार्जनार्थंचस्नानार्थंयजनार्थकम् ।
भोजनार्थंचपाकार्थंपूर्वस्यांकल्पयेद्गृहान् ॥

वस्त्रों धोना,स्नान,पूजन,भोजनऔर पाकके अर्थ पूर्वदिशामें घर बनावे ॥ २२ ॥

निद्रार्थंचविहारार्थंपानार्थंरोदनार्थकम् ।
धान्याद्यर्थंवरट्टार्थंदासीदासार्थमेवच २३ ॥
उत्सर्गार्थंगृहान्कुर्याद्दक्षिणस्यामनुक्रमात् ।
गोमृगोष्ट्रगजाद्यर्थंगृहान्प्रत्यक्प्रकल्पयेत् २४

शयनके, क्रीडाके, पीनेके, रोनेके अन्नके घरट्ट (जांत) के, दासीके, दासके और मलमूत्रके त्यागके अर्थ दक्षिणदिशामें गृहबनावे और गो, मृग, ऊंट, हस्ती इनके अर्थ पश्चिममें गृह बनावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थंव्यायामायामिकार्थकम् ।
वस्त्रार्थकंतुद्रव्यार्थंविद्याभ्यासार्थमेवच २५
उदग्गृहान्प्रकुर्वीतसुगुप्तान्सुमनोहरान् ।
यथासुखानिवाकुर्याद्गृहाण्येतानिवैनृपः २६

रथ, अश्व, अस्त्र, शस्त्र, व्यायाम (कसरत) आयाम(घूमना), वस्त्र,द्रव्य,विद्याके अभ्यासके अर्थ उत्तरदिशामें गृहोंकी रचना करावै अथवा अपने सुखके अनुसार राजा, पूर्वोक्त गृहोंको बनावै ॥ २५ ॥ २६ ॥

धर्माधिकरणंशिल्पशालांकुर्यादुदग्गृहात् ।
पंचमांशाधिकोच्छ्रायाभित्तिर्विस्तारतोगृहे २७

धर्माधिकार (कचहरी) शिल्पशाला इन्हे गृहसे उत्तरदिशामें बनावे, गृहके भागसे पंचम भाग ऊंची भित्ति (दिवाल) बनावे ॥ २७॥

कोष्ठविस्तारषष्ठांशस्थूलासाचप्रकीर्तिता ।
एकभूमेरिदंमानमूर्ध्वमूर्ध्वंसमंततः २८ ॥

कोष्ठके विस्तारसे षष्ठांश (छठा-भाग) स्थूल भित्ति कही है, यह प्रमाण एक भूमि (एक मजले) स्थानका है इसके आगे इसी प्रकार वृद्धि कही है ॥ २८ ॥

स्तंभैश्चभित्तिभिर्वापिपृथक्कोष्ठानिसंन्यसेत् ।
त्रिकोष्ठंपंचकोष्ठंवासप्तकोष्ठंगृहंस्मृतम् २९

स्तंभ और भित्तियोंके पृथक् २ कोठे बनावै तीन पांच अथवा सात हैं कोठे जिसमें ऐसा गृह कहा है ॥ २९ ॥

द्वारार्थमष्टधाभक्तेद्वारस्यांशौतुमध्यमौ ।
द्वौद्वौज्ञेयौचतुर्दिक्षुधनपुत्रप्रदौनृणाम् ३० ॥

द्वारके वास्ते आठ भाग घरके करै और द्वारके भाग मध्यम हों चारौ दिशाओंमें द्वारके अर्थ दो दो धन पुत्रके दाता हैं ॥ ३० ॥

तत्रैवकल्पयेद्द्वारंनान्यथातुकदाचन ।
वातायनपृथक्कोष्ठेकुर्याद्यादृक्सुखावहम् ॥३१॥

उन्हीं मध्यभागोंमें द्वार बनावे अन्यथा कदापि न बनावे सुब कोठों जैसे सुखके दाता हों इस प्रकार पृथक्२वातायन(झरोखे)बनावै ॥ ३१ ॥

अन्यगृहद्वारविद्धंगृहद्वारं न चिंतयेत् ।
वृक्षकोणस्तंभमार्गपीठकूपैश्चवेधितम् ३२ ॥

इतर गृहोंके द्वार और वृक्ष कोण स्तंभ मार्ग चौंतरा कूप इनसे विन्धा अर्थात् इनके सामने गृहका द्वार न बनावै ॥ ३२ ॥

प्रासादमंडपद्वारेमार्गवेधोनविद्यते ।
गृहपीठंचतुर्थांशमुद्रायस्यप्रकल्पयेत्॥३३॥

मन्दिर और मण्डपके द्वारमें मार्गका वेध नहीं है गृहपीठके चतुर्थांशका जिस मण्डपका प्रमाण हो ॥ ३३ ॥

प्रासादानांमंडपानामर्धांशंवापरंजगुः ।
परवातायनैर्विद्धंनापिवातायनंस्मृतम् ॥३४॥

कोई ऋषि प्रासाद और मंडपका अर्द्धभागके प्रमाणसे द्वारको कहते हैं दूसरेके गवाक्ष (झरोखे) से विंधा गवाक्ष न हो ॥ ३४ ॥

विस्तारार्धांशमूलोच्चाच्छादिः खर्परसंभवा ।
पतितंतुजलंतस्यांसुखंगच्छातिवाप्यधः॥ ३५॥

विस्तारके भागसे अर्द्ध है मूलोच्चभाग जिसका ऐसी खपरोंकी छाज बनावै जिसमें गिरा जल सुखसे नीचे गिरे ॥ ३५ ॥

हीननिम्नाछादिर्नस्यात्तादृक्कोष्ठस्यैविस्तरः ।
स्वोच्छ्रायस्यार्धमूलोवाप्राकारः सममूलकः३६

जैसा कोष्ठका विस्तार हो उससे हीन और नीचा न हो अथवा अपनी उंचाईसे आधा हो अथवा सम हो विस्तार जिसका ऐसा प्राकार (परकोटा) हो ॥ ३६ ॥

तृतीयांशकमूलोवाह्युच्छ्रायार्धमविस्तरः ।
उच्छ्रितस्तुतथाकार्योदस्युभिर्नविलंघ्यते ३७॥

तृतीय भाग है मूल जिसका ऐसा ऊँचाईसे आधा विस्तार हो और ऊंचा ऐसा हो जो चोरोंसे न लंघा जाय ॥ ॥३७॥

यामिकैरक्षितोनित्यंनालिकास्त्रैश्चसंयुतः ।
सुबहुदृढगुल्मश्चसुगवाक्षप्रणालिकः॥३८॥

चौकीदारोंसे नित्य रक्षित नालिकास्त्रों (तोपों) से संयुक्त और अच्छीतरह दृढ है गुल्म और गवाक्षोंकी प्रणाली जिसमें ऐसा घर बनावे ॥ ३८ ॥

स्वहीनप्रतिप्राकारोह्यसमीपमहीधरः ।
परिखाचततः कार्याखातादृद्विगुणविस्तरा ॥

परकोटेसे हीन प्रति प्राकार ऐसाहो जिसके समीप पर्वत न हो और खानसे द्विगुणित है विस्तार जिसका ऐसी परिखा हो ॥ ३९ ॥

नातिसमीपप्राकाराह्यगाधसलिलाशुभा ।
युद्धसाधनसंभारैः सुयुद्धकुशलैर्विना ४० ॥

नहीं है अत्यन्त समीप प्राकार जिसके और अगाध है जल जिसमें ऐसी परिखा हो और युद्धकी सामग्री और युद्ध करनेमें कुशल पुरुषों के बिना दुर्ग श्रेष्ठ नहीं ॥ ४० ॥

नश्रेयसेदुर्गवासोराज्ञः स्याद्बंधनाय सः ।
राज्ञाराजसभाकार्या सुगुप्तासुमनोरमा४१॥

पूर्वोक्त दुर्ग (किला) राजाका कल्याणकारी नही प्रत्युत बन्धनका हेतु है और राजा ऐसी राजसभा बनावे जो अत्यन्त गुप्त और मनोहर हो ॥ ४१ ॥

त्रिकोष्ठैःपञ्चकोष्ठैर्वासप्तकोष्ठैःसुविस्तृता ।
दक्षिणोदक्तथादीर्घाप्राक्प्रत्यग्वाद्विगुणाथवा ॥

जो सभा तीन, पांच, सात कोष्ठोंसे सुविस्तृत हो और दक्षिण उत्तर लम्बी अथवा पूर्व पश्चिम द्विगुण हो ॥ ४२ ॥

त्रिगुणावायथाकाममेकभूमिर्द्विभूमिका ।
त्रिभूमिकावाकर्तव्यासोपकार्याशिरोगृहा ॥

अथवा अपनी इच्छाअनुसार त्रिगुणा हो और एक मञ्जली अथवा द्विमञ्जली अथवा त्रिमञ्जली हो और जिसके ऊपरका गृह सम्पूर्ण युद्ध आदिकी सामग्रीसहित हो ॥ ४३

परितः प्रतिकोष्ठंतुवातायनविराजिता ।
पार्श्वकोष्ठात्तुद्विगुणोमध्यकोष्ठस्यविस्तरः ॥

चारों ओर प्रति कोष्ठमें गवाक्षोंसे विराजमान हो और पार्श्व कोठेसे मध्य कोठेका द्विगुण विस्तार हो ॥ ४४ ॥

पञ्चमांशाधिकंत्वौच्चंमध्यकोष्ठस्यविस्तरात् ।
विस्तारेणसमंत्वौच्चंपञ्चमांशाधिकंतुवा ४५॥

विस्तारसे पञ्चमभाग उंचाई मध्य कोष्ठाकी हो अथवा विस्तारके समान ऊंची हो ऐसी सभा राजा बनावे ॥ ४५ ॥

कोष्ठकानांचभूमिर्वाछादिर्वातत्रकारयेत् ।
द्विभूमिकेपार्श्वकोष्ठेमध्यमंत्वेकभूमिकम् ।४६॥

कोठेकी छत पृथ्वीकी हो अथवा खपरैल की हो पार्श्वके कोठे दुमञ्जले और मध्यका कोष्ठ (कमरा) इकमञ्जला हो ॥ ४६ ॥

पृथक्स्तंभांतसत्कोष्ठाचतुर्मार्गागमाशुभा ।
जलोर्ध्वपातियंत्रैश्चयुतासुस्वरयंत्रकैः ॥४७॥

पृथक् २ हैं स्तम्भ जिनमें ऐसे उत्तम कोष्ठ चारों भागोंमें जिसके दरवाजे हों और फुवारे और बाजोंसे सुशोभित हो ॥ ४७ ॥

वातेप्रेरकयंत्रैश्चयंत्रैः कालप्रबोधकैः ।
प्रतिष्ठिताचस्वादर्शैस्तथाचप्रतिरूपकः ॥४८॥

वायुके प्रेरक और समयके बोधक यन्त्रोंसे और उत्तम २ आदर्श (शीशे) और प्रतिरूप (तसवीर) इनसे शोभित हो ॥ ४८ ॥

एवंविधाराजसभामंत्रार्थाकार्यदर्शने ।
तथाविधामात्यलेख्यसभ्याधिकृतशालिका ४९

ऐसी राजसभा कार्यके देखने और मन्त्रके अर्थ हो और ऐसाही मन्त्री (सेवक) और सभाओंके अधिकारियोंकी हो ॥ ४९ ॥

कर्तव्याश्चपृथक्त्वेतास्तदर्थाश्चपृथक्पृथक् ।
शतहस्तमितांभूमिंत्यक्त्वाराजगृहात्सदा ५० ॥

इन राजसभा आदिको पृथक् २ करै इनके कार्य भी पृथक् २ हों और राजाके घरमें शतहस्त भूमिको छोडकर पूर्वोक्त सभाओंको बनावे ॥ ५० ॥

उदग्द्विशतहस्तांप्राक्सेनासंवेशनार्थिकाम् ।
आराद्राजगृहस्यैवप्रजानांनिलयानिच ॥५१॥

पूर्व अथवा उत्तर दिशामें दोसौ २०० हाथ गृहके अन्तरसे सेनानिवास, और राजाके घरके समीप प्रजाके स्थान बनवावे ॥ ५१ ॥

सधनश्रेष्ठजात्यानुक्रमतश्चसदाबुधः ।
समंताच्चचतुर्दिक्षुविन्यसेच्चततः परम् ॥५२॥

धनी और उत्तम जाति इनके क्रमसे चारों तरफ और चारों दिशाओंमें गृहोंका विन्यास करावे ॥ ५२ ॥

प्रकृत्यनुप्रकृतयोह्यधिकारिगणस्ततः ।
सेनाधिपाःपदातीनांगणः सादिगणस्ततः ५३॥

प्रकृति (दिवान आदि) अनुप्रकृति (उत्तम सेवक) फिर अधिकारियोंके गण फिर सेनाके अधिपति, फिर पदाति (सिपाही), फिर सवार इस क्रमसे गृह बनावें ॥ ५३ ॥

साश्वश्चगजश्चापिगजपालगणस्ततः ।
बृहन्नालिकयंत्राणिततः स्वतुरगीगणः ॥५४॥

सवार, हाथीवान्, हस्तीके रक्षकोंका समूह, और बडे नालियोंका यन्त्र और उसके अनन्तर घोडियोंके समूह ॥ ५४ ॥

ततःस्वगोपकगणो ह्यारण्यकगणस्ततः ।
क्रमादेषांगृहाणिस्युः शोभनानिपुरेसदा ५५॥

इसके अनन्तर गोपालोंके गण फिर बनवासी (भिल्ल) आदिकोंके गण इस क्रमसे शोभायमान इनके घर पुरमें सदा बनावै॥५५॥

पांथशालाततः कार्यासुगुप्तासुजलाशया ।
सजातीयगृहाणांहिसमुदायेनपंक्तितः॥५६ ॥

फिर पांथशाला सुगुप्त और जलाशय(कूप आदि सुन्दर हैं जिसमें ऐसी बनावे और फिर सजातीय गृहोंके समुदाय (मुहल्ले) पृथक् २ बनावे ॥ ५६ ॥

निवेशनंपुरेग्रामेप्रागुदङ्मुखमेववा ।
सजातिपण्यानिवहैरापणेपण्यवेशनम् ॥५७॥

पुर और ग्राममें पूर्व और उत्तराभिमुख स्थान बनावै और आपण (बाजार) में सजातियोंकी पृथक् २ दुकान बनावै ॥ ५७ ॥

धनिकादिक्रमेणैवराजमार्गस्यपार्श्वयोः ।
एवंहिपत्तनंकुर्याद्ग्रामंचैवनराधिपः ॥ ५८॥

धनिक आदिके क्रमसे राजमार्ग दोनों पार्श्वोंमें पण्य (दुकानें) बनावे इस प्रकार पत्तन और ग्रामको राजा बनावे ॥ ५८ ॥

राजमार्गस्तुकर्तव्याश्चतुर्दिक्षुनृपगृहात् ।
उत्तमोराजमार्गस्तुत्रिंशद्धस्तमितोभवेत् ५९॥

राजगृहके चारों दिशाओंमें राजमार्ग (सड़क) बनावे और तीस हाथका राज मार्ग उत्तम है ॥ ५९ ॥

मध्यमोविंशतिकरोदशपंचकरोऽधमः ।
पण्यमार्गास्तथाचैतेपुरग्रामादिषुस्थिताः ६० ॥

वीस हाथका मध्यम और पन्द्रह हाथका राजमार्ग अधम होता है और पण्यके मार्ग भी ऐसेही पुर और ग्रामादिकोंके होते हैं ॥ ६ ॥

करत्रयात्मिकापद्यावीथिःपंचकरात्मिका ।
मार्गोदशकरःप्रोक्तोग्रामेषुनगरेषुच ॥ ६१ ॥

तीन हाथकी पद्या और पांच हाथकी बीथि और दश हाथका मार्ग ग्राम और नगरोंमें कहा है ॥ ६१ ॥

प्राक्पश्चाद्दक्षिणोदक्तान्ग्राममध्यात्प्रकल्प-येत् ॥
पुरंदृष्ट्वाराजमार्गान्सुबहून्कल्पयेन्नृपः ६२ ॥

पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर ग्रामके मध्यसे राजमार्गआदिको रचे और उन्हें पुरके अनुसार बहुत बनावे ॥ ६२ ॥

नवीथिंनचपद्यांहिराजधान्यांप्रकल्पयेत् ।
षड्योजनांतरेरण्येराजमार्गंतुचोत्तमम् ॥ ६३ ॥

तीन और पांच हाथका मार्ग राजधानीमें न बनावे चौबिसकोस बनके अंतरसे राज-मार्ग उत्तम होता है ॥ ६३ ॥

कल्पयेन्मध्यमंमध्येतयोर्मध्येतथाधमम् ।
दशहस्तात्मकंनित्यंग्रामेग्रामेनियोजयेत् ६४ ॥

और वनके मध्यमें बारहकोसके अंतरमें मध्यम और उत्तमसे भी मध्यममें अधम मार्ग बनावे और दश हाथका मार्ग ग्राम ग्राममें हो ॥ ६४ ॥

कूर्मपृष्ठामार्गभूमिःकार्याग्राम्यैः सुसेतुका ।
कुर्यान्मार्गान्पार्श्वखातान्निर्गमार्थंजलस्यच ६५

मार्गकी भूमि कछवेकी पीठके समान और उत्तम पुल हैं जिसमें ऐसी बनानी और जलके गमनके निमित्त दोनों पार्श्वोंमें खाई जिसमें ऐसे मार्ग बनावे ॥ ६५ ॥

राजमार्गमुखानिस्युर्गृहाणिसकलान्यपि ।
गृहपृष्ठेसदावीथिंमलनिर्हरणस्थलम् ॥ ६६ ॥

राजमार्गमें हैं दरवाजे जिनके ऐसे सम्पूर्ण गृह बनावे और गृहके पिछवारे मल आदिके दूरकरनेकी गली बनावै ॥ ६६ ॥

पंक्तिद्वयगतानांहिगेहानांकारयेत्तथा ।
मार्गान्सुधाशर्कराभिर्घटितान्प्रतिवत्सरम् ॥ ६७ ॥

दोनों पंक्तियोंमें विद्यमान गृहोंके मार्ग ऐसे प्रतिवर्ष बनावे जो चूना शर्करा (कंकर) आ-दिसे कूटा हो ॥ ६७ ॥

अभियुक्तैर्निरुद्धैर्वाकुर्यात्ग्राम्यजनैर्नृपः ।
ग्रामद्वयांतरेचैवपांथशालाःप्रकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

अभियुक्त (मजूर) निरुद्ध (कैदी) ऐसे ग्रामीणोंसे मार्गको बनवावे और ग्रामोंके मध्य में पाठशाला बनावे॥ ६८ ॥

नित्यंसंमार्जितांचैवग्रामपैश्चसुगोपिताम् ।
तत्रागतंतुसंपृच्छेत्पांथशालाधिपैःसदा ॥ ६९ ॥

ग्रामके अधिपतियोंसेपांथशालाको प्रतिदिन संमार्जित(स्वच्छ)रक्खे और उस पांथशालामें आये पथिकको उसशालाका अधिपति यह पूछे ॥ ६९ ॥

प्रयातोसिकुतःकस्मात्कगन्छासिऋतंवद ।
ससहायोऽसहायोवाकिंशस्त्रःकिंसवाहनः ७० ॥

कहांसे आयेहो और किस हेतुसे और कहां जाते हो और कौन संग है अथवा एकाकी हो और कौन तुम्हारे पास शस्त्र हैं और कौन तुम्हारे वाह(सवारी)है यह सत्य बताओ॥ ७० ॥

काजातिःकिंकुलंनामास्थितिःकुत्रास्तितेचिरम् ।
इतिपृष्ट्वालिखेत्सायंशस्त्रंतस्यप्रगृह्यच ॥ ७१ ॥

और कौन जाति कुल नाम है और कहांके वासी हो यह पूछे और उसके शस्त्रको ग्रहण-करके सायंकाल के समय लिखलें ॥ ७१ ॥

सावधानमनाभूत्वास्वापंकुर्वितिशासयेत् ।
तत्रस्थान्गणयित्वातुशालाद्वारंपिधायच ॥ ७२ ॥

संरक्षयेद्यामिकैश्चप्रभातेतान्प्रबोधयेत्।
शङ्खंदद्याच्चगणयेद्वारमुद्घाट्यमोचयेत् ॥७३॥

और सावधानतासे सोवे यह शिक्षा दे और वहांके टिके हुए सम्पूर्ण मनुष्योंको गिनकर और शालाके दरवाजेको लगाकर चौकीदारोंसे रक्षा करावै और प्रातःकाल जगवादे और शङ्खको दे और दरवाजे खोल कर प्रभात छोड दे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

कुर्यात्सहायंसीमांतंतेषांग्राम्यजनस्सदा।
प्रकुर्यादिनकृत्यंतुराजधान्यांवसन्नृपः ॥७४॥

और पथिकोंकी सीमातक ग्रामका मनुष्य रक्षा करें और राजधानीमें वसता हुआ राजा दिनमें करने योग्य काम करें ॥ ७४ ॥

उत्थायपश्चिमेय्यामेमुहूर्तद्वितयेनवै।
नियतायश्चकत्यास्तिव्ययश्चानियतःकति॥७५॥
कोशभूतस्यद्रव्यस्य व्ययःकतिगतस्तथा।
व्यवहारेमुद्रितायव्ययशेषंकतीतिच ७६ ॥
प्रत्यक्षतोलेखतश्चज्ञात्वाचाद्यव्ययःकति।
भविष्यतिचतत्तुल्यंद्रव्यंकोशात्तुनिर्हरेत्॥७७॥

रात्रिके पश्चिमभागमें दो मुहूर्त (चार घडी) रात्रि से उठकर कितना आज का आय (आमदनी) और कितना व्यय (खर्च) नियमित है और कोशमेंसे कितना व्यय हुआहै और व्यवहारमें कितना रुपया आया और कितनाव्यय हुआ प्रत्यक्ष और लेखसे यह जानकर और आज कितना व्यय होगा यह निश्चय करिके उतनाही द्रव्य कोशमेंसे निकाले ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

पश्चात्तुवेगानिर्मोक्षंस्नानंमौहूर्तिकंमतम्।
संध्यापुराणदानैश्चमुहूर्तद्वितयंनयेत् ॥ ७८ ॥

पीछेसे मलका परित्याग करिके एकमुहूर्तमें स्नान करें और दो मुहूर्तको संध्या पुराण श्रवण और दानमें व्यतीत करै ॥ ७८ ॥

पारितोषिकदानेनमुहूर्तंतुनयेत्सुधीः।
धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः ॥७९॥

और पारितोषिकके देनेसे मुहूर्त व्यतीत करै अन्न वस्त्र सुवर्ण रत्न सेना और देश इनके देखनेसे एक मुहूर्त व्यतीत करै ॥ ७९ ॥

आयव्ययैर्मुहूर्तानांचतुष्कंतुनयेत्सदा ॥
स्वस्थचित्तोभोजनेनमुहूर्तंससुहृन्नृपः ॥ ८० ॥

चार मुहूर्त आय और व्ययमें व्यतीत करै फिर मित्रोंसहित राजा भोजन करिके एक मुहूर्त स्वस्थचित्त रहै ॥ ८० ॥

प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्णनवीनानांमुहूर्तकम्।
ततस्तुप्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः॥८१॥

पुरानी और नई वस्तुओंके देखनेमें एक मुहूर्त व्यतीत करै फिर एक मुहूर्त वकीलोंसे बोधित (जताये) व्यवहारसे व्यतीत करै ॥ ८१ ॥

मुहूर्तद्वितयंचैवमृगयाक्रीडनैर्नयेत्।
व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्तंतुमुहूर्तंसंध्ययाततः ॥ ८२ ॥

दो मुहूर्त्त मृगयाकी क्रीडासे एक मुहूर्त व्यूहाभ्यास (कवायद) से फिर एक मुहूर्त्त संध्यासे व्यतीत करै ॥ ८२ ॥

मुहूर्तंभोजनेनैवद्विमुहूर्तंचवार्तया।
गूढचारैः श्राविततयानिद्रयाष्टमुहूर्तकम् ॥८३॥

एक मुहूर्त्त भोजनसे दो मुहूर्त्त गूढचारी पुरुषने सुनाई हुई वार्त्ता व्यवहारसे और आठमुहूर्त्त निद्रासे व्यतीत करै ॥ ८३ ॥

एवंविहरतोराज्ञःसुखंसम्यक्प्रजायते।
अहोरात्रंविभज्यैवंत्रिंशद्भिस्तुमुहूर्तकैः ॥८४॥
नयेत्कालंवृथानैवनवेस्त्रीमद्यसेवनैः।
यत्कालेह्युचितंकर्तुंतत्कार्यंद्रागशंकितम् ८५॥

इस प्रकार विहार करते राजाको सुख अच्छी तरह होता है इस प्रकार तीस मुहूर्त्तसे रात्रिदिनका विभाग करके कालको व्यतीत करै स्त्री और मदिरादिसे कालको न वितावै और जिस समय जो करनेको उचित हो उसी समय उस कार्यको निःशंक होकर शीघ्रही करै ॥८४॥८५॥

कालेवृष्टिःसुपोषायह्यन्यथासुविनाशिनी।
कार्यस्थानानिसर्वाणियामिकैरभितोनिशम् ८६

समयकी वृद्धि भले प्रकार पुष्टिके अर्थ है और अकालवृष्टि शीघ्र विनाशका हेतु है संपूर्ण कार्यस्थानों की चारों ओरसे यामिक (चौकीदारों) से रात्रि दिन रक्षा करै ॥ ८६ ॥

नयवान्नीतिनतिवित्सिद्धशस्त्रादिकैर्वरैः ।
चतुर्भिःपंचभिर्वापिषड्भिर्वागोपयेत्सदा ॥८७॥

न्याय, नीति, नति इनका ज्ञाता सिद्ध (ज्ञात) हैं शस्त्रादि जिनको ऐसे चार, पांच, छे यामिकोंसे कार्यस्थानोंकी रक्षा करै ॥ ८७ ॥

तत्रत्यान्दैनिकानि शृणुयाल्लेखकाधिपैः ।
दिनेदिनेयामिकानांप्रकुर्यात्परिवर्तनम् ॥८८॥

कार्यस्थानोंमें जो दैनिक हैं उन्हें लेखाधिपोंसे सुनै और दिन २ में यामियोंका परिवर्त्तन (बदली) करैं ॥ ८८ ॥

गृहपंक्तिमुखेद्वारंकर्तव्यंयामिकैःसदा ।
तैस्तद्वृत्तंतुशृणुयाद्गृहस्थभृतिपोषितैः ८९॥

गृहोंकी पंक्तिके मुखपर यामिक (चौकीदार) सदा द्वार करैं उन्ही यामिकोंसे गृहोंके वृत्तान्त राजा सुने और वे यामिक गृहस्थ भृति (गृहस्थके पालन योग्य वेतन) से पुष्ट रहैं ॥८९॥

निर्गच्छंतिचयेग्रामाद्येग्रामंप्रविशंतिच ।
तान्सुसंशोध्ययत्नेनमोचयेद्दत्तलग्नकान्॥९०॥

जो मनुष्य ग्राममें जायँ और जो ग्राममें प्रविष्ट हों उन्हें भलीभांति शोधन और चिह्न सहित करके छोड दे ॥ ९० ॥

प्रख्यातवृत्तशीलांस्तुह्यविमृश्यविमोचयेत् ।
वीथिवीथिषुयामार्धेर्निशिपर्यटनंसदा ॥९१॥

और प्रसिद्ध है आचरण और शील जिनका उन्हें विनाविचारेही छोड दे और रात्रिमें चार २ घटी गली २ में सदा विचरै ॥ ९१ ॥

कर्तव्यंयामिकैरेवंचौरजारनिवृत्तये ।
शासनंत्वीदृशंकार्यराज्ञानित्यंप्रजासुच ॥९२॥

यामिकोंको चौर और जारकी निवृत्तिके अर्थ गली ५ में विचरना और राजाको प्रजामें इस प्रकार शिक्षा करनी कि ॥ ९२ ॥

दासेभृत्येथभार्यायांपुत्रेशिष्येपिवाक्वचित् ।
वाग्दंडपरुषान्नैवकार्यमद्देशसंस्थितैः ॥ ९३ ॥

जो मनुष्य मेरे देशमें रहते हैं उन्हें दास भृत्य, भार्या, पुत्र, शिष्य इनके विषय कठोर वचनका दंड नहीं देना अर्थात् कठोरवचन नहीं कहना ॥ ९२ ॥

तुलाशासनमानानांनाणकस्यापिवाक्वचित् ।
निर्यासानांचधातूनांसजातीनांघृतस्यच ॥९४

मधुदुग्धवसादीनांपिष्टादीनांचसर्वदा ।
कूटंनैवतुकार्यंस्याद्बलाच्चलिखितंजनैः ॥९५॥

तुला, आज्ञा, मान, सिक्का, निर्यास (गोंद) धातु, सजाति, घृत, मधु, दूध, वसा, पिष्ट (आटा) इनके लेखकों मनुष्य बलसे मिथ्या न करैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

उत्कोचग्रहणंनैवस्वामिकार्यविलोभनम् ।
दुर्वृत्तकारिणंचोरंजारमद्द्वेषिणंद्विषम् ॥ ९६ ॥

नरक्षंत्वपकारांश्चहितथान्यानपकारकान् ।
मातॄणांपितॄणांचैवपूज्यानांविदुषामपि ९७॥

उत्कोच (कोड) के ग्रहण कर्ता, स्वामी कार्यके नाशक, दुराचारी और चौर और जार और राजाका अद्वेषी और द्वेषीइतर अपकारी इनकी प्रत्यक्ष रक्षा कोई न करै, माता पिता पूज्य और विद्वान् इनका तिरस्कार कोई न करै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

नावमाननोपहासंकुर्युःसद्वृत्तशालिनाम् ।
नभेदंजनयेयुर्वैनृनार्योःस्वामिभृत्ययोः ॥९८॥

और सदाचारमें तत्परोंकाभी तिरस्कार न करै और स्त्री, पुरुष, स्वामी, भृत्य इनके भेद (फूट) को कोई उत्पन्न न करै ॥ ९८ ॥

भ्रातॄणांगुरुशिष्याणांनकुर्युःपितृपुत्रयोः ।
वापीकूपारामसीमाधर्मशालासुरालयान् ९९ ॥

मार्गान्नैवप्रबाधेयुर्हीनांगविकलांगकान् ।
द्यूतंचमद्यपानंचमृगयांशस्त्रधारणम् ॥१००॥

भ्राता, गुरु, शिष्य, पिता, पुत्र इनकेभी भेदकोन करै, और वापी, कूप, आराम, सीमा,

धर्मशाला, देवमंदिर और मार्ग, हीनअंगवाला पुरुष, इनको कोई पीडा न दे, और द्यूत, मद्यपान, मृगया, शस्त्रधारण, इन सबको राजाके विना न करै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

गोगजाश्वोष्ट्रमहिषीनृणांवैस्थावरस्यच ।
रजतस्वर्णरत्नानांमादकस्यविषस्यच ॥ १ ॥
क्रयंवाविक्रयंवापिमद्यसंधानमेवच ।
क्रयपत्रंदानपत्रमृणनिर्णयपत्रकम् ॥ २ ॥
राजाज्ञयाविनानैवजनैः कार्यंचिकित्सितम् ।
महापापाभिशपनंनिधिग्रहणमेवच ॥ ३ ॥

गौ, हस्ती, ऊंट, भैंस, मनुष्य, स्थावर, चांदी सोना, रत्न, मादकवस्तु, विष इनका लेनदेन और मदिरा निकालना, लेनेका पत्र, देनेका पत्र, ऋणके निर्णयका पत्र, चिकित्सा (इलाज) महापापका अभिशपन अर्थात् महापापका दोष लगाना, निधि(खजाना)का ग्रहण इतने कार्य राजाकी आज्ञाके विना कोईभी मनुष्य न करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

नवसमाजनियमंनिर्णयंजातिदूषणम् ।
अस्वामिनाष्टिकधनंसंग्रहंमंत्रभेदनम् ॥ ४ ॥

नये समाजका नियम, निर्णय, जातिका दोष, जिसका कोई स्वामी न हो उस वस्तुका ग्रहण, और मंत्र सलाह इनका भेद कोई न करै ॥ ४ ॥

नृपदुर्गुणलोपंतुनैवकुर्युःकदाचन ।
स्वधर्महानिमनृतंपरदाराभिमर्शनम् ॥ ५ ॥

राजाके दुर्गुणोंका लोप कोई पुरुष कदाचित भी न करै, अपने धर्मका त्याग असत्य भाषण अन्यस्त्रीका संग कोई न करै ॥ ५ ॥

कूटसाक्ष्यकूटलख्यमप्रकाशप्रतिग्रहम् ।
निर्धारितकराधिक्यंस्तेयंसाहसमेवच ॥ ६ ॥

झूठी साक्षी, झूठा लेख, गुप्त प्रतिग्रह, नियमित करसे अधिक कर, चोरी, साहस, इन्हें कोई न करै ॥ ६ ॥

मनसापिनकुर्वंतुस्वामिद्रोहंतथैवच ।
भृत्याशुल्केनभागेनवृद्ध्याद्र्पबलाच्छलात् ७॥

वेतन शुल्क (महसूल) भाग, सूत, अहंकार, बल, छल इनके द्वारा मनसे भी कोई अपने स्वामीका द्रोह न करै ॥ ७ ॥

आधर्षणंनकुर्वंतुयस्यकस्यापि सर्वदा ।
परिमाणोन्मानमानंधार्यंराजविमुद्रितम् ॥ ८॥

सम्पूर्ण कालमें किसीका भी आधर्षण (दबाकर दुःखित करना) न करै, परिमाण उन्मान, (द्रोण) आदि मान (तोल) इनको राजाकी मुद्रायुक्त रक्खे ॥ ८ ॥

गुणसाधनसंदक्षाभवंतुनिखिलाजनाः ।
साहसाधिकृतेदद्युर्वीनिगृह्याततायिनम् ॥९॥

गुणोंकी सिद्धिमें सम्पूर्ण जन चतुर हों और अपराधीको पकडकर साहसके अधिकारी (फौजदारीके हाकिम) को सौंपदे ॥ ९ ॥

उत्सृष्टावृषभाद्यायैस्तैस्तेधार्याःसुयंत्रिताः ।
इतिमच्छासनंश्रुत्वायेऽन्यथावर्तयन्तितान् ॥
विनेष्याम्यचदंडेनमहतापापकारकान् ।
इतिप्रबोधयेन्नित्यंप्रजाःशासनडिंडिमैः ११

जिन पुरुषोंने वृषभ आदि छोडे हैं वेही उनको बडे यत्नसे रक्खें, इस मेरी आज्ञाको सुनकर जो अन्यथा चलेंगे, उन पापियोंको मैं महान् दण्डसे शिक्षा दूँगा यह नित्यडिंडिम (ढंढोरा) से राजा प्रबोधित करावै ॥ १०॥११

लिखित्वाशासनंराजाधारयेतिचतुष्पथे ।
सदाचोद्यतदंडःस्यादसाधुषुचशत्रुषु ॥ १२ ॥

अपनी आज्ञाको लिखकर राजा चतुष्पथ (चौराहा) में रख दे और असाधु शत्रु इनमें दण्डको सदा उद्यत रक्खे ॥ १२ ॥

प्रजानांपालनंकार्यंनीतिपूर्वंनृपेणहि ।
मार्गसंरक्षणंकुर्यान्नृपःपांथसुखायच १३ ॥

राजा प्रजाका पालन नीतिसे करै और पथिकोंके सुखके निमित्त मार्गकी सदा रक्षा करै ॥ १३

पांथप्रपीडकायेयेहंतव्यास्तेप्रयत्नतः ।
त्रिभिरंशैर्बलंधार्यंदानमर्धांशकेनच ॥ १४ ॥

पथिकोंके जो २ पीडाकारक हैं तिन २ को यत्नसे मारे और तीन भागोंसे सेनाको धारण करै और आधेभागसे दानको धारे ॥ १४ ॥

अर्धांशेनप्रकृतयोह्यर्धांशेनाधिकारिणः ।
अर्धांशेनात्मभोगश्चकोशोंशेनसरक्ष्यते १५ ॥

आधेभागसे प्रकृति (दिवान आदि) आधे भागसे अधिकार (दरबार) आधेभागसे अपना भोग, चौथेभागसे कोश (खजाना) इस प्रकार भागोंसे अपने द्रव्यको भुगतावे ॥१५॥

आयस्यैवंषड्विभागैर्व्ययंकुर्यात्तुवत्सरे ।
सामंतादिषुधर्मोयंनन्यूनस्यकदाचन ॥१६ ॥

इस प्रकार आय (आमदनी) का वर्षभरमें व्यय (खर्च) करै यह सामन्त (मन्त्री) आदि का धर्म है न्यूनका नहीं ॥ १६ ॥

राज्यस्ययशसःकीर्तेर्धनस्यचगुणस्यच ।
प्राप्तस्यरक्षणेन्यस्यहरणेचोद्यमोपिच॥१७ ॥

राज्य, यश, कीर्ति,धन, गुण, आदि प्राप्तोंकी रक्षामें न्यास अर्थात् ब्याज आदिसे बढाना और हरण अर्थात् इतर राज्य आदिके छीननेमें यत्न करे ॥ १७ ॥

संरक्षणेसंहरणेसुप्रयत्नोभवेत्सदा ।
शौर्यंपांडित्यवक्तृत्वंदातृत्वंनत्यजेत्क्वचित्१८॥

भलीप्रकार रक्षा और हरणमें अच्छे प्रकारस यत्न करै । शूरता,पांडित्य, वक्तृता,दातृता इनको कदापि न त्यागे ॥ १८॥

बलंपराक्रमंनित्यमुत्थानंचापिभूमिपः ।
समितौस्वात्मकार्येवास्वामिकार्येतथैवच १९॥

बल,पराक्रम, नित्य उत्थान (चढाई) इनको भी न त्यागे, संग्राम अपने और स्वामीके कार्यमें प्राणोंका भय न करै ॥ १९ ॥

त्यक्त्वाप्राणभयंयुध्येत्सशूरस्त्वविशंकितः।
पक्षंसंत्यज्ययत्नेनबालस्यापिसुभाषितम् ॥
गृह्णातिधर्मतत्त्वंचव्यवस्यतिसपंडितः ।
राज्ञोपिदुर्गुणान्वक्तिप्रत्यक्षमविशंकितः २१

प्राणोंके भयको त्याग और निःशंकहोकर जो युद्ध करै वही शूर है पक्षपातको छोडकर बालककेभी उत्तम कथनको ग्रहण करै और धर्मके तत्त्वका निश्चय करै और निःशंक होकर राजाके प्रत्यक्ष राजाकेभी अपगुणोंको जो कहै वही पंडित है ॥२० । २१ ॥

सवक्तागुणतुल्यांस्तान्नप्रस्तौतिकदाचन ।
अदेयंयस्यनैवास्तिभार्यापुत्रादिकंधनम् २२॥

वही वक्ता है जो गुणोंके तुल्य यथार्थ स्तुति करै और अधिक न करै और भार्या,पुत्र, धन आदिमें जिसको अदेय न हो वही राजा है ॥ २२ ॥

आत्मानमपिसंदत्तेपात्रेदातासउच्यते ।
अशंकितक्षमोयेनकार्यंकर्तुंबलंहितत् ॥ २३॥

जो सुपात्रको अपने आत्माकोभी दे दे वही दाता है और जिससे निःशंक होकर कार्यको करै वही बल है ॥ २३ ॥

किंकराइवयेनान्येनृपाद्याःस पराक्रमः ।
युद्धानुकूलव्यापारउत्थानमीतिकीर्तितम् ॥

जिससे इतर राजा किंकरके समान होजाय वही पराक्रम है और युद्धका संपादक जो व्यापार उसे उत्थान कहते हैं ॥ २४ ॥

विषदोषभयादन्नंविमृश्यकपिकुक्कुटैः ।
हंसाःस्खलंतिकूजंतिभृंगानृत्यंतिमायुराः ॥
विरौतिकुक्कुटोमत्तःक्रौंचोवैरेचतेकपिः ।
हृष्टरोमाभवेद्बभ्रुः सारिकावमतेतथा॥२६ ॥

विषके दोषभयसे वानर मुरगोंसे अन्नकी परीक्षा करै क्योंकि विषके भक्षणसे हंस स्खलित(अंडबंड)बोलते हैं भ्रमर शब्द करते हैं मोर नाचते हैं,मुरगा अत्यंत शब्द करता है, कूंच मत्त हो जाता है, वानर वमन कर देता है,नोलेकी रोम खडी हो जाती है, सारिकाभी वमन करती है,यदि ये पूर्वोक्त जीव जिसअन्नभक्षणसे उक्त कार्यकारी हो जायं तो उस अन्नको कदाचिदपि भक्षण न करै ॥ २५ ॥२६॥

दृष्ट्वैवंसविषंचान्नंतस्माद्भोज्यंपरीक्षयेत्।
भुंजीतषड्रसंनित्यंनाद्वित्रिरससंकुलम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार विष सहित अन्नको देखकर पश्चाद्भोजनके योग्यकी परीक्षा करे अर्थात् छै रसहैंजिसमें उसे भक्षण करे और दो अथवा तीन रस जिसमें हों उसे भक्षण न करै।२७॥

हीनातिरिक्तंनकटुमधुरक्षारसंकुलम्।
आवेदयतियत्कार्यंश्रृणुयान्मंत्रिभिःसह २८॥

न्यून और अधिक है, कटु, मधुर, खार जिसमें उसे भक्षण न करै, जो कोई मनुष्यकार्यको निवेदन करै उसे मंत्रियों सहित राजा सुनै ॥ २८ ॥

आरामादौप्रकृतिभिः स्त्रीभिश्चनटगायकैः।
विहरेत्सावधानस्तुमागधैरेंद्रजालिकैः ॥२९ ॥

प्रजा, स्त्री, नट, गानेवाले, भाट, इन्द्रजाली इनके संग सावधान होकर आराम (बगीचा) आदिमें विहार करै ॥ २९ ॥

गजाश्वरथयानंतुप्रातः सायंसदाभ्यसेत्।
व्यूहाभ्यासंसैनिकानांस्वयंशिक्षेच्चशिक्षयेत् ३०

प्रातःकाल और सन्ध्यासमय, हस्ति अश्व, रथ इनके यानका अभ्यास करै और सेनाके मनुष्योंको व्यूह (कवायद) अभ्यास करावै और आप भी करै ॥ ३० ॥

व्याघ्रादिभिर्वनचरैर्मयूराद्यैश्चपक्षिभिः।
क्रीडयेन्मृगयांकुर्याद्दुष्टसत्त्वान्निपातयन् ॥

सिंह आदि वनचर और मयूर आदि पक्षी इनके सङ्ग क्रीडा और मृगया करै और दुष्ट जीवोंको नष्ट करै ॥ ३१ ॥

शौर्यंप्रवर्धतेनित्यंलक्ष्यसंधानमेवच।
अकातरत्वंशस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता ॥३२ ॥

शूरताकी वृद्धि और लक्ष्य (निशाने) का सन्धान,अकातरता शस्त्रास्त्रका शीघ्र चलाना ये मृगयासे होते हैं ॥ ३२ ॥

मृगयायांगुणाएतेहिंसादोषोमहत्तरः।
इंगितंचेष्टितंयत्नात्प्रजानामाधिकारिणाम् ॥

मृगयामें ये गुण हैं परन्तु हिंसा दोष महान् है प्रजा और अधिकारी इनका मनोरथ और चेष्टा गुप्तचारोंसे सुनै ॥ ३३ ॥

प्रकृतीनांचशत्रूणांसैनिकानांमतंचयत्।
सभ्यानांबांधवानांचस्त्रीणामंतःपुरेचयत्॥
श्रृणुयाद्गूढचारेभ्योनिशिचात्ययिकेसदा।
सावधानमनाःसिद्धशस्त्रास्त्रःसंलिखेच्चतत् ॥

प्रजा, शत्रु, सेनाके मनुष्य और सभासद, बन्धु, अन्तःपुर, स्त्री, इनका आचरण नित्य पिछली रात्रिको विचरनेहारे गूढचारियोंसे सुनै और सावधानतासे शस्त्रअस्त्रको धारण करिके उसे लिखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

असत्यवादिनंगूढचारंनैवचशास्तियः।
सपोम्लेच्छइत्युक्तःप्रजाप्राणधनापह ॥

झूँठेगुप्तचारीको जो राजा शिक्षा नहीं देता वह राजा प्रजाके प्राण और धनका अपहारी म्लेच्छ है ॥ ३६ ॥

वर्णीतपस्वीसंन्यासीनीचसिद्धस्वरूपिणम्।
प्रत्यक्षेणच्छलेनैवगूढचारंविशोधयेत्॥ ३७ ॥

ब्रह्मचारी, तपस्वी, संन्यासी, नीच लिङ्गमें है रूप जिसके ऐसे गूढचारीको प्रत्यक्ष अथवा छलसे शोधै अर्थात् पहचाने ॥ ३७ ॥

विनातच्छोधनात्तत्त्वंनजानातिचनाप्यते।
अशोधकनृपान्नैवबिभ्यत्यनृतवादने ॥३८॥

गूढचारीके शोधे विना राजाको तत्त्वका ज्ञान और प्राप्ति नहीं होती और जो राजा इनका शोधन नहीं करता उससे गूढ बोलने में वे नहीं डारते ॥ ३८ ॥

प्रकृतिभ्योधिकृतेभ्योगूढचारंसुरक्षयेत्।
सदैकनायकंराज्यंकुर्यान्नबहुनायकम् ॥३९॥

प्रकृति और अधिकारी इनसे गूढचारीकी रक्षा करै और राज्यका स्वामी एकही करै बहुत नहीं ॥ ३९ ॥

नानायकंक्वचिदपिकर्तुमीहेतभूमिपः।
राजकुलेतुबहवः पुरुषायदिसंतिहि ॥ ४० ॥

तेषुज्येष्ठोभवेद्राजाशेषास्तत्कार्यसाधकाः ।
गरीयांसोवराःसर्वसहायेभ्योभिवृद्धये ॥४१

राजा किसी स्थानकी भी अनायक (स्वामीरहित) करनेकी चेष्टा न करै यदि राजाके कुलमें बहुत पुरुष होंय तो उनमें ज्येष्ठ राजा होता है शेष उसके कार्यसाधकहोते हैं राजाकी वृद्धिके अर्थ और बन्धु इतर सहायोंसे श्रेष्ठ है॥ ४० ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठोपिबधिरःकुष्ठीमूकोंधःषंढएवयः ।
सराज्यार्होभवेन्नैवभ्रातातत्पुत्रएवहि॥४२ ॥

यदि ज्येष्ठ भ्राताभी बधिर, कुष्ठी, मूक,अन्ध नपुंसक होय तो वह राज्यके योग्य नहीं होता भ्राता अथवा उसका पुत्र राज्यका अधिकारी होता है ॥ ४२ ॥

स्वकनिष्ठोपिज्येष्ठस्यभ्रातुःपुत्रस्तु राज्यभाक्।
दायादानांमैकमत्यं राज्ञःश्रेयस्करंपरम्॥४३॥

अपना कनिष्ठज्येष्ठ भ्राता अथवा भ्राताका पुत्र राज्यका अधिकारी होता है और दायाद अंशभागिनियों की एक मति राज्यके परम कल्याणको करती है॥४३ ॥

पृथग्भावोविनाशायराज्यस्यचकुलस्यच ।
अतःस्वभोगसदृशान्दायादान्कारयेन्नृपः ॥

अंशभागियोंका जो पृथक् भाग वह राज्य और कुलके विनाशका हेतु है इससे राजा हिस्सेदारोंको अपने भागके सदृश करै ॥ ४४ ॥

राज्यविभजनाच्छ्रेयोनभूपानांभवेत्खलु ॥
अल्पीकृतंविभागेनराज्यंशत्रुर्जिघृक्षति ४५॥

राज्यके विभागसे राजाओंको कल्याण नहीं होता क्योंकि विभागसे स्वल्पहुए राज्यको शत्रु ग्रहण करनेकी इच्छा करता है ॥ ४५ ॥

राज्यतुर्यांशदानेनस्थापयेत्तान्समंततः ।
चतुर्दिक्ष्वथवादेशाधिपान्कुर्यात्सदानृपः ॥

राज्यके चतुर्थभागको देकर कनिष्ठ बंधुओंको चारों ओर नियत करै अथवा चारों दिशाओंमें देशोंके अधिपति करै ॥ ४६॥

गोगजाश्वोष्ट्रकोशानामधिपत्येनियोजयेत् ।
मातामातृसमायाचसानियोज्यामहासने ॥

गौ, हस्ति, अश्व, ऊंट, कोश (खजाना) इनके अधिपति करै माता और माताके जो तुल्य है उसे सिंहासन पर नियुक्त करै ॥ ४७ ॥

सेनाधिकारेसंयोज्याबांधवाःश्यालकाःसदा ।
स्वदोषदर्शकाः कार्यागुरवःसुहृदश्चये ॥४८॥

सेनाके अधिकारमें बंधु और शालों को नियुक्त करै, अपने दोषों के दिखानेमें गुरु अथवा मित्रोंको नियुक्त करै ॥ ४८ ॥

वस्त्रालंकारपात्राणांस्त्रियायोज्याःसुदर्शन ॥
स्वयंसर्वंतुविमृशेत्पर्यायेणचमुद्रयेत् ॥ ४९ ॥

वस्त्र, आभूषण, पात्र, इनके भली प्रकार देखनेसे स्त्रियोंको नियुक्त करै और संपूर्णको आप विचारै और राजमुद्रासे अंकित करै ॥ ४९ ॥

अन्तर्वेश्मनिरात्रौवादिवारण्येविशोधिते ।
मन्त्रयेन्मंत्रिभिःसार्धंभाविकृत्यंतुनिर्जने ॥

गृहके भीतर अथवा वनमें दिनके समय एकान्तमें मंत्रियोंके संग भाविकार्यको विचारै ॥ ५० ॥

सुहृद्भिर्भ्रातृभिःसार्धंसभायांपुत्रबांधवैः ।
राजकृत्यंसेनपैश्चसभ्याद्यैश्चिंतयेत्सदा ॥

मित्र,भ्राता, पुत्र, बन्धु, सेनाके अधिप, सभासद इनके संग राजकृत्यका सदा चिन्तन करै ॥ ५१ ॥

सभायांप्रत्यगर्धस्यमध्येराजासनंस्मृतम् ।
दक्षसंस्थावामसंस्थाविशेयुःपार्श्वकोष्ठगाः ॥

सभामें पश्चिमदिशाके मध्य भागमें राजाका आसन कहा है और पासके बैठनेहारे दक्षिण अथवा वामभागमें बैठे ॥ ५२ ॥

पुत्राःपौत्राभ्रातरश्चभागिनेयाःस्वपृष्ठतः ।
दौहित्रादक्षभागात्तुवामसंस्थाःक्रमादिमे ॥

पुत्र, पौत्र, भ्राता, भानजे, ये अपने पृष्ठ भागमें बैठें, दौहित्र (पुत्रीकेपुत्र) दक्षिणभाग से वामभागमें क्रमसे बैठें ॥ ५३ ॥

पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः सभ्याः सेनाधिपास्तथा ॥

स्वाग्रेदक्षिणभागेतुप्राक्संस्थाःपृथगासनाः ॥

पितृव्य (चाचा ताऊ) अपने कुलके श्रेष्ठ सभासद, सेनाके अधिप ये अपने आगे दक्षिण भागमें पूर्वदिशामें बैठें ॥ ५४ ॥

मातामहकुलश्रेष्ठामन्त्रिणोबांधवास्तथा ।

श्वशुराश्चैवश्यालाश्चवामाग्रेचाधिकारिणः५४॥

मातामहके कुलके श्रेष्ठ, मन्त्री, बन्धु, श्वशुर, श्याल ये वामभागमें अग्रभागके अधिकारी हैं ॥ ५५ ॥

वामदक्षिणपार्श्वस्थौजामाताभागिनीपतिः ।

स्वसदृशःसमीपेवास्वार्धासनगतःसुहृत् ॥

वाम और दक्षिण पार्श्वमें जमाई, और भनोई बैठें और अपने तुल्य मित्र अपने समीपमें वा अपने आधे आसनपर बैठें ॥ ५६ ॥

दौहित्रभागिनेयानांस्थानेस्युर्दत्तकादयः ।

भागिनेयाश्चदौहित्राः पुत्रादिस्थानसंश्रिताः ॥

दौहित्र, भानजे इनके स्थानमें दत्तकादि पुत्र बैठें और भानजे और दौहित्र पुत्र आदिके स्थानमें बैठें ॥ ५७ ॥

यथापितातथाचार्यःसमश्रेष्ठासनेस्थितः ।

पार्श्वयोरग्रतः सर्वेलेखकामंत्रिपृष्ठगाः॥५८॥

पिताके समान गुरु होता है इससे पिताके समान श्रेष्ठ आसनपर बैठे और दोनों पार्श्वमें अग्रभाग विषे सम्पूर्ण लेखक मन्त्रियोंके पीछे बैठें ॥ ५८ ॥

परिचारगणाःसर्वेसर्वेभ्यःपृष्ठसंस्थिताः ।

स्वर्णदंडधरौपार्श्वेप्रवेशनतिबोधकौ ॥५९॥

संपूर्ण सेवकोंके गण सबके पीछे बैठें और सभामें प्रवेश (आने) के जताने और राजा को इतरकी प्रणामके बोधक सुवर्णके दंडको ग्रहण करके दो मनुष्य राजाके दोनों पार्श्वों में बैठें ॥ ५९ ॥

विशिष्टचिह्नयुग्राजास्वासनेप्रविशेत्सुखम् ।

सुभूषणःसुकवचःसुवस्त्रोसुकुटान्वितः६०॥

श्रेष्ठ चिह्नवाला राजा अच्छे भूषण और श्रेष्ठ कवच और श्रेष्ठ मुकुट इनको धारण करके सुन्दर आसनपर सुखसे बैठे ॥ ६० ॥

सिद्धास्त्रोनग्रशस्त्रस्सन्सावधानमनाःसदा ।

सर्वस्मादधिकोदाताशूरस्त्वंधार्मिकोह्यसि ॥

सिद्ध हैं अस्त्र जिसको ऐसा राजा नग्न शस्त्रको ग्रहण करके सदा सावधानमन रहे और आप सबसे अधिक दाता, शूर और धार्मिक हो इस वाणीको न सुने॥ ६१ ॥

इतिवाचनंश्रृणुयाच्छ्रावकावंचकास्तुये ।

रागाल्लोभाद्भयाद्राज्ञः स्युर्मूकाइवमंत्रिणः ॥

और जो पूर्वोक्त वाणीके सुनानेवाले हैं और जो ठग हैं और जो राजाके मंत्री किसी की प्रीति, राग लोभसे मूक हो जायं अर्थात् यथार्थ न्यायमें सम्मति न दें उन्हें राजा अपने अनुमत न जानै ॥ ६२ ॥

नताननुमतान्विद्यान्नृपतिः स्वार्थसिद्धये ।

पृक्पृथङ्मतंतेषांलिखयित्वासस्साधनम् ॥

अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्तोंको अनुमत नहीं समझे किंतु उनका मत युक्तिसहित पृथक् २ लिखकर आप विचारै ॥ ६३ ॥

विमृशेत्स्वमतेनैवयत्कुर्याद्बहुसम्मतम् ।

गजाश्वरथपश्वादीन्भृत्यान्दासांस्तथैवच ॥

और जो कार्य वह सम्मतभी किया हो उसे भी अपने मतसे करै। हस्ती, घोडे, रथ, पशु आदि भृत्य और दास ॥ ६४ ॥

संभारान्सैनिकान्कार्यक्षमान्ज्ञात्वादिनेदिने ।

संरक्षयेत्प्रयत्नेनसुजीर्णान्संत्यजेत्सुधीः ६५॥

और सेनाके सम्भार इनकी प्रतिदिन यत्न से रक्षा करके कार्यके योग्य करे और जो जीर्ण (पुराने) हों उन्हें त्याग दे ॥ ६५ ॥

अयुतक्रोशजांवार्ताहरेदेकदिनेनवै ।
सर्वविद्याकलाभ्यासेशिक्षयेद्भृतिपोषितान् ६६

दशसहस्र कोशकी वार्ताको एकही दिन में जानले और भृत्योंको सम्पूर्ण विद्याओंकी कलाओंके अभ्यासमें शिक्षित करै ॥ ६६ ॥

समाप्तविद्यंसंदृष्ट्वातत्कार्येतंनियोजयेत् ।
विद्याकलोत्तमान्दृष्ट्वावत्सरेपूजयेच्चतान् ॥

उसकी पूरी विद्याको देखकर उसे कार्यमें नियुक्त करै और विद्याकी कलामें उत्तम देखकर उन्हें प्रतिवर्ष पूजै अर्थात् उनकी विद्याके अनुसार उनका सत्कार करे ॥ ६७॥

विद्याकलानांवृद्धिःस्यात्तथाकुर्यान्नृपःसदा ।
पृष्ठाग्रगान्क्रूरवेषान्नतिनीतिविशारदान् ॥६८॥

जैसे विद्याकी कला वृद्धिको प्राप्त हो तैसे राजा सदा करै पृष्ठभाग और अग्रभागमें विद्यमान जो पुरुष वे नति (प्रणाम) और नीतिमें चतुर और भयानक वेषधारी हों ॥ ६८ ॥

सिद्धास्त्रनग्नशस्त्राँश्चभटानाराान्नियोजयेत् ।
पुरेपर्यटयेन्नित्यंगजस्थोरंजयन्प्रजाः ६९॥

और वे ज्ञात हैं अस्त्र जिन्हें ऐसे हों और नग्नशस्त्र हों ऐसे भटों (नोकरों) को समीप नियुक्त करै और हस्तीपर चढकर प्रजाको प्रसन्न करता राजा आपभी अपने नगरमें फिरै ॥ ६९ ॥

राजयानारूढितःकिंराज्ञाश्वानसमोपिच ।
शुनासमोनाकिंराजाकविभिर्भाव्यतेजसा ॥

जो राजा अपने यान (सवारी) पर श्वान अथवा नीचको बैठा ले तो ज्ञानी पुरुष राजा भी श्वानके समान क्या नहीं जानैंगे अर्थात अवश्य जानैंगे ॥ ७० ॥

अतःस्वबांधवैर्मित्रैःस्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः ।
प्रकृतीभिर्नृपोगच्छेन्ननीचैस्तुकदाचन॥७१॥

इससे राजा अपने बन्धु और मित्र और जो गुणोंसे अपनी तुल्यताको प्राप्त हुये हैं उन और प्रकृतियों सहित गमन करे नीचोंके संग कदाचिदपि गमन न करै ॥ ७१ ॥

मिथ्यासत्यसदाचारैर्नीचःसाधुःक्रमात्स्मृतः ।
साधुभ्योतिस्वमृदुत्वंनीचाःसंदर्शयन्तिहि ॥

झूठसे नीच, सत्य और श्रेष्ठ आचरणसे साधु होता है क्योंकि नीचभी साधुओंसे कोमल अपने आचरणको दिखाते हैं ॥ ७२ ॥

ग्रामान्पुराणिदेशांश्चस्वयंसंवीक्ष्यवत्सरे ।।
अधिकारिगणैःकाश्चरंजिताःकाश्चकर्षिताः७३

ग्राम पुर देश इनको स्वयं प्रतिवर्ष देखै और अधिकारियोंने कौनसी प्रजा प्रसन्नकी और कौनसी दुःखी की यहभी देखै ॥ ७३ ॥

प्रजास्तासांतुभूतेनव्यवहारंविचिंतयेत् ।
नभृत्यपक्षपातस्यात्प्रजापक्षंसमाश्रयेत् ॥

उन प्रजाओंके वर्तावसे व्यहारका चिंतन करै और अपने भृत्य (नौकरों) का पक्षपाती नहो किंतु प्रजाका पक्षपाती ही हो ॥ ७४ ॥

प्रजाशतेनसंदिष्टंसंत्यजेदधिकारिणम् ।
अमात्यमपिसंवीक्ष्यसकृदन्यायगामिनम् ॥
एकांतेदंडयेत्स्पष्टमभ्यासागस्कृतंत्यजेत् ।
अन्यायवर्तिनांराज्यंसर्वस्वंचहरेन्नृपः ७६॥

जो अधिकारी अनेक प्रजाओंका द्वेषी है उसको त्यागदे और मंत्रीको एकबारअन्यायगामी अर्थात् अनीतिकारक देखकर एकांतमें दंड दे और प्रगटजो अपना अपराधी है उसे त्याग दे अर्थात् उसे दंड न दे और अन्यायवर्तियोंके राज्य और सर्वस्वको राजा हरले ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

जितानांविषयेस्थाप्यंवर्माधिकरणंसदा ।
भृतिंदद्याज्जितानांतच्चारित्र्यानुरूपतः ७७॥

जीतेहुओंके राज्यमें धर्मसे सदा अधिकार करै और जीतेहुओंको उनके खरचके अनुसार भृति (नोकरी) दे ॥ ७७ ॥

स्वानुरक्तांसुरूपांचसुवस्त्रांप्रियवादिनीम् ।
शुभूषांसुसमुद्रांमदांशयनेभजेत् ॥७८॥

अपने विषे अनुरक्त (प्रीतिमती), सुरूप, सुवस्त्र, प्रियवादिनी, सुंदर भूषणोंवाली और शुद्ध जो हो उस स्त्रीको शय्यापर भजे अर्थात् ऐसी स्त्रीके संगही भोग करै ॥ ७८ ॥

यामद्वयंशयानोहित्वत्यंतंसुखमश्नुते ।
नसंत्यजेच्चस्वस्थानंनीत्याशत्रुगणंजयेत् ॥७९

जो राजा दो प्रहर शयन करता है वह अत्यंत सुखको भोगता है और अपने स्थानका परित्याग राजा न करै किंतु नीतिसे ही शत्रुओंके गणको जीतै ॥ ७९ ॥

स्थानभ्रष्टानोविभांतिदंताःकेशानखानृपाः ।
संश्रयेद्गिरिदुर्गाणिमहापदिनृपःसदा ॥८० ॥

अपने स्थानसे भ्रष्ट (पतित) दन्त, केश, नख, राजा ये शोभाको प्राप्त नहीं होते और महान् आपत्तिमें राजा किला पर्वत इनका आश्रय ले ॥ ८० ॥

तदाश्रयाद्दस्युवृत्त्यास्वराज्यंतुसमाहरेत् ।
विवाहदानयज्ञार्थंविनाप्यष्टांशशेषितम् ॥८१॥

उनके आश्रयसे चोरीसे अपने राज्यको ग्रहण करै और विवाह, दान, यज्ञ इनके अर्थ अष्टांशशेषके विनाभी सबसे द्रव्यको ग्रहण करै ॥ ८१ ॥

सर्वतस्तुहरेद्दस्युरसतामखिलंधनम् ।
नैकत्रसंवसेन्नित्यंविश्वसेन्नैवकस्यचित् ॥ ८२ ॥

सब प्रकार चोरीसे असजनोंके धनको ग्रहण करै और प्रतिदिन एकस्थानमें नबसे और किसीका विश्वास न करै ॥ ८२ ॥

सदैवसावधानः स्यात्प्राणनाशंनचिंतयेत् ।
क्रूरकर्मासदोद्युक्तोनिर्घृणोदस्युकर्मसु ॥८३॥

राजा सदा सावधान रहै और प्राणोंके नाश की चिंता न करै क्रूर (कठोर) कर्मको करै, और सदा उद्योगी रहै, और चोरोंके कर्ममें दया न करै ॥ ८३ ॥

विमुखःपरदारेषुकुलकन्याप्रदूषणे ।
पुत्रवत्पालितःभृत्याःसमयेशत्रुतांगताः ८४ ॥

परस्त्री और कुलीन कन्याके दूषणसे पराङ्मुख रहै और पुत्रके समान पाले भृत्य भी समयमें शत्रु हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

नदोषःस्यात्प्रयत्नस्यभागधेयंस्वयंहितत् ।
दृष्ट्वासुविफलंकर्मतपस्तप्त्वादिवंव्रजेत् ॥८५॥

और प्रयत्न करनेमें राजाको कुछ दोष नहीं क्योंकि प्रयत्नमें राजाका भाग्यही होता है और कर्मको अच्छीतरह विफल (निष्फल) देखकर और तपको करिके स्वर्गमें राजा गमन करै ॥ ८५ ॥

उक्तंसमासतोराज्यकृत्यंमिश्रेधिकंब्रुवे ।
अध्यायःप्रथमःप्रोक्तोराजकार्यनिरूपकः ८६॥

इस प्रकार संक्षेपसे राजकार्य है जिसमें ऐसा यह राजकार्य निरूपक प्रथमाध्याय हुआ आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः पूर्तिमगात् ॥ १ ॥

अध्याय २.

यद्यप्यल्पतरंकर्मतदप्येकेनदुष्करम् ।
पुरुषेणासहायेनकिमुराज्यंमहोदयम् ॥ १ ॥

अल्पसे अल्पभी कार्य एक असहाय मनुष्यसे दुःखसे किया जाता है, महोदय (अतिमहान्) राज्य तौ क्यों नहीं दुष्कर होगा ॥ १ ॥

सर्वविद्यासुकुशलोनृपोह्यपिसुमंत्रवित् ।
मंत्रिभिस्तुविनामंत्रंनैकोर्थंचिंतयेत्क्वचित्॥२॥

सर्व विद्याओंमें अच्छीतरह कुशल और सुमंत्रका वेत्ता (जाननेवाला) भी राजा एकाकी मंत्रियोंके विना व्यवहारको कदापि चिंता न करै ॥ २ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासत्सुमतेस्थितः ।
सर्वदास्यान्नृपःप्राज्ञःस्वमतेनकदाचन ॥३॥

विद्वान् राजा सभ्य अधिकारी प्रकृति सभासद् इनके मतमें सदा स्थित रहै और अपने मतमें कदापि स्थित न रहै ॥ ३ ॥

प्रभुःस्वातंत्र्यमापन्नोह्यनर्थायैवकल्पते ।
भिन्नराष्ट्रोभवेत्सद्योभिन्नप्रकृतिरेवच ॥ ४ ॥

स्वतंत्रताको प्राप्त होकर राजा अनर्थ करता है और उसका राज्य भिन्न हो जाता है और प्रकृति भी पृथक् हो जाती है ॥ ४ ॥

पुरुषेपुरुषेभिन्नंदृश्यतेबुद्धिवैभवम् ।
आप्तवाक्यैरनुभवैरागमैरनुमानतः ॥ ५ ॥

पुरुष २ में भिन्न २ बुद्धिका प्रताप दीखता है यथार्थ वक्ताओंके वाक्यसे और अनुभवसे और आगम और अनुमानसे ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षेणेचसादृश्यैःसाहसैश्चछलैर्बलैः ।
वैचित्र्यंव्यवहाराणामौन्नत्यंगुरुलाघवैः ॥६॥
नहित्त्सकलंज्ञातुंनरेणैकेनशक्यते ।
अतःसहायान्वरयेद्राजाराज्यविवृद्धये ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षसे, सादृश्यसे और साहस, छल, बल इन पूर्वोक्त सपूर्ण साधनोंसे व्यवहारोंकी विचित्रता और गुरुलाघवस उंचाई इनको एक मनुष्य नहीं जानसकता इससे राज्यकी वृद्धिके अर्थ सहायोंको अंगीकार राजा अवश्य करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

कुलगुणशीलवृद्धाञ्छूरान्भक्तान्प्रियंवदान् ।
हितोपदेशकान्क्लेशसहान्धर्मरतान्सदा ॥८ ॥

कुल, गुण, शील इनसे वृद्ध, शूर, वीर, भक्त, प्रियवक्ता, हितके उपदेष्टा, क्लेशके सहनशील, सदा धर्ममें रत ऐसे सहायोंको राजा रक्खे ॥ ८ ॥

कुमार्गगंनृपमपि बुद्ध्योद्धर्तुंक्षमाञ्छुचीन् ।
निर्मत्सरान्कामक्रोधलोभहीनान्निरालसान् ९॥

जो सहायक कुमार्गगामी राजाको भी अपनी बुद्धिसे निवृत्त करनेको समर्थ हो और शुद्धहो और मत्सरी न हो काम, क्रोध,लोभ, आलस्य इनसे रहित हो उन्हें रक्खे ॥ ९ ॥

हीयतेकुसहायेनस्वधर्माद्राज्यतोनृपः ।
कुकर्मणाप्रनष्टास्तुदितिजाःकुसहायतः ॥१०॥

निंदित सहायकसे राजा अपने धर्म और राज्यसे हीन हो जाता है क्योंकि निंदित कर्म और निंदित सहायकसे दैत्यनष्ट होगये॥१०॥

नष्टादुर्योधनाद्यास्तुनृपाःशूराबलाधिकाः ।
निरभिमानोनृपतिःसुसहायोभवेदतः ॥ ११ ॥

निंदित सहायक आदिसे शूरवीर और बलवान् दुर्योधनादिक भी नष्ट होगये इससे राजा निरभिमानी और सुसहायकरहै ॥ ११ ॥

युवराजोमात्यगणोभुजावेतौमहीभुजः ।
तावेवनयनेकर्णौदक्षसव्यौक्रमात्स्मृतौ ॥१२॥

राजाके युवराज और मंत्रियोंका समूह क्रमसे दक्षिण वाम भुजा नेत्र और कर्ण कहे हैं ॥ १२ ॥

बाहुकर्णाक्षिहीनःस्याद्विनाताभ्यामतोनृप ।
योजयेच्चिंतयित्वातौमहानाशायचान्यथा ॥

युवराज और मंत्रियोंके विना राजा बाहु, कर्ण, नेत्र इनसे हीन होता है इससे इन दोनोंको विचारके युक्त करै अन्यथा नियुक्त किये हुए ये दोनों महानाशके कर्ता होते हैं ॥ १३ ॥

मुद्रांविनाखिलंराजकृत्यंकर्तुंक्षमंसदा ।
कल्पयेद्युवराजार्थमौरसंधर्मपत्निजम् ॥१४॥

जो मुद्राके विना संपूर्ण राजकृत्य करनेको सदा समर्थ हो ऐसे धर्मपत्नीके औरस पुत्रको युवराजके अर्थ कल्पित करै ॥ १४ ॥

स्वकनिष्ठंपितृव्यंवानुजंवाग्रजसंभवम् ।
पुत्रंपुत्रीकृतंदत्तंयौवराज्येभिषेचयेत् १५ ॥

अपने कनिष्ठ पितृव्य (चाचा) अथवा कनिष्ठ भ्राताके अथवा ज्येष्ठ भ्राताके पुत्रको अथवा पुत्रीकृत पुत्रको अथवा दत्त पुत्रको युवराजपदवीपर नियुक्त करै ॥ १५ ॥

क्रमादभावेदौहित्रंस्वस्त्रीयंवानियोजयेत् ।
स्वहितायापिमनसानैतान्संकर्षयेत्क्वचित्।१६॥

क्रमसे पूर्वोक्त पुत्र आदिके अभावमें दौहित्र वा भानजाको नियुक्त करै और अपने हितके लिये भी कदाचित् इनको मनसे दुःखी न करै ॥ १६ ॥

स्वधर्मनिरताञ्छूरान्भक्तान्नीतिमतः सदा ।
संरक्षयेद्राजपुत्रान्बालानपिसुयत्नतः॥ १७ ॥

अपने धर्ममें तत्पर, शूर, भक्त, नीतिवाले जो राजाओंके पालक पुत्र उनकी बड़े यत्नसे रक्षा करै ॥ १७ ॥

लोलुभ्यमानास्तेर्थेषुहन्युरेनमरक्षिताः ।
रक्ष्यमाणायदिच्छिद्रंकथंचित्प्राप्नुवंतिते ॥

यदि राजा इतर राजपुत्रोंकी यत्नसे रक्षा करैं तौ वे द्रव्यके लोभको प्राप्त और अरक्षित हुए इस राजाको मार देंगे यदि रक्षासे भी वे छिद्रको प्राप्त हो जायँ तौ ॥ १८॥

सिंहशावाइवघ्नंतिरक्षितारंद्विपंद्रुतम् ।
राजपुत्रामदोद्धूतागजाइवनिरंकुशाः ॥ १९ ।

वे राजपुत्र जैसे सिंहका बालक हस्तीको इस प्रकाररक्षक राजाको हत देते हैं निरंकुश गजके समान मदसे उन्मत्त राजपुत्र, पिता आदिको भी हत देते हैं ॥ १९ ॥

पितरंचापिनिघ्नंतिभ्रातरंत्वितरंनाकिम् ।
मूर्खोबालोपीच्छतिस्मस्वाम्यंकिंनुपुनर्युवा२०।

पिता और भ्राताको भी हत देते हैं तौ इतरकों क्यों नहीं हतेंगे क्यों कि मूर्ख और बालक भी अपने स्वलपराज्यकी इच्छा करता है तौ युवा क्यों नहीं करैगा ॥ २० ॥

स्वात्यंतसन्निकर्षेणराजपुत्रांस्तुरक्षयेत् ।
सद्भृत्यैश्चापितत्स्वांतछंज्ञात्वासदास्वयम्२१।

और अपने सुपात्र भृत्योंसे उसके स्वांत (जिल) को आप जानकर और अपने बहुत निकट रखकर राजपुत्रोंकी रक्षा करै २१

सुनीतिशास्त्रकुशलान्धनुर्वेदविशारदान् ।
क्लेशसहांश्चवाग्दंडपारुष्यानुभवान्सदा २२

श्रेष्ठ नीतिशास्त्रमें कुशल धनुषविद्यामेंचतुर क्लेशके सहनेवाले और वाग्दण्ड (कठोर वचन) इनके ज्ञाता अपने पुत्रोंको राजा करै२२

शौर्ययुद्धरतान्सर्वकलाविद्याविदोंजसा ।
सुविनीतान्प्रकुर्वीतह्यमात्याद्यैर्नृपःसुतान् ॥

वीरता और युद्धमें रत सम्पूर्ण विद्याओंकी कलाके यथार्थ ज्ञाता और अच्छे विनीत(नम्र) अपने पुत्रोंको मन्त्रियोंके द्वारा राजा करै२३॥

सुवस्त्राद्यैर्भूषयित्वालालयित्वासुक्रीडनैः ।
अर्हयित्वासनाद्यैश्च पालयित्वासुभोजनैः ॥

अच्छे वस्त्रों आदिसे भूषित और अच्छी क्रीडाओंसे लाडिला और अच्छे आसन आदिसे सत्कार और अच्छे भोजनोंसे पालन करै ॥ २४ ॥

कृत्वातुयौवराज्यार्हान्यौवराज्येभिषेचयेत् ।
अविनीतकुमारंहिकुलमाशुविनश्यति ॥२५॥

और यौवराज्यके योग्य करिके यौवराज्यके लिये अभिषेक दे दे क्यों कि जिस कुलमें राजकुमार अविनीत हैं वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागंहिनार्हति ।
क्लिश्यमानः सपितरंपरानाश्रित्यहंतिहि ॥२६॥

दुष्ट भी राजाका पुत्र त्याग करनेके योग्य नहीं होता और वह क्लेशको प्राप्त होकर और इतर राजाओंके अधीन होकर अपने पिताको मार देता है ॥ २६ ॥

व्यसनेसज्जमानंतं क्लेशयेद्व्यसनाश्रयैः ।
दुष्टंगजमिवोद्वृत्तंकुर्वीतसुखबन्धनम् ॥ २७

जो राजपुत्र व्यसन (द्यूत आदि) में आसक्त हो जाय तौ व्यसनके अधिपतियोंसे दुःखित करै उद्वृत (उन्मत्त) दुष्ट गजके

समान उसका सुखसे बन्धन करे अर्थात् शांति आदिके उपायसे वश करे ॥ २७ ॥

सुदुर्वृत्तास्तुदायादाहंतव्यास्तेप्रयत्नतः ।
व्याघ्रादिभिःशत्रुभिर्वाछलैराष्ट्रविवृद्धये२८॥

दुराचारी जो दायाद (हिस्सेदार) है उनको बडे यत्नके साथ सिंह आदि अथवा शत्रु और छलसे अपने राज्यकी वृद्धिके अर्थ मरवा दे ॥ २८ ॥

अतोन्यथाविनाशायप्रजायाभूपतेश्चते ।
तोषयेयुर्नृपंनित्यंदायादाः स्वगुणैः परैः२९ ॥

अन्यथा प्रजा और राजाको वे दायाद नाशके हेतु होते हैं क्यों कि दायाद अपने श्रेष्ठ गुणोंसे राजाको नित्य प्रसन्न करते हैं ॥ २९ ॥

भ्रष्टाभवंत्यन्यथातेस्वभागाज्जीवितादपि ।
स्वसापिंड्यविहिनायेह्यन्योत्पन्नानराः खलु ३०

अन्यथा वे अपने भाग और जीवनसे हीन हो जाते हैं जो नर अपने सपिण्डसे भिन्न हो और अन्यसे उत्पन्न हैं उन्हे ॥ ३० ॥

मनसापिनमंतव्यादत्ताद्याः स्वसुताइति ।
तद्दत्तकत्वमिच्छंतिदृष्ट्वायंधनिकंनरम् ॥ ३१॥

मनसे भी दत्त आदि अपने पुत्र हैं ऐसा न माने जिस धनिक मनुष्यको देखकर तिसके दत्तककी इच्छा करते हैं ॥ ३१ ॥

स्वकुलोत्पन्नकन्यायाःपुत्रस्तेभ्योवरोह्यतः ।
अंगादंगात्संभवतिपुत्रवद्दुहितानृणाम् ३२॥

उनसे अपने कुलसे उत्पन्न हुई कन्याका पुत्र श्रेष्ठ है क्योंकि पुत्रके समान मनुष्यके अंग २ से कन्या उत्पन्न होती है ॥ ६२ ॥

पिंडदानेविशेषोनपुत्रदौहित्रयोस्त्वतः ।
भूप्रजापालनार्थंहिभूपोदत्तंतुपालयेत् ॥ ३३॥

और जिससे पुत्र दौहित्रके पिंडदानमें विशेष नहीं है पृथ्वी और प्रजाके पालनाके अर्थ राजा दत्तकपुत्रकी भी पालना करै ॥

नृपः प्रजापालनार्थंसधनश्चेन्नचान्यथा ।
परोत्पन्नेस्वपुत्रत्वंमत्वासर्वंददातितम् ॥ ३४ ॥

राजा और धनी केवल प्रजाके पालनार्थ हैं अन्यथा नहीं परसे उत्पन्नके विषे अपना पुत्रभाव मानकर उसीको सर्वस्व देता है ३४ ॥

किमाश्चर्यमतोलोकेनददातियजत्यपि ।
प्राप्यापियुवराजत्वंप्राप्नुयाद्विकृतिंनच ॥ ३५॥

इससे अधिक क्या आश्चर्य है कि न धन को लोकमें देता है और न यज्ञ करता है और युवराजपदवीको प्राप्त होकर भी जो विकारको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

स्वसंपत्तिमदान्नैवमातरंपितरंगुरुम् ।
भ्रातरंभगिनींवापिह्यन्यान्वाराजवल्लभान् ।

अपनी सम्पत्तिके मदसे माता, पिता, गुरु, भ्राता, भगिनी (बहन) और इतर राजाके वल्लभ (मन्त्री) आदिका अपमान न करै ॥ ३६ ॥

महाजनांस्तथाराष्ट्रेनावमन्येन्नपीडयेत् ।
प्राप्यापिमहतींवृद्धिंवर्त्तेतपितुराज्ञया ॥ ३७ ॥

राज्यके महाजनोंको अपमान और पीडा न दे और अधिक वृद्धिको प्राप्त होकर भी पिताकी आज्ञामें वर्ते ॥ ३७ ॥

पुत्रस्यपितुराज्ञापिपरमंभूषणंस्मृतम् ।
भार्गवेणहतामाताराघवस्तुवनंगतः ॥ ३८ ॥

पिताकी आज्ञाही पुत्रका परमभूषण कहा है, परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे माताका हनन किया और रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे वनको गये ॥ ३८ ॥

पितुस्तपोबलात्तौतुमातरंराज्यमापतुः ।
शापानुग्रहयोःशक्तोयस्तस्याज्ञागरीयसी ३९॥

और पिताके तपोबलसे वे दोनों माता और राज्यको क्रमसे प्राप्त हुए जो शाप और अनुग्रहमें समर्थ हैं उनकी आज्ञा ही सर्वोपरि है ॥ ३९॥

सोदर्येषुचसर्वेषुस्वस्याधिक्यंनदर्शयेत् ।
भागार्हभ्रातृणांनष्टोह्यवमानात्सुयोधनः ४०॥

संपूर्ण भ्राताओंमें अपनी अधिकता नदिखावै क्योंकि भागके योग्य भ्राताओंके अपमानसे दुर्योधन नष्ट होगया ॥ ४० ॥

पितुराज्ञोल्लंघनेनप्राप्यापिपदमुत्तमम् ।
तस्माद्भ्रष्टाभवंतीहदासवद्राजपुत्रकाः ॥४१॥

पिताकी आज्ञाके अवलंघनसे उत्तम पदको प्राप्त होकरभी तिसपदसे इस संसारमें दासके समान राजाके पुत्र भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

ययातेश्चयथापुत्राविश्वामित्रसुतायथा ।
पितृसेवापरस्तिष्ठेत्कायवाङ्मानसैःसदा ॥

जैसे ययातिराजाके पुत्र और विश्वामित्र ऋषिके पुत्र पिताकी आज्ञाके अवलंघनसे नष्ट हुए तिससे पुत्र देहमनवाणीसे पिता की आज्ञामें तत्पर रहै ॥ ४१ ॥

तत्कर्मनियतंकुर्याद्येनतुष्टोभवेत्पिता ।
तन्नकुर्याद्येनपितामनागपिविषीदति ४३ ॥

उस कार्यको नियमसे करै जिससे पिता प्रसन्न हो और उसको न करै जिससे पिता यत्किंचित्भी दुःखित हो ॥ ४३ ॥

यस्मिन्पितुर्भवेत्प्रीतिःस्वयंतस्मिन्प्रियंचरेत् ।
यस्मिन्द्वेषंपिताकुर्यात्स्वस्यापिद्वेष्यएवसः ।

जिस पुरुषमें पिताकी प्रीति हो उसमें अपनी भी प्रीति करै और जिससे पिताका द्वेष हो उसे अपनाभी द्वेष्य ही जाने ॥ ४४ ॥

असंमतंविरुद्धंवापितुर्नैवसमाचरेत् ।
चारसूचकदोषेणयदिस्यादन्यथापिता ४५

पिताके असंमत और विरुद्धका आचरण न करै यदि दूत और सूचक (चुगल) के दोषसे पिताका विपरीत बुद्धि होजाय ॥४५॥

प्रकृत्यनुमतंकृत्वातमेकांतेप्रबोधयेत् ।
अन्यथासूचकान्नित्यंमहद्दंडेनदंडयेत् ॥४६॥

तौ प्रजाके अनुमतकरिके उसे एकान्तमें बोधित करै (समझावै)यदि पिता न मानै तौ सूचककी सहायता लेकर महादंडसे शिक्षित करै ॥ ४६ ॥

प्रकृतीनांचकपटैःस्वांतंविद्यात्सदैवहि ।
प्रातर्नत्वामतिदिनंपितरंमातरंगुरुम् ४७ ॥

कपट कर प्रकृतियोंके स्वभावको सदा जानै और पिता, माता, गुरु इनको प्रतिदिन प्रातःकाल नमस्कार करके ॥ ४७ ॥

राजानंस्वकृतंकृत्यंनिवेद्यानुदिनंततः ।
एवंगृहाविरोधेनराजपुत्रोवसेद्गृहे ॥ ४८ ॥

तिसके अनंतर राजाको अपना कृत्य प्रतिदिन निवेदन करके इसप्रकार अपने घरके अविरोधसे राजाका पुत्र घरमें वसै ॥ ४८ ॥

विद्याकर्मणाशीलैःप्रजाःसंरंजयन्मुदा ।
त्यागीचसत्त्वसंपन्नःसर्वान्कुर्याद्वशेस्वके ४९

विद्या, कर्म, शीलसे आनन्द होकर प्रजाको प्रसन्न रखता हुआ त्यागी और सत्त्वगुणी होकर सबको अपने वशमें करै ॥ ४९ ॥

शनैःशनैःप्रवर्धेतशुक्लपक्षमृगांकवत् ।
एवंवृत्तोराजपुत्रोराज्यंप्राप्याप्यकंटकम् ॥

शनैः २ शुक्लपक्षके चन्द्रमा समान वृद्धिको प्राप्त हो इस प्रकार आचरणशील राजपुत्र निष्कंटक राज्यको प्राप्त होकरभी ॥ ५० ॥

सहायवान्सहामात्यश्चिरंभुंक्तेवसुंधराम् ।
समासतःकार्यमुक्तंयुवराजस्ययाद्धितम् ५१

सहाय और मंत्रियों सहित युवराज चिरकालतक पृथ्वीको भोगता है यह संक्षपसेयुवराजका हितकारी कार्य वर्णन किया ॥ ५१ ॥

समासादुच्यतेकृत्यममात्यादेश्चलक्षणम् ।
मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिः समम् ५२

मन्त्री आदिकोंके कार्य और लक्षण संक्षेपसे वर्णन करते हैं कोमलता, गुरुता, प्रमाण-वर्ण, शब्दादिकों सहित ॥ ५२ ॥

परीक्षकैर्द्रावयित्वायथास्वर्णंपरीक्ष्यते ।
कर्मणासहवासेनगुणैःशीलकुलादिभिः ५३

जैसे परीक्षकोंसे तपायकर सुवर्णकी परीक्षा कीजाती है तिसी प्रकार कर्मसे,सहव

सत्से, गुण, शील और कुलादिकसे भृत्यकोभी परीक्षा करै ॥ ५३ ॥

भृत्यंपरीक्षयेन्नित्यंविश्वास्यंविश्वसेत्तदा ।
नैवजातिर्नचकुलंकेवलंलक्षयेदपि ॥ ५४ ॥

भृत्यकी नित्य परीक्षा करै और तभी विश्वासके योग्यका विश्वास करै और केवल जाति और कुलहीको न देखै ॥ ५४ ॥

कर्मशीलगुणाःपूज्यास्तथाजातिकुलेनहि ।
नजात्यानकुलेनैवश्रेष्ठत्वंप्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥

जैसे कर्म, शील, गुण पूज्य हैं तिस प्रकार जाति, कुल, पूज्य नहीं, केवल जाति और कुलसे श्रेष्ठताको प्राप्त नहींहोता ॥ ५५ ॥

विवाहेभोजनेनित्यंकुलजातिविवेचनम् ।
सत्यवान्गुणसंपन्नस्तथाभिजनवान्धनी ५६

विवाह और भोजनमें नित्य कुल और जातिका विवेक करै । सत्यवान, गुणी और कुटुम्बी और धनी ॥ ५६ ॥

सुकुलश्चसुशीलश्चसुकर्माचनिरालसः ।
यथाकरोत्यात्मकार्यंस्वामिकार्यंततोधिकम्

श्रेष्ठकुलसे उत्पन्न सुशील उत्तम कर्मका कर्त्ता और निरालस होकर जैसा अपना कार्य करै तिससे अधिक स्वामीका करै॥५७॥

चतुर्गुणेनयत्नेनकायवाङ्मानसेनच ।
भृत्याचतुष्टोमृदुवाक्कार्यदक्षःशुचिर्दृढः ॥५८॥

अपने कार्यकी अपेक्षा चतुर्गुण यत्न और देह वाणी मनसे स्वामीके कार्यको करै भृति (नोकरी) से संतुष्ट रहै कोमलवाणी और कार्यमें चतुर और शुद्ध और दृढ रहै ॥५८॥

परोपकरणेदक्षोह्यपकारपराङ्मुखः ।
स्वाम्यागस्कारिणंपुत्रंपितरंचापिदर्शकः ॥

परके कार्यमें चतुर और परके अपकारसे निवृत्त रहै और अपने स्वामीके अपराधी पुत्र और पिताआदिका द्रष्टा अर्थात्देखतारहै ॥५९

अन्यायगामिनिपतौह्यतद्रूपःसुबोधकः ॥
नाक्षिपतारिकांचित्तन्न्यूनस्याप्रकाशकः ॥

अन्याय करते स्वामीको बोधन करै (समझावै) और अन्यायमें स्वयं प्रवृत्त न हो और स्वामीकी वाणीमें शंका न करै और स्वामीकी न्यूनताभी प्रकाशित न करै ॥ ६० ॥

अदीर्घसूत्रःसत्कार्येह्यसत्कार्येचिरक्रियः ।
नतद्दारापुत्रमित्रच्छिद्रदर्शीकदाचन॥ ६१॥

उत्तम कार्यको शीघ्र करै और असत् (बुरे) कार्यको विलंबसे करै और स्वामीकी स्त्री पुत्र मित्र इनके छिद्रको कभी न देखै ॥ ६१ ॥

तद्वद्बुद्धिस्तदीयेषुभार्यापुत्रादिबंधुषु ।
नश्लाघतेस्पर्धतेननाभ्यसूयतिनिंदति ६२

स्वामीके सम्बंधी स्त्री, पुत्र, बन्धु आदिकोंमें स्वामीके समान बुद्धि रक्खै श्लाघा (बडाई) न करै और न स्पर्धा (तिरस्कार) की इच्छा करै और उनकी बडाई देखकर दुःखित न होय और न निन्दा करै ॥ ६२ ॥

नेच्छत्यन्याधिकारंहिनिःस्पृहोमोदतेसदा ।
तद्दत्तवस्त्रभूषादिधारकस्तत्पुरोनिशम् ६३

अन्यके अधिकारकी इच्छा न करै निःस्पृह (इच्छारहित) हुआ सदा प्रसन्न रहै और स्वामीके दिये हुए वस्त्र, भूषण, आदिको स्वामीके आगे रात्रिदिन धारण करै ॥ ६३ ॥

भृतितुल्यव्ययीदांतोदयालुःशूरएवहि ।
तदकार्यस्यरहसिसूचकोभृतकोवरः ॥ ६४ ॥

अपनी भृति (नोकरी) के समान व्यय (खर्च) करै और दांत (चतुर) दयालु और शूरवीर और स्वामीके अन्यथा कार्यको एकांतमें जो सूचक करै वह भृत्य श्रेष्ठ होताहै ॥६४

विपरीतगुणैरेभिर्भृतकोनिंद्यउच्यते ।
येभृत्याहीनभृतिकादंडेनप्रकर्षिताः ६५ ॥

जो पूर्वोक्त इन गुणोंसे हीन हो वह भृत्य निन्दायोग्य कहाता है । जो भृत्य हीनभृतिक (नोकरी रहित) है और दंडसे दुःखित है ॥ ६५ ॥

शठाश्चकातराालुब्धाःसमक्षप्रियवादिनः ।
मत्ताव्यसनिनश्चार्त्ताउत्कोचेष्टाश्चदेविनः ६६॥

और जो शठ और भीरु लोभी और प्रत्यक्षमें प्रियवादी हैं व्यसनी (मदिरापान आदि में प्रवृत्त) और दुःखी हैं उत्कोच (घूंस) लेने में इष्ट है और देवी द्यूतमें आसक्त है ॥६६॥

नास्तिकादांभिकाश्चैवसत्यवाचोऽभ्यसूयकाः ।
येचापमानितायेऽसद्वाक्यैर्मर्मणिभेदिताः ॥

जो भृत्य नास्तिक दंभी और सत्य बोलने में निंदा प्रकट करते हैं और जो अपमानको प्राप्त हुए हैं, और जो कुवाक्योंसे मर्ममें बिंधे हैं ॥ ६७ ॥

चंडाःसाहसिकाधर्महीनानैतेसुसेवकाः ।
संक्षेपतस्तुकथितंसदसद्भृत्यलक्षणम् ६८ ॥

चंड (अतिक्रोधी) साहसिक (अविचारसे कार्यकारी) धर्महीन ऐसे भृत्य अच्छे नहीं होते, संक्षेपसे उत्तम और अधम भृत्यों के लक्षण वर्णन किये ॥ ६८ ॥

समासतःपुरोधादिलक्षणंयत्तदुच्यते ।
पुरोधाचप्रतिनिधिःप्रधानसचिवस्तथा ६९
मंत्रीचप्राड्विवाकश्चपंडितश्चसुमंत्रकः ।
अमात्योदूतइत्येताराज्ञःप्रकृतयोदश ॥ ७० ॥

संक्षेपसे पुरोहित आदिकोंके जो लक्षण होते हैं सो कहते हैं-पुरोहित प्रतिनिधि (कायममुकाम), प्रधानमंत्री, मंत्री, प्राड्विवाक (वकील), पंडित, श्रेष्ठमंत्री, अमात्य, दूत, ये दश राजाकी प्रकृति होती हैं ॥६९ ७०॥

दशमांशाधिकाःपूर्वंदूतांताःक्रमशःस्मृताः ।
अष्टप्रकृतिभिर्युक्तोनृपःकैश्चित्स्मृतःसदा ॥

पूर्वोक्त पुरोहित आदि और दूतक दशांश अधिक मासिक आदिके भागी क्रमशः होने कहे हैं और कोई ऋषि आठ प्रकृतियोंसे युक्त राजाको वर्णन करते हैं ॥ ७१ ॥

सुमंत्रःपंडितोमंत्रीप्रधानःसचिवस्तथा ।
अमात्यःप्राड्विवाकश्चतथाप्रतिनिधिःस्मृतः

सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक, प्रतिनिधि ये प्रकृति हैं ॥ ७२ ॥

एताभृतिसमास्त्वष्टौराज्ञःप्रकृतयःसदा ।
इंगिताकारतत्त्वज्ञोदूतस्तदनुगःस्मृतः ॥७३॥

समान है मासिक जिनका ऐसे पूर्वोक्त सुमंत्र आदि प्रकृति कहे हैं जो चेष्टा और आकृतिके तत्त्वको जाने वह राजाका अनुयायी दूत होता है ॥ ७३ ॥

पुरोधाःप्रथमंश्रेष्ठःसर्वेभ्योराजराष्ट्रभृत् ।
तदनुस्यात्प्रतिनिधिःप्रधानस्तदनंतरम् ७४

सबसे श्रेष्ठ और प्रथम और संपूर्ण देशका पालनकर्त्ता पुरोहित होता है और पुरोहितका अनुयायी प्रतिनिधि और प्रतिनिधिके अनंतर प्रधान होता है ॥ ७४ ॥

सचिवस्तुततःप्रोक्तोमंत्रीतदनुचोच्यते ।
प्राड्विवाकस्ततःपोक्तःपंडितस्तदनंतरम् ॥७५॥

तिसके अनंतर सचिव और तिसके अनंतर मंत्री और तिसके अनंतर प्राड्विवाक और तिसके अनंतर पंडित होता है ॥ ७५ ॥

सुमंत्रस्तुततःख्यातोह्यमात्यस्तुततःपरम् ।
दूतस्ततःक्रमादेतेपूर्वश्रेष्ठायथागुणाः ७६ ॥

तिसके अनंतर सुमंत्र और तिसके अनंतर अमात्य और तिसके अनंतर दूत ये पूर्वोक्त क्रमसे गुणोंके अनुसार श्रेष्ठ होते हैं ॥ ७६ ॥

मंत्रानुष्ठानसंपन्नस्त्रैविद्यःकर्मतत्परः ॥
जितेंद्रियोजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः ७७ ॥

मन्त्र और अनुष्ठानमें संपन्न (कुशल), वेदत्रयीके ज्ञाता, कर्ममें तत्पर, जितेंद्रिय, जितक्रोध, लोभ और मोह रहित ॥ ७७ ॥

षडंगवित्सांगधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित् ।
यत्कोपभीत्याराजापिधर्मनीतिरतोभवेत् ॥

वेदके व्याकरण आदि छः अंगोंका ज्ञाता और धनुर्विद्याका और धर्मका ज्ञाता हो

जिसके क्रोधके भयसे राजाभी धर्म और नीतितत्पर हो जाय ॥ ७८ ॥

नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तुपुरोहितः ।
सैवाचार्यःपुरोधायःशापानुग्रहयोःक्षमः ॥

नीति शास्त्र और अस्त्रके समूहमें कुशलहो वही पुरोहित होता है वही आचार्य होता है और वह पुरोहित ऐसा होना चाहिये जो शाप और अनुग्रह (दयाभाव) में समर्थ हो ॥ ७९॥

विनाप्रकृतिसन्मंत्राद्राज्यनाशोभवेन्मम ।
निरोधनंभवेदेवंराज्ञस्तेस्युः सुमंत्रिणः ॥८०॥

प्रजाकी संमतिके विना राज्यका नाश होता है और मेरा विरोध होता है इस प्रकार के अवसर पर संमतिके जो दाता हैं वे राजा के सुमन्त्री होते हैं ॥ ८० ॥

नाविभेतिनृपोयेभ्यस्तैःकिंस्याद्राज्यवर्धनम् ।
यथालंकारवस्त्राद्यैःस्त्रियोभूष्यास्तथाहिते ॥१॥

जिन मन्त्रियोंसे राजा भय नहीं करता उनसे राज्यकी क्या वृद्धि होती है इससे जिस प्रकार स्त्रियोंको वस्त्र, भूषण आदि भूषित करते हैं इसी प्रकार मन्त्रियोंकोभी राजा भूषित करै ॥ ८१ ॥

राज्यंप्रजाबलंकोशःसुनृपत्वंनवार्धितम् ।
यन्मंत्रतोरिनाशस्तैर्मंत्रिभिःकिंप्रयोजनम् ॥

राज्य, प्रजा, सेना, कोश, (खजाना) राजाके उत्तमता, शत्रुनाश जिन मंत्रियोंकी सम्मतिसे पूर्वोक्त राज्य आदि वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए ऐसे मन्त्रियोंसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ भी नहीं॥ ८२ ॥

कार्याकार्यप्रविज्ञातास्मृतःप्रातिनिधिस्तुसः ।
सर्वदर्शीप्रधानस्तुसेनावित्साचिवस्तथा ॥८३॥

कार्य और अकार्यका प्रतिज्ञाता जो हो उसे प्रतिनिधि कहते हैं राजाके सम्पूर्ण कार्योंका जो द्रष्टा उसे प्रधान कहते हैं और सेनाका जो ज्ञाता उसे सचिव कहते हैं ॥ ८३ ॥

मंत्रीतुनीतिकुशलःपंडितोधर्मतत्त्ववित् ।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तुप्राड्विवाकःस्मृतःसदा॥

नीतिमें जो कुशल उसे मन्त्री और धर्मतत्व का जो ज्ञाता उसे पंडित और लोक और शास्त्रकी नीतिका जो ज्ञाता उसे प्राड्विवाक कहते हैं ॥ ८४ ॥

देशकालप्रविज्ञाताह्यमात्यइतिकथ्यते ।
आयव्ययप्रविज्ञातासुमंत्रःसचकीर्तितः ॥

देशकालके ज्ञाताको अमात्य कहते हैं, आय (आमदनी) व्यय (खर्च) का जो ज्ञाता उसे सुमन्त्र कहते हैं ॥ ८५ ॥

इंगिताकारचेष्टज्ञःस्मृतिमान्देशकालवित् ।
षाड्गुण्यमंत्रविद्वाग्मीवीतभीर्दूतइष्यते ॥

इंगित नेत्रसे इच्छाका प्रकाश आकार और चेष्टाका ज्ञाता और स्मृतिमान् (धारणाक (अधिकारी) और देशकालका ज्ञाता छः हैं गुण जिसमें ऐसे मंत्रका वेत्ता वाग्मी यथार्थ धीरतासे वक्ता और भयरहित इस प्रकारके लक्षण जिसमें हों उसे दूत कहते हैं ८६ ॥

अहितंचापियत्कार्यंसद्यःकर्तुंयदोचितम् ।
अकर्तुंयाद्धितमापिराज्ञःप्रतिनिधिःसदा ८७

राजाके अहितकार्य और तत्काल कर्तव्य कार्य और अकर्तव्य कार्य और हितकारी कार्यको प्रतिनिधि सर्वकालमें जानें ॥ ८७ ॥

बोधयेत्कारयेत्कुर्यान्नकुर्यान्नप्रबोधयेत् ।
सत्यंवायदिवासत्यंकार्यजातंचयत्किल ८८

और जो सत्य कार्यका समूह है उसे बोधन करै अथवा किसीसे करवा दे और जो असत्य कार्योंका समूह है उसे न तो आप करै और न किसीको विदित करै ॥ ८८ ॥

सर्वेषांराजकृत्येषुप्रधानस्तद्विचिंतयेत् ।
गजानांचतथाश्वानांरथानांपदगामिनाम् ॥

सम्पूर्ण राजकार्योंमें सत्य और असत्यका प्रधान चिन्तन करै और हस्ति, अश्व, रथ,

और पदाति इनकी भी परिक्षा प्रधान ही करै ॥ ८९ ॥

सदृढानांतथोष्ट्राणांवृषाणांसद्यएववहि ।
वाद्यभाषासुसंकेतव्यूहाभ्यसनशालिनाम् ॥९०

और दृढ उष्ट्र(ऊंट) और वृष (बैल) वाद्य (बाजे) के संकेत और व्यूह करनरूके (अभ्यासियोंके आचरणोंको देखै ॥ ९१ ॥

प्राक्प्रत्यग्गामिनांराज्यचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणाम् । परिचारगणानांहिमध्यमोत्तमक-र्मणाम् ९१ ॥

पूर्व और पश्चिमके गमनकर्त्ता और मध्यम उत्तम है कर्म जिनका ऐसे जो राज्यके चिह्न शस्त्र अस्त्रके धारी परिचारक (सेवक) उनके आचरणको भी देख ॥ ९१ ॥

अस्त्राणामस्त्रपातीनांसद्यस्त्वंतुरगीगणः ।
कार्यक्षमश्चप्राचीनःसाद्यस्कःकतिविद्यते ९२॥

अस्त्र और शस्त्रधारी इनकी नवीनता और सवारोंका समूह कितना कार्यकारी है और कितना प्राचीन है और कितना नवीन है इसकी चिन्ता भी प्रधान ही रक्खै ॥ ९२ ॥

कार्यासमर्थःकत्यस्तिशस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक् ।
सांग्रामिकश्चकत्यस्तिसंभारस्तान्विचिंत्यच९३

और कितना कार्यकारी नहीं है और दारु और गोलेके संयुक्त शस्त्र कितने हैं और संग्रामके योग्य सम्भार कितना है इसको चिन्तन करके ॥ ९३ ॥

सचिवश्चापितत्कार्यंराज्ञेसम्यङ्निवेदयेत् ।
सामदानश्चभेदश्चदंडःकेषुकदाकथम् ॥९४ ॥

और सचिव भी पूर्वोक्त कार्यको राजाके प्रति भलीप्रकार निवेदन करै और साम दान भेद दंड किनको उचित है और किस कालमें देना होगा यह भी मन्त्री राजाको निवेदन करै ॥ ९४ ॥

कर्तव्यःकिंफलंतेभ्योबहुमध्यंतथाल्पकम् ।
एतत्संचिंत्यनिश्चित्यमंत्रीसर्वंनिवेदयेत् ॥९५॥

और पूर्वोक्त दंडोंसे क्या उत्तम मध्यम अल्प फल होगा यह सम्पूर्ण निश्चय और चिंतन करके मन्त्री निवेदन करै ॥ ९५ ॥

साक्षिभिर्लिखितैर्भोगैश्छलभूतैश्चमानुषान् ।
स्वानुत्पादितसंप्राप्तव्यवहारान्विचिंत्यच ॥

साक्षियोंसे लिखे जो भोग उनसे और छलके बलसे किये भोगोंसे अपने मनुष्योंको ऐसे देखै कि आप उत्पन्न करके ये व्यवहारी हैं अर्थात् अनर्थसे नहीं ॥ ९६ ॥

दिव्यसंसाधनान्वापिकेषुकिंसाधनंपरम् ।
युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लोकशास्त्रतः ॥

दिव्य साधनके योग्यको और किसमें कौन साधन है इनको प्रत्यक्ष अनुमान उपमान लोक और शास्त्र से मन्त्री जाने ॥ ९७ ॥

बहुसम्मतसंसिद्धान्विनिश्चित्यसभास्थितः ।
ससभ्यःप्राड्विवाकस्तुनृपंसंबोधयेत्सदा ॥

अनेक सम्मतियोंके सिद्ध कार्योंको सभासदोंके सहित प्राड्विवाक (वकील) सभामेंस्थितहोकर राजाको निवेदन करै॥९८॥

वर्तमानाश्चप्राचीनाधर्माःकेलोकसंश्रिताः ।
शास्त्रेषुकेसमुद्दिष्टाविरुध्यंतेचकेधुना ॥ ९९॥
लोकशास्त्रविरुद्धाःकेपंडितस्तान्विचिंत्यच ।
नृपंसंबोधयेत्तैश्चपरत्रेहसुखप्रदैः॥ १०० ॥

वर्तमान और प्राचीन धर्म लोकमें कौनसे हैं और शास्त्रमें कौनसे कहे हैं और अब कौनसे धर्म शास्त्रके विरुद्ध हैं और लोक और शास्त्र दोनोंसे कौनसे धर्म विरुद्ध हैं पण्डित विचारकर इस लोक और परलोकमें सुखदायक उन धर्मोंको राजाके प्रति बोधित करै (बतावै) ॥ ९९ ॥ १०० ॥

इयच्चसंचितंद्रव्यंवत्सरेस्मिंस्तृणादिकम् ।
व्ययीभूतमियच्चैवशेषंस्थावरजंगमम् ॥ १ ॥
इयदस्तीतिवैराज्ञेसुमंत्रोविनिवेदयेत् ।
पुराणिचकतिग्रामाअरण्यानिचसंतिहि ॥

। तृण आदि द्रव्य सञ्चय हुआ
ाय (खर्च) हुआ है और
की) है और इतना स्थावर
इतना जंगम (पशुआदि) हैं
नन्त राजाके प्रति निवेदन
। पुर हैं और कितने ग्राम हैं
ण्य (वन) हैं यह अमात्य
दन करै ॥ १ ॥ २ ॥

नमानोभागस्ततःकति ।
हेमन्कत्यकृष्टाचभूमिका ॥

। भूमि जोती है और कितना
। और कितना शेष रहा और
कितनी है यह भी अमात्य ही
करै ॥ ३ ॥

मञ्छुल्कंदंडादिजंकति ।
कतिचारण्यसंभवम् ॥ ४ ॥

ना द्रव्य भागका हुआ और
महसूल) और कितना द्रव्य
ौर विना जोते कितना अन्न
। अन्न वनमें उत्पन्न हुआ यह
दन करै ॥ ४ ॥

ांनिधिप्राप्तंकतीतिच ।
ासंनाष्टिकंतस्कराहृतम् ॥५॥

न) से कितना द्रव्य उत्पन्न
खजानेमें कितना है और
वारसी) कितना मिला और
नष्ट हुआ यह भी अमात्य
॥ ५ ॥

त्यामात्योराज्ञेनिवेदयेत् ।
त्यंप्रधानदशकस्यच ॥ ६ ॥

त द्रव्यका निश्चय करिके
प्रति निवेदन करै और पूर्वोक्त
लक्षण और कृत्य संक्षेपसे

ःसर्वविद्यात्तदनुदर्शिभिः ।
तान्युंज्यादन्योन्यकर्माणि ॥७॥

प्रधान आदिके लेखसे उनके लेखको अनुदर्शियों (देखनेवालों) से जाने और राजा पूर्वोक्त प्रधान आदिकोंको बदलता हुआ परस्परके कर्ममें नियुक्त करै अर्थात् मंत्रीके स्थानपर अमात्य और अमात्यकी पदवीपर मंत्री इत्यादि ॥ ७ ॥

नकुर्यात्स्वाधिकबलान्कदाचिद्ध्यधिकारिणः ।
परस्परंसमबलाःकार्याःप्रकृतयोदश ॥ ८ ॥

अपनेसे प्रबल अधिकारियोंको कदाचित् न करै पूर्वोक्त दश प्रकृति समबल (एकसे) करने ॥ ८ ॥

एकस्मिन्नधिकारेतुपुरुषाणांत्रयंसदा ।
नंयुंजीतप्राज्ञतमंमुख्यमेकंतुतेषुवै ॥ ९ ॥

एक एक अधिकारके तीन ३ साक्षियोंके निमित्त पुरुष नियुक्त करै और उनमें एक अत्यन्त बुद्धिमानको नियुक्त करै ॥ ९ ॥

द्वौदर्शकौतुतत्कार्येहायनैस्तान्निवर्तनम् ।
त्रिभिर्वापंचभिर्वापिसप्तभिर्दशभिश्चवा ॥१०॥

और उसके कार्यके दो द्रष्टा हों और तीन, पांच, सात अथवा दश वर्षमें उनकी निवृत्ति करै ॥ १० ॥

दृष्ट्वातत्कार्यकौशल्यंतथातंपरिवर्तयेत् ।
नाधिकारंचिरंदद्यात्कस्मैसदानृपः ११ ॥

तिनको कार्य और कुशलता जैसी देखैं तैसे ही पदवीपर बदलै और जिस किसीको चिरकालतक राजा अधिकार न दे ॥ ११ ॥

अधिकारक्षमंदृष्ट्वाह्यधिकारेनियोजयेत् ।
अधिकारमदंपीत्वाकोनमुह्यात्पुनश्चिरम् ॥

अधिकारके योग्य देखकर अधिकारमें नियुक्त करै क्योंकि अधिकाररूपी मदको चिरकालतक पीकर कौन मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

अतःकार्यक्षमंदृष्ट्वाकार्येऽन्येतंनियोजयेत् ।
तत्कार्यकुशलंचान्यंतत्पदानुगतंखलु ॥१३॥

इससे कार्यके योग्य देखकर अन्यकार्यमें तिसे नियुक्त करै और तिसके कार्यपर उसके अनुयायी अन्यको नियुक्त करै ॥ १३ ॥

नियोजयेद्वर्तनेतुतदभावेतथापरम् ।
तद्गुणोयदितत्पुत्रस्तत्कार्येतंनियोजयेत्॥१४॥

उसके अभावमें वर्त्तन (लौटने) में अन्यको नियुक्त करै, यदि उन गुणोंसे युक्त उसका पुत्र होय तो उसके कार्यमें उसे नियुक्त करै ॥ १४ ॥

यथायथाश्रेष्ठपदेह्यधिकारीयदाभवेत् ।
अनुक्रमेणसंयोज्योह्यंतेतंप्रकृतिंनयेत् ॥१५॥

जैसा २ अधिकारी हो तैसे २ श्रेष्ठ पदपर नियुक्त करै इस प्रकार दश प्रकृतियोंको पदवीपर अन्तसमय नियुक्त करै ॥ १५ ॥

अधिकारबलंदृष्टायोजयेद्दर्शकान्बहून् ।
अधिकारिणमेकंवायोजयेद्दर्शकंविना॥१६ ॥

अधिकारके बलको देखकर बहुत द्रष्टाओंको नियुक्त करै अथवा द्रष्टाके बिना एक अधिकारीको नियुक्त करै ॥ १६ ॥

येचान्येकर्मसचिवास्तान्सर्वान्विनियोजयेत् ।
गजाश्वरथपादातपशूष्ट्रमृगपक्षिणाम् १७ ॥

जो इतर कर्मोंके सचिव हैं उन संपूर्णोंको नियुक्त करै और हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, पशु, ऊंट, मृग, पक्षियोंके पृथक् २ अधिपति नियुक्त करै ॥ १७ ॥

सुवर्णरत्नरजतवस्त्राणामधिपान्पृथक् ।
वितानाद्यधिपंधान्याधिपंपाकाधिपंतथा १८॥

सुवर्ण, रत्न, चांदी, वस्तु, इनके अधिपति वितान (तंबू) आदिकोंके अधिपति अन्न और पाक (रसोई) के अधिपति पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १८॥

आरामाधिपतिंचैवसौधगेहाधिपंपृथक्।
संभारपंदेवतुष्टिपतिंदानपतिंसदा ॥ १९ ॥

आराम (बगीचे) का अधिपति मंदिरोंका अधिपति संभारोंका अधिपति देवताओंके स्थानोंका अधिपति और दानाध्यक्ष इनको पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १९ ॥

साहसाधिपतिंचैवग्रामनेतारमेवच ।
भागहारंतृतीयंतुलेखकंचचतुर्थकम् ॥ २० ॥

साहस (दंड) का अधिपति ग्रामका नेता (चौधरी) तीसरा भागका लेनेवाला और चौथा लेखक इनको भी नियत करै २०

शुल्कग्राहंपंचमंचप्रतिहारंतथैवच ।
षट्कमेतन्नियोक्तव्यंग्रामेग्रामेपुरेपुरे ॥ २१॥

पांचवां शुल्क (मोल) का ग्राहक और छठा प्रतीहार इनपूर्वोक्त छःओंको ग्राम२ पुर २ में नियुक्त करै ॥ २१ ॥

तपस्विनोदानशीलाःश्रुतिस्मृतिविशारदाः ।
पौराणिकाःशास्त्रविदोदैवज्ञामांत्रिकाश्चये ॥

तपस्वी, दाता, श्रुति (वेद) स्मृतिमें चतुर पुराणोंके ज्ञाता शास्त्रोंके ज्ञाता ज्योतिषी मन्त्रोंके जो ज्ञाता हैं ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविदःकर्मकांडज्ञास्तांत्रिकाश्चये ।
येचान्येगुणिनःश्रेष्ठाबुद्धिमंतोजितेंद्रियाः ॥

वैद्य, कर्मकांडके ज्ञाता तन्त्रके ज्ञाता और गुणवान् हैं श्रेष्ठ हैं और बुद्धिमान् जितेंद्रिय हैं ॥ २३ ॥

तान्सर्वान्पोषयेद्भृत्यान्दानमानैःसुपूजितान् ।
हीयतेचान्यथाराजाह्यकीर्तिंचापिविंदति २४॥

तिन तपस्वी आदिकोंको (नोकरी) से दान सत्कारसे पूजित करके पोषण करै यदि पोषण न करै तो राजहानिको और कुकीर्तिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥

बहुसाध्यानिकार्याणितेषामप्यधिपांस्तथा ।
तत्तत्कार्येषुकुशलाञ्ज्ञात्वातांस्तुनियोजयेत् २५

जो कार्य बहुतसे मनुष्योंसे हों उनके भी अधिपति नरकार्योंमें कुशल जानकर नियुक्त करै ॥ २५ ॥

अमंत्रमक्षरंनास्तिनास्तिमूलमनौषधम् ।
अयोग्यःपुरुषोनास्तियोजकस्तत्रदुर्लभः ॥

मन्त्रके विना अक्षर नहीं और औषधिके विना मूल नहीं और अयोग्य पुरुष नहीं परन्तु योजन करनेहारा वहां दुर्लभ है ॥२६॥

प्रभद्रादिजातिभेदंगजानांचचिकित्सितम् ।
शिक्षांव्याधिंपोषणंचतालुजिह्वानखैर्गुणान्॥

प्रभद्र आदि हाथियोंकी जातियोंके भेद और हाथियोंके चिकित्सक, शिक्षा, रोग, पोषण, तालु, जिह्वा, नख, इनके गुण तिनका जो ज्ञाता ॥ २७ ॥

आरोहणंगतिंवेत्तिसयोज्योगजरक्षणे ।
तथाविधाधोरणस्तुहस्तीहृद्यहारकः ॥२८॥

चढना, गमन, जो जानै उस मनुष्यको गजोंकी रक्षामें नियुक्त करै और वैसेही आधोरण (पीलवान्) को नियुक्त करै जो हाथीके हृदयको वश करले ॥ २८ ॥

अश्वानांहृदयंवेत्तिजातिवर्णभ्रमैर्गुणान् ।
गतिंशिक्षांचिकित्सांचसत्त्वंसाररुजंतथा ॥

जो अश्वोंके हृदयको और जाति वर्ण गमनसे गुणोंको और गति, शिक्षा, चिकित्सा, बल, दृढता और रोग इनको जानै ॥२९॥

हिताहितंपोषणंचमानंयानंदतोवयः ।
शूरश्चव्यूहवित्प्राज्ञःकार्योश्वाधिपतिश्चसः ॥

हित और अहित, पोषण, मान, (प्रमाण) यान, (गति) दन्त, अवस्था इनको जो जानै ऐसा शूरवीर व्यूहका ज्ञाता विद्वान् अश्वोंका अधिपति नियुक्त करना ॥ ३० ॥

एभिर्गुणैश्चसंयुक्तोधुर्यान्युग्यांश्चवेत्तियः ।
रथस्यसारंगमनंभ्रमणंपरिवर्तनम् ॥ ३१ ॥

इन पूर्वोक्तगुणोंसे संयुक्त धुर्य अर्थात् धुरके योग्य, युग्य अर्थात् यानके वहनेको समर्थ, अश्वोंका ज्ञाता और रथकी सारता और गमन और भ्रमण और परिवर्त्तन (लौटाना)इनको जो यथार्थ जानै ऐसा सारथी नियुक्त करै ॥ ३१ ॥

समापतत्सुशस्त्रास्त्रलक्ष्यसंधाननाशकः ।
रथगत्यारथहयहयसंयोगगुप्तिवित् ॥ ३२ ॥

योद्धाओंके सम्मुख शस्त्र और अस्त्रोंके लक्ष्यके सन्धानको जो नाश करै और रथकी गति और रथ, अश्व और अश्वोंका मेल और रक्षा इनको जाने ॥ ३२ ॥

सादिनश्चतथाकार्याःशूराव्यूहविशारदाः ।
वाजिगतिविदःप्राज्ञाःशस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः ॥

और सादि (असवार भी) ऐसे करने जो शूर, व्यूह (कवायद) में चतुर, घोडोंकी गतिका वेत्ता, विद्वान्, शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्धमें कुशल हों ॥ ३३ ॥

चक्रितंरेचितंवल्गितंधौरितमाप्लुतम् ।
तुरंमंदंचकुटिलंसर्पणंपरिवर्तनम् ॥ ३४ ॥
एकादशास्कंदितंचगतीरश्वस्यवेत्तियः ।
यथाबलंयथर्तुचशिक्षयेत्सचाशिक्षकः ॥३५॥

चक्रके समान गति, रेचित गति, मधुरगति, धौरितगति, आप्लुतगति, तुर (शीघ्रगति) मन्दगति, कुटिलगति, सर्पणगति, परिवर्त्तनगति, आस्कंदितगति, इन पूर्वोक्त एकादश गतियोंको जो जानै और अश्वके बल और ऋतुके अनुसार अश्वको शिक्षा दे ऐसे मनुष्यको शिक्षक नियुक्त करै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वाजिसेवासुकुशलःपल्याणादिनियोगवित् ।
दृढांगश्चतथाशूरःसकार्योवाजिसेवकः ॥३६॥

घोडोंकी सेवामें कुशल, पल्याण (चारजामा वगैरह) की स्थितिका ज्ञाता दृढांग और शूर वीर ऐसा जो हो वह घोडोंका सेवक करना ॥ ३६ ॥

नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिनतिविद्याविशारदाः ।
अबालामध्यवयसःशूरादांतादृढांगकाः ३७॥

जो नीतिशास्त्र, अस्त्रसमूह, नम्रताओंसे चतुर हो,बालक न हो, यौवनको भोक्ता, शूरवीर दांत दृढांग हो ॥ ३७ ॥

स्वधर्मनिरतानित्यंस्वामिभक्तारिपुद्विषः ।
शूद्रावाक्षत्रियावैश्याम्लेच्छाःसंकरसम्भवाः ॥
सेनाधिपाःसैनिकाश्चकार्याराज्ञाजयार्थिना ।

अपने अपने धर्ममें नित्य स्थित और स्वामीके भक्त, शत्रुओंके द्वेषी, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, वर्णसङ्कर, इन जातियोंके हों ॥३८ ऐसे सेनाधिप और सैनिक (सेनाके योद्धा) जयकी इच्छा करनेवाले राजाको करने चाहिये ॥

पंचानामथवाषण्णामधिपः पद्गामिनाम् ।
योज्यःसपत्तिपालःस्यात्त्रिंशतांगौल्मिकः
स्मृतः । शतानांतुशतानीकस्तथानुशाति-
कोवरः ॥ ४० ॥

पांच अथवा छैः सिपाहियोंका अधिप जो हो ॥ ३९ ॥ उसे पत्तिपाल कहते हैं तीस सिपाहियोंके अधिपतिको गौल्मिक कहते हैं शतके अधिपको शतानीक और अनुशतिक उससे उत्तमको कहते हैं ॥ ४० ॥

सनानीर्लेखकश्चैतेशतंप्रत्यधिपाइमे ।
साहस्त्रिकस्तुसंयोज्यस्तथाचायुतिकोमहान् ॥

सनानी और लेखक ये सब शतके अधिपति होते हैं और सहस्रका अधिपति और दश सहस्रका अधिपति नियुक्त करना ॥ ४१ ॥

व्यूहाभ्यासंशिक्षयेद्यःसायंप्रातस्तुसैनिकान् ।
जानातिसशतानीकःसुयोद्धुंयुद्धभूमिकाम् ॥

व्यूह (कवायद) के अभ्यासकी जो सायंकाल और प्रातःकाल सैनिकोंको शिक्षा दे और युद्धभूमिमें युद्ध करनेको जो जाने उसे शतानीक कहते हैं ॥ ४२ ॥

तथाविधोनुशतिकः शतानीकस्यसाधकः ।
जानातियुद्धसम्भारंकार्ययोग्यंचसैनिकम् ॥

तैसाही क्षतानीकका शिक्षक अनुशतिक होता है, जो युद्धके सम्भारों और कार्यमें कुशल सेनाके सिपाहियोंको जाने ॥ ४३ ॥

निदेशयतिकार्याणिसेनानीर्यामिकांश्चसः ।
परिवृत्तिंयामिकानांकरोतिसचपत्तिपः ॥

सिपाहियोंको जो कार्य बतावै उसे सेनानी कहते हैं और जो सिपाहियोंकी परिवृत्ति (बदली) करै उसे पत्तिप कहते हैं ॥ ४४ ॥

सोवधानंयामिकानांविजानीयाच्चगुल्मपः ।

जो सिपाहियोंकी सावधानीको जानैं उसे गुल्मप कहते हैं ॥

सैनिकाःकतिसंख्येतैःकतिप्राप्तंतुवेतनम् ॥ ४५॥
प्राचीनाःकेकुत्रगताश्चैतान्वेत्तिसलेखकः ।
गजाश्वानांविंशतेश्चाधिपोनायकसंज्ञकः ॥

ये सैनिक कितने हैं और कितना वेतन (नौकरी) मिली ॥ ४५ ॥ प्राचीन सैनिक कितने हैं और वे कहां गये इसको जो जानें उसे लेखक कहते हैं । बीस हाथी और बीस अश्वोंका जो अधिपति उसे नायक कहते हैं ॥ ४६ ॥

उक्तसंज्ञान्स्वस्वचिह्नैर्लांछितांश्चनियोजयेत् ।

उक्त संज्ञावालोंको अपने अपने चिह्नोंसे चिह्नित करके नियुक्त करै ॥

अजाविगोमहिष्येणमृगाणामधिपाश्चये ॥

बकरी, भेड, गौ, भैंस, मृग इनके अधिपोंको भी इसी प्रकार चिह्नित करके नियुक्त करै ॥ ४७ ॥

तद्वृद्धिपुष्टिकुशलास्तद्वात्सल्यानिपीडिताः ।
तथाविधागजोष्ट्रादेर्योज्यास्तत्सेवका आपि ॥

तिनकी वृद्धि और पुष्टिमें जो कुशल और तिनपर दयालु और पीडा रहित हों और तैसेही गज ऊंट आदिके भी सेवक नियुक्त करने ॥ ४८ ॥

युद्धप्रवृत्तिकुशलास्तित्तिरादेश्चपोषकाः ।
शुकादेःपाठकाःसम्यक्छ्येनादेःपातबो-
धकाः ॥ ४९ ॥
तत्तद्धृदयविज्ञानकुशलाश्चसदाहिते ।

युद्धकी प्रवृत्तिमें कुशल और तित्तिर आदिके पोषक (पालक) और तोतोंके उत्तम पा-

ठक और शिखरेके पात (गिरने) के बोधक नियुक्त करने ॥ ४९ ॥ लिंग २ के हृदयके जानेमें सदा कुशल वे हों ॥

मानाकृतिप्रभावर्णजातिसाम्यात्रमौल्यवित् ॥ ५० ॥

रत्नानांस्वर्णरजतमुद्राणामधिपश्चसः ।

मान, आकार, प्रभा, वर्ण और जाति इनकी साम्यतासे मूल्यका वेत्ता हो ॥ ५० ॥ वह रत्न, स्वर्ण,चांदी मुद्रा इनका अधिप हो ॥

दांतस्तुसधनोयस्तुव्यवहारविशारदः ।

धनप्राणोतिकृपणःकोशाध्यक्षःसएवहि ॥

जितेन्द्रिय, धनी, व्यवहारमें चतुर, धनमें जिसके प्राण हों, अत्यन्त कृपण ऐसा कोशाध्यक्ष होता है ॥

देशभेदैर्जातिभेदैःस्थूलसूक्ष्मबलाबलैः ।

कौशेयादेर्मानमूल्यवेत्ताशास्त्रस्यवस्त्रपः ॥

देश और जातिके भेद स्थूल सूक्ष्म बल और निबलतासे ॥ ५२ ॥ रेशमके मान और मूल्यका ज्ञाता और शास्त्रका वेत्ता वस्त्रोंका अधिप होता है ॥

कीटकंचुकनेपथ्यमंडपादेःपरिक्रियाम् ॥

प्रमाणतःसौचिकेनरंजनानिचवेत्तियः ।

तथाशय्यादिसंधानंवितानादेर्नियोजनम् ॥

वस्त्र और वेष और मण्डपकी क्रियाको जो जानै ॥ ५३ ॥ सूचीके प्रमाणसे रंगोंको जो जानै और शय्यादिक सन्धान वितान (चन्दोआ) का नियोग जो जाने ॥५४ ॥

वस्त्रादीनांचसप्रोक्तोवितानाद्यधिपःखलु ।

वस्त्रका ज्ञाता ऐसा पुरुष वितान छवानेका अधिप हो ॥

जातिंतुलांचमौल्यंचसारंभोगंपरिग्रहम् ।

संमार्जनंचधान्यानांविजानातिसधान्यपः ॥

जाति, तोल, मौल्य, सार, भोग, परिग्रह ॥ ५५ ॥ अन्नकी शुद्धि (छडन) जो जाने उसे धान्यपति करता ॥

धौताधौतविपाकज्ञोरससंयोगभेदवित् ।

क्रियासुकुशलोद्रव्यगुणवित्पाकनायकः ॥

मलीन शुद्ध पाकका ज्ञाता रसके संयोग भेदका ज्ञाता ॥ ५६ ॥ क्रियामें कुशल द्रव्यके गुणका वेत्ता जो हो उसे पाकनायक करना ॥

फलपुष्पवृद्धिहेतुंरोपणंशोधनंतथा ॥ ५७ ॥

पादपानांयथाकालंकर्तुंभूमिजलादिना ।

तद्भेषजंचसंवेत्तिह्यारामाधिपतिश्चसः ॥ ५८ ॥

फल फूलकी वृद्धिका कारण रोपण (लगाना) और शोधन ॥ ५७ ॥ वृक्षोंका (रोपण) भूमि जलादिकसे कालके अनुसार जो जाने और उनका भेषज (इलाज) जो जाने वह आरामका अधिप होता है ॥ ५८ ॥

प्रासादंपरिखांदुर्गंप्राकारंप्रतिमांतथा ।

यन्त्राणिसेतुबंधंचवापीकूपतडागकम् ५९ ॥

ऐसे पुरुषको गृह बनानेका अधिप करै प्रासाद (मकान) खाई किला प्राकार परकोटा की प्रतिमा (प्रमाण) यन्त्र पुल बांधना वापी (बावडी) कूप तडाग इनका ज्ञाता हो॥

तथापुष्करिणींकुंडंजलादूर्ध्वगतिक्रियाम् ।

सुशिल्पशास्त्रतःसम्यक्सुरम्यंतुयथाभवेत् ॥

कर्तुंजानातियःसैवगृहाद्यधिपतिःस्मृतः ।

तिसी प्रकार पुष्करिणी छोटा क्रीडाका तालाब कुण्ड जलसे ऊपर आनेकी क्रिया ऐसा जानता हो जिसप्रकार शिल्पविद्यासे भली प्रकार रमणीय हो उसको ॥ ६० ॥ करनेको जो जाने वही गृहोंका अधिपति होता है॥

राजकार्योपयोग्यान्हिपदार्थान्वेत्तितत्त्वतः ।

संचिनोतियथाकालेसंभाराधिपउच्यते ॥

जो राजाके कार्योपयोगी पदार्थोंको जानै ॥ ६१ ॥ समयके अनुसार सञ्चय करै वह सम्भारका अधिपति होता है ॥

स्वधर्माचरणेदक्षोदेवताराधनेरतः ॥ ६२ ॥

निःस्पृहःसचकर्तव्योदेवतुष्टिपतिः सदा ।

वह पुरुष देवताओंका सन्तोषकारी होता है जो अपने धर्माचरणमें चतुर और देवताके आराधनमें तत्पर हो ॥ ६२ ॥ लोभी न हो वह देवपुष्टिका पति (पुजारी) करना ॥

याचकंविमुखंनैवकरोतिनचसंग्रहम् ॥ ६३ ॥
दानशीलश्चानिर्लोभोगुणज्ञश्चानिरालसः ॥
दयालुर्मृदुवाग्दानपात्रविन्नतितत्परः ६४ ॥
नित्यमेभिर्गुणैर्युक्तोदानाध्यक्षःप्रकीर्तितः ।

वह दानाध्यक्ष करना जो याचकको विमुख न करै और संग्रह न करै ॥ ६३ ॥ दानशील हो लोभी न हो गुणी हो आलसी न हो दयालु हो कोमलवचन कहता हो पात्रका ज्ञाता हो नमस्कारमें तत्पर हो ॥ ६४ ॥ प्रतिदिन जो इन गुणोंसे युक्त हो वह दानाध्यक्ष कहा है ॥

व्यवहारविदःप्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ।
रिपौमित्रेसमायेचधर्मज्ञाःसत्यवादिनः ॥
निरालसाजितक्रोधकामलोभाःप्रियंवदाः ।
सभ्याःसभासदःकार्यावृद्धाःसर्वासुजातिषु ॥

ऐसे सभासद हों जो व्यवहारके ज्ञाता सदाचारशील गुणोंसे संयुक्त हों ॥ ६५ ॥ शत्रु और मित्रमें जो सम हों, धर्मज्ञ और सत्यवादी हों आलसी न हों क्रोध काम लोभ ये जिन्होंने जीत लिये हों और प्रियवक्ता हों ॥ ६६ ॥ ऐसे सम्पूर्ण जातियोंमें वृद्ध और सभामें साधु सभासद करने ॥

सर्वभूतात्मतुल्योयोनिस्पृहोतिथिपूजकः ।
दानशीलश्चयोनित्यंसवैसत्राधिपःस्मृतः ॥

यज्ञका अधिपति ऐसा हो जो सबको अपने आत्माके समान जाने और निर्लोभी और अभ्यागतोंका पूजक हो ॥ ६७॥ और प्रतिदिन दानशील हो ॥

परोपकारनिरतःपरमर्माप्रकाशकः ॥६८॥
निर्मत्सरोगुणग्राहीसद्विद्यःस्यात्परीक्षकः ॥

जो परोपकारमें तत्पर हो परमर्म (छिद्र) प्रकाश न करै ॥ ६८ ॥ किसीकी उन्नतिपर द्वेषी न हो गुणको ग्राहक हो अच्छी विद्याका ज्ञाता हो वह परीक्षक हो ॥

प्रजानष्टानहिभवेत्तथादंडविधायकः ६९ ॥
नातिक्रोनातिमृदुःसाहसाधिपतिश्चसः ।

(साह) फौजदारीका अधिपति हो इस प्रकार दंड दे जिस प्रकार प्रजा नष्ट न होय ॥ ६९ ॥ और अतिकठोर और अतिकोमल जो न हो ॥

आधर्षकेभ्यश्चोरेभ्योह्यधिकारिगणात्तथा ।
प्रजासंरक्षणेदक्षोग्रामपोमातृपितृवत् ।

जो ठग और चोर अधिकारियोंके समूहसे प्रजाकी रक्षामें चतुर हो ॥ ७० ॥ और जो माता पिताके समान प्रजाकी रक्षामें चतुर हो ऐसा पुरुष ग्रामका अधिपति हो ॥

वृक्षान्संपुष्ययत्नेनफलंपुष्पंविचिन्वति ॥
मालाकारइवात्यंतंभागहारस्तथाविधः ॥

ऐसा पुरुष भाग (कर) का ग्राहक हो जो मालीके समान वृक्षोंको यत्नसे पुष्ट करके फल फूलोंको बीने अथात् प्रजाकी अत्यंत रक्षापूर्वक कर ले ॥ ७१ ॥

गणनाकुशलोयस्तुदेशभाषाप्रभेदवित् ।
असंदिग्धमगूढार्थंविलिखेत्सचलेखकः ॥

ऐसा पुरुष लेखकहो जो गणनामें कुशलहो देशभाषाके भेदका ज्ञाता हो ॥ ७२ ॥ और संदेहरहित स्पष्ट जो लिखै ॥

शस्त्रास्त्रकुशलोयस्तुदृढांगश्चनिरालसः ।
यथायोग्यंसमाहूयात्प्रनम्रःप्रतिहारकः ॥

ऐसापुरुष प्रतिहार (दूत) हो जो शस्त्र अस्त्रमें कुशल हो और दृढांग और आलसी न हो ॥ ७३ ॥ तथा नम्र होकर यथोचित आह्वान करै (बुलावै)

यथाविक्रयिणांमूलधननाशोभवेन्नहि ।
तथाशुल्कंतुहरतिशौल्किकःसउदाहृतः॥७४॥

ऐसा पुरुष शौल्किक (महसूलका अधिप) हो जो जैसे लेन देनहारोंके मूलधनका नाश

न हो इस प्रकार शुल्क (महसूल)को ले वह शौल्किक कहाता है ॥

जपोपवासनियमकर्मध्यानरतस्सदा ।
दांतःक्षमीनिःस्पृहश्चतपोनिष्ठःसउच्यते ॥७५

उसे तपोनिष्ठ कहते हैं जो जप, उपवास नियम कर्म और ध्यानमें सदा रत हो दांत हो क्षमावान् सहनशील हो ॥ ७५ ॥

याचकेभ्योददात्यर्थंभार्यापुत्रादिकंत्वपि ॥
नसंगृह्णतियत्किंचिद्दानशीलःसउच्यते ॥

जो याचकोंको भार्या पुत्र आदिको भी अति उदार होकर दे दे और अपना कुछभी ग्रहण न करै वह दानशील कहाता है ॥ ७६॥

पठनंपाठनंकर्तुंक्षमास्त्वभ्यासशालिनाम् ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानांश्रुतज्ञास्तेप्रकीर्तिताः ।

वे श्रुति (वेदके) ज्ञाता होते हैं जो किया है अभ्यास जिनका ऐसे श्रुति स्मृति पुराणों के पठनपाठन करनेमें समर्थ हो ॥ ७७ ॥

साहित्यशास्त्रनिपुणःसंगीतज्ञश्चसुस्वरः ।
सर्गादिपंचकज्ञातासवैपौराणिकःस्मृतः ॥

और वह पुराणोंका ज्ञाता होता है । जो साहित्यशास्त्रमें निपुण हो संगीतका ज्ञाता और उत्तम स्वर जिसका हो ॥ सर्ग आदि पांचका जो ज्ञाता हो ॥ ७८ ॥

मीमांसातर्कवेदांतशब्दशासनतत्परः ॥ ७९॥
ऊहवान्बोधितुंशक्तस्तत्त्वतःशास्त्रवित्तसः ।

मीमांसा, न्याय, वेदांत, व्याकरणमें तत्पर तर्कका ज्ञाता, बोधन करनेमें समर्थ और तत्वका ज्ञाता शास्त्रीवत् होता है ॥ ७९ ॥

संहितांचतथाहोरांगणितंवेत्तितत्त्वतः ॥ ८० ॥
ज्योतिर्विच्चसविज्ञेयोत्रिकालज्ञश्चयोभवत् ।

वह ज्योतिषी होताहै जो संहिता होरा और गणित इनको तत्त्वसे जाने और भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंका ज्ञाता हो ॥ ८० ॥

बीजानुरूप्यमंत्राणांगुणान्दोषांश्चवेत्तियः ।
मंत्रानुष्ठानसंपन्नोमांत्रिकःसिद्धदैवतः॥८१॥

और ऐसा पुरुष मंत्रशास्त्रका ज्ञाता हो जो मंत्रोंके बीजोंके अनुसार गुण और दोषोंको जाने, मंत्रोंके अनुष्ठानमें युक्त हो और देवता जिसे सिद्ध हो ॥ ८१ ॥

हेतुलिंगौषधीभिर्योव्याधीनांतत्त्वनिश्चयम् ।
साध्यासाध्यंविदित्वोपक्रमेतसभिषक्स्मृतः॥८२

जो कारण चिह्न और औषधियोंसे व्याधियोंके तत्त्व निश्चय ॥ ८२ ॥ साध्य और असाध्यको जानकर चिकित्साका प्रारंभ करै वह भिषक् कहा है ॥ ८२ ॥

श्रुतिस्मृतीतरन्मंत्रानुष्ठानैर्दैवतार्चनम् ।
कर्तुंहिततमंमत्वायततेसचतांत्रिकः ॥ ८३ ॥

श्रुतिस्मृतिमन्त्रोंके अनुष्ठानसे देवताओंका पूजन करनेको जो हिततम मान कर यत्न करै वह तांत्रिक होता है ॥ ८३ ॥

नपुंसकाःसत्यवाचोसुभूषाश्चप्रियंवदाः ।
सुकुलाश्चसुरूपाश्चयोज्यास्त्वंतःपुरेसदा ८४॥

ऐसे पुरुष रनवासमें युक्त करने जो नपुसक सत्यवादी सुवेष और प्रियवादी हों उत्तम कुलीन और सुरूप हों ॥ ८४ ॥

अनन्याःस्वामिभक्ताश्चधर्मनिष्ठादृढांगकाः ।
अबालामध्यवयसःसेवासुकुशलाःसदा ८५ ॥

और ऐसे दूत युक्त करने जो अनन्य होकर स्वामीके भक्त हों और धर्मशील हों और दृढ जिनका अंग हों बालक न हों, युवा हों और सेवामें यथार्थ कुशल हों ॥ ८५ ॥

सर्वंयद्यत्कार्यजातंनीचंवाकर्तुमुद्यताः ।
निदेशकारिणोराज्ञाकर्तव्याःपरिचारकाः ८६॥

संपूर्ण कार्योंका समूह चाहै नीच भी हो उसे करनेको उद्युक्त (तैयार) हों और आज्ञा पालनेमें तत्पर हों ॥ ८६ ॥

राज्ञःसमीपप्राप्तानांनतिस्थानविबोधकाः ।
दंडधारावेत्रधाराःकर्तव्यास्तेसुशिक्षकाः॥८७॥

राजाके समीप जो आवें उनको नमस्कार और स्थानके बतानेहारे राजाको परिचारक

सेवक नियुक्त करने और वे सेवक दंड और वेतको धारण करैं और उत्तम शिक्षावान् हों ॥ ८७ ॥

तंत्रीकंठोत्थितान्सप्तस्वरान्स्थानविभागतः ।
उत्पादयति संवेत्ति संसयोगविभागतः ।
अनुरागंसुस्वरंचसतालंचप्रगायति ॥ ८९ ॥

ऐसा गानेवालोंका अधिपति हो जो वन्त्रीके कंठसे उत्पन्न सात स्वरोंके स्थानोंको विभाग (भेद) से जाने ॥ ८८ ॥ स्वरोंको उत्पन्न करै और जाने और संयोग और विभागसे प्रसन्नता और उत्तमस्वर और ताल और नृत्यसे जो गावे ॥ ८९ ॥

सन्नृत्यंवागायकानामधिपःसचकीर्तितः ।
तथाविधाचपण्यस्त्रीनिर्लज्जाभावसंयुता॥ ९०॥

ऐसा पुरुष गायकोंका अधिप कहा है और इसी प्रकारकी गणिका (वेश्या) हो जो निर्लज्ज हो और भाव (प्रीति) युक्त हो ॥ ९० ॥

शृंगाररसतंत्रज्ञासुंदरांगीमनोरमा ।
नवीनोत्तुंगकठिनकुचासुस्मितदर्शिनी ॥९१॥

शृङ्गार रसके तन्त्रकी जानकार सुन्दर अंगवाली मनोरमा (मनके हरनेवाली) नवयौवना ऊंचे हैं कठोर स्तन जिसके और हँसमुखी हो ॥ ९१ ॥

यथान्येसाधकास्तेचतथाचित्तविरंजकाः ।
सुभृत्यास्तेपिसंधार्यानृपेणात्महितायच ॥९२॥

जो वेश्याके इतर साधक हैं वे भी तिसीप्रकार चित्तके रंजक हों और उन साधकोंके भृत्य (नौकर) भी श्रेष्ठ हों ऐसे साधक अपने हितके अर्थ राजाको रखने ॥ ९२ ॥

वैतालिकाःसुकवयोवेत्रदंडधराश्चये ।
शिल्पज्ञाश्चकलावंतोयेसदाप्युपकारकाः ९३॥

भांड ऐसे हों जो सुन्दर कवि हों वेत और दंडके धारण करने हारे हों कारीगर (कलाधारी) हों और जो सदा उपकारी हों ॥ ९३॥

दुर्गुणान्सूचकाभाणानर्तकाबहुरूपिणः ।
आरामकृत्रिमवनकारिणोदुर्गकारिणः ९४ ॥

इतरके दुर्गुणोंको जो सूचित करैं वे भांड कहाते हैं और जो अनेक रूपोंको धारैं वे नर्त्तक होते हैं, आराम और कृत्रिम वन-(बाग) के बनानेहारे और किलेके बनानेहारे ॥ ९४ ॥

महानालिकयंत्रस्यगोलैर्लक्ष्यविभेदिनः ।
लघुयंत्राग्नेयचूर्णबाणगोलासिकारिणः ॥९५॥

तोपके गोलोंसे लक्ष्य (निसाने) के भेदन करनेहारे बंदूक, आग्नेय चूर्ण (बारूद) बाण गोले और असि (तलवार) इनके करनेहारे ॥ ९५ ॥

अनेकयंत्रशस्त्रास्त्रधनुस्तूणादिकारकाः ।
स्वर्णरत्नाद्यलंकारघटकारथकारिणः ॥ ९६ ॥

अनेक प्रकारके यंत्र शस्त्र, अस्त्र, धनुष, तरकस इनके करनेहारे और स्वर्ण रत्न आदि अलंकारोंको गढनेहारे और रथके करनेहारे ॥ ९६ ॥

पाषाणघटकालोहकाराधातुविलेपकाः ।
कुंभकाराःशौल्विकाश्चतक्षिणोमार्गकारकाः

पत्थरके और लोहेके बनानेहारे और धातुके लेपक (मुलंमा करनेहारे) कुम्हार शुल्बके बनानेहारे और बढई और सडकके बनानेहारे ॥ ९७ ॥

नापितारजकाश्चैवंवांशिकामलहारकाः।
वार्ताहराःसौचिकाश्चराजचिह्नाग्रधारिणः॥९८

नाई, धोबी, वंशोंके लानेहारे मलके शोधक डांकवाले, दरजी ये संपूर्ण पूर्वोक्त राजचिह्नाग्रके धारण करनेहारे हों ॥ ९८ ॥

भेरीपटहगोपुच्छशंखवेण्वादिनिःस्वनैः ।
येव्यूहरचकायानापयानादिकबोधकाः ९९ ॥

नगारे, ढोल, रणसींगे, शंख, वंशी इनके शब्दोंसे जो व्यूहकी रचनामें तत्पर हैं और जो यान, और अपयान (कवायद) के शिक्षक हैं ॥ ९९ ॥

नाविकाःखनकाव्याधाःकिराताभारिकाअपि ।
शस्त्रसंमार्जनकराजलधान्यप्रवाहकाः॥२००॥

मल्लाह, खनक (खोदनेवाले) शस्त्रके व्याध भील, भारके लेजानेवाले शस्त्रके मार्जन करनेहारे और जो जलमें अन्नके पहुँचानेहारे ॥ २०० ॥

आपणिकाश्चगणिकावाद्यजायाप्रजीविनः ।
ततुंवायाःशाकुनिकाश्चित्रकाराश्चचर्मकाः ॥

बाजारवाले, वेश्या, नट, कुली, शकुनके ज्ञाता, चित्रकारी और चमार ॥ १ ॥

गृहसंमार्जकाःपात्रधान्यवस्त्रप्रमार्जकाः ।
शय्यावितानास्तरणकारकाःशासका अपि॥

घरके झारनेहारे और पात्र, अन्न, वस्त्र, इनके मार्जन करनेहारे शय्या पर बिछौना करनेहारे और शिक्षा देनेहारे ॥ २ ॥

आमोदाःस्वेदसद्धूपकारास्तांबूलिकास्तथा
हीनाल्पकर्मिणश्चैतयोज्याःकार्यानुरूपतः ॥

सुगन्ध द्रव्य, धूपकर्त्ता, तंबोली, नीचकर्मके कर्त्ता इन पूर्वोक्तोंको कार्यके अनुसार नियुक्त करै ॥ ३ ॥

प्रोक्तंपुण्यतमंसत्यंपरोपकरणंतथा ।
आज्ञायुक्ताश्चभृतकान्सततंधारयेन्नृपः ॥४॥

सत्य और परोपकार अत्यंत श्रेष्ठ कहा है और राजा अपनी आज्ञासे युक्त सेवकोंको निरन्तर रक्खै ॥ ४ ॥

हिंसागरीयसीसर्वपापेभ्योऽनृतभाषणम् ।
गरीयस्तरमेताभ्यांयुक्तान्भृत्यान्नधारयेत् ॥

संपूर्ण पापोंसे हिंसा प्रबल है और झूंठ उससे भी अधिक प्रबल है इससे हिंसक और झूंठे भृत्योंको धारण न करै ॥ ५ ॥

यद्यायदुचितंकर्तुंवक्तुंवातत्प्रबोधयन् ।
तद्वक्ति कुरुतेद्राक्तुससद्भृत्यःसुपूज्यते ॥६॥

जिस समय जो करनेको उचित है उसको अथवा कहने को उचित है उसको बोधित (जताया) हुआ जो शीघ्रकार्य को करता है वही उत्तम भृत्य है और उसे ही राजा युक्त करै ॥ ६ ॥

उत्थायपश्चिमेयामेगृहकृत्यंविचिंत्यच ।
कृत्वोत्सर्गंतुदेवंहिस्मृत्वास्नायादनंतरम् ॥७॥

रात्रिके पिछले पहरमें उठकर और गृहके कार्यकी चिंता करके और शौचको करके इष्ट देवके स्मरणानंतर स्नान करै ॥ ७ ॥

प्रातःकृत्यंतुनिर्वर्त्ययावत्सार्धमुहूर्तकम् ।
गत्वास्वकीयशालांवाकार्याकार्यंविचिंत्यच ॥

तीन घड़ी दिन चढे पर्यंत अपने प्रातःकालके कृत्यको करके अपनी कार्यशाला (कचहरी) में जाकर और कार्य और अकार्यको चिंता करके ॥ ८ ॥

विनाज्ञयाविशंतंतुद्वास्थः सम्यङ्निरोधयेत् ।
निर्देशकार्यंविज्ञाप्यतेनाज्ञप्तःप्रमोचयेत् ॥९॥

राजाकीआज्ञाके बिना जो कार्यशालामें प्रवेश करे उस राजाका द्वारपाल रोके तदनन्तर उसके निवेश कार्य (प्रार्थना) को राजाको जताकर और राजाकी आज्ञासे उसे छोड़ दे ॥ ९ ॥

दृष्टागतान्सभामध्येराज्ञेदंडधरःक्रमात् ।
निवेद्यतन्नतीःपश्चात्तेषांस्थानानिसूचयेत् ॥

सभाके मध्यमें आये मनुष्योंको दण्डधर (चौकीदार) क्रमसे निवेदन करे और नम्र होकर पश्चात् उनके स्थानोंको सूचित करे ॥ १० ॥

ततोराजगृहंगत्वाज्ञतोगच्छेत्तत्सन्निधिम् ।
नत्वानृपंयथान्यायंविष्णुरूपमिवापरम् ॥

तिसके अनन्तर राजाके स्थानमें जाकर राजाकी आज्ञासे समीप जावै और नीतिके अनुसार राजाको नमस्कार इस प्रकार करके कि मानों दूसरे विष्णु ही हैं ॥ ११ ॥

प्रविश्यसानुरागस्यचित्तज्ञस्यसमंततः ।
भर्तुरर्धासनेदृष्टिंकृत्वानान्यत्रनिक्षिपेत् ॥

सभामें प्रविष्ट होकर प्रीतिमान् और चित्तके ज्ञाता राजाके सिंहासनमें ही सारेसे रोककर

दृष्टिको करके किसी इतर मनुष्यकी ओर न देखै ॥ १२ ॥

अग्निंदीप्तमिवासीदेद्राजानमुपशिक्षितः ।
आशीविषमिवक्रुद्धंप्रभुंप्राणधनेश्वरम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर शिक्षाको प्राप्त होकर अपने प्राण और धनके ईश्वर प्रभू (राजा) के समीप इस प्रकार कि मानो प्रज्वल अग्निरूप है और क्रोधी सर्पके समान है ॥ १३ ॥

यत्नेनोपचरेन्नित्यंनाहमस्मीतिचिन्तयेत् ।
समर्थयंश्चतत्पक्षंसाधुभाषेतभाषितम् ॥ १४ ॥

सेवक बड़े यत्नसे स्वामीकी सेवा करै जानों मैं हूँ नहीं और स्वामीके पक्षकी पुष्टि करता हुआ कोमल वाणीसे भाषण करै ॥१४॥

तन्नियोगेनवाब्रूयादर्थंसपरिनिश्चितम् ।
सुखप्रबंधगोष्ठीषुविवादेवादिनांमतम् ॥१५॥

अच्छा है प्रबन्ध जिनमें ऐसी सभाओंमें विवादियोंके मतको और राजाकी आज्ञासे अच्छी तरह युक्तिसे बोलै ॥ १५ ॥

विजानन्नपिनोब्रूयाद्भर्तुःक्षिप्रोत्तरंवचः ।
सदानुद्धतवेषःस्यान्नृपाहूतस्तुप्रांजलिः १६॥

स्वामीके प्रश्नका उत्तर जानता हुआ भी शीघ्र न दे और सेवक उद्दण्ड वेषको कदाचित् भी धारण न करै और राजा जब बुलावे तब हाथ जोड़कर खड़ा रहै ॥ १६ ॥

तद्वाक्कृतनतिःश्रुत्वावस्त्रांतरितसंमुखः ।
तदाज्ञांधारयित्वादौस्वकर्माणिनिवेदयेत् १७॥

राजाकी बाणीको प्रणाम करके सुनकर और वस्त्रकी ओटमें राजाके सन्मुख होकर और प्रथम राजाकी आज्ञाको लेकर अपने कार्योंको निवेदन करै ॥ १७ ॥

नत्वासीतासनेप्रह्वस्तत्पार्श्वेसंमुखोऽज्ञया ।
उच्चैः प्रहसनंकासष्ठेविनंकुत्सनंतथा ॥ १८ ॥

राजाके समीप आसनपर उद्धृत होकर न बैठे और सन्मुख आज्ञासे बैठे ऊँचे स्वरसे हँसी, थूँकना और किसीकी निन्दा न करै ॥ १८ ॥

जृंभणंगात्रभंगंचपर्वास्फोटंचवर्जयेत् ।
राज्ञादिष्टंतुयत्स्थानंतत्रतिष्ठेन्मुदान्वितः ॥ १९ ॥

जम्भाई अंगका भंग (आलस्यसे जोडीका चटकाना) (मटकाना) राजाने जो स्थान बता दिया है वहांही आनन्दसे बैठा रहे १९॥

प्रवीणोचितमेधावीविजयेदभिमानताम् ।
आपद्युन्मार्गगमनेकार्यकालात्ययेषुच ॥२०॥

प्रवीण (कुशल) उत्तम बुद्धिमान् पुरुष अभिमानको त्याग दे आपत्ति और कुमार्गकी प्राप्ति (हलन) और कार्यके नाशमें भी राजाका हित चाहै ॥ २० ॥

अपृष्टोपिहितान्वेषीब्रूयात्कल्याणभाषितम् ।
प्रियंतथ्यंचपथ्यंचवदेद्धर्मार्थकंवचः ॥ २१ ॥

राजाके कल्याणकी इच्छा करनेहारा सेवक विना पूछे भी कल्याणरूपी हो वचन कहै और वह वचन भी प्रिय सत्य हितकारी और धम और अर्थके अनुकूल हो ॥ २१ ॥

समानवार्तयाचापितद्धितंबोधयेत्सदा ।
कीर्तिमन्यनृपाणांवावदेन्नीतिफलंतथा ॥ २२ ॥

अपने सहयोगियोंके संग वार्तासे राजाके हितको ही बोधन करै और इतर राजाओंकी कीर्ति और न्यायके फलको भी बोधन करै॥२२

दातात्वंधार्मिकः शूरोनीतिमानसिभूपते ।
अनीतिस्तेतुमनसिवर्ततेनकदाचन ॥ २३ ॥

हे राजन् तुम दाता और धर्मके कर्ता और न्यायके ज्ञाता हो और कदाचित् भी तुम्हारे मनमें अन्याय नहीं वर्तता है ॥ २३ ॥

येयेभ्रष्टाअनीत्यातांस्तदग्रेकीर्तयेत्सदा ।
नृपेभ्योह्यधिकोसीतिसर्वेभ्योनविशेषयेत् ॥

अन्यायसे जो जो राजा नष्ट हो गये हैं उनको राजाके आगे सदा कीर्तन करै और राजासे ऐसे न कहै कि तुम सम्पूर्ण राजाओंसे अधिक हो ॥ २४ ॥

परार्थंदेशकालज्ञोदेशकालेचसाधयेत् ।
परार्थनाशनंनस्यात्तथाब्रूयात्सदैवहि ॥ २५ ॥

देश और कालका ज्ञाता सेवक इतरके प्रयोजनको सम्पूर्ण देश और कालमें सिद्ध करै और परके प्रयोजनका नाश जैसे न हो इसी प्रकार सदा राजासे कहै ॥ २५ ॥

नकर्षयेत्प्रजांकार्यमिषतश्च नृपः सदा ।
अपिस्थाणुवदासीतशुष्यन्परिगतः क्षुधा२६॥

राजा किसीकार्यके मिषसे प्रजाको दुःखित न करै चाहे क्षुधासे पीडित सूखते हुए वृक्षके समान भी स्थित रहै ॥ २६ ॥

नत्वेवानर्थसम्पन्नांवृत्तिमीहेतपंडितः ।
यत्कार्येयोनियुक्तः स्याद्भूयात्तत्कार्यतत्परः॥

अनर्थसे युक्त आजीविकाकी पंडित चेष्टा कभी न करै और जिस कार्यमें जो नियुक्त हो उसी कार्यमें तत्पर रहै ॥ २७ ॥

नान्याधिकारमन्विच्छेन्नाभ्यसूयाच्चकेनचित् ।
नन्यूनंलक्षयेत्कस्यपूरयीतस्वशक्तितः ॥२८॥

अनर्थके कार्यकी इच्छा और निन्दा न करै और जो किसीकी न्यूनता अपनेको प्रतीत हो जाय तौ अपनी शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण करदे ॥ २८ ॥

परोपकरणादन्यन्नस्यान्मित्रकरंसदा ।
करिष्यामीतितेकार्यंनकुर्यात्कार्यलम्बनम् ॥

परके उपकारसे इतर मित्रका और कोईकर्तव्य नहींहैऔर मैं तेराकार्य सदा करूंगा ऐसा कहकर कार्यके करनेमेंविलम्ब न करै ॥ २९ ॥

द्राक्कुर्यात्तुसमर्थश्चेत्नाशंदीर्घंनरक्षयेत् ।
गुह्यंकर्मचमंत्रंचनभर्तुःसंप्रकाशयेत ॥ ३० ॥

जो समर्थ हो तौ कार्यको शीघ्र करै और बहुत दिनका विश्वास न दे और अपने स्वामी के गुप्त कार्य और मन्त्रका प्रकाश न करै॥३०॥

विद्वेषंचविनाशंचमनसापिनचिंतयेत् ।
राजापरममित्रोऽस्तिनकामंविचरेदिति ॥३१॥

मनमेंभी किसीके द्वेष और नाशकी चिंता न करै और मेरा राजा परम मित्रहै इस विश्वास से यथेच्छ न विचरै ॥ ३१ ॥

स्त्रीभिस्तदर्थिभिः पापैर्वैरिभूतैर्निराकृतैः ।
एकार्थचर्यासाहित्यंसंसर्गंचविवर्जयेत्॥ ३२ ॥

स्त्री स्त्रियोंके रसिक पापी राजाने जिनको निकास दिया हो इनके संग वास और संबंध को त्याग दे ॥ ३२ ॥

वेषभाषानुकरणंनकुर्यात्पृथवीपतेः ।
संपन्नोपिचमेधावीनस्पर्धेतचतद्गुणैः ॥३३॥

विद्वान् मनुष्य संपन्नहोकरभी राजाके वेष और भाषाका अनुकरण न करै राजाके गुणों की ईर्ष्याभी न करै ॥ ३३ ॥

रागापरागौजानीयाद्भर्तुः कुशलकर्मवित् ।
इंगिताकारचेष्टाभ्यस्तदभिप्रायततथा ॥३४॥

कुशल कर्मका ज्ञाता मनुष्य इंगित आकार और चेष्टासे राजाकी प्रीति क्रोध और अभिप्रायको जानै ॥ ३४ ॥

तद्दत्तवस्त्रभूषादिचिह्नंसंधारयेत्सदा ।
न्यूनाधिक्यंस्वाधिकारकार्येनित्यंनिवेदयेत् ३५

राजाके दियेहुए वस्त्र आभूषण आदि चिह्नको सदा धारणकरै और अपनी पदवीके न्यूनऔर अधिक कार्यको प्रतिदिन निवेदन करै ॥३५॥

तदर्थीतत्कृतांवार्तांशृणुयाद्वापिकीर्तयेत् ।
चारसूचकदोषेणत्वन्यथायद्वदेन्नृपः ॥३६॥

राजाके प्रजाजनकी और आज्ञाकी की हुई वार्त्ता को सुने दूत और सूचकके दोषसे जो कुछ राजा अन्यथा कहै ॥ ३६ ॥

शृणुयान्मौनमाश्रित्यतथ्यवन्नानुमोदयेत् ।
आपद्गतंसुभर्तारंकदापिनपरित्यजेत् ॥ ३७ ॥

तौ उसे मौन होकर सुनै और सत्यके समान उसमें संमति न दे और आपत्तिके समय श्रेष्ठ स्वामीको कदापि न त्यागै ॥ ३७ ॥

एकवारमप्यशितंयस्यान्नंह्यादरेणच ।
तदिष्टंचिंतयेन्नित्यंपालकस्यांजसानकिम् ३८॥

एकवारभी जिसके अन्नका आदरसे भक्षण किया हो उस पालकके इष्टकी चिन्ता सुखक्यो न करै अर्थात् अवश्य करै ॥ ३८ ॥

अप्रधानः प्रधानः स्यात्कालेचात्यंतसेवनात् ।
प्रधानोप्यप्रधानः स्यात्सेवालस्यादिनायतः३९

क्योंकि समयपर अत्यंत सेवा करनेसे अप्रधानभी मनुष्य प्रधान हो जाता है और सेवा करनेमें आलस्यसे प्रधानभी अप्रधान होजाता है ॥ ३९ ॥

नित्यंसंसेवनरतोभृत्योराज्ञः प्रियोभवेत् ।
स्वस्वाधिकारकार्यंयद्राक्कुर्यात्सुमनायतः४०

नित्यसेवामें जो तत्पर होता है वह भृत्य राजाका प्रिय होता है क्योंकि अपने २ अधिकारके कामको प्रसन्नमन होकर शीघ्र करै ॥ ४० ॥

नकुर्यात्सहसाकार्यंनीचंराजापिनोदिशेत् ।
तत्कार्यकारकाभावेराज्ञाकार्यंसदैवहि ४१

और कार्यको शीघ्र न करै और राजाभी नीच मनुष्यको कार्य करनेको न कहै यदि उस कार्यका करनेवाला न होय तो राजा स्वयं उस कामको करै ॥ ४१ ॥

कालेयदुचितंकर्तुंनीचमप्युत्तमोर्हति ।
यस्मिन्प्रीतोभवेद्राजातदनिष्टंनाचिंतयेत् ४२॥

और किसी समयपर उत्तम पुरुषभी नीच कर्म करनेको योग्य होता है और जिस मनुष्यपर राजाकी प्रसन्नता है उसके अनिष्टकी चिंता न करै ॥ ४२ ॥

नदर्शयेत्स्वाधिकारगौरवंतुकदाचन ।
परस्परंनाभ्यसूयुर्नभेदंप्राप्नुयुःकदा ॥ ४३ ॥

अपने अधिकारके गौरव (बड़ाई) को कदाचित् भी न दिखावे और राजाके वे पुरुष परस्पर निन्दा और भेदको न करैं ॥ ४३ ॥

राज्ञाचाधिकृताःसंतःस्वस्वाधिकारगुप्तये ।
अधिकारिगणोराजासद्वृत्तौयत्रतिष्ठतः॥४४॥

जो अपने २ अधिकारकी रक्षाके लिये राजाने नियत किये हों, अधिकारियोंका समूह और राजा ये दोनों जहां सदाचारमें तत्पर रहते हैं ॥ ४४ ॥

उभौतत्रस्थिरालक्ष्मीर्विपुलासंमुखीभवेत् ।
अन्याधिकारवृत्तंतुनब्रूयाच्छ्रुतमप्युत ४५

वहां लक्ष्मी स्थिर और बहुत और सन्मुख होती है और अन्यके अधिकारके वृत्तांतको सुनकर भी न कहै ॥ ४५ ॥

राजानशृणुयादन्यमुखतस्तुकदाचन ।
नबोधयंतिचहितमहितंचाधिकारिणः॥४६ ॥

और राजाभी अन्यके मुखसे अन्यका वृत्तांत न सुने और अधिकारी हित और अहितका बोधन न करै ॥ ४६ ॥

प्रच्छन्नवैरिणस्तेतुदासरूपमुपाश्रिताः ॥
हिताहितंनश्रृणोतिराजामंत्रिमुखाच्चयः॥४७॥

वे दासरूपको प्राप्त हुए गुप्तवैरी हैं और जो राजा मन्त्रियोंके मुखसे हित और अहितको न सुनै ॥ ४७ ॥

सदस्यूराजरूपेणप्रजानांधनहारकः ।
सुपुष्टव्यवहारायेराजपुत्रैश्चमंत्रिणः ॥ ४८ ॥

वह राजा राजाका रूप धारे प्रजाके धनका हरनेहारा चोर है और जो मन्त्री राजाके पुत्रोंके संग प्रबल व्यवहार करते हैं वही मंत्री हैं ॥ ४८ ॥

विरुध्यंतिचतैःसार्कंतुप्रच्छन्नतस्कराः ।
बालाअपिराजपुत्रानावमान्यास्तुमंत्रिभिः४९॥

और जो मंत्री राजपुत्रोंके संग विरोध करते हैं वे गुप्त तस्कर हैं और बालकभी राजपुत्रोंका अपमान न करना ॥ ४९ ॥

सदासुबहुवचनैःसंबोध्यास्तेप्रयत्नतः ।
असदाचरितंतेषांकाचिद्राज्ञेनदर्शयेत् ॥ ५० ॥

और राजाके पुत्रोंको सदा भली प्रकार बहुवचनके (यथा भो राजकुमाराः) संबोधन करै और उनके दुराचार राजाको न दिखावै ॥ ५० ॥

स्त्रीपुत्रमोहोबलवांस्तयोर्निंदानश्रेयसे ।
राज्ञोवश्यतरंकार्यंमाणसंज्ञापितंचयत् ॥ ५१ ॥

स्त्री और पुत्रका मोह बलवान् है इससे उनकी निंदा कल्याणकारिणी नहीं है राजा का अत्यंत आवश्यक कार्य करै और जहां प्राणोंका संशय हो ॥ ५१ ॥

आज्ञापयाग्रतश्चाहंकरिष्येतत्तुनिश्चितम् ।
इतिविज्ञाप्यद्राक्कर्तुंप्रयतेतस्वशक्तितः ॥५२ ॥

मैं आपके आगे स्थित हूँ आज्ञा दीजिये और सब कायको निश्चयसे करूंगा ऐसे राजाकी आज्ञासे और अपनी शक्तिके अनुसार शीघ्र करनेमें यत्न करे ॥ ५२ ॥

प्राणानपिचसंदद्यान्महत्कार्येनृपायच ।
भृत्यःकुटुंबपुष्ट्यर्थंनान्यथातुकदाचन ॥५३॥

बडे कार्यमें राजा और अपने कुटुम्बके निमित्त भृत्य अपने प्राणोंकोभी दग्ध करदे और इतरके निमित्त दग्ध न करे ॥ ५३ ॥

भृत्याधनहराःसर्वेयुक्त्याप्राणहरोनृपः ।
युद्धादौसुमहत्कार्येभृत्यप्राणान्हरेन्नृपः ॥

वेतन (नोकरी) से धनके हरनेहारे सब भृत्य हैं और युक्तिसे प्राणोंको हरनेहारा राजा है क्योंकि युद्ध आदि बडे कार्योंमें राजा भृत्योंके प्राण हरता है ॥ ५४ ॥

नान्यथाभृतिरूपेणभृत्योराजधनंहरेत् ।
अन्यथाहरतस्तौतुभवतश्चस्वनाशकौ॥ ५५ ॥

भृत्य अपने वेतनसे राजाके धनको हरै अन्यथा हरते हुए राजा और भृत्य अपनेही नाशकर्त्ता होते हैं ॥ ५५ ॥

राजानुयुवराजस्तुमान्योमात्यादिकैःसदा ॥
तन्न्यूनामात्यनवकंतन्न्यूनाधिकृतोगणः ॥

राजाके अनुसार युवराजको भी मन्त्री सदा माने और युवराजसे न्यून नौ मन्त्री और मन्त्रियोंसे न्यून नीचेके अधिकारी गणहैं॥५६॥

मंत्रितुल्यश्चायुतिकोन्यूनःसाहस्रिकोमतः ।
नक्रीडयेद्राजसमंक्रीडितेतंविशेषयेत् ॥५७ ॥

दश सहस्रका अधिपति मन्त्रीके तुल्य है और उससे न्यून सहस्रका अधिपति माना है और राजाके संग क्रीडा न करै, करै भी तौ राजाको अधिक मानै ॥ ५७ ॥

नावमान्याराजपत्नीकन्याद्यापिचमंत्रिभिः ।
राजसंबंधिनःपूज्याःसुहृदश्चयथार्हतः ॥५८ ॥

राजाकी पत्नी और कन्या आदिका मंत्री आदि अपमान न करै, राजाके संबंधी और मित्र इनका यथायोग्य पूजन करना चाहिये ५८

नृपाहूतस्तुरंगच्छेत्त्यक्त्वाकार्यशतंमहत् ।
मित्रायापिनवक्तव्यंराजकार्यंसुमंत्रितम् ॥५९॥

राजाके बुलानेपर अपने बडे सकडों कार्य को त्याग कर शीघ्र जाय, भलीप्रकार मन्त्रित (निश्चित) राजाका कार्य मित्रकोभी न बतावै ॥ ५९ ॥

भृतिंविनाराजद्रव्यमदत्तंनाभिलाषयेत् ।
राजाज्ञयाविनानेच्छेत्कार्यमाध्यस्थिकींभृतिम् ॥

अपनी भृति (मासिक) के बिना राजाके द्रव्यकी विना दिये इच्छा न करै और राजाकी आज्ञाके विना मध्यस्थ अधिक भृतिकीभी इच्छा न करै ॥ ६० ॥

ननिहन्याद्द्रव्यलोभात्तत्कार्यंयस्यकस्यचित् ।
स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैःकालेसंरक्षयेन्नृपम् ६१

और जिस किसीके कार्यको द्रव्यके लोभसे नष्ट न करै और अपनी स्त्री पुत्र धन प्राणोंसे समयपर राजाकी रक्षा करै ॥ ६१ ॥

उत्कोचंनैवगृह्णीयान्नान्यथाबोधयेन्नृपम् ।
अन्यथादंडकंभूपंनित्यंप्रबलदंडकम् ६२ ॥

और उत्कोच (रिसवत) को ग्रहण न करै और समय पर राजाको बोध करादे कि अन्यथा दंड और प्रबल दण्ड देनेवाले राजाको ॥ ६२ ॥

निगृह्यबोधयेत्सम्यगेकांतेराज्यगुप्तये ।
हितंराज्ञश्चाहितंयल्लोकानांतत्रकारयेत् ॥६३ ॥

बलात्कारसे एकांतमें राज्यकी रक्षाके लिये भलीप्रकार बोधित करै (समझावै) और उससमय वह काम करावे जिसमें राजाका हित हो और लोकोंका अहित हो ॥ ६३ ॥

नवीनकरशुल्कादेर्लोकउद्विजतेततः ।
गुणनीतिबलद्वेषीकुलभूतोप्यधार्मिकः ॥ ६४॥

नवीन कर (दंड) और शुल्क (महसूल) से लोक दुःखित होते हैं और कुलीनभी राजा जो गुणनीति सेनाका द्वेष करता है वह अधार्मिक है॥ ६४॥

नृपोयादिभवेत्तंतुत्यजेद्राष्ट्रविनाशकम्।
तत्पदेतस्यकुलजंगुणयुक्तंपुरोहितः ॥ ६५ ॥

जो राजाही अपने राज्यको नष्ट करता होय तौ पुरोहित उसके स्थानमें गुणयुक्त उसके कुलसे उत्पन्नको॥ ६५॥

प्रकृत्यनुमतिंकृत्वास्थापयेद्राज्यगुप्तये ।
सास्त्रोदूरंनृपात्तिष्ठेदस्त्रपाताद्बहिःसदा ॥ ६६ ॥

प्रकृतियोंकी संमतिसे राज्यकी रक्षाके निमित्त स्थापन करै, अस्त्रधारी मनुष्य राजाके दूर अस्त्रके पातके भयसे बाहर सदैव टिके॥ ६६॥

सशस्त्रोदशहस्तंतुयथादिष्टंनृपप्रियाः ।
पंचहस्तंवसेयुर्वैमंत्रिणोलेखकाः सदा ॥ ६७॥

शस्त्र सहित जो राजाके प्यारे हैं वे राजा की आज्ञाके अनुसार दशहाथ और मन्त्री व लेखक पांच हाथके अन्तरसे रहैं॥ ६७॥

सेनपैस्तुविनानैवसशस्त्रास्त्रोविशेत्सभाम् ।
पुरोहितःश्रेष्ठतरःश्रेष्ठःसेनापतिःस्मृतः ६८ ॥

शस्त्र और अस्त्र सहित कोई भी मनुष्य सेनापतियोंके विना सभामें न जावे, पुरोहित सर्वोत्तम है और सेनापति उत्तम कहा है॥ ६८॥

समःसुहृच्चसंबंधीह्युत्तमामंत्रिणःस्मृताः ।
अधिकारिगणोमध्योऽधमौदर्शकलेखकौ ६९॥

मित्र और सम्बन्धी समहैं(नउत्तमनमध्यम) और मन्त्री उत्तम कहे हैं अधिकारियोंका समूह मध्यम है और देखनेहारे और लिखारी अधम हैं॥ ६९॥

ज्ञेयाधमतमोभृत्यःपरिचारगणःसदा ।
परिचारगणान्न्यूनोविज्ञेयोनीचसाधकः ७०॥

दास और टहलवे अत्यन्त अधम हैं और नीच कार्यके कर्त्ता इनसे भी अधम जानने योग्य हैं॥ ७०॥

पुरोगमनमुत्थानंस्वासनेसन्निवेशनम् ।
कुर्यात्सुकुशलप्रश्नंक्रमात्सुस्मितदर्शनम् ॥

सन्मुख गमन अभ्युत्थान अपने आसनपर बैठाना कुशल पूछना हँसकर देखना इन्हें क्रमसे॥ ७१॥

राजापुरोहितादीनांत्वन्येषांस्नेहदर्शनम् ।
अधिकारिगणादीनांसभास्थश्चानिरालसः ७२॥

राजा पुरोहितादिकोंसे करै और इतर जनोंको प्रीतिसे देखै और सभामें स्थित पुरुष आलस्यको छोडकर अधिपति आदिकोंसे इसीप्रकार आचरण करै॥७२॥

विद्यावत्सुशरच्चंद्रोनिदाघार्कोद्विषत्सुच ।
प्रजासुचवसंतार्कइव स्यात्त्रिविधोनृपः ७३

विद्यावानों में शरदऋतुके चन्द्रमाके समान शत्रुओंमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान प्रजाओं में वसन्त ऋतुके सूर्यके समान तीन प्रकारसे राजा रहै॥ ७३॥

यदिब्राह्मणभिन्नेषुमृदुत्वंधारयेन्नृपः ।
परिभवंतितंनीचायथाहस्तिपकागजम् ७४

जो राजा ब्राह्मणसे इतर जातियोंमें कोमल रहै तौ नीच उसे इस प्रकार तिरस्कृत करते हैं जैसे पीलवान् हाथीको॥ ७४॥

भृत्याद्यैर्नकर्तव्यःपरिहासश्चक्रीडनम् ।
अपमानास्पदंतेतुराज्ञोनित्यंभयावहम् ७५

भृत्यादिके संग हसी और कीलन न करै और तिरस्कारवालेके संग हँसी और कीलन तौ भयके दाता हैं॥ ७५॥

पृथक्पृथक्ख्यापयंतिस्वार्थसिद्ध्यैनृपायते।
स्वकार्येगुणवक्तृत्वात्सर्वेस्वार्थपरायतः ॥७६॥

अपने २ प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त वे अभिमानी पुरुष पृथक् २ विख्यात करते हैं और वे अपने कार्यके गुणके वक्ता हैं इससे स्वार्थमें तत्पर हैं॥ ७६॥

विकल्पंतेवमन्यंतेलंघयंतिचतद्वचः ।
राजभोज्यानिभुंजंतिनातिष्ठंतिस्वकेपदे ॥७७ ॥

और अपमान (तिरस्कार) के भेदसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वे तिरस्कार करते हैं और राजाके वचनका अवलंघन करते हैं और राजाके भोग्य पदार्थोंको भोगते हैं और अपनी पदवी पर नहीं टिकते ॥ ७७ ॥

विस्रंसयंतितन्मंत्रंविवृण्वंतिचदुष्कृतम् ।
भवंतिनृपवेषाहिंवंचयंतिनृपंसदा ॥ ७८ ॥

राजाके मन्त्रका भेद करते हैं और राजा के निन्दित कर्मका प्रकाश करते हैं और राजाके समान वेषको धारते हैं और सदा राजाको ठगते हैं ॥ ७८ ॥

तत्स्त्रियंसज्जयंतिस्मराज्ञिक्रुद्धेहसंतिच ।
व्याहरंतिचनिर्लज्जोहलयंतिनृपंक्षणात् ॥७९॥

राजाकी स्त्रीके संग व्यभिचार करते हैं, राजाके क्रोध हुए पर हँसते हैं, निर्लज्ज होकर बोलते हैं और क्षणभरमें राजाको ठगलेते हैं ॥ ७९ ॥

आज्ञामुल्लंघयंतिस्मनभयंयांत्यकर्मणि ।
एतेदोषाःपरीहासक्षमाक्रीडोद्भवानृपे ॥ ८०॥

राजाकी आज्ञा अवलंघन करते हैं और बुराकर्म कियेपर भय नहीं मानते ये दोष राजामें मंत्रियोंके संग क्षमा और क्रीडासे उत्पन्न होते हैं ॥ ८० ॥

नकार्यंभृतकःकुर्यान्नृपलेखाद्विनाक्वचित् ।
नाज्ञापयेल्लेखनेनविनाल्पंवामहन्नृपः ८१ ॥

राजाके लेखविना कदाचित् भी भृत्य कार्य न करै और राजा भी लेखविना अल्प अथवा अधिककी आज्ञा नदे ॥ ८१ ॥

भ्रांतिःपुरुषधर्मत्वाल्लेख्यंनिर्णायकंपरम् ।
अलेख्यमाज्ञापयतिह्यलेख्यंयत्करोतियः ॥

भ्रम पुरुषका धर्म है इससे लेखही परम निर्णय कर्ता है जो विना लिखे राजा कार्यकी आज्ञा दे और विनालिखे जो करै ॥ ८२ ॥

राजकृत्यमुभौचोरौतौभृत्यनृपतीसदा ।
नृपसंचिह्नितंलेख्यंनृपस्तन्ननृपोनृपः ॥ ८३ ॥

वे दोनों भृत्य और राजा सदा चोर हैं राजाकी मुद्रासे चिह्नित जो लेख वही राजा है और राजा राजा नहीं है ॥ ८३ ॥

समुद्रंलिखितंराज्ञोलेख्यंतच्चोत्तमोत्तमम् ।
उत्तमंराजलिखितंमध्यमंमन्त्र्यादिभिःकृतम्॥

मुद्रा (मोहर) सहित जो राजाका लेख है वह उत्तमसेभी उत्तम है और जो मन्त्री आदिकोंका लेख है वह मध्यम है॥८४॥

पौरलेख्यंकनिष्ठंस्यात्सर्वसंसाधनक्षमम् ।
यस्मिन्यस्मिन्हिकृत्येतुराज्ञायोधिकृतोनरः८५

पुरवासियोंका लेख अधम है जो संपूर्ण साधनोंसे योग्य हो जिस २ कार्यमें राजा ने जिस २ को अधिकार देरक्खा है वह मनुष्य ॥ ८५ ॥

सामात्ययुवराजादिर्यथानुक्रामतश्चसः ।
दैनिकंमासिकंवृत्तंवार्षिकंबहुवार्षिकम् ॥८६॥

मंत्री और युवराज सहित यथा क्रमसे दिन २ का दैनिक और महीनेका मासिक और वर्षोंका वार्षिक और बहुत वर्षोंका बहुवार्षिक ॥ ८६ ॥

तत्कार्यजातलेख्यंतुराज्ञेसम्यङ्निवेदयेत् ।
राजांकितलेख्यस्ययधारयेत्स्मृतिपत्रकम् ८७

और मासिक आदिकोंके लेखको अच्छीतरह निवेदन करै और राजाके मुद्रासहित लेखके स्मृतिपत्र (रसीद) को भी धारण करै ॥ ८७ ॥

कालेतीतेविस्मृतिर्वाभ्रांतिः संजायतेनृणाम् ।
अनुभूतस्यस्मृत्यर्थंलिखितंनिर्मितंपुरा ॥८८॥

बहुत कालके बीते पीछे मनुष्योंको भूल अथवा भ्रम हो जाता है इससे अनुभूत (जाने हुए) की स्मृतिके वास्ते पूर्व (प्रथम) लेखको रचा है ॥ ८८ ॥

यत्नात्तुब्रह्मणावाचांवर्णस्वरविचिह्नितम् ।
वृत्तलेख्यंतथाचायव्ययलेख्यमितिद्विधा॥८९॥

ब्रह्माने यत्नसे वाणी वर्ण स्वरसे युक्त लेखको और वृत्तांतको आयव्यय (लेन-देन) के भेदसे दो प्रकारका लेख रक्खा है ॥ ८९ ॥

व्यवहाराक्रियाभेदादुभयंबहुतांगतम् ।
यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तंसोत्तरक्रियम् ९०॥

व्यवहारके कार्योंके भेदसे वह दोनों प्रकारका लेख बहुत हो जाता है और आज्ञाके अनुकूल कर्त्तव्य अर्थसे युक्त और उत्तर क्रिया (आगे करना) के सहित ॥ ९० ॥

सावधारणकंचैवजयपत्रकमुच्यते ।
सामंतेष्वथभृत्येपुराष्ट्रपालादिकेपुयत् ॥९१॥

जिससे निश्चय जीतको माने उसे जयपत्र कहते हैं और जिससे सामंत (पासकेराजा) भृत्य, राष्ट्रपाल (जमींदार) आदिकोंमें आज्ञा दी जाय ॥ ९१ ॥

कार्यमादिश्यतेयेनतदाज्ञापत्रमुच्यते ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमन्येष्वभ्यर्चितेपुच९२॥

पूर्वोक्त सामंत आदिकोंको जिससे कार्यकी आज्ञा दीजाय उसे आज्ञापत्र कहते हैं ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और इतर पूजितोंको ॥ ९२ ॥

कार्यनिवेद्यतेयेनपत्रंप्रज्ञापनंहितत् ॥
सर्वैश्शृणुतकर्तव्यमाज्ञयाममनिश्चितम् ॥९३॥

जिससे कार्यका निवेदन कियाजाय उसे प्रज्ञापन पत्र कहते हैं संपूर्ण मेरी आज्ञासे निश्चित कर्तव्यको सुनो ॥ ९३ ॥

स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंपत्रमेवतत् ।
देशादिकंयस्यराजालिखितेनप्रयच्छति ॥९४॥

अपने हस्त और कालसे संयुक्त वह शिक्षापत्र कहाता है और राजा अपने लेखसे देश आदि जिसको देता है ॥ ९४ ॥

सेवाशौर्यादिभिस्तुष्टः प्रसादलिखितंहितत् ।
भोगपत्रंतुकरदकृतंचोपायनीकृतम् ॥९५ ॥

सेना अथवा शूरवीरतासे प्रसन्न होकर जो राजा देता है वह तोषपत्र कहाता है कर और भेटका पत्र भोगपात्र कहाता है ॥ ९५ ॥

पुरुषावधिकंतत्तुकलावधिकमेववा ।
विभक्तायेचभ्रात्राद्याःस्वरुच्यातुपरस्परम् ९६

और वह पत्र पुरुषकी अवधि पर्यंत अथवा कालकी अवधि पर्यन्त होता है और जो अपनी अपनी रुचिसे विभक्त (जुदेहुए) भ्राता आदि ॥ ९६ ॥

विभागपत्रंकुर्वंतिभागलेख्यंतदुच्यते ।
गृहभूम्यादिकंदत्त्वापत्रंकुर्यात्प्रकाशकम् ९७॥

विभागके पत्रको करैं उसे भागलेख्य कहते हैं, घर और भूमि आदिको देकर प्रकाशके अर्थ पत्रको करै ॥ ९७ ॥

अनाच्छेद्यमनाहार्यंदानलेख्यंतदुच्यते ।
गृहक्षेत्रादिकंक्रीत्वातुल्यमूल्यप्रमाणयुक् ॥

और वह पत्र अनाच्छेद्य (मजबूत) हो और हरनेके अयोग्य हो उसे दान लेख्य कहते हैं घर और क्षेत्र आदिका क्रयण (खरीद) कर तुल्यमूल्य और प्रमाणसे युक्त ॥ ९८ ॥

पत्रंकारयतेयत्तुक्रयलेख्यंतदुच्यते ।
जंगमस्थावरंबद्धंकृत्वालेख्यंकरोतियत् ॥

जो पत्र कराया जाता है उसे क्रयण लेख्य कहते हैं जंगम और स्थावरका बद्ध करके जो लेख्य की जाती है ॥ ९९ ॥

ग्रामोदेशश्चयत्कुर्यात्सत्यलेखपरस्परम् ।
राजाविरोधिधर्मार्थंसंवित्पत्रंतदुच्यते ॥१००॥

ग्राम अथवा देश जो परस्पर लेख करते हैं राजाके अविरोधसे और धर्मके अर्थ जो किया जाता है उसे संवित्पत्र कहते हैं ॥ १०० ॥

वृद्ध्याधनंगृहीत्वातुकृतंवाकारितंचयत् ।
ससाक्षिमत्तत्प्रोक्तमृणलेख्यंमनीषिभिः ॥

व्याजपर धनको लेकर किया और कराया साक्षिक सहित जो लेख उसको बुद्धिमानोंने ऋणलेख्य कहा है ॥ १ ॥

अभिशापेसमुत्तीर्णेप्रायश्चित्तेकृतेबुधैः ।
दत्तंलेख्यंसाक्षिमद्यच्छुद्धिपत्रंतदुच्यते ॥२॥

लोकके अतिवादकी निवृत्ति हुए पीछे और प्रायश्चित्तके अनन्तर पंडितोंने दिये साक्षियुक्त लेखको शुद्धिपत्र कहते हैं ॥ २ ॥

मेलयित्वास्वधनांशान्व्यवहारायसाधकाः ।
कुर्वंतिलेखपत्रंयत्तत्त्सामायिकंस्मृतम् ॥ ३ ॥

अपने अपने धनके भागको मिला कर किसी व्यवहारकी सिद्धिके अर्थ जो लेख पत्र करते हैं उसे सामायिक पत्र कहते हैं ॥ ३ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासद्भिर्नयः कृतः ।
तत्पत्रंवाद्यमान्यंचज्ञेयंसंमतिपत्रकम् ॥ ४ ॥

सभासदोंने जो सभ्य अधिकार और प्रजाओंका न्याय किया है तिसका जो जानने लिये पत्र उसे संमतिपत्र कहते हैं ॥ ४ ॥

स्वकीयवृत्तज्ञानार्थंलिख्यतेयत्परस्परम् ।
श्रीमंगलपदाद्यंवासपूर्वोत्तरपक्षकम् ॥ ५ ॥

अपने वृत्तांतके ज्ञानके अर्थ श्री अथवा मांगलिकपद जिसके आदिमें हों, परस्पर लिखाजाय, जिसमें पूर्व और उत्तर दोनों पक्ष हों ॥ ५ ॥

असंदिग्धमगूढार्थंस्पष्टाक्षरपदंसदा ।
अन्यव्यावर्तकस्वात्मपरापित्रादिनामयुक्॥६॥

और जिसमें संदेह न हो और जिसके पद, अक्षर, अर्थ ये स्पष्ट हों और जिसमें अन्यकी व्यावृत्तिके अर्थ अपने पिता आदिका नाम हो ॥ ६ ॥

एकद्विबहुवचनैर्यथार्हस्तुतिसंयुतम् ।
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥७॥

एकवचन, द्विवचन और बहुवचनोंसे यथोचित स्तुतिके संयुक्त और वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति आदिसे निश्चित हो ॥ ७ ॥

कार्यबोधिसुसंबंधनत्याशीर्वादपूर्वकम् ।
स्वाम्यसेवकसेव्यार्थक्षेमपत्रंतुतत्स्मृतम् ॥८॥

जो पत्र कार्यका बोधक हो और जिसका सम्बन्ध भली प्रकार मिलता हो नमस्कार और आशीर्वाद जिसमें हो स्वामी सेवक सेवनेयोग्य जिससे प्रतीत हो उसको क्षेमपत्र कहते हैं ॥ ८ ॥

एभिरेवगुणैर्युक्तंस्वावपर्कविबोधकम् ।
भाषापत्रंतुतज्ज्ञेयमथवावेदनार्थकम् ॥ ९ ॥

इनहीं गुणोंसे युक्त और अपने दुःखका बोधक अथवा बतानेका जो पत्र उसे भाषापत्र कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रदर्शितंवृत्तलेख्यंसमासाल्लक्षणान्वितम् ।
समासात्कथ्यतेचान्यच्छेषायव्ययबोधकम्१०

दिखाया जो वृत्तांत लेख्य और संक्षेप से जिसमें लक्षण हो और संक्षपसे ही जिसमें शेष आमदनी व्यय (खर्च हो) ॥ १० ॥

व्याप्यव्यापकभेदैश्चमूल्यमानादिभिः पृथक् ।
विशिष्टसंज्ञितैस्तद्धियथार्थैर्बहुभेदयुक् ॥११॥

न्यून और अधिक भेदों तथा तोल और प्रमाण आदिसे विशिष्ट (उत्तम) हो और यथार्थ अनेक प्रकारके भेदसे जो युक्त हो ॥ ११ ॥

वत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने ।
हिरण्यपशुधान्यादिस्वाधीनंचायसंज्ञकम् १२॥

वर्ष २ में और मास २ में और दिन २ में होना पशु अन्न आदिको अपने आधीन रक्खे और आमदनीको भी अपनेही आधीन रक्खे ॥ १२ ॥

पराधीनंकृतंयत्तुव्ययसंज्ञंधनंचतत् ।
साधकश्चैत्रप्राचीनआयःसंचितसंज्ञकः १३

पराधीन किया जो धन सो खर्चही है वर्तमान और प्राचीन जो आय (आमदनी) उसे संचित कहते हैं ॥ १३ ॥

व्ययोद्विधाचोपभुक्तस्तथाविनिमयात्मकः ।
निश्चितान्यस्वामिकश्चानिश्चितस्वामिकस्तथा ॥ १४ ॥

व्यय दो प्रकारका है एक तो भुक्त दूसरा देना, और तीन प्रकारका संचित है एक जिनके स्वामीका निश्चयहो दूसरा जिनको स्वामीका निश्चय न हो ॥ १४ ॥

स्वस्वत्वनिश्चितंचातित्रिविधंसंचितंमतम् ।
निश्चितान्यस्वामिकंयच्चनंतुत्रिविधंहितत् १५॥

और तीसरा जो अपने स्वत्वसे निश्चितहो और निश्चितहै अन्यस्वामी जिसका ऐसा धन तीनप्रकारका है ॥ १५ ॥

औपनिध्यंयाचितकमौत्तमर्णिकमेवच ।
विस्रंभान्निहितंसद्भिर्यदौपानिधिकंहितत् १६॥

१ औपनिध्य, २ याचितक, ३ औत्तमर्णिक जो विश्वाससे सत्पुरुषोंने अपने यहां रखदिया हो उसे औपनिधिक कहते हैं ॥१६॥

अवृद्धिकंगृहीतान्यालंकारादिचयाचितम् ।
सवृद्धिकंगृहीतंयदृणंतच्चौत्तमर्णिकम् ॥१७॥

बिना सूदके लिया जो अलंकारादि उसे याचित कहते हैं और सूदपर लिया जो ऋण उसे औत्तमर्णिक कहते हैं ॥ १७ ॥

निध्यादिकंचमार्गादौप्राप्तमज्ञातस्वामिकम् ।
साहजिकंचाधिकंचद्विधास्वस्वत्वनिश्चितम् १८

जो निधि आदि मार्गमें मिलै और स्वामीका निश्चय न हो स्वभावसे प्राप्त और वृद्धि (व्याज) इन दो प्रकारका अपना धन होता है ॥ १८ ॥

उत्पद्यतेयोनियतोदिनेमासिचवत्सरे ।
आयःसाहजिकःसैवदायाद्यश्चस्ववृत्तितः १९॥

जो नियमसे दिन मास और वर्षमें उत्पन्न हो वह धनका आय (आमदनी) साहजिक है और यह धन अपनी वृत्तिसे उत्पन्न होनेसे भाईका भाग होता है ॥ १९ ॥

दायःपरिग्रहोयत्तुप्रकृष्टंतत्स्वभावजम् ।
मौल्याधिक्यंकुसीदंचगृहीतंयाजनादिभिः २०

जो भाग परिग्रहसे मिलै और उत्तम भी हो उसे स्वभावज कहते हैं और मोलमें अधिक मिलै (नफा) कृषिसे और यज्ञ करानेसे मिलै ॥ २० ॥

पारितोष्यंभृतिप्राप्तंविजितायंधनंचयत् ।
स्वस्वत्वाधिकसंज्ञंतदन्यत्साहजिकंस्मृतम् २१

जो पारितोषिक,वेतन और जिससे मिलै वह धन अपने धनसे अधिक कहाता है उससे इतर धनको साहजिक कहते हैं ॥ २१ ॥

पूर्ववत्सरशेषंचवर्तमानाब्दसंभवम् ।
स्वाधीनंसंचितंद्वेधाधनंसर्वंप्रकीर्तितम्॥ २२ ॥

पूर्व वर्षका शेष और वर्त्तमान वर्षका जो द्रव्य वह अपने २ अधीनका सम्पूर्ण धन दो प्रकारका संचित कहा है ॥ २२ ॥

द्वेधाधिकंसाहजिकंपार्थिवेतरभेदतः ।
भूमिभागसमुद्भूतआयःपार्थिवउच्यते ॥२३॥

दो प्रकारका अधिक मालिक है पार्थिव और इतर भेदसे जो पृथ्वीके भागसे राजाको मिलै उस आयको पार्थिव कहते हैं२३॥

सदैवकृत्रिमजलैर्देशग्रामपुरैःपृथक् ।
बहुमध्याल्पफलतोभिद्यतेभुविभागतः ॥२४॥

मेघ और कूप आदिके जलसे देश ग्राम और पुरोंसे तथा बहुत मध्यम अल्प भागके भेदसे वह धन अनेक प्रकारका होता है ॥ २४ ॥

शुल्कदंडाकरकरभाटकोपायनादिभिः ।
इतरःकीर्तितस्तज्ज्ञैरायोलेखविशारदैः॥ २५ ॥

शुल्क (महसूल) दण्ड आकर (खान) उपायन (भेट) आदिसे मिला जो आय उसे लेखके कुशल मनुष्य इतर कहते हैं ॥ २५ ॥

यन्निमित्तोभवेदायोव्ययस्तन्नामपूर्वकः ।
व्ययश्चैवंसमुद्दिष्टोव्याप्यव्यापकसंयुतः॥२६॥

जिस निमित्तसे आवै उसी नामसे खर्च करै और व्यय भी व्याप्य व्यापकभेदसे दो प्रकारका होता है अर्थात् अल्प और अधिक ॥ २६ ॥

पुनरावर्तकःस्वत्वनिवर्तकइतिद्विधा ।
व्ययोयन्निध्युपनिधिकृतोविनिमयैर्वृतः ॥२७॥

व्यय इसप्रकार दो भेदका है (१) पुनरावर्तक (फिर आजावै) (२) जिसमें अपना स्वत्व न रहै और निधि उपनिधि विनिमय भेदसे तीन प्रकारका है ॥ २७ ॥

सुकुसीदाकुसीदायमर्णिकश्चाधृतःस्मृतः ।
निधिर्भूमौविनिहितोन्यस्मिन्नुपनिधिः स्थितः॥

व्याजके निमित्त दिया अथवा विना व्याजसे दिया जो ऋण उसे आयन (फिरआने वाला) कहते हैं पृथ्वीमें रक्खे हुएको निधि और इतर मनुष्यके पास रक्खेको उपनिधि कहते हैं ॥ २८ ॥

दत्तमूल्यादिसंप्राप्तःसवैविनिमयीकृतः ।
वृद्ध्यावृद्ध्याचयोदत्तोसवैस्यादाधमर्णिकः २९

दिये हुए मोलसे जो मिले उसे विनिमय कहते हैं और व्याज अथवा विन व्याज जो दिया जाय उसे आधमर्णिक कहते हैं ॥२९॥

सवृद्धिकमृणंदत्तमकुसीदंतुयाचितम् ।
स्वत्वंनिवर्तकोद्विधाऐहिकःपारलौकिकः ३०॥

व्याजके निमित्त दिया अथवा उधारा जो दिया दो प्रकारका अधमर्णिक होता है और खर्चके दो भेद हैं एक वह जो इस लोकके लिये हो दूसरा जो वह परलोकके लिये हो ॥ ३० ॥

प्रतिदानंपारितोष्यंवेतनंभोग्यमैहिकः ।
चतुर्विधस्तथापारलौकिकोनन्तभेदभाक् ३१ ॥

बदलेमें देना, पारितोषिक, वेतन, भोग्य- इस प्रकार ४ भेद ऐहिकके हैं और पारलौकिकके अनन्त भेद हैं ॥ ३१ ॥

शेषसंयोजयेन्नित्यंपुनरावर्तकोव्ययः ।
मूल्यत्वेनचयद्दत्तंप्रतिदानंस्मृतंहितत् ॥ ३२ ॥

और शेषमें जो रुपया व्यय प्रतिदिन होताहै उसे पुनरावर्तक कहते हैं और जो माल लेकर दिया हो उसे प्रतिदान कहते हैं ॥ ३२ ॥

सेवाशौर्यादिसंतुष्टैर्दत्तंतत्पारितोषिकम् ।
भृतिरूपेणसंदत्तंवेतनंतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३३ ॥

सेवा शूरवीरता आदिसे प्रसन्न होकर जो दिया उसे पारितोषिक कहते हैं और जो भृतिरूपसे दिया हो उसे वेतन कहते हैं ॥ ३३ ॥

धान्यंवस्त्रंगृहारामगोगजादिरथार्थकम् ।
विद्याराज्यार्यजनार्थंधनाप्त्यर्थंतथैवच ॥ ३४ ॥

जो धन, अन्न, वस्त्र, घर, बाग, हाथी, रथ इनके निमित्त खर्च हो और विद्या राज्य और धनकी प्राप्तिके लिये जो खर्च हो ॥३४॥

व्ययीकृतंरक्षणार्थमुपभोग्यंतदुच्यते ।
सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालास्तथैवच ॥ ३५ ॥

रक्षा करनेमें जो खर्च हो उसे उपभोग कहते हैं सोना, रत्न, चांदी और मणियोंकी शाला इन्हें पृथक् २ बनावे ॥ ३५ ॥

रथाश्वगोगजोष्ट्राजावीनशालाःपृथक्पृथक् ।
वाद्यशस्त्रास्त्रवस्त्राणांधान्यसंभारयोस्तथा॥ ३६

रथ, अश्व, गाय, हाथी, ऊंट, बकरी, भेड इनकी शाला पृथक् २ और बाजे शस्त्र अस्त्र और अन्नकी और सम्भारकी शाला पृथक् २ बनावे ॥ ३६ ॥

मन्त्रीशिल्पनाट्यवैद्यमृगाणांपाकपक्षिणाम् ।
शालाभोग्येनिविष्टास्तुतद्व्ययोभोग्यउच्यते ॥

मन्त्री शिल्प नाट्य वैद्य मृग और पाकके योग्य पक्षी इनकी शालाओंके भोगमें जो नियुक्त हैं उनके निमित्त जो व्यय (खर्च) हो उसे भोग्य कहते हैं ॥ ३७ ॥

जपहोमार्चनैर्दानैश्चतुर्धापारलौकिकः ।
पुनर्यातोनिवृत्तश्चविशेषायव्ययौचतौ ३८

जप होम पूजन दानके भेदसे चार प्रकारका व्यय परलोकका होता है जो फिर आजाय और फिर न आवे वे दोनों आय और व्यय विशेषसे होते हैं ॥ ३८ ॥

आवर्तकोनिवर्तीचव्ययायौतुपृथग्द्विधा ।
आवर्तकविहीनौतुव्ययायौलेखकोलिखेत् ॥ ३९

आनेवाला और न आनेवाला इन भेदसे व्यय और आय पृथक् २ दो प्रकारके हैं और जो फिर न लौटे ऐसे आय और व्ययको लिखनेवाला लिखै ॥ ३९ ॥

ऋयाधमर्णवटनान्यस्थलाभेनिवर्तकः ।
द्रव्यंलिखित्वादद्यात्तुगृहीत्वाविलिखेत्स्वयम् ॥

लेन देन कर्ज जो औरको दिया जाय वह निवर्तक (फिर न आनेवाला) होता है द्रव्यको प्रथम लिखकर दे और प्रथम ग्रहण करके पीछे लिखै ॥ ४० ॥

हीयतेवर्धतेनैवमायव्ययविलेखकः ।
हेतुप्रमाणसंबंधकार्यांगव्याप्यव्यापकैः ॥

न घटै और न बढे ऐसा जमाखर्च लिखै और उसके कारण प्रमाण संबंध कार्यके अंग भी न्यून अधिकभावसे लिखै ॥ ४१ ॥

आयाश्चबहुधाभिन्नाव्ययाःशेषंपृथक्पृथक् ।
मानेनसंख्ययाचैवोन्मानेनपरिमाणकैः ॥

आय (आमदनी)और व्यय(खर्च) वे दोनों अनेक प्रकारके होते हैं मान, संख्या उन्मान और परिमाणके भेदोंसे ॥ ४२ ॥

क्वचित्संख्याक्वचिन्मानमुन्मानपरिमाणकम् ।
समाहारःक्वचिच्चेष्टोव्यवहारायतद्विदाम् ॥४४॥

कहीं संख्या और कहीं मान और कहीं उन्मान और कहीं परिमाण और कहीं चारों व्यवहारके ज्ञाताओंके व्यवहारके लिखे इष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥

अंगुलाद्यंस्मृतंमानमुन्मानंचतुलास्मृता ।
परिमाणपात्रमानंसंख्यैकव्द्यादिसंज्ञिका ॥४३॥

अंगुलीसे जो मापा जाय उसे मान कहते हैं बांटोंसे जो तोला जाय उसे उन्मान कहते हैं किसी पात्रसे जो मापाजाय उसे परिमाण कहते हैं और एक दो तीन आदि संख्या होती है ॥ ४४ ॥

यत्रयादृग्व्यवहारस्तत्रतादृक्प्रकल्पयेत् ।
रजतस्वर्णताम्रादिव्यवहारार्थमुद्रितम् ४५

जहां जैसा व्यवहार हो वहां वैसाही नियत करै, चांदी, सोना, तांबा, इनको व्यवहार के अर्थ मुद्रित करै ॥ ४५ ॥

व्यवहार्यवराटाद्यंरत्नांतंद्रव्यमीरितम् ।
सपशुधान्यवस्त्रादितृणांतंधनसंज्ञकम् ॥४६ ॥

कौडीसे लेकर रत्न पर्यन्तको द्रव्य कहते हैं पशु, अन्न, वस्त्र, तृण, आदिको धन कहते हैं ॥ ४६ ॥

व्यवहारेचाधिकृतंस्वर्णाद्यमूल्यतामियात् ।
कारणादिसमायोगात्पदार्थस्तुभवेद्धुवि ॥४७॥

व्यवहारके लिये माना हुआ सोना आदि मोल हो जाता है और कारणके बलसे वही सोना आदि पदार्थ हो जाता है (जैसे भूषण) ॥ ४७ ॥

येनव्ययेनसंसिद्धस्तद्व्ययस्तस्यमूल्यकम् ।
सुलभासुलभत्वाच्चागुणत्वगुणसंश्रयैः ॥४८॥

जितने व्ययसे मिलै उतना व्यय उसका मूल्यहोता है और सुलभ और कठिन और भले और बुरे भेदोंसे ॥ ४८ ॥

यथाकामात्पदार्थानामनर्घमाधिकंभवेत् ।
नहीनंमणिधातूनां क्वचिन्मूल्यंप्रकल्पयेत् ॥

अपनी कामनाके अनुसार पदार्थोंका मोल हीन वा अधिक होजाता है और मणिधातु इन का मूल्य कभीभी न्यून न करै ॥ ४९ ॥

मूल्यहानिस्तुचैतेषांराजदौष्ट्येनजायते ।
दीर्घंचतुर्भागभूतपत्रेतिर्यग्गतावलिः ॥५०॥

इनके मूल्यकी न्यूनता राजाकी दुष्टतासे होती है बड़े और चारभागके पत्रमें तिरछी आवली (पंक्ति) हो ऐसा पत्र हो ॥ ५० ॥

त्र्यंशगाभ्यंतरगताचार्धगापादगापिवा ।
कार्याव्यापकव्याप्यानांलिखनेपत्रसंज्ञिका ॥

तीन भागमें भीतरकी अथवा आधे भागमें अथवा चौथाई भागमें श्रेणी हो ऐसे पत्रको छोटे और बड़ेके लिखनेके निमित्त बतावै ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठाभ्यंतरगातासुवामतस्त्र्यंशगाप्यनु ।
दक्षत्र्यंशगताचानुतार्धगापादगाततः ॥५२ ॥

उनमें भीतरकी श्रेष्ठ है। उसमें बांई ओर की तीनभागकी और दाहिनी ओरकीभी तीन भागकी और फिर चौथाई भागकी ये सब क्रमसे हों ॥ ५२ ॥

स्वाभ्यंतरेस्वभेदाःस्युःसदृशाःसदृशेपदे ।
स्वारंभपूर्तिसदृशेपदगेस्तःसदैवहि ॥५३ ॥

अपने भीतरमें और अपने सदृश भेद अपने २ और वे भेद अपनी समाप्तिके सदृश हों और प्रत्येक भागमें वे सदा रहैं ५३ ॥

राजास्वलेख्यचिह्नतुयथाभिलषितंतथा ।
लेखानुरूपंकुर्याद्धिदृष्टालेख्यंविचार्यच ५४ ॥

राजा अपनी इच्छाके अनुसार अपने लेखका चिह्न ऐसा करै जो लेखके अनुकूल हो और लेखको देखले और विचारले॥५४॥

मंत्रीचप्राड्विवाकश्चपंडितोदूतसंज्ञकः ।
स्वाविरुद्धंलेख्यमिदंलिखेयुः प्रथमंत्विमे ५५॥

मंत्री, वकील, पंडित, दूत ये सब पहले इस लेखको इसप्रकारसे लिखें जिस प्रकार अपनी पदवीका विरोधी न हो ॥ ५५ ॥

अमात्यःसाधुलिखितमस्त्येतत्प्राग्लिखेदयम् ।
सम्यग्विचारितमितिसुमंत्रोविलिखेत्ततः ॥५६॥

यह पहले भली प्रकार लिखा है ऐसा अमात्यलिखै और यह भली प्रकार बिचारा है ऐसे तिसके अनंतर सुमंत्र लिखै ॥ ५६ ॥

सत्यंयथार्थमितिचप्रधानश्चालिखेत्स्वयम् ।
अंगीकर्तुंयोग्यमितिततःप्रतिनिधिर्लिखेत् ५७

यह पत्र सत्य और यथार्थ है यह प्रधान स्वयं लिखैं और तिसके अनंतर यह पत्र स्वीकार करनेके योग्य है यह प्रतिनिधि लिखै ॥ ५७ ॥

अंगीकर्तव्यमितिचयुवराजोलिखेत्स्वयम् ।
लेख्यंस्वाभिमतंचैतद्विलिखेच्चपुरोहितः ॥५८॥

स्वीकार करो यह स्वयं युवराज लिखै और यह लेख हमें संमत है यह पुरोहितलिखै॥५८॥

स्वस्वमुद्राचिह्नितंचलेख्यांतेकुर्युरेवहि ।
अंगीकृतमितिलिखेन्मुद्रयेच्चततोनृपः ॥५९॥

अपनी मोहरसे चिह्नित संपूर्ण लेखको कर और तिसके अनंतर राजाभी अंगीकार किया यह लिखै और अपनी मोहरसे मुद्रित करै ॥ ५९ ॥

कार्यांतरस्याकुलत्वात्सम्यग्द्रष्टुंनशक्यते ।
युवराजादिभिर्लेख्यंतद्दानेनचदर्शितम् ६० ॥

जो राजा अन्यकार्योंकी व्याकुलतासे न देखसकै तिस समयमें राजाके दिखाये पत्रको युवराज आदि लिखैं ॥ ६० ॥

समुद्रंविलिखेयुर्वैसर्वेमंत्रिगणास्ततः ।
राजादृष्टमितिलिखेद्द्राक्सम्यग्दर्शनाक्षमः ॥

तिसके अनंतर सब मंत्रियोंके समूह अपनी २ मोहरसे चिह्नित करके लिखैं यदि राजा भली प्रकार देखनेमें असमर्थ हो देख लिया ऐसे लिखैं ॥ ६१ ॥

आयमादौलिखेत्सम्यग्व्ययंपश्चाद्यथागतम् ।
वामेचायंव्ययंदक्षेपत्रभागेचलेखयेत् ॥६२ ॥

प्रथम आमदनीको लिखै पश्चात् खर्चको, पत्रके वामभागमें आमदनीको लिखै और दक्षिण भागमें खर्चको ॥ ६२ ॥

यत्रोभौव्यापकव्याप्यौवामोर्ध्वभागगौक्रमात् ।
आधाराधेयरूपौवाकालार्थौगणितंहितत् ६३ ॥

जिसमें अधिक और न्यून क्रमसे वाम और दक्षिण भागमें हों अथवा आधार और आधे रूप हों वह कालके निमित्त गणित है ॥ ६३ ॥

अधोधश्चक्रमात्तत्रव्यापकंवामतोलिखेत् ।
व्याप्यानांमूल्यमानादितत्पंक्त्यांविनिवेशयेत्॥

नीचे २ क्रमसे पत्रमें व्यापकको वाम भागमें लिखैं और व्याप्यों का मोल और प्रमाण आदिभी उसी पंक्तिमें लिखै ॥६४॥

ऊर्ध्वगानांतुगणितमधःपंक्त्यांप्रजायते ।
यत्रौभौव्यापकव्याप्यौव्यापकत्वेनसंस्थितौ६५

ऊपर लिखे हुओंकी गिनती नीचेकी व्यक्तिमें होती है जहां दोनों व्यापक और व्याप्य व्यापकके समानही प्रतीत हों ॥ ६५ ॥

व्यापकंबहुवृत्तित्वंव्याप्यस्यान्न्यूनवृत्तिकम् ।
व्याप्याश्चावयवाःप्रोक्ताव्यापकोऽवयवीस्मृतः

अधिक जगह जो वर्त्तै उसे व्यापक और अल्पजगह जो वर्त्तै उसे व्याप्य कहते हैं

और अवयवोंको व्याप्यऔर अवयवीको व्यापक कहते हैं ॥ ६६ ॥

सजातीनांचलिखनंकुर्याच्चसमुदायतः ।
यथाप्राप्तंतुलिखनमाद्येनसमुदायतः ६७ ॥

सजातीय पदार्थोंको समुदाय रूपसे लिखै और समुदायमें प्रथम उसे न लिखे जो प्रथम आया हो ॥ ६७ ॥

व्यापकश्चपदार्थोवायत्रसंतिस्थलानिहि ।
व्याप्यमायव्ययंतत्रकुर्यात्कालेनसर्वदा ६८ ॥

व्यापक अथवा पदार्थ जहां स्थल हों वहां आय और व्यय जो है उसे समयके अनुसार व्याप्यसे करै ॥ ६८ ॥

स्थानटिप्पणिकाचैषाततोन्यत्संवटिप्पणम् ।
विशिष्टसंज्ञितंतत्रव्यापकंलेख्यभाषितम् ॥

यह स्थानकी टिप्पण (पत्र) है और इससे इतर संवटिप्पण होती है और वहां विशिष्टनामका व्यापक भाषा (अर्जी) लेख होता है ॥ ६९ ॥

आयाःकतिव्ययाःकस्यशेषंद्रव्यस्यचास्तिवै ।
विशिष्टसंज्ञकैरेषांसंविज्ञानंप्रजायते ७० ॥

कितना आय (आमदनी) और कितना व्यय (खर्च) है और किस आयका कितना शेष (बाकी) है इनका पृथक् २ नामोंसे ज्ञान होता है ॥ ७० ॥

आदौलेख्यंयथाप्राप्तंपश्चात्तद्गणितंलिखेत् ।
यथाद्रव्यंचस्थानंचाधिकसंज्ञंचटिप्पणे ॥

प्रथम जैसे आया हो वैसे लिखै और पीछे उसकी संख्या लिखैं जैसा द्रव्य हो और जैसा स्थान हो और जसी अधिक संज्ञा हो वह सब टिप्पण(वही) में लिखै॥७१॥

शेषायव्ययविज्ञानंक्रमाल्लेख्यैःप्रजायते ।
स्थलायव्ययविज्ञानंव्यापकस्थलतोभवेत् ॥

शष आय व्ययका ज्ञान क्रमसे लेखोंसे होता है स्थान आय व्ययका ज्ञान बड़े स्थानसे अर्थात् इस जिलेके इस गांवसे इतना रुपया आया है ॥ ७२ ॥

पदार्थस्यस्थलानिस्युःपदार्थाश्चस्थलस्यतु ।
व्याप्यास्तिथ्यादयश्चापियथेष्टालेखनेनृणाम् ॥
निश्चितान्यस्वामिकाद्याआयायेइतरांतगाः ।
विशिष्टसंज्ञिकायेचपुनरावर्तकादयः ७४ ॥

पदार्थके स्थान होते हैं और स्थानके पदार्थ होते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार व्याप्य (मासके अंग) तिथि आदिभी मनुष्योंको लिखनी निश्चित हैं अन्यस्वामी जिसका ऐसे जो इतरोंके आय और पृथक् २ है संज्ञा जिनकी ऐसे जो पुनरावर्त्तक (फिर लौटने वाले) आदि ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

व्ययाश्चपरलोकांताअंतिमव्यापकाश्चते ।
इच्छयाताडितंकृत्वादौप्रमाणफलंततः ॥७५॥
प्रमाणभक्तंतल्लब्धंभवेदिच्छाफलंनृणाम् ।
समाततोलेख्यमुक्तंसर्वेषांस्मृतिसाधनम् ७६॥

परलोक पर्यंत जो व्यय है वे सब अंतिम व्यापक कहाते हैं अपनी इच्छासे प्रथम इने गिने और फिर प्रमाणका फल लिखै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

गुंजामाषस्तथाकर्षःपदार्थःप्रस्थएवहि ।
यथोत्तरादशगुणापंचप्रस्थस्यचाढकाः ।७७॥

गुंजा, मासा, कर्ष, पदार्थ, प्रस्थ, ये क्रमसे दश २ गुणे अधिक होते हैं और एक प्रस्थके पांच आढक होते हैं ॥ ७७ ॥

ततश्चाष्टाढकःप्रोक्तोह्यर्मणस्तंतुविंशतिः ।
खारिकास्माद्धियतेतद्देशेदेशेप्रमाणकम् ॥

और आठ आढकका एक अर्मण कहा है और बीस आढककी एक खारी होती है और देशके भेदसे प्रमाणका भेद होता है ॥ ७८ ॥

पंचांगुलावटंपात्रंचतुरंगुलविस्तृतम् ।
प्रस्थपादंतुतज्ज्ञेयंपरिमाणेसदाबुधैः ॥ ७९ ॥

पांच अंगुल गहरा और चार अंगुल चौड़ा जो पात्र होता है उसे परिमाणके विषे विद्वान् सदा प्रस्थपाद जाने ॥ ७९ ॥

ऊर्ध्वोकश्चयथासंज्ञस्तदधस्थाश्चवामगाः ।
क्रमात्स्वदशगुणिताःपरार्धांताःप्रकीर्तिताः ॥

ऊपरके अंककी जो संख्या हो और उसके नीचेके जो दश गुणे हैं वे परार्द्ध पर्यंत कहे हैं ॥ ८० ॥

नकर्तुंशक्यतेसंख्यासंज्ञाकालस्यदुर्गमात् ।
ब्रह्मणोद्विपरार्धंतुआयुरुक्तंमनीषिभिः॥८१ ॥

दुर्गम होनेसे कालकी, संख्याकी संज्ञा नहीं करसकते और मनीषियों (विद्वानों) ने ब्रह्माकी द्विपरार्द्ध आयु कही है ॥ ८१ ॥

एकादशशतंचैवसहस्रंचायुतंक्रमात् ।
नियुतंप्रयुतंकोटिरर्बुदंचाब्जखर्वकौ ॥८२ ॥

एक, दश, सौ, हजार, दश हजार, लक्ष, दश लक्ष, किरोड़, अर्ब, अब्ज, खर्व, ये क्रमसे संख्या जाननी ॥ ८२ ॥

निखर्वपद्मशंखाब्धिमध्यमांतपरार्धकाः ।
कालमानंत्रिधाज्ञेयंचांद्रंसौरंचसावनम् ८३

निखर्व, पद्म, शंख, अब्धि, मध्य, अंत, परार्द्ध भी संख्या जाननी और कालका मान तीन प्रकारका होता है। सूर्यकी संक्राति चंद्रमाका उदय और सावनसे ॥ ८३ ॥

भृतिदानेसदासौरंचांद्रंकौसीदवृद्धिषु ।
कल्पयेत्सावनंनित्यंदिनभृत्येववैसदा ॥८४॥

भृति (नौकरी) के देनेमें सूर्यकी संक्राति से और खेती और व्याजमें चंद्रोदयसे और भृति (मजूरी) और अवधिमें अमावससे मास लेना ॥ ८४ ॥

कार्यमानाकालमानाकार्यकालमितिस्त्रिधा ।
भृतिरुक्तातुतद्विज्ञैः सादेयाभाषितायथा ॥

कार्य और कालके मानसे और कार्यके कालसे भृति (नौकरी) भृतिके ज्ञाताओंने कही है और वह भृति जैसे कही हो वैसेही देनी ॥ ८५ ॥

अयंभारस्त्वयातत्रस्थाप्यस्त्वेतावतींभृतिम् ।
दास्यामिकार्यमानासाकीर्तितातद्विदेशकैः ॥

वह बोझ तेरेको वहां पहुँचा देना होगा और इतनी भृति दूँगा इस भृतिको भृतिके उपदेश करने वाले कार्यमाना कहते हैं ॥ ८६ ॥

वत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने ।
एतावतींभृतिंतेहंदास्यामीतिचकालिका ॥

वर्ष २ में अथवा महीने २ में इतनी भृति तुझे दूँगा इस भृतिको कालिका कहतेहैं ॥ ८७ ॥

एतावताकार्यमिदंकालेनापित्वयाकृतम् ।
भृतिमेतावतींदास्येकार्यकालमिताचसा ॥

इतने कालमें इतना काम तुझे करना और इतनी भृति दूँगा इस भृतिको कालमिता कहते हैं ॥ ८८ ॥

नकुर्याद्भृतिलोपंतुतथाभृतिविलम्बनम् ।
अवश्यपोष्यभरणाभृतिर्मध्याप्रकीर्तिता ॥

भृतिका लोप (अभाव) और देनेमें विलम्ब न करै जिस भृतिसे भरण पोषण हो उस भृतिको मध्यमा कहते हैं ॥ ८९ ॥

परिपोष्याभृतिः श्रेष्ठासमान्नाच्छादनार्थिका ॥
भवेदेकस्यभरणंययासाहीनसंज्ञिका॥९०॥

अन्न, वस्त्र, आदिसे जिस भृतिसे सबका पोषण हो वह भृति श्रेष्ठ होती है और जिससे एकका ही पोषण हो उसे हीनभृति कहते हैं ॥ ९० ॥

यथायथातुगुणवान्भृतकस्तद्भृतिस्तथा ।
संयोज्यातुप्रयत्नेननृपेणात्महितायवै ९१ ॥

जैसे २ गुणवाला भृत्य हो वैसीही उसकी भृति राजा अपने हितके अर्थ प्रयत्नसे नियत करै ॥ ९१ ॥

अवश्यपोष्यवर्गस्यभरणंभृतकाद्भवेत् ।
तथाभृतिस्तुसंयोज्यातद्योग्याभृतकायवै ॥

भृत्यके पोषण करने योग्यका पालन जिसप्रकारहोसके वैसाही योग्य भृति(नौकरी) भृत्यके अर्थ संयुक्त करै ॥ ९२ ॥

येभृत्याहीनभृतिकाः शत्रवस्तेस्वयंकृताः ।
परस्यसाधकास्तेतुछिद्रकोशप्रजाहराः ॥

जिन भृत्योंकी भृति न्यून है वे अपनेही बनाये शत्रु हैं और वे दूसरेके साधक हैं और छिद्र कोश तथा प्रजाके हरनेवाले होते हैं ॥ ९३ ॥

अन्नाच्छादनमात्राहिभृतिः शूद्रादिपुस्मृता ।
तत्पापभाग्यन्यथास्यात्पोषकामांसभोजिषु ९४

शूद्र आदिकोंको ऐसी भृति दे जिससे भोजन वस्त्रका निर्वाह चले क्योंकि जो मांसके भक्षकोंको अधिक भरण पोषण करता है वह उनके हिंसा आदिक पापका भागी होता है ॥ ९४ ॥

यद्ब्राह्मणेनापहृतंधनंतत्परलोकदम् ।
शूद्रायदत्तमपियन्नरकायैवकेवलम् ॥ ९५ ॥

जो ब्राह्मणने धन हर भी लिया है वह परलोकका देनेवाला है और जो धन शूद्रको अपने हाथसे भी दिया हो वह केवल नरकका ही देनेवाला होता है ॥ ९५ ॥

मंदोमध्यस्तथाशीघ्रस्त्रिविधोभृत्यउच्यते ।
समामध्याचश्रेष्ठाचभृतिस्तेषांक्रमात्स्मृता ॥

मन्द, मध्यम, शीघ्र तीन प्रकारका भृत्य होता है और उनकी भृति भी सम मध्यम श्रेष्ठ भेदसे तीन प्रकारकी होती है ॥ ९६ ॥

भृत्यानांगृहकृत्यार्थंदिवायामंसमुत्सृजेत् ।
निशियामत्रयंनित्यंदिनभृत्येऽर्धयामकम् ॥

अपने घरके कार्य करनेके अर्थ एक प्रहर की छुट्टी भृत्योंको दिनमें और तीन प्रहरकी रात्रिमें और जो दिनकाही भृत्य हो उसे आधे प्रहरकी छुट्टी दे ॥ ९७ ॥

तेभ्यः कार्यंकारयीतह्युत्सवाहैर्विनानृपः ।
अत्यावश्यंतूत्सवेपिहित्वाश्राद्धदिनंसदा ॥९७॥

राजा भृत्योंसे काम करावे परन्तु जो दिन उत्सव (दिवाली आदि) के हों उनके विना यदि कार्य आवश्यक होय तौ उत्सवमें भी काम करावे परन्तु श्राद्धके दिनोंको सदा त्याग दे अर्थात् काम न ले ॥ ९८ ॥

पादहीनांभृतिंत्वार्तेदद्यात्त्रैमासिकींततः ।
पंचवत्सरभृत्येतुन्यूनाधिक्यंयथातथा ॥९९॥

रोगके समय तीन महीनेकी भृति एक वर्षके रोगीको दे एक चौथाईकम भृति भृत्यको दे और पांच वर्षके भृत्यकी तोरोगकी अवस्थामें जैसे तैसे न्यून और अधिक भृति दे ॥ ९९ ॥

षाण्मासिकींतुदीर्घार्तेतदूर्ध्वंनचकल्पयेत् ।
नैवपक्षार्धमार्तस्यहातव्याल्पापिवैभृतिः ॥

और बहुत दिनके अधिक रोगीको वर्षमें छः महीनेकी भृति दे और इससे आगे न्यून-भृतिकी कल्पना न करै और ८ आठ दिनके रोगीकी कुछ भी भृति न काटै ॥ ४०० ॥

शश्वत्सदोषितस्यापिग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः ।
सुमहद्गुणिनंत्वार्तेभृत्यर्धंकल्पयेत्सदा ॥१॥

जो भृत्य वार २ रोगसे ग्रस्त रहै उसकी जगह प्रतिनिधि रखले और जो भृत्य अत्यन्त गुणी हो उसको रोगकी अवस्थामें भी सदा आधी भृति दे ॥ १ ॥

सेवांविनानृपः पक्षंदद्याद्भृत्यायवत्सरे ।
चत्वारिंशत्समानीताः सेवयायेनवैनृपः ॥ २ ॥

भृत्यको एक वर्षमें १५ दिनकी भृति सेवाके विना भी राजा दे और जिसने सेवा करते २ चालीस वर्ष बिताये हों उस भृत्यको राजा ॥ २ ॥

ततःसेवांविनातस्मैभृत्यर्धंकल्पयेत्सदा ।
यावज्जीवंतुतत्पुत्रेऽक्षमेबालेतदर्धकम् ॥ ३ ॥

तिसके अनन्तर सेवाके विनाही तिसके लिये आधी वृत्ति नियत जीनेतक करदे और उसके बालकके लिये आधीमेंसे आधी भृति नियत करै ॥ ३ ॥

भार्यायांवासुशीलायांकन्यायांवास्वश्रेयसे ।
अष्टमांशंपारितोष्यंदद्याद्भृत्यायवत्सरे॥ ४ ॥

सुशील स्त्री और कन्याको अपने कल्याणके अर्थ भृतिका आठवां भाग दे और भृतिका आठवां भाग पारितोषिक भृत्यको दे ॥ ४ ॥

कार्याष्टमांशंवादद्यात्कार्यंद्रागधिकंकृतम् ।
स्वामिकार्येविनष्टोयस्तत्पुत्रेतद्भृतिंवहेत्॥५॥

अथवा कामका आठवां भाग दे और जो काम शीघ्र और मर्यादासे अधिक किया हो औरजो भृत्य स्वामीके कार्यमें नष्ट हो गया हो तौ उसकी भृति उसके पुत्रको दे ॥ ५ ॥

यावद्बालेन्यथापुत्रगुणान्दृष्ट्वाभृतिंवहेत् ।
षष्ठांशंवाचतुर्थांशंभृतेर्भृत्यस्यपालयेत् ॥ ६ ॥

इसने भृत्यका पुत्र बालक हो तिसके अनंतर पुत्रके गुणोंको देखकर भृति से छठा भाग अथवा चौथा भाग भृत्यको भृतिको पालता रहै अर्थात् उसके भागको देता रहै ॥ ६ ॥

दद्यात्तदर्धंभृत्यायद्वित्रिवर्षेखिलंतुवा ।
वाक्पारुष्यान्न्यूनभृत्यास्वामीप्रवलदंडतः७॥

दो तीन वर्षमें मासिकका आधा उस भृत्यको सेवाके विना दे जो भृत्य कटु वचनी हो अथवा सेवाको जिसने यथार्थ न किया हो ॥ ७ ॥

भृत्यंप्रशिक्षयेन्नित्यंशत्रुत्वंत्वपमानतः ।
भृतिदानेनसंपुष्टामानेनपरिवर्धिताः ॥ ८ ॥

अपमानसे भृत्य शत्रु होजाता है इससे भृत्यको नित्य शिक्षा देता रहै मासिकके देनेसे भृत्य पुष्ट होते हैं और मानसे बढते हैं८

सांत्वितामृदुवाचायेनत्यजंत्यधिपंहिते ।
यथागुणान्स्वभृत्यांश्चप्रजाःसंरंजयेन्नृपः ९

जिन भृत्योंको कोमल वचनों से शांत रक्खा है वे अपने स्वामी को नहीं त्यागते हैं, गुणोंके अनुसार अपने भृत्य और प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करा करै ॥ ९ ॥

शाखाप्रदानतः कांश्चिदपरान्फलदानतः ।
अन्यान्सुचक्षुषाहास्यैस्तथाकोमलयागिरा ॥

किसी भृत्यको शाखा (मासिकसे अधिक) देनेसे और किसीको फल (द्रव्यआदि) देनेसे और किसीको हँसीसे और किसीको कोमल वाणीसे राजा प्रसन्न रक्खै ॥ १० ॥

सुभोजनैःसुवसनैस्तांबूलैश्चधनैरपि ।
कांश्चित्सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानतः ११ ॥

किनी एक भृत्योंको सुन्दर वस्त्रोंसे और किनी एकोंको पानोंसे और किनी एकोंको कुशल पूछनेसे और किनी एकोंको अधिकारके देनेसे राजा प्रसन्न रक्खैं ॥ ११ ॥

वाहनानांप्रदानेनयोग्याभरणदानतः ।
छत्रातपत्रचमरदीपिकानांप्रदानतः ॥ १२ ॥

किनी एक भृत्योंको वाहनके देनेसे और योग्य भूषणोंके देनेसे और छत्री छतर चवर और मसालके देनेसे राजा प्रसन्न रक्खै ॥ १२ ॥

क्षमयाप्रणिपातेनमानेनाभिगमनेच ।
सत्कारेणचज्ञानेनह्यादरेणशमेनच ॥ १३ ॥

किनी एक भृत्योंको क्षमासे और नमस्कारसे और सत्कारसे और ज्ञानसे और आदरसे और किनीएक भृत्योंको शांतिसे राजा प्रसन्न रक्खैं ॥ १३ ॥

प्रेम्णासमीपवासेनस्वार्धासनप्रदानतः ।
संपूर्णासनदानेनस्तुत्योपकारकीर्तनात् ॥ १४ ॥

और किनी एक भृत्योंको प्रेमसे और अपने समीप वासके देनेसे और अपने आधे आसनपर बैठानेसे और सम्पूर्ण जुदा आसन देनेसे और किनी एकोंको किए हुए उपकारकी प्रशंसासे प्रसन्न रक्खै ॥ १४ ॥

यत्कार्येविनियुक्तायेकार्यांकैरंकयेच्चतान् ।
लोहजैस्ताम्रजैरीतिभवैरजतसंभवैः ॥ १५ ॥

जिस कार्यमें जो भृत्य नियुक्त है उसीकार्यकी मुद्रासे उन्हें अंकित करें और वे मुद्रा लोहेकी हों अथवा तांबेकी अथवा पीतलकी अथवा चांदीकी हों ॥ १५ ॥

सौवर्णरत्नजैर्वापियथायोग्यैःस्वलांछनैः ।
प्रविज्ञानायदूरात्तुवस्त्रैश्चमुकुटैरपि ॥ १६ ॥

सोनेकी हों अथवा रत्नोंकी हों और दूरसे ज्ञानके अर्थ वस्त्र मुकुट आदि अपने २ यथायोग्य चिह्नोंसे अंकित करैं ॥ १६ ॥

वाद्यवाहनभेदैश्चभृत्यान्कुर्यात्पृथक्पृथक् ।
स्वविशिष्टंचयच्चिह्नंनदद्यात्कस्यचिन्नृपः ॥ १७ ॥

बाद्य (बाजे) और वाहनके भेदसे भृत्यों को पृथक् २ करै और अपना जो विशिष्ट चिह्न है उसे राजा किसीको भी न दे ॥ १७ ॥

दशमोक्ताःपुरोधाद्याब्राह्मणाःसर्वएवते ।
अभावेक्षत्रियायोज्यास्तदभावेतथोरुजाः १८ ॥

जो दश पुरोहित आदि कहेहैं वे सब ब्राह्मण हों:होने चाहिये जो ब्राह्मण न मिलें तो क्षत्रिय क्षत्रिय नमिलें तो वैश्य होने चाहिये ॥ १८ ॥

नवशूद्रास्तुसंयोज्यागुणवंतोपिपार्थिवैः।
भागग्राहीक्षत्रियस्तुसाहसाधिपतिश्चसः १९ ॥

और गुणवाले भी शूद्रोंको पुरोहित आदि पदवियोंपर कदाचित् नियुक्त न करै भाग करके ग्रहण करनेको और साहस (फौज दारी)की पदवीपर क्षत्रियको नियुक्त करै॥१९

ग्रामपाब्राह्मणोयोज्यःकायस्थोलेखकस्तथा।
शुल्कग्राहीतुवैश्योहिप्रतिहारश्चपादजः ॥२०॥

ग्रामका अधिपति ब्राह्मण और लेखक कायस्थ नियुक्त करना, शुल्क (महसूल) का अधिपति वैश्य और प्रतिहार (दूत) शूद्र नियुक्त करना ॥ २० ॥

सेनाधिपःक्षत्रियस्तुब्राह्मणस्तदभावतः ।
नवैश्योनचवैशूद्रःकातरश्चकदाचन ॥ २१॥

सेनाका अधिपति क्षत्रिय और उसके अभावमें ब्राह्मण और वैश्य और शूद्र और कातर (कायर) इनको कभी भी नियुक्त न करै॥२१॥

सेनापतिःशूरएवयोज्यःसर्वासुजातिषु ।
ससंकरचतुर्वर्णधर्मोऽयंनैवयावनः ॥ २२ ॥

संपूर्ण जातियोंमें सेनापति शूर ही नियुक्त करना यह धर्म संकरसहित चारों वर्णोंका है और यवनोंका नहीं है ॥ २२ ॥

यस्यवर्णस्ययोराजासवर्णःसुखमेधते ।
नोपकृतंमन्यतेस्मनतुष्यतिसुसेवनैः ॥२३ ॥

जिस वर्णका जो राजा होताहैवह वर्ण सुख पाता है न उपकारको मानता है और न सेवा करनेसे प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥

कथांतरेनस्मरतिशंकतेप्रलपत्यापि ।
क्षुब्धस्तनोतिमर्माणितंनृपंभृतकस्त्यजेत्॥

कथन समयपर स्मरण न करै और कहते भी शंका रक्खे क्षोभके समय मर्मको बींधै ऐसे राजाको भृत्य त्याग दे ॥ २४ ॥

लक्षणंयुवराजादेः कृत्यमुक्तंसमासतः २५ ॥

युवराज आदिकोंका लक्षण और कार्य संक्षेपसे कहा ॥ २५ ॥

इति शुक्रनीतौयुवराजकथनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह शुक्रनीतिमें युवराज है नाम जिसका ऐसा दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अध्याय ३.

अथसाधारणंनीतिशास्त्रंसर्वेषुचोच्यते ।
सुखार्थाःसर्वभूतानांमताःसर्वाः प्रवृत्तयः ॥१॥

इसके अनंतर संपूर्णोंका साधारण नीतिशास्त्र कहते हैं, संपूर्ण भूतोंकी सब प्रवृत्ति सुखके निमित्त होनेवाली मानी है ॥१॥

सुखंचनविनाधर्मात्तस्माद्धर्मपरोभवेत् ।
त्रिवर्गशून्यंनारंभंभजेत्तंचाविरोधयन् ॥ २ ॥

धर्मके विना सुख नहीं होता इससे मनुष्य धर्ममें तत्पर रहै इससे जिसमें धर्म अर्थ काम न हों ऐसे कार्यका आरंभ न करै और इनके अनुरोधसे ही आरंभ करै ॥ २ ॥

अनुयायात्प्रतिपदंसर्वधर्मेषुमध्यमः ।
नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलांघ्र्यमलायनः ॥३ ॥

सदा संपूर्ण धर्मोंके अनुकूल आचरण करै और रोम, नख श्मश्रु इनको न रक्खै चरणोंको निर्मल रक्खै मलसे दूर रहै ॥३ ॥

स्नानशीलःसुसुरभिःसुवेषोनुल्बणोज्ज्वलः ।
धारयेत्सततंरत्नसिद्धमंत्रमहौषधी ॥ ४ ॥

स्नानमें तत्पर रहै सुंदर सुगंधिको धारण करै वेषको धारै और उज्ज्वल रहै और निरंतर रत्न सिद्धमंत्र और उत्तम औषधियोंको धारण करै ॥ ४ ॥

सातपत्रपदत्राणोविचरेद्युगमात्रदृक् ।
निशिचात्ययिकेकार्येदंडीमौलीसहायवान्॥५॥

छत्र और उपानह सहित विचरै और अपने आगे चार हाथ भूमिपर दृष्टि रक्खै और आवश्यक कार्यके निमित्त रात्रिमें दंड और मुकुटको धारण करके भृत्यसहित विचरै॥५॥

नवेगितोन्यकार्यीस्यान्नवेगान्नीरयेद्बलात् ।
भक्त्याकल्याणमित्राणिसेवेतेतरदूरगः ॥६॥

वेगसे अन्यके कार्यको न करै और वेगसे जलमें न पैरै और कल्याण और मित्रोंको भक्तिसे सेवै और इतरों (शत्रुओं) से दूर रहै ॥ ६ ॥

हिंसास्तेयान्यथाकामंपैशुन्यपरुषानृतम्।
संभिन्नालापव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम् ७॥

हिंसा, चोरी, दुष्टकर्म, चुगली, कठोरता, झूठ, भेद, वृथावचन, द्रोहचिंता, दृष्टिकी विषमता इनको त्याग दे ॥ ७ ॥

पापकर्मेतिदशधाकायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।
अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेतशक्तितः ॥८॥

देह वाणी मनसे यह दश प्रकारका पाप होताहै इसको त्याग दे;और दरिद्री और रोग और शोकसे जो दुःखी हैं उनकी अपनी शक्तिके अनुसार पालना करै ॥ ८ ॥

आत्मवत्सततंपश्येदपिकीटपिपीलिकम् ।
उपकारप्रधानःस्यादपकारपरेप्यरौ ॥ ९॥

कीडे, चींटी इनको सदा अपने ही समान देखै और अपकारके योग्य शत्रुके विषयमें भी उपकार ही मुख्य समझै ॥ ९ ॥

संपद्विपत्स्वेकमनाहेतावीर्षेत्फलेन तु ।
कालेहितंमितंब्रूयादविसंवादिपेशलम् ॥१०॥

संपदा और विपत्तिमें एकरस मन रक्खे कार्यके कारणमें ईर्षा करै और कार्यमें न करै और समयपर हित और प्रमित यथार्थ सुंदर वचन कहै ॥ १० ॥

पूर्वाभिभाषीसुमुखःसुशीलःकरुणामृदुः ।
नैकःसुखीनसर्वत्रविस्रब्धोनचशंकितः ॥११॥

सुन्दर मुखसे प्रथम बोले सुशील दयावान् और कोमल रहै सदा एकसुखी और विश्वासी शंकावाला नहीं होता ॥ ११ ॥

नंकचिदात्मनःशत्रुंनात्मानंकस्यचिद्रिपुम् ।
प्रकाशयेन्नापमानंनचानिःस्नेहतांप्रभोः ॥१२॥

दूसरेको अपना शत्रु और अपनेको दूसरेका शत्रु प्रकाश न करै और प्रभुका अपमान और प्रीतिके अभावको भी प्रकाश न करै ॥ १२ ॥

जनस्याशयमालक्ष्ययोयथापरितुष्यति ।
तंतथैवानुवर्तेतपराराधनपंडितः ॥ १३ ॥

पराई आराधना (सेवा) करनेमें चतुर मनुष्य इतर मनुष्यके अभिप्रायको देखकर जो जिसप्रकार प्रसन्न हो उसी प्रकार उसके संग वर्त्ताव करै ॥ १३ ॥

नपीडयेदिंद्रियाणिनचैतान्यतिलालयेत् ।
इंद्रियाणिप्रमाथीनिहरंतिप्रसभंमनः ॥ १४ ॥

मनुष्य न तौ इंद्रियोंको पीडा दे और न अधिक इनके संग प्रीति करै क्योंकि मतवाली इंद्रियां बलात्कारसे मनको हर लेती हैं ॥१४॥

एणोगजःपतंगश्चभृंगोमीनस्तुपंचमः ।
शब्दस्पर्शरूपरसगंधैरेतेहताःखलु ॥ १५ ॥

मृग हेडीके शब्दसे,हाथी हथिनीके स्पर्शसे, पतंग दीपकके रूपसे, भ्रमर फूलके रससे, मीन अन्नकी गंधिसे ये पांचों एक एक इंद्रियके विषयसे मारे जाते हैं ॥ १५ ॥

एषुस्पर्शोवरस्त्रीणांस्वांतहारीमुनेरपि ।
अतोऽप्रमत्तःसेवेतविषयांस्तुयथोचितान्॥१६॥

इन इंद्रियोंके निमित्त उत्तम स्त्रियोंका स्पर्श मुनिके भी मनको हरता (वश करता) है इससे अप्रमत्त होकर विषयोंको यथोचित सेवै ॥ १६ ॥

मात्रास्वस्त्रादुहित्रावानात्यंतैकांतिकंवसेत् ।
यथासंबंधमाहूयादाभाष्याश्चास्यवैस्त्रियम् १७॥

माता, भगिनी, लडकी इनके संग बहुत

एकांतमें न बैठे नातेके अनुसार सम्बोधन करके स्त्रियोंको बुलावै ॥ १७ ॥

स्वीयांतुपरकीयांवासुभगेभगिनीतिच ।
सहवासोन्यपुरुषैःप्रकाशमपिभाषणम् ॥१८॥

अपनी और पराईको सुभगे भगिनी इस प्रकारसे बोलै, दूसरे पुरुषोंके संग वास और सम्भाषण न करने दे ॥ १८ ॥

स्वातंत्र्यंनक्षणमपिह्यवासोन्यगृहेतथा ।
भर्त्रापित्राथवाराज्ञापुत्रश्वशुरबांधवैः ॥ १९ ॥

एक क्षण भी स्त्रियोंको स्वतन्त्रता न दे और दूसरेके घरमें भर्ता पिता राजा पुत्र श्वशुर भाई बन्धु ये सब स्त्रीको न बसने दें ॥ १९ ॥

स्त्रीणांनैवतुदेयःस्याद्गृहकृत्यैर्विनाक्षणः ।
चंडंषंढंदंडशीलमकामंसुप्रवासिनम् ॥ २० ॥

घरके कार्यके विना स्त्रियोंको एक क्षण भी न रहने दे और जो पुरुष अत्यन्त क्रोधी, नपुंसक, दण्डकारक, कामरहित, परदेशवासी ॥ २० ॥

सुदरिद्रंरोगिणंचह्यन्यस्त्रीनिरतंसदा ।
पतिंदृष्ट्वाविरक्तास्यान्नारीवान्यंसमाश्रयेत् २१ ॥

अत्यन्त दरिद्री, रोगी, सदा अन्य स्त्रीमें रत हो उस पतिको देखकरस्त्रीविरक्त हो जाय अथवा दूसरे पुरुषके आश्रय हो जाय ॥ २१ ॥

त्यक्त्वैतान्दुर्गुणान्यत्नात्ततोरक्ष्याःस्त्रियोनरैः
वस्त्रान्नभूषणप्रेममृदुवाग्भिश्चशक्तितः ॥२२॥

वस्त्र, अन्न, भूषण, प्रीति और कोमलवाणीसे शक्तिके अनुसार यत्नसे इन दुर्गुणोंको त्यागकर मनुष्य स्त्रियोंकी रक्षा करै ॥ २२ ॥

स्वात्यंतसंनिकर्षेणास्त्रियंपुत्रंचरक्षयेत् ।
चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन्॥

अपनी अत्यन्त समीपतासे स्त्री और पुत्रकी रक्षा करे और चबूतरा, पूज्य, ध्वजा उत्तमोंकी छाया, भस्म, जो अमंगल है इनका अवलंघन न करै ॥ २३ ॥

नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवोपिच ।
नदींतरेन्नबाहुभ्यांनाग्निस्कन्नमभिव्रजेत् ॥२४

कंकर, ढेला, भेट, स्नानकी भूमि इनको भी अवलंबन न करै और भुजाओंसे नदीको न तैरे और विस्तारको प्राप्त हुई अग्नि के सन्मुख न जाय ॥ २४ ॥

संदिग्धनावंवृक्षंचनारोहेद्दुष्टयानवत् ।
नासिकांनविकुष्णीयान्नाकस्माद्विलिखेद्
भुवम् ॥ २५ ॥

टूटी नाव और वृक्षपर न चढे जैसे दुष्ट सवारीमें, अपनी नाकको न खुजावे और विना प्रयोजन पृथिवीको न खोदे ॥ २५॥

नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकंडूयेदात्मनःशिरः।
नांगैश्चेष्टेतविगुणंनाश्नीयात्कटुकंचिरम्॥२६।

मिले हुए हाथोंसे अपने शिरको न खुजावै और अपने अंगकी निरर्थक चेष्टा न करै और बहुत दिनतक खट्टे पदार्थको न खाय ॥ २६ ॥

देहवाक्चेतसांचेष्टाःप्राक्छ्रमाद्विनिवर्तयेत् ।
नोर्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेन्नक्तंसेवेतनद्रुमम् ॥ २७ ॥

श्रम करके अपने देह, वाणी, मन इनकी चेष्टाओंको त्यागदे और बहुत देरतक ऊपरको पैर करके न बैठे और रात्रिके समय वृक्षपर न रहै ॥ २७ ॥

तथाचत्वरचैत्यांतचतुष्पथसुरालयान् ।
शून्याटवीशून्यगृहश्मशानानिदिवापिन॥२८।

चैत्य (चबूतरा)शून्य आंगन चौराहा, व मद्य गृह, शून्यवन, शून्यगृह और श्मशान, इनको दिनमें भी न सेवै अर्थात् इनमें न बसै ॥ २८ ॥

सर्वथेक्षेतनादित्यंनभारंशिरसावहेत् ।
नेक्षेतप्रततंसूक्ष्मंदीप्तामेध्याप्रियाणिच॥ २९॥

सूर्यको निरंतर न देखै शिरपर बोझ ले कर न चलै और सूक्ष्म पदार्थको भी निरंतर न देखै प्रकाशमान अपवित्र और अप्रिय इनको भी निरंतर न देखै ॥ २९ ॥

संध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वमाध्ययनाचिंतनम् ।
मद्यविक्रयसंधानदानादानानिनाचरेत् ॥३०॥

संध्याके समय भोजन, स्त्री, शयन, पढ़ना, इतनेकी चिंता न करै और मदिराका बेचना निकालना पीना और पिलाना इनको न करै ॥ ३० ॥

आचार्यःसर्वचेष्टासुलोकएवहिधीमतः ।
अनुकुर्यात्तमेवातोलौकिकार्थेपरीक्षकः ॥३१॥

बुद्धिमान् मनुष्यको जगत्के लोक ही संपूर्ण कार्योंमें आचार्य हैं इससे परीक्षा करनेवाला मनुष्य आचार्यका ही अनुयायी रहे ॥ ३१ ॥

राजदेशकुलज्ञातिसद्धर्मान्नैवदूषयेत् ।
शक्तोपिलौकिकाचारंमनसापिनलंघयेत्॥३२॥

राजा, देश, कुल, जाति इनके उत्तम धर्ममें दूषण न लगावै और समर्थ होकर भी लौकिक आचरणका अवलंघन न करै ॥ ३२ ॥

अयुक्तंयत्कृतंचोक्तंनबलाद्धेतुनोद्धरेत् ।
दुर्गुणस्यचवक्तारःप्रत्यक्षंविरलाजनाः ॥३३॥

जो अयोग्य कर्मको किसीने किया हो अथवा कहा हो उसका बलसे समाधान न करै कि प्रत्यक्ष दुर्गुणके कहनेवाले मनुष्य विरले होते हैं ॥ ३३ ॥

लोकतःशास्त्रतोज्ञात्वाह्यतस्त्याज्यांस्त्यजेत्सुधीः । अनयंनयसंकाशंमनसापिनाचिंतयेत् ॥ ३४॥

लोक और शास्त्रसे त्यागने योग्य कर्मोंको जानकर बुद्धिमान् मनुष्य त्याग दे और न्यायके समान प्रतीति होते अन्यायकी मनसे भी चिन्ता न करै ॥ ३४ ॥

अहंसहस्त्रापराधीकिमेकेनभवेन्मम ।
मत्वानावंस्मरेद्दोषाद्बिंदुनापूर्यते घटः ॥३५॥

मैं हजारों अपराधोंका करनेवाला हूँ इस एक पाप करके मेरा क्या बुरा होगा यह मानकर किंचित् भी पापका स्मरण न करै क्योंकि बूँद बूँदसे ही घडा भरता है ॥ ३५ ॥

नक्तंदिनानिमेयांतिकथंभूतस्यसंप्रति ।
दुःखभाङ्नभवत्येवंनित्यंसन्निहितस्मृतिः ३६॥

अब मेरे रात दिन कैसे बीतते हैं इससे दुःखी न हो और नित्य स्मरण रक्खै ॥ ३६ ॥

समासव्यासहेत्वादिकृतेच्छार्थंविहायच ।
स्तुत्यर्थवादान्संत्यज्यसारंसंगृह्ययत्नतः ३७॥

संक्षेप और विस्तारके कारणके लिये अपनी इच्छाको त्याग दे और बडाईके वृथा वचनोंको भी त्यागकर सारको यत्नसे ग्रहण करके ३७॥

धर्मतत्त्वंहिगहनमतःसत्सेवितंनरः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानांकर्मकुर्याद्विचक्षणः ॥

सत्पुरुषोंने सेवन किया जो गहन (गम्भीर) धर्मका तत्व उसको विचारै और श्रुति स्मृति में कहे कर्मको ज्ञानवान् करै ॥ ३८ ॥

नगोपयेद्दासयच्चैराजामित्रंसुतंगुरुम् ।
अधर्मेनिरतंस्तेनमाततायिनमप्युत ॥ ३९ ॥

राजा अधर्म करते हुए, चोर, आततायी-मित्र, पुत्र और गुरुको भी न छिपावै किंतु राज्यसे निकास दे ॥ ३९ ॥

अग्निदोगरदश्चैवशस्त्रोन्मत्तोधनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैतान्षड्विद्यादाततायिनः ॥४०॥

अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, शस्त्रसे उन्मत्त, धन चुरानेवाला, खेत हरनेवाला और स्त्री हरनेवाला ये छः आततायी होते हैं ॥४०॥

नोपेक्षेतस्त्रियंबालंरोगंदासंपशुंधनम् ।
विद्याभ्यासंक्षणमपिसत्सेवांबुद्धिमान्नरः॥४१॥

बुद्धिवाला मनुष्य इनको एक क्षण भी न छोडै, स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु, धन और विद्याका अभ्यास, सज्जनसेवा ॥ ४१ ॥

विरुद्धोयत्रनृपतिर्धनिकःश्रोत्रियोभिषक् ।
आचारश्चतथादेशोनतत्रादिवसंवसेत् ॥ ४२ ॥

जिस देशमें राजा विरुद्ध हो वेदपाठी धनी हो वैद्य आचारवान् हो उस देशमें एक दिन भी न बसै ॥ ४२ ॥

नपुंसकश्चस्त्रीबालश्चंडोमूर्खश्चसाहसी ।
यत्राधिकारिणश्चैतेनतत्रादिवसंवसेत् ॥ ४३ ॥

जिस राजाके राज्यमें नपुंसक, स्त्री, बालक, अत्यन्त क्रोधी, मूर्ख, साहसी अधिकारी हों वहां एक दिन भी न वसै ॥ ४३ ॥

अविवेकीयत्रराजासभ्यायत्रतुपाक्षिकाः ।
सन्मार्गोज्झितविद्वांसःसाक्षिणोनृतवादिनः ४४

जहां राजा अविवेकी हो सभासद पक्षपात करैं पंडितजन सन्मार्गी न हों साक्षी (गवाह) झूंठ बोले वहां भी न वसै ॥ ४४ ॥

दुरात्मनांचप्राबल्यंस्त्रीणांनीचजनस्यच ।
यत्रनेच्छेद्धनंमानंवसतिंतत्रजीवितम् ॥४५॥

जहां दुष्ट स्त्री नीच इनकी प्रबलता हो वहां धन मान वास जीवन इनकी इच्छा न करै ॥ ४५ ॥

मातानपालयेद्बाल्येपितासाधुनशिक्षयेत् ।
राजायदिहरेद्वित्तंकातत्रपरिदेवना ॥ ४६ ॥

जो बालक अवस्थामें माता पालन न करै और पिता भलीप्रकार शिक्षा न दे और राजा अपने धनको हर ले तो शोककी इसमें क्या बात है ॥ ४६ ॥

सुसेविताःप्रकुप्यंतिमित्रस्वजनपार्थिवाः ।
गृहमग्न्यशनिहतंकातत्रपरिदेवना ॥ ४७ ॥

यदि भलीप्रकार सेवा करनेसे भी मित्र वा अपने भाई बन्धु और राजा क्रोध करै और अपना घर अग्नि वा बिजलीसे नष्ट हो जाय तो वहां शोककी क्या बात है ॥ ४७ ॥

आप्तवाक्यमनादृत्यदर्पेणाचरितंयदि ।
फलितंविपरीतंतत्कातत्रपरिदेवना ॥ ४८ ॥

यदि किसी सज्जनके वचनको न मानकर अभिमानसे कोई काम किया होय और उसका फल विपरीत हो जाय तो वहां क्या शोककी बात है ॥ ४८ ॥

सावधानमनानित्यंराजानंदेवतांगुरुम् ।
अग्नितपस्विनंधर्मज्ञानवृद्धंसुसेवयेत् ॥ ४९ ॥

राजा, देवता, गुरु, अग्नि, तपस्वी धर्ममें और विद्याज्ञानमें जो बडे हों इनकी सदैव सावधान होकर भली प्रकार सेवा करै ॥४९॥

मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिष्वपि ।
नविरुध्येन्नापकुर्यान्मनसापिक्षणंक्वचित् ५०॥

माता, पिता गुरु, स्वामी, भाई, पुत्र, और मित्र इनके संग एक क्षण मात्र भी मनसे कभी विरोध और इनका तिरस्कार न करै ॥ ५० ॥

स्वजनैर्नविरुद्धचेतनस्पर्धेतबलीयसा ।
नकुर्यात्स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषुचविवादनम् ॥५१॥

स्वजनों (कुटुम्बके मनुष्यों) के साथ बलसे विरोध न करै और स्त्री, बालक, वृद्ध, मूर्ख इनके साथ विवाद न करै ॥ ५१ ॥

एकःस्वादुनभुंजीतएकोऽर्थान्नविचिन्तयेत् ।
एकोनगच्छेदध्वानंनैकःसुप्तेषुजागृयात् ५२॥

अकेला स्वादु भोजन न करै और अकेला अर्थकी चिन्ता न करै अकेला मार्गमें न चलै और सोतेमें अकेला न जागै ॥ ५२ ॥

नान्यधर्मंहिसेवेतनद्रुह्याद्वैकदाचन ।
हीनकर्मगुणैःस्त्रीभिर्नासीतैकासनेक्वचित्५३॥

अन्यके धर्मको न करै और किसीके संग द्रोह न करै और नीच हैं कर्म और गुण जिसके उनके संग और स्त्रियोंके संग एक आसन पर कभी न बैठे ॥ ५३ ॥

षड्दोषापुरुषेणेहहातव्याभूतिमिच्छता ।
निद्रातंद्राभयंक्रोधआलस्यंदीर्घसूत्रता ॥५४॥

बडाई चाहनेवाला पुरुष इन छः दोषोंको त्याग दे कि निद्रा, तन्द्रा, (उदासीनता) भय, क्रोध, आलस्य, दीर्घसूत्रता ॥ ५४ ॥

प्रभवंतिविघातायकार्यस्यैतेनसंशयः ।
उपायज्ञश्चयोगज्ञस्तत्त्वज्ञःप्रतिभानवान् ५५॥

क्योंकि ये छहों कार्यके नाश करनेमें समर्थ हैं इसमें संशय नहीं है और उपाय युक्ति और तत्त्वको मनुष्य जाने और सदैव पैनी बुद्धि वाला रहै ॥ ५५ ॥

स्वधर्मनिरतोनित्यंपरस्त्रीषुपराङ्मुखः ।
वक्तोहवांश्चित्रकथःस्यादकुंठितवाक्सदा ५६॥

सदैव अपनेधर्ममें तत्पर रहै पराई स्त्रियोंका

त्याग करे और बोलनेमें तत्पर रहै विचित्र कथा कहै और वाणी कुण्ठी कभी न कहै ॥५६॥

चिरंसंशृणुयान्नित्यंजानीयात्क्षिप्रमेवच ।
विज्ञायप्रभजेदर्थान्नकामंप्रभजेत्कचित् ॥५७॥

चिरकालतक नित्य सुने और शीघ्र जाना करै जानकर द्रव्यका विभाग और कचित इच्छा न होय तौ विभाग न करै ॥ ५७ ॥

क्रयविक्रयस्यातिलिप्सांस्वदैन्यंदर्शयेन्नहि ।
कार्यविनान्यगेहेननाशातः प्रविशेदपि ॥५८ ॥

लेन देनकी अधिक इच्छाके लिये अपनी दीनता न दिखावै और कार्यके विना और आशासे दूसरेके घरमें प्रवेश न करै ॥ ५८ ॥

अपृष्टोनैवकथयेद्गृहकृत्यंतुकंप्रति ।
बह्वर्थाल्पाक्षरंकुर्यात्संलापंकार्यसाधकम् ॥५९॥

घरका कार्य विना पूंछे किसीसे न कहै और दूसरेके संग ऐसी बात चीत करे जिसे अर्थ बहुत और अक्षर थोडे हों और जिसमें कार्यकी सिद्धि हो ॥ ५९ ॥

नदर्शयेत्स्वाभिमतमनुभूताद्विनासदा ।
ज्ञात्वापरमतंसम्यक्तेनाज्ञातोत्तरंवदेत् ॥६०॥

अनुभूतके विना (अजानेको) अपने अभिप्रायको न दिखावै(न बतावै) और दूसरे-के मत (अभिप्राय) को भलीप्रकार जानकर उत्तर दे ॥ ६० ॥

दंपत्योः कलहेसाक्ष्यंनकुर्यात्पितृपुत्रयोः ।
सुगुप्तः कृत्यमंत्रः स्यान्नत्यजेच्छरणागतम् ॥

स्त्री, पुरुष तथा पिता पुत्रकी साक्षी न दे और संमति (सलाह) को छिपाकर करै और शरण आये हुएका परित्याग न करै॥६१॥

यथाशक्तिचिकीर्षेत्तुकुर्यान्मुह्येन्नापदि ।
कस्यचिन्नस्पृशेन्मर्मामिथ्यावादंनकस्यचित् ॥

करनेको अभीष्ट कार्यको यथाशक्ति करै आपत्तिकालमें मोहको प्राप्त न हो, किसीके मर्मका स्पश न करै और किसीके मिथ्या अपवादको न करै ॥ ६२ ॥

नाश्लीलंकीर्तयेत्कांचित्प्रलापंनचकारयेत् ।
अस्वर्ग्यस्याद्धर्म्यमपिलोकविद्विषितंतुयत् ६३॥

अयोग्य और अनर्थक वचन किसीके प्रति न कहै क्योंकि सब जगत्का जिसमें वैर हो वह धर्मका काम भी स्वर्ग देनेवाला नहीं होता ॥ ६३ ॥

स्वहेतुभिर्नहन्येतकस्यवाक्यंकदाचन ।
अविचार्योत्तरंदेयंसहसानवदेत्कचित् ॥६४॥

अपने बनाये कारणोंसे किसीके वचनोंको नष्ट न करै, विचार कर उत्तर दे और शीघ्र उत्तर न दे ॥ ६४ ॥

शत्रोरपिगुणाग्राह्यागुरोस्त्याज्यास्तुदुर्गुणाः ।
उत्कर्षोनैवनित्यः स्यान्नापकर्षस्तथैवच ६५॥

शत्रुके भी गुण ग्रहण करने और गुरुके भी अवगुण त्यागने योग्य हैं क्योंकि बडाई और छोटापन सदा नहीं रहते ॥ ६५ ॥

प्राक्कर्मवशतोनित्यंसधनोनिर्धनोभवेत् ।
तस्मात्सर्वेषुलोकेषुमैत्रींनैवचहापयेत् ॥६६॥

पूर्वजन्मके कर्मोंसे धनवान् वा निर्धन होताहै इससे संपूर्ण लोकोंके संग मित्रताको न त्यागै ॥ ६६ ॥

दीर्घदर्शीसदाचस्यात्प्रत्युत्पन्नमतिः कचित् ।
साहसीआलसीचैवचिरकारीभवेन्नहि ॥ ६७ ॥

सदा दीर्घदर्शी (होनहारको जो पहिचाने) रहै और कभी २ तत्काल बुद्धि भी रहै और शीघ्र करनेवाला और आलसी और विलंब-में कार्य करनेवाला न रहै ॥ ६७ ॥

यःसुदुर्निष्फलंकर्मज्ञात्वाकर्तुंव्यवस्यति ।
द्रागादौदीर्घदर्शीस्यात्सचिरंसुखमश्नुते६८॥

वृथा कर्मोंकोभी जानकर जो किया चाहता है और पहिलेही जो शीघ्र दीर्घ-दर्शी होता है वह चिरकालतक सुख भोगता है ॥ ६८ ॥

प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तांक्रियांकर्तुंव्यवस्यति ।
सिद्धिःसांशयिकीतत्रचापल्यात्कार्यगौरवात् ॥

बुद्धिको प्राप्त होकर कार्यके समयमें ही जो कार्य किया चाहता है उस कार्यकी सिद्धिमें मनुष्यकी चपलता और कार्यकी गौरवतासे संशय होता है ॥ ६९ ॥

यतेतैनैवकालेपिक्रियांकर्तुंचसालसः।
नसिद्धिस्तस्यकुत्रापिसनश्यतिचसान्वयः७०॥

आलसी मनुष्य कार्यके समयमें भी कार्य करनेमें यत्न नहीं करता उस मनुष्यकी कहीं भी सिद्धि नहीं होती और वह वंशसहित नष्ट होजाता है॥ ७०॥

क्रियाफलमविज्ञाययतेतसाहसीचसः।
दुःखभागीभवत्येवक्रियायांतत्फलेनवा॥७१॥

जो मनुष्य कार्यके फलको विना जानकर यत्न करता है वह साहसी शीघ्रकारी है और कार्य और कार्यके फलमें वह मनुष्य दुःखका ही भागी होता है॥ ७१॥

महत्कालेनाल्पकर्मचिरकारीकरोतिच।
सशोचत्यल्पफलतोदीर्घदर्शीभवेदतः॥७२॥

जो अल्पकार्यको बड़े कालमें करे उसे चिरकारी कहते हैं और वह अल्प फलकी प्राप्तिसे पीछे शोच करता है इससे मनुष्यको दीर्घदर्शी होना चाहिये॥ ७२॥

सुफलंतुभवेत्कर्मकदाचित्सहसाकृतम्।
निष्फलंवापिप्रभवेत्कदाचित्सुविचारितम् ७३

कभी शीघ्रकिया हुआ भी कम अधिक फलदायी हो जाताहै और भलीप्रकारसे भी किया हुआ कर्म कदाचित् निष्फल हो जाता है॥ ७३॥

तथापिनैवकुर्वीतसहसानर्थकारितत्।
कदाचिदपिसंजातमकार्यादिष्टसाधनम्७४॥

तौ भी सहसा (शीघ्र) कर्मको न करै क्योंकि वह अनर्थकारी होता है और कदाचित् कुकर्मसे भी इष्टाकीसिद्धि हो जातीहै७४

यदनिष्टंतुसत्कार्यान्नाकार्यप्रेरकं हितत्।
भृत्योभ्रातापिवापुत्रः पत्नीकुर्यान्नचैवयत्॥

और जिस सत्कर्मसे जो अनिष्ट हो जाय वह सत्कर्म उस अनिष्टका प्रेरक नहीं होता जिस कार्यको भृत्य भाई स्त्री न कर सकैं ७५॥

विधास्यंतिचामित्राणितत्कार्यमविशंकितम्।
अतोयतेतत्प्राप्त्यैमित्रलाब्धिवरानृणाम्॥

उसकार्यको निःसन्देह मित्र कर सकेंगे इससे मित्रकी प्राप्तिके लिये यत्न करै क्योंकि मनुष्योंको मित्रकी प्राप्ति बडी श्रेष्ठ है॥ ७६॥

नात्यंतंविश्वसेत्कंचिद्विश्वस्तमपिसर्वदा।
पुत्रंवाभ्रातरं भार्याममात्यमधिकारिणम्॥

सदा विश्वासवालेका अत्यन्त विश्वास न करे, पुत्र भाई स्त्री मन्त्री और अधिकारी इनका भी विश्वास न करै॥ ७७॥

धनस्त्रीराज्यलोभोहिसर्वेषामधिकोयतः।
प्रामाणिकंचानुभूतमाप्तंसर्वत्रविश्वसेत् ७८

क्योंकि धन स्त्री राज्य इनका लोभ सबसे अधिक है जो प्रामाणिक है जिसको बताय रक्खा हो और जो यथार्थवादी हो उसका विश्वास सदैव करै॥ ७८॥

विश्वसित्वात्मवद्गूढस्तत्कार्यंविमृशेत्स्वयम्।
तद्वाक्यंतर्कतोनर्थविपरीतंनचिंतयेत्॥७९॥

जो विश्वाससे समान हो गया हो उसके कार्यको स्वयं विचारे उसके वाक्यको तर्कनासे विपरीत न जाने॥ ७९॥

चतुःषष्टितमांशंतन्नाशितंशमयेदथ।
स्वधर्मनीतिबलवांस्तेनमैत्रींप्रधारयेत् ८०

चौसठवां भाग जो सेवक नष्ट कर दे उसपर क्षमा करे और अपना नीति धर्म बल इन वाला जो पुरुष उसके संग मित्रता करे॥८०॥

दानैर्मानैश्चसत्कारैःसुपूज्यान्पूजयेत्सदा।
कदापिनोग्रदंडःस्यात्कटुभाषणतत्परः ८१।

दान मान और सत्कारोंसे पूजने योग्योंका सदैव पूजन करै और राजा उग्र दण्डकादाता और कटुवचनका वक्ता कभी न हो॥ ८१॥

भार्यापुत्रोप्युद्विजतेकटुवाक्यात्प्रदंडतः।
पशवोपिवशंयांतिदानैश्चमृदुभाषणैः॥८२॥

कटुवचन और उग्र दण्डसे स्त्री और पुत्र भी उदासीन होते हैं दान देना और कोमल वचनसे पशु भी वशमें हो जाते हैं॥ ८२॥

नविद्ययानशौर्येणधनेनाभिजनेनच।
नबलेनप्रमत्तःस्यान्नातिमानीकदाचन॥८३॥

विद्या, शूरवीरता, धन, कुल, बल इनसे कभी प्रमत्त न हो और न अत्यंत मान करै ॥ ८३ ॥

नाप्तोपदेशंसंवेत्तिविद्यामत्तःस्वहेतुभिः ।
अनर्थमप्यभिप्रेतंमन्यतेपरमार्थवत् ॥ ८४ ॥

विद्यासे उन्मत्त पुरुष अपने हेतुओंसे आप्तोंके उपदेशको नहीं जानता और अपने वांछित अनर्थकोभी परमार्थके समान मानता है ॥ ८४ ॥

शौर्यमत्तस्तुसहसायुद्धंकृत्वाजहात्यसून् ।
व्यूहादियुद्धकौशल्यंतिरस्कृत्यचशात्रवान् ८५

शूरवीरतासे उन्मत्त पुरुष शीघ्र ही युद्ध करके और राजाओंके व्यूह (समूह) की कुशलतासे शत्रुओंका तिरस्कार करके अपने प्राणोंको त्याग देता है ॥ ८५ ॥

श्रीमत्तःपुरुषोवेत्तिनदुष्कीर्तिमजोयथा ।
स्वमूत्रगंधमूत्रेणमुखमासिंचतिस्वकम् ८६ ॥

लक्ष्मीसे उन्मत्त पुरुष अपनी कुकीर्तिको नहीं जानता और वह पुरुष अपने मूत्रकी दुर्गंधिवाले मुखको अपने मूत्रसे ही बकरेके समान सींचता है ॥ ८६ ॥

तथाभिजनमत्तस्तुसर्वानेवावमन्यते ।
श्रेष्ठानपीतरान्सम्यगकार्येकुरुतेमतिम् ॥८७॥

तिसी प्रकार अपने कुलसे उन्मत्त संपूर्ण इन श्रेष्ठोंकाही तिरस्कार करता है और निंदित कामोंमें मतिको करता है ॥ ८७ ॥

बलमत्तस्तुसहसायुद्धेविदधतेमनः ।
बलेनबाधतेसर्वानश्वादीनपिव्यन्यथा ॥८८॥

बलसे उन्मत्त पुरुष शीघ्रही युद्धमें मन लगाताहै यह पुरुष बलसे सबको पीडा देता है और अश्व आदिभी वृथा हैं ॥ ८८ ॥

मानमत्तोमन्यतेस्मतृणवच्चाखिलंजगत् ।
अनर्होपिचसर्वेभ्यस्त्वत्यर्घासनमिच्छति ॥८९

मानसे उन्मत्त पुरुष संपूर्ण जगत्को तृणके समान मानता है और सबसे अयोग्य होनेपर भी ऊँचे आसनकी इच्छा करता है ॥ ८९ ॥

मदाएतेवलिप्तानांसतामेतेदमाःस्मृताः ।
विद्यायाश्चफलंज्ञानंविनयश्चफलंश्रियः ॥ ९०॥

अभिमानियोंके ये मद होते हैं और सत्पुरुषोंके येही दम कहे हैं विद्याका फल ज्ञान और विनय है लक्ष्मीका फल— ॥ ९० ॥

यज्ञदानेबलफलंसद्रक्षणमुदाहृतम् ।
नामिताःशत्रवःशौर्यफलंच करदीकृताः ९१॥

यज्ञ और दान, बलका फल सज्जनोंकी रक्षा कहा है और शूरवीरताका फल यह है कि शत्रुओंको नवाना और उनसे कर लेना ॥९१॥

शमोदमश्चार्जवंचाभिजनस्य फलंत्विदम् ।
मानस्यतु फलंचैतत्सर्वैस्वसदृशाइति ॥९२॥

और उत्तम कुलका यह फल है कि शांति इन्द्रियोंका दमन और नम्रता करना और मान बडाईका फल यह है सबको अपने समान समझना ॥ ९२ ॥

सुविद्यामंत्रभैषज्यस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ।
गृह्णीयात्सुप्रयत्नेनमानमुत्सृज्यसाधकः ९३॥

उत्तम विद्या, मंत्र, वैद्यविद्या, उत्तम स्त्री इनको नीच कुलसे भी साधक (कार्यकरनेवाला) मानको त्यागकर ग्रहण करै ॥ ९३ ॥

उपेक्षेतप्रनष्टंयत्प्राप्तंयत्तदुपाहरेत् ।
नबालंनस्त्रियंचातिलालयेत्ताडयेन्नच॥९४॥

नष्टवस्तुकी उपेक्षा करै और प्राप्तवस्तुको ग्रहण करै, बालक, स्त्री इनका न अत्यंत लाड करै और न अत्यंत ताडनादे ॥९४॥

विद्याभ्यासेगृहकृत्येताबुभौयोजयेत्क्रमात् ।
परद्रव्यंक्षुद्रमपिनादत्तंसंहरेदणु ॥ ९५ ॥

विद्याके अभ्यास और गृहकृत्यमें इन दोनोंको क्रमसे नियुक्त करै। क्षुद्र और अल्प भी परद्रव्यका विनादिये ग्रहणनकरै ९५

नोच्चारयेदघंकस्यस्त्रियंनैवचदूषयेत् ।
नब्रूयादनृतंसाक्ष्यंकृतंसाक्ष्यंनलोपयेत् ॥९६॥

किसीके पापका उच्चारण न करै स्त्रीको दोष न लगावै और झूठी साक्ष्य (गवाही) न दे और साक्ष्यका लोप न करै ॥ ९६ ॥

प्राणात्ययेऽनृतंब्रूयात्सुमहत्कार्यसाधने ।
कन्यादात्रेतुद्यधनंदस्यवेसधनंनरम् ९७॥

प्राणके नाशमें, बडे कार्यके साधनमें, झूंठ बोलै और कन्याके देनेवालेको निर्धन और चौरको धनवाला ॥ ९७ ॥

गुप्तंजिवांसवेनैवविज्ञातमपिदर्शयेत् ।
जायापत्याश्चोपत्रीश्चेभ्रात्रोश्चस्वामिभृत्ययोः ॥ ९८ ॥

हिंसा करनेवालेको रक्षित जानें हुएकोभी न बतावै जायापति (स्त्री पुरुष) माता पिता दो भाई स्वामी भृत्य (नौकर)॥ ९८ ॥

भगिन्योर्मित्रयोर्भेदंनकुर्याद्गुरुशिष्ययोः ।
नमध्याद्गमनंभाषाशालिनोःस्थितयोरपि ९९॥

दो बहन और दो मित्र, गुरु, शिष्य(चेला) इनमें भेद न करे वार्ता करते हुए दो पुरुषोंके और बैठे हुए दो पुरुषोंके बीचमें हो कर न जाय ॥ ९९ ॥

सुहृदंभ्रातरंबंधुमुपचर्यात्सदात्मवत् ।
गृहागतंक्षुद्रमपियथार्हंपूजयेत्सदा ॥ १०० ॥

मित्र, भाई, बंधु, इनकी सदैव अपने समान सेवा करै और घरआये क्षुद्रकी भी यथायोग्य सदैव पूजा करै ॥ १०० ॥

तदीयकुशलप्रश्नःशक्त्यादानैर्जलादिभिः ।
सपुत्रस्तुगृहेकन्यांसपुत्रांवासयेन्नहि ॥ १ ॥

अपनी शक्तिके अनुसार जलआदि दोनोंसे कुशलप्रश्न पूंछै और पुत्र सहित (सपुत्र) पुत्र सहित कन्याको न बसावै ॥ १ ॥

सभर्तृकांचभगिनीमनाथेतेतुपालयेत् ।
सर्पोग्निर्दुर्जनोराजाजामाताभागिनीसुतः ॥

भर्तार सहित भगिनीको घर न बसावै और अनाथ (असमर्थ) हो तौ पालन करै। सर्प, अग्नि, दुर्जन, राजा, जामाता, भानजा ॥ २ ॥

रोगःशत्रुर्नावमान्योप्यल्पइत्युपचारतः ॥
क्रौर्यात्तैक्ष्ण्याद्दुःस्वभावात्स्वामित्वात्पुत्रिकाभयात् ॥ ३ ॥

रोग, शत्रु इनको अल्प समझ कर उपचार (इलाज) से अपमान न करै किंतु क्रूरताके भयसे सर्पका, तेजके भयसे अग्निका दुःस्वभावके भयसे दुर्जनका, स्वामीके भयसे राजाका, पुत्रिका (कन्या) के दुःखके भयसे जामाताका ॥ ३ ॥

स्वपूर्वजपिंडदत्वाद्वृद्धिभीत्याउपाचरेत् ।
ऋणशेषंरोगशेषंशत्रुशेषंनरक्षयेत्॥ ४ ॥

अपने पुरुषोंका पिण्डका दाता होनेसे भानजेका और बढनेके भयसे रोगका, और भीतिसे शत्रुका सदैव उपचार (सेवा) करै और ऋण, रोग, शत्रु, इनके शेषकी रक्षा न करै अर्थात् इनको निर्मूल कर दे ॥ ४ ॥

याचकाद्यैः प्रार्थितःसन्नतीक्ष्णंचोत्तरंवदेत् ।
तत्कार्यंतुसमर्थश्चेत्कुर्याद्वाकारयीतच ॥ ५ ॥

और याचक आदि प्रार्थना करै तो उनको तीखा उत्तर न दे और समर्थ हो तो इनके कार्यको करै अथवा करा दे ॥ ५ ॥

दातॄणांधार्मिकाणांचशूराणांकीर्तनंसदा ।
शृणुयात्तुप्रयत्नेनतच्छिद्रंनैवलक्षयेत् ॥ ६ ॥

दाता, धार्मिक, शूरवीर, इनकी कीर्तिको बडे यत्नसे सुन और छिद्रको न देखै ॥ ६ ॥

कालेहितामिताहारविहारीविघसाशनः ।
अदीनात्माचसुस्वप्नःशुचिःस्यात्सर्वदानरः ।

समयपर हितकारी प्रमित भोजन और विहार करे, यज्ञके शेषको भक्षण करै, दीनता न करे सुखसे सोवै और सर्वदा पवित्र रहै ॥ ७ ॥

कुर्याद्विहारमाहारंनिर्हारंविजनेसदा ।
व्यवसायीसदाचस्यात्सुखंव्यायाममभ्यसेत् ॥

विहार (क्रीडा) भोजन मल मूत्रत्याग इनको सदैव एकान्तमें करै, नित्य उद्यमी हो और सुखसे व्यायाम (कसरत) का अभ्यास करै ॥ ८ ॥

अन्नंनानिंद्यात्सुस्वच्छःस्वीकुर्यात्प्रीतिभोजनम् ।
आहारंप्रवरंविद्यात्षड्रसंमधुरोत्तरम् ॥ ९ ॥

अच्छा मनुष्य अन्नकी निंदा न करै प्रीति से भोजनको ग्रहण करै और छः रसवाले उस आहारको उत्तम समझै जिसमें मधुर अधिक हो ॥ ९ ॥

विहारंचैवस्वस्त्रीभिर्वेश्याभिर्नकदाचन ।
नियुद्धकुशलैः सार्धंव्यायामंनतिभिर्वरम् ॥

विवाहित स्त्रियोंके साथ विहार करै वेश्याओंके साथ कभी न करै, युद्धमें कुशलोंके साथ युद्ध और नति (नमस्कार) करने वालोंके साथ व्यायाम श्रेष्ठ होता है ॥ १० ॥

हित्वाप्राक्पश्चिमौयामौनिशिस्वापोवरोमतः॥
दीनांधपंगुबधिरानोपहास्याः कदाचन ११॥

पहिले और पिछले प्रहरको छोडकर रात्रिमें सोना श्रेष्ठ होता है और दीन,अंधे, पंगु, बहिरे इनका हास्य कभी न करै ॥ ११॥

नाकार्येतुमतिंकुर्याद्द्राक्स्वकार्यंप्रसाधयेत् ।
उद्योगेनबलेनैवबुद्ध्याधैर्येणसाहसात् ॥१२॥

अकार्यमें मति न करै अपने कार्यको शीघ्र सिद्ध करै, उद्योग, बल, बुद्धि, धीरज, साहस इनसे ॥ १२ ॥

पराक्रमेणार्जवेनमानमुत्सृज्यसाधकः ।
नानिष्टंप्रवदेत्कस्मिन्नच्छिद्रंकस्यलक्षयेत् १३

कार्यसाधक मानको त्याग कर पराक्रम और नम्रतासे वर्तै, किसीको अनिष्ट न कहै और किसीके छिद्रको न देखै ॥ १३ ॥

आज्ञाभंगस्तुमहतांराज्ञःकार्योनवैक्वचित् ।
असत्कार्यनियोक्तारंगुरुंवापिप्रबोधयेत् १४ ॥

बडोंकी और राजाकी आज्ञाका भंग कभी न करै असत्यकार्यके नियुक्त करनेवाले गुरु-को भी बोधन करावै ॥ १४ ॥

नातिक्रामेदपिलघुंक्वचित्सत्कार्यबोधकम् ।
कृत्वास्वतंत्रांतरुणींस्त्रियंगच्छेन्नवैक्वचित् १५॥

कार्यके बोधक लघु (छोटे) का भी अवलंघन न करै जवान स्त्रीको स्वतंत्र छोड़ कर कहीं न जाय ॥ १५ ॥

स्त्रियोमूलमनर्थस्यतरुण्यःकिंपरैः सह ।
नममाद्येन्मदद्रव्यैर्नोविमुह्येत्कुसंततौ १६ ॥

जवान स्त्री अनर्थकी मूल होती हैं तौ औरोंके साथ क्या है, मदकी द्रव्यसे प्रमादको और खोटी संतानसे मोहको प्राप्त न हो ॥१६॥

साध्वीभार्यापितृपत्नीमातावालःपितास्नुषा ।
अभर्तृकानपत्यायासाध्वीकन्यास्वसापिच १७

साधुस्त्री, पिताकी स्त्री, माता, बालक, पिता और जो अनपत्य और भर्त्ता रहित कन्या, स्नुषा (पुत्रकी बहू) स्वसा (बहन) ॥ १७ ॥

मातुलानीभ्रातृभार्यापितृमातृस्वसातथा ।
मातामहोनपत्यश्चगुरुश्वशुरमातुलाः॥ १८ ॥

भाई, भावज, माता और पिताकी बहन ये नाना, संतानरहित गुरु, श्वशुर, मामा १८

बालःपिताचदाहर्त्तोभ्राताचभगिनीसुतः ।
एतेवश्यंपालनीयाःप्रयत्नेनस्वशक्तितः ॥१९॥

बालक, रक्षक, धेवता, भ्राता, भानजा य अपनी शक्तिके अनुसार यत्नसे पालने ॥ १९ ॥

अविभवेपिविभवेपितृमातृकुलंसुहृत् ।
पत्न्याःकुलंदासदासीभृत्यवर्गांश्चपोषयेत् २०॥

धन न होते और होते भी पिता माताका कुल, मित्र स्त्रीका कुल, दास दासी भृत्यवर्ग इनकी पालना करै ॥ २० ॥

विकलांगान्प्रव्रजितान्दीनानाथांश्चपालयेत् ।
कुटुंबभरणार्थंयोयत्नवान्नभवेन्नरः ॥ २१ ॥

विकलांग (एक अंग रहित), संन्यासी दीन, अनाथ, इनकी पालना करै और कुटुम्ब-के पोषण करनेमें जो मनुष्य यत्नवाला नहीं होता उसके ॥ २१ ॥

तस्यसर्वगुणैःकिंतुजीवन्नेवमृतश्चसः ।
नकुटुंबंभृतंयेननामिताःशत्रवोपिन ॥ २२ ॥

सम्पूर्ण गुणोंका क्या फल है वह मनुष्य जीता ही हुआ मरा है जिसने कुटुम्बको पाला नहीं और शत्रुओंको नवाया नहीं ॥ २२ ॥

प्राप्तंसंरक्षितंनैवतस्यांकिंजीवितेनवै ।
स्त्रीभिर्जितोऋणीनित्यंसुदरिद्रीचयाचकः२३॥
गुणहीनोयेधानिःसन्मृताएतेसजीवकाः ।

मिले हुए पदार्थकी जिसने रक्षा नहीं की उसके जीनेसे क्या है स्त्रियोंके वशीभूत और सदैव ऋणी महान् दरिद्री और याचक ॥ २३ ॥ गुणहीन, शत्रुके आधीन ये सब मनुष्य जीतेही मृतकके समान हैं ॥ २३ ॥

आयुर्वित्तंगृहच्छिद्रंमंत्रमैथुनभेषजम् ।
दानमानापमानंचनवैतानिसुगोपयेत् २४ ॥

अवस्था, धन, घरका छिद्र, मंत्र (सलाह) मैथुन, औषध, दान, मान, अपमान इन नौवस्तुओंको भली कार गुप्त करै ॥ २४ ॥

देशाटनंराजसभावेशनंशास्त्रचिंतनम् २५ ॥
वेश्यानिदर्शनंविद्वन्मैत्रींकुर्यादतंद्रितः ।
अनेकाश्चतथाधर्माःपदार्थाःपशवोनराः ॥२६॥

देशोंमें विचरना राजसभामें जाना शास्त्रका चिंतन ॥ २५ ॥ वेश्याओंका परिचय विद्वानों की मित्रता इनको निरालस्य होकर करै और अनेक धर्म, पदार्थ, पशु, नर ॥ २६ ॥

देशाटनात्स्वानुभूताः पर्वतादेशरीतयः ।
कीदृशाराजपुरुषान्याय्यान्याय्यंचकीदृशम् ॥

पर्वत देशोंकी रीति ये सब देशाटनसे जाने जाते हैं, राजाके पुरुष कैसे हैं, न्याय, और अन्याय कैसा है ॥ २७ ॥

मिथ्याविवादिनः केचकेवसत्यविवादिनः ।
कीदृशीव्यवहारस्यप्रवृत्तिःशास्त्रलोकतः २८ ॥

कौन मिथ्यावादी हैं कौन सत्यवादी हैं शास्त्र और लोककी रीतिसे व्यवहारकी प्रवृत्ति कैसी है ॥ २८ ॥

सभागमनशीलस्यताद्विज्ञानंप्रजायते ।
नाहंकारीचधर्मांधःशास्त्राणांतत्त्वचिंतनैः २९॥

राजसभामें जानेवाले मनुष्यको इन वस्तुओंका ज्ञान होता है, शास्त्रके तत्त्वोंकी चिंतासे मनुष्य अहंकारी और धर्ममें अंधा नहीं होता ॥ २९ ॥

एकंशास्त्रमधीयानोनविंद्यात्कार्यनिर्णयम् ।
स्याद्बह्वागमसंदर्शीव्यवहारोमहानतः ॥ ३०॥

एकशास्त्रके पढनेवाला मनुष्य कार्यके निर्णयको नहीं जान सकता इससे मनुष्य अनेक शास्त्रको देखनेवाला हो इसीसे महान् व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

बुद्धिमानभ्यसेन्नित्यंबहुशास्त्राण्यतंद्रितः।
तदर्थंतुगृहीत्वापितदधीनोनजायते ॥ ३१ ॥

बुद्धिमान् आलस्य छोडकर प्रतिदिवस शास्त्रोंका अभ्यास करै और शास्त्रके अर्थको जानकर भी उसके आधीन मनुष्य नहीं होता ॥ ३१ ॥

वेश्यातथाविधावापिवशीकर्तुनरंक्षमा ।
नैयात्कस्यवशंतद्वत्स्वाधीनंकारयेज्जगत् ॥३२

वेश्या तिसप्रकारकी मनुष्यको वशकरनेको समर्थ होती है इससे आप किसीके वशमें न हो और जगतको अपने वशमें करै ॥३२॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामार्थविज्ञानमेवच ।
सहवासात्पंडितानांबुद्धिःपंडाप्रजायते ॥३३॥

श्रुति, स्मृति, पुराण, इनके अथका ज्ञान और पंडा बुद्धि पंडितोंके संग वाससे होती है ॥ ३३ ॥

देवपित्रतिथिभ्योन्नमदत्त्वानाश्नियात्क्वचित् ।
आत्मार्थंयः पचेन्मोहान्नरकार्थंसजीवति ३४॥

देवता, पितर, अतिथि इनको विना अन्न दिये भोजन न करै जो अज्ञानसे अपने लिये पकाता है वह नरकके लिये जीवता है ॥ ३४ ॥

मार्गंगुरुभ्योबालिनेव्याधितायशवायच ।
राज्ञेश्रेष्ठायव्रतिनेयानगायसमुत्सृजेत् ३५ ॥

इतने पुरुषोंको मार्ग छोडदे अर्थात् सन्मुख आते देखकर हट जाय कि गुरु, बलवान, रोगी, शव, राजा श्रेष्ठ व्रतवाला और जो यानमें चढा हो ॥ ३५ ॥

शकटात्पंचहस्तंतुदशहस्तंतुवाजिनः ।
दूरतःशतहस्तंचतिष्ठेन्नागाद्वृषादश ॥ ३६ ॥

गाडीसे पांच हाथ, घोडेसे दश हाथ, हाथीसे सौ हाथ और बैलसे दश हाथ दूर पर टिके ॥ ३६ ॥

शृंगिणांनखिनांचैवदंष्ट्रिणां दुर्जनस्यच ।
नदीनांचमतौस्त्रीणांविश्वासंनैवकारयेत् ३७॥

सींग, नख, डाढवाले जीवोंका, दुर्जन, नदीके समीपका वास और स्त्री इनका कदाचित् भी विश्वास न करै ॥ ३७ ॥

खादन्नगच्छेद्ध्वानंनचहास्येनभाषणम् ।
शोकंनकुर्यान्नष्टस्यस्वकृतेरपिजल्पनम् ॥३८॥

भोजन करता हुआ मार्गमें न चले, हँसी से भाषण न करै, नष्ट हुई वस्तुका शोक न करै, अपने कृत्यका कथन (प्रशंसा) न करै ॥ ३८ ॥

सशंकितानांसामीप्यंत्यजेद्वैनीचसेवनम् ।
संलापंनैवशृणुयाद्गुप्तःकस्यापिसर्वदा ॥३९॥

जिसकी तरफसे कुछ शंका हो उसके समीप न रहै, नीचकी सेवाको त्याग दे और किसीके सम्भाषणको कदाचित् भी छुपकर न सुनै ॥ ३९ ॥

उत्तमैरननुज्ञातंकार्यंनेच्छेच्चतैः सह ।
देवैःसाकंसुधापानाद्राहोश्छिन्नंशिरोयतः ४०॥

बडोंकी आज्ञाके विना और उनके साथकी इच्छा न करै क्योंकि देवताओंके संग अमृतपान करनेसे राहुका शिर छेदन हो गया था ॥ ४० ॥

महतोसत्कृतमपिभवेत्तद्भूषणायवै ।
विषपानंशिवस्यैवत्वन्येषांमृत्युकारकम् ४१॥

निंदितभी कर्म बडोंके लिये भूषण होता है और अन्य पुरुषोंको मृत्युका दाता होता है ॥ ४१ ॥

तेजस्वीक्षमतेसर्वंभोक्तुंवह्निरिवानघः ।
नसांमुख्येगुरोःस्थेयंराज्ञःश्रेष्ठस्यकस्यचित् ।

तेजवाला मनुष्य संपूर्ण भक्षण करनेको इसप्रकार समर्थ होता है जैसे पवित्र अग्नि और गुरु राजा अथवा अन्य किसी श्रेष्ठ पुरुषके संमुख न टिकै ॥ ४२ ॥

राजामित्रमितिज्ञात्वानकार्यंमानसाप्सतम्।
नेच्छेन्मूर्खस्यस्वामित्वंदास्यमिच्छेन्महात्मनाम् ॥ ४३ ॥

राजाको मित्र जानकर मन माने कार्य न करै और मूर्खको स्वामी बनानेकी इच्छा न करै तथा महात्माओंके दास बननेकी इच्छा करै ॥ ४३ ॥

विरोधनंज्ञानलवदुर्विदग्धस्यचरंजनम् ।

ज्ञानके लेशसे जो दुर्विदग्ध है उसके संग विरोध और प्रीति न करै ॥

अत्यावश्यमनावश्यंक्रमात्कार्यंसमाचरेत् ।
प्राक्पश्चाद्द्राग्विलंबेनप्राप्तंकार्यंतुबुद्धिमान् ॥

आवश्यक और अनावश्यकको क्रमसे करै अर्थात् आवश्यककार्यको करके अनावश्यकको करै प्रथम पीछे शीघ्र और विलंबसे प्राप्तहुए कार्यको मनुष्य करै अर्थात् जो जिससमय करनेके योग्य हो उसको उसी समय करै ॥४४ ॥

पित्राज्ञातेनवैमातृवधरूपेसुपूजिता ॥ ४५ ॥
धृतागौतमपुत्रेणह्यकार्येचिरकारिता ।
प्रेम्णासमीपवासेनस्तुत्यानत्याचसेवया ॥४६॥

पिताकी आज्ञासे माताके मारने रूप कार्यमें भली प्रकार पूजा ॥ ४५ ॥ गौतमपुत्रको कुकर्ममेंभी चिरकालमें करनेसे मिली और प्रेम समीप वास, स्तुति नमस्कार सेवासे ॥ ४६ ॥

कौशल्येनकलाभिश्चकथाभिर्ज्ञानतोपिवा ।
आदरेणार्जवेनैवशौर्यादानेनविद्यया ॥४७ ॥

कुशलता कला कथाज्ञान आदर नम्रता शूरता दान और विद्यासे ॥ ४७ ॥

प्रत्युत्थानाभिगमनैरानंदस्मितभाषणैः ।
उपकारैःस्वाशयेनवशीकुर्याज्जगत्सदा ४८

प्रत्युत्थान (देखकर उठना) सन्मुखगमन आनंद हँसकर भाषण उपकार और अपने अन्तःकरणसे सदैव जगतको वशमें करै ॥ ४८ ॥

एतेवश्यकरोपायादुर्जनेनिष्फलाःस्मृताः ।
तत्सन्निधिंत्यजेत्प्राज्ञःशक्तस्तंदंडतोजयेत् ४९

परन्तु ये सब वश करनेके उपाय दुर्जनके विषय निष्कल कहे हैं इससे बुद्धिमान् मनुष्य दुर्जनके समीपको त्यागदेसमर्थ होयतो उसको दंडसे जीते ॥ ४९ ॥

छलभूतैस्तुतद्रूपैरुपायैरेभिरेववा।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामभ्यासः सर्वदाहितः ५०

छलरूप जीतनेके उपायोंसे अथवा इनहीं जीते श्रुति स्मृति पुराण इनका अभ्यास सदैव हितकारी होता है ॥ ५० ॥

सांगानांसोपवेदानांसकलानांनरस्यहि।
मृगयाक्षाःस्त्रियःपानंव्यसनानिनृणांसदा ॥

अंग और उपवेदों सहित संपूर्ण वेदोंका अभ्यास मनुष्यको हित है और मृगया द्यूत स्त्री मदिराका पान ये मनुष्योंके सदैव व्यसन कहे हैं ॥ ५१ ॥

चत्वारोंथतांनिसंत्यज्ययुक्त्यासंयोजयेत्क्वचित् ।
कूटेनव्यवहारंतुवृत्तिलोपंनकस्यचित् ॥५२॥

इन चारोंको त्याग दे परन्तु युक्तिसे क्वचित् २ इनका योग करै(वर्तै) किसीके झूठसे व्यवहार और किसीकी जीविकाका लोप ॥ ५२ ॥

नकुर्याच्चिंतयेत्कस्यमनसाप्यहितंक्वाचत् ।
तत्कार्यंतुसुखंयस्माद्भवेत्त्रैकालिकंदृढम् ५३

न करै और मनसे भी किसीके अहितकी चिंता न करै और वही काम करै जिससे तीनों कालमें दृढ सुख मिले ॥ ५३ ॥

मृतेस्वर्गंजीवतिचाविंद्यात्कीर्तिंदृढांशुभाम् ।
जागर्तिचसचिंतायःआधिव्याधिसुपीडितः ॥

मरे पीछे, और जीवते समयमें दृढ तथा उत्तम कीर्तिको पहिचाने जो मनुष्य चिंता हित है वा आधिव्याधिसे सुपीडित है वह जागता है अर्थात् उसको निद्रा नहीं आती ॥ ५४ ॥

जारश्चोरोबलिद्विष्टोविषयीधनलोलुपः ।
कुसहायीकुनृपतिभिन्नामात्यस्सुहत्प्रजः॥५५॥

जार चोर बलवान्‌का वैरी विषयी धनका लोभी जिसका सहायक बुरा हो वा जो राजा बुरा हो जिसके मंत्री भिन्न हों वा जिसकी प्रजा भिन्न हो अर्थात् मित्रतासे उनसे कर न लेता हो ॥ ५५ ॥

कुर्याद्यथासमीक्ष्यैतत्सुखंस्वप्याच्चिरंनरः ।
राज्ञोनानुकृतिंकुर्यान्नचश्रेष्ठस्यकस्यचित् ॥

इससे इन सब कामोंको यथार्थ देख कर करै और मनुष्य चिरकालतक आनंदसे शयन करै और राजाका अथवा किसी श्रेष्ठ मनुष्यका अनुकरण न करै ॥ ५६ ॥

नैकोगच्छेद्व्यालव्याघ्रचोरेषुचप्रबाधितुम् ।
जिघांसंतंजिघांसीयाद्गुरुमप्याततायिनम् ॥

सर्प सिंह चोर इनकी हिंसाके लिये अकेला न जाय और मारते हुए आततायी गुरुकीभी हिंसा करै ॥ ५७ ॥

कलहेनसहायःस्यात्संरक्षेद्बहुनायकम् ।
गुरूणांपुरतोराज्ञोनचासीतमहासने ॥ ५८ ॥

लडाईमें सहायता न करै और उसकी रक्षा करै जिसके समीप बहुत सेना हो। गुरु और राजा इनके आगे उच्च आसन पर न बैठे ॥ ५८ ॥

प्रौढपादोनतत्कार्यंहेतुभिर्विक्रालंनयेत् ।
यत्कर्तव्यंनजानातिकृतंजानातिचेतरः ॥५९ ॥

और ऊंचे पैर करके भी न बैठे और न उनके कार्यको बिगाडे जो मनुष्य करने योग्य कार्यको न जाने उसको इतर मनुष्य कैसे जान सकतेहैं ॥ ५९ ॥

नैववक्तिचकर्तव्यंकृतंयश्चोत्तमोनरः ।
नाप्रियाकथितंसम्यङ्नुतेनुभवंविना ॥६० ॥

जो मनुष्य अपने करने योग्य वा किये कार्यको नहीं कहता वह आदमी उत्तम होता है अथवा जो स्त्रीके कथनको विना देखे सत्य नहीं मानता वह भी उत्तम है ॥ ६० ॥

अपराधंमातृस्नुषाभ्रातृपत्नीसपत्निजम् ।
षोडशाब्दात्परंपुत्रंद्वादशाब्दात्परंस्त्रियम् ६१॥

अथवा जो माता पुत्रवधू भ्राताकी स्त्री सपत्नी इनके अपराधको न माने वह उत्तम है सोलहवर्षसे ऊपर पुत्रकी और बारह वर्षसे ऊपर स्त्रीकी ॥ ६१ ॥

नताडयेद्दुष्टवाक्यैःपीडयेन्नस्नुषादिकम् ।
पुत्राधिकाश्चदौहित्राभागिनेयाश्चभ्रातरः ६२॥

ताडना न करै और पुत्रवधू आदि-कोंको दुष्टवचनोंसे दुःख न दे और दौहित्र भानजे भाई ये सब पुत्रसे अधिक होते हैं ॥ ६२ ॥

कन्याधिकाःपालनीयाभ्रातृभार्यास्नुषास्वसा ।
आगमार्थंहियततेरक्षणार्थंहिसर्वदा ॥ ६३ ॥

और भ्राताकी स्त्री पुत्रवधू भगिनी इनकी कन्यासे भी अधिक पालना करै, मेल और रक्षाके लिये सदैव यत्न करै ॥ ६३ ॥

कुटुंबपोषणेस्वामीतदन्येतस्कराइव ।
अनृतंसाहसंमौर्ख्यंकामाधिक्यंस्त्रियांयतः ॥

स्वामी वही है जो कुटुम्बका पोषण करै उससे अन्य चोरोंके समान होते हैं, जिससे स्त्रियोंको झूंठ साहस मूर्खता कामदेवकी अधिकता होती है ॥ ६४ ॥

कामाद्दिनैकशयनेनैवसुप्यात्स्त्रियासह।
दृष्ट्वाधनंकुलंशीलंरूपंविद्यांबलंवयः ॥६५॥

इससे स्त्रीके संग एकशय्या पर कभी न सोवे और धन, कुल, शील, रूप, विद्या, बल, अवस्था, इनको देखकर ॥ ६५ ॥

कन्यांदद्यादुत्तमंचेन्मैत्रींकुर्यादथात्मनः।
भार्यार्थिनंवयोविद्यारूपिणंनिर्धनंत्वपि ६६॥

कन्याको दे और अपनेसे उत्तम होय तो उसके संग मित्रता करै और वर चाहै निर्धन हो परन्तु विद्या और रूपवान् हो ॥ ६६ ॥

नकेवलेनरूपेणवयसानधनेनच ।
आदौकुलंपरीक्षेततताेविद्यांततोवयः॥६७ ॥

केवल रूप अवस्था धनसे वरको न देखे किन्तु प्रथम कुलकी परीक्षा करै फिर विद्याकी फिर अवस्थाकी ॥ ६७ ॥

शीलंधनवयोरूपंदेशंपश्चाद्विवाहयेत् ।
कन्यावरयतेरूपंमातावित्तंपिताश्रुतम्॥६८॥

फिर शील धन अवस्था रूप इनकी परीक्षा करके विवाह करदे, कन्या रूपकोमाता धनको पिता विद्याको चाहते हैं ॥ ६८ ॥

बांधवाः कुलमिच्छंतिमिष्टान्नमितरेजनाः ।
भार्यार्थिवरयेत्कन्यामसमानर्षिगोत्रजाम्६९॥

बांधव कुलकी और इतर बराती मिष्टान्नकी इच्छा करते हैं, भार्याका अभिलाषी मनुष्य ऐसी कन्याको विवाहै जो अपने प्रवर व गोत्रकी न हो ॥ ६९ ॥

भ्रातृमतींसुकुलांचयोनिदोषविवर्जिताम् ।
क्षणशः कणशश्चैवविद्यामर्थंचसाधयेत् ॥ ७०

जिसके भ्राता हों अच्छे कुलकी हो और योनिका दोष जिसमें न हो ऐसी कन्याको विवाहै क्षण २में विद्या और अलप२ भी धनका संचय करै ॥ ७० ॥

नत्याज्यौतुक्षणकणौनित्यंविद्याधनार्थिना ।
सुभार्यापुत्रमित्रार्थंहितंनित्यंधनार्जनम् ७१

विद्या और धनके अभिलाषीको क्षण और कण (अलपता) नहीं त्यागने, श्रेष्ठस्त्री और पुत्रके लिये नित्य धनका संचय करना अच्छा है ॥ ७१ ॥

दानार्थंचविनाह्येतैः किंधनैश्चजनैश्चकिम् ।
भाविसंरक्षणक्षमंधनंयत्नेनरक्षयेत् ॥ ७२ ॥

और दानके लियेभी, इनके विना धन और जनोंसे क्या है भविष्यकालमें जो रक्षाके योग्य हो उस धनकी यत्नसे रक्षा करै ॥७२ ॥

जीवामिशतवर्षंतुनंदामिचधनेनवै ।
इतिबुद्ध्यासंचिनुयाद्धनंविद्यादिकंसदा ॥७३

मैं सौ वर्षतक जीऊंगा और धनसे आनंद भोगूंगा इस बुद्धिसे धन और विद्या आदिका सदैव संचय करै ॥ ७३ ॥

पंचविंशत्यब्दपूर्वंतदर्धंवातदर्धकम् ।
विद्याधनंश्रेष्ठतरंतन्मूलमितरद्धनम् ॥७४ ॥

पचीस वर्षतक अथवा साढ़े बारह वर्षतक अथवा सवा छःवर्षतक बुद्धिके अनुसार विद्या धन श्रेष्ठतर होताहै और सब धनोंकायही मूल कारण है ॥ ७४ ॥

दानेनवर्धतेनित्यंनभारायननीयते ।
अस्तियावत्तुसधनस्तावत्सर्वैस्तुसेव्यते॥७५॥

विद्याधन दानसे नित्य बढ़ता है विद्याका भार नहीं होता और न कोई लेजा सकता और धनी मनुष्य जबतक धनवान् रहता है तबतक सब सेवा करते हैं ॥ ७५ ॥

निर्धनस्त्यज्यतेभार्यापुत्राद्यैः सगुणोप्यतः ।
संसृतौव्यवहारायसारभूतंधनंस्मृतम् ॥ ७६ ॥

गुणवान्भी निर्धनको स्त्री पुत्र आदि त्याग देते हैं परन्तु संसारके व्यवहारोंके लिये धनही सार कहा है ॥ ७६ ॥

अतोयतेततत्प्राप्त्यैनरः सूपायसाहसैः ।
सुविद्ययासुसेवाभिः शौर्येणकृषिभिस्तथा ॥

इससे मनुष्य उत्तम उपाय वा साहससे भी धनकी प्राप्तिके लिये यत्न करै उत्तम विद्या, उत्तम सेवा, शूरवीरता और खेतीसे ॥ ७७ ॥

कौशीदवृद्ध्यापण्येनकलाभिश्चप्रतिग्रहैः ।
ययाकयाचापिवृत्त्याधनवान्स्यात्तथाचरेत् ॥

सूदकी वृद्धि, व्यवहार, कला, प्रतिग्रह वा जिस तिस वृत्तिसे ऐसा आचरण करै जिससे धनवान् हो ॥ ७८ ॥

तिष्ठंतिसधनद्वारेगुणिनः किंकराइव ।
दोषाअपिगुणायंतेदोषायंतेगुणाअपि ॥ ७९ ॥

धनवतोनिर्धनस्यनिंद्यतेनिर्धनोखिलैः ।
यथानजानंतिधनंसंचितंकातिकुत्रवै ॥ ८० ॥

धनवान् मनुष्यके द्वारपर गुणवान् मनुष्य किंकरके समान टिकते हैं और धनवान् मनुष्यके दोष भी गुण, और निर्धनके गुणभी दोष हो जाते हैं और निर्धन मनुष्यकी सब निंदा करते हैं और जैसे सचित धनको कितना है और कहां है ये न जानें ॥ ७९ ८० ॥

आत्मास्त्रीपुत्रमित्राणिसलेखंधारयेत्तथा ॥
नैवास्तिलिखितादन्यत्स्मारकंव्यवहारिणाम् ॥ ८१ ॥

आत्मा, स्त्री, पुत्र, मित्र, इन सबको लिख कर धनको रक्खें अर्थात् जिस लेखसे इनको धन प्राप्त होसके क्योंकि लिखे विना अन्य व्यवहारियोंको जतानेवाला कोई नहीं है ॥ ८१ ॥

नलेखेनाविनाकुर्याद्व्यवहारंसदाबुधः ।
निर्लोभेधनिकेराज्ञिविश्वस्तेक्षमिणांवरे ॥
सुतंचितंधनंधार्यंगृहीतालिखितंतुवा ।
मैत्र्यर्थंयाचितंदद्यादकुसीदंधनंसदा ८३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य लिखे विना कोई काम न करे और निर्लोभी धनवान्, राजा, विश्वासके योग्य, क्षमाशील, इनके समीप अपने सचित धनको रक्खे चाहे वह धन गृहीत वा लिखा हो और मित्रताके लिये विना व्याजभी धनको सदैव दे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

तस्मिन्स्थितंचेन्नबहुहानिकृत्स्वतथाविधम् ।
दृष्ट्वाधमर्णवृद्ध्यादिव्यवहारक्षमंसदा ॥८४॥

मित्रके पास स्थित हुआ भी लिखित धन अत्यन्त हानि करनेवाला नहीं होता और व्याजपरभी व्यवहारके योग्य सदैव देखकर ॥ ८४ ॥

संबंधंसप्रीतभुवंधनंदद्याच्चसाक्षिमत् ।
गृहीतालिखितंयोग्यमानंप्रत्यागमेसुखम् ८५॥

अवधी, प्रतिभू (जामिन) और साक्षी इनको लिखकर धनको दे क्योंकि ग्रहण करनेके समय लिखाहुआ जो प्रमाण है सो लौटानेके समय सुखदाई होता है ॥ ८५ ॥

नदद्याद्वृद्धिलोभेननष्टंमूलधनंभवेत् ॥
आहारेव्यवहारेचत्यक्तलज्जः सुखीभवेत् ॥

ऐसी जगह व्याजके लोभसे धनको न दे जहां मूलधन भी नष्ट हो जाय क्योंकि आहार और व्यवहारमें जो लज्जाको त्यागता है वही सुखी होता है ॥ ८६ ॥

धनंमैत्रीकरंदानेचादानेशत्रुकारकम् ।
कृत्वास्वांतेतथौदार्यंकार्पण्यंबहिरेवच ॥८७॥

देनेके समय धन मित्रको और लौटानेके समय शत्रुताको करता है और अपने चित्तमें उदारताको और बाहिर कृपणताको करके ॥ ८७ ॥

उचितंतुव्ययंकालेनरःकुर्यान्नचान्यथा ।
सुभार्यापुत्रमित्राणिशक्त्यासंरक्षयेद्धनैः ८८॥

मनुष्य समयपर उचित व्ययको करै अन्यथा न करै और शक्तिके अनुसार श्रेष्ठ स्त्री, पुत्र, मित्र इनकी धनसे रक्षा करै ॥ ८८ ॥

नात्मापुनरतोत्मानंसर्वैःसर्वपुनर्भवेत् ।
पश्यतिस्मसजविश्चेन्नरोभद्रशतानिच ॥८९ ॥

अपना आत्मा फिर नहीं होता और अन्य सब फिर हो सकते हैं इससे आत्माकी सबसे रक्षा करै क्योंकि यदि मनुष्य जीवेगा तो सैकडों आनन्दोंको देखेगा ॥ ८९ ॥

सदारप्रौढपुत्रान्द्राक्श्रेयोर्थीविभजेत्पिता ।
सदारभ्रातरःप्रौढाविभजेयुःपरस्परम् ॥९० ॥

अपने कल्याणका अभिलाषी पिता स्त्री और व्यवहार करनेके योग्य पुत्रोंके धनका विभाग शीघ्र करदे अथवा उक्त स्त्री युक्त पुत्र परस्पर धनका विभाग कर लें ॥ ९० ॥

एकोदराअपिप्रायोविनाशायान्यथाखलु ।
नैकत्रसंवसेच्चापिस्त्रीद्वयंमनुजस्यतु ॥ ९१ ॥

क्योंकि विभागके न करनेसे प्रायः सहोदर भाई भी नष्ट हो जाते हैं और मनुष्यकी दो स्त्री एक जगह नहीं वस सकतीं ॥ ९१ ॥

कथंवसेत्तद्बहुत्वंपशूनांतुनरद्वयम् ।
विभजेयुर्नतत्पुत्रायद्धनंवृद्धिकारणम् ॥९२॥

पशुके समान दो मनुष्य अथवा बहुत स्त्री एक जगह किस प्रकार वस सकते हैं और जिस धनका व्याज आता हो उस धनका विभाग पुत्र न करै ॥ ९२ ॥

अधमर्णस्थितंचापियद्देयंचौत्तमर्णिकम् ।
यस्येच्छेदुत्तमांमैत्रीकुर्यान्नार्थाभिलाषकम् ॥

जो धन व्याजपर हो अथवा जो ऋण देना हो उसको भी न बाँटे और जिसके संग उत्तम मित्रताकी इच्छा करै उससे धन लेनेकी इच्छा न करै ॥ ९३ ॥

परोक्षेतद्गृहश्चांतःस्त्रीसंभाषणंतथा ।
तन्न्यूनदर्शनंनैवतत्प्रतीपविवादनम् ॥ ९४ ॥

परोक्षमें उसके रनवासमें जाना तथा उसकी स्त्रीको बोलना उसकी न्यूनताको दिखना उसके प्रतिकूल विवाद इनको न करै ॥ ९४ ॥

असाहाय्यंचतत्कार्येह्यनिष्टोपेक्षणंनच ।
सकुसीदमकुसीदंधनंयच्चौत्तमर्णिकम् ॥९५ ॥

उसके कार्य्यमें सहायताका त्याग उसके अनिष्टकी उपेक्षा भी न करै और उत्तमर्णका जो धन व्याजपर हो वा विना व्याजपर हो उसको ॥ ९५ ॥

दद्याद्गृहीतमिवनोचोभयोःक्लेशकृद्यथा ।
नासाक्षिमच्चलिखितमृणपत्रस्यपृष्ठतः ९६ ॥

जिस प्रकार ग्रहण किया हो उसी प्रकार उस रीतिसे दे जिससे दोनोंको क्लेश न हो और विना साक्षी और ऋणपत्र (रुक्का) पीठ पर बिना लिखे धनको न दे ॥ ९६ ॥

आत्मपितृमातृगुणैःप्रख्यातश्चोत्तमोत्तमः ।
गुणैरात्मभवैःख्यातःपैतृकैर्मातृकैःपृथक् ॥

अपने वा पिता माताके गुणोंसे जिसकी कीर्तिमें है वह नर उत्तमसे भी उत्तम है और जो अपने वा पिताके वा माताके पृथक् २ गुणोंसे विख्यात है वह ॥ ९७ ॥

उत्तमोमध्यमोनीचोधमोमातृगुणैर्नरः ।
कन्यास्त्रीभगिनीभाग्योनरःसोप्यधमाधमः ॥

क्रमसे उत्तम मध्यम नीच होता है और माताके गुणोंसे जो प्रसिद्ध हो वह अधम और कन्या, स्त्री भगिनी इनके भाग्यसे जो जीवे वह अधमसे भी अधम होता है ॥ ९८ ॥

भूत्वामहाधनःसम्यक्पोष्यवर्गंतुपोषयेत् ।
अदत्त्वार्थंकिंचिदपिननयेद्दिवसंबुधः ॥९९॥

महाधनी होकर पालन करनेयोग्य पुत्र आदिकोंकी भली प्रकार पालना करै और दानके विना एक दिनभी व्यतीत न करै॥९९॥

स्थितोमृत्युमुखेचाहंक्षणमायुर्ममास्तिन ।
इतिमत्वादानधर्मौयथेष्टौतुसमाचरेत्॥२००॥

यह मानकर यथेष्ट दान और धर्म करै कि मैं मृत्युके मुखमें बैठा हूँ और मेरी अवस्था एक क्षणकी है ॥ २०० ॥

नतौविनामेपरत्रसहायाःसंतिचेतरे ।
दानशीलाश्रयाल्लोकोवर्ततेनशठाश्रयात् ॥ १॥

और यह बुद्धि रक्खे कि दान और धर्मके विना परलोकमें मेरे कोईसहायक नहीं क्योंकि जगत्का व्यवहार दानशील मनुष्यके आसरेसे चलता है शठके आसरेसे नहीं ॥ १ ॥

भवंतिमित्रादानेनद्विषंतोपिचकिंपुनः ।
देवतार्थंचयज्ञार्थंब्राह्मणार्थंगवार्थकम् ॥ २ ॥

और तो क्या शत्रु भी देनेसे मित्र हो जाते हैं और देवता, यज्ञ, ब्राह्मण, गौ इनके लिये ॥२॥

यद्दत्तंतत्पारलोक्यंसंविद्दत्तंतदुच्यते ।
बंदिमागधमल्लादिनटानर्थंचदीयते ॥ ३ ॥

जो दिया हो वह परलोकमें काम आता है और उसको संविद्दत्त कहते हैं और जो बंदीजन, भाट, मल्ल, नट इनके लिये दिया जाता है ॥ ३ ॥

पारितोष्यंयशोर्थंतच्छ्रियादत्तंतदुच्यते ।
उपायनीकृतंयत्तुसुहृत्संबंधिबंधुषु ॥ ४ ॥

जो पारितोषिक (इनाम) यशके लिये होता है उसको श्रियादत्त कहते हैं और जो धनमित्र सम्बन्धी बन्धुओंको उपायन (भेट) किया हो ॥ ४ ॥

विवाहादिषुवाचारदत्तंह्रीदत्तमेवतत् ।
राज्ञेचबलिनेदत्तंकार्यार्थंकार्यघातिने ॥ ५ ॥

अथवा विवाह आदिमें व्यवहारसे जो दिया हो उसको ह्रीदत्त कहते हैं और राजा बलवान् अथवा कार्यके नष्ट करनेवालेको जो दिया हो ॥ ५ ॥

पापभीत्याथवायच्चतत्तुभीदत्तमुच्यते ।
दत्तंहिंस्रवृद्ध्यर्थंनष्टद्यूतविनाशितम् ॥ ६ ॥

अथवा पापके भयसे जो दिया हो उसको भीदत्त कहते हैं और जो धन हिंसा वृद्धिके लिये अथवा द्यूतमें विनाशित नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चौरैर्हृतंपापदत्तंतत्परस्त्रीसंगमार्थकम् ।
आराधयतियद्देवंतमुत्कृष्टतरंवदेत् ॥ ७ ॥

चोरोंने हरा हो अथवा परस्त्री संगमके लिये दिया हो उसको पापदत्त कहते हैं और जिस धनसे देवताकी आराधना करे उसको अत्यन्त उत्कृष्ट कहते हैं ॥ ७ ॥

तन्न्यूनतांनैवकुर्याज्जोषयेत्तस्यसेवनम् ।
विनादानार्जवाभ्यांनभुव्यस्तिचवशीकरम्॥८॥

उसकी न्यूनता न करे किन्तु सदैव सेवन करे दान और नम्रताके विना पृथ्वीपर वश करनेवाली कोई वस्तु नहीं ॥ ८ ॥

दानक्षीणोविवर्धिष्णुःशशीवक्रोप्यतःशुभः ।
विचार्यस्नेहंद्वेषंवाकुर्यात्कृत्वानचान्यथा ॥९॥

जो मनुष्य दानसे क्षीण हो वह कभी न कभी बढने योग्य होता है जैसे वक्र भी चन्द्रमा शुभ होता है और विचार कर स्नेह वा द्वेषको करे, अन्यथा इनको न करे ॥ ९ ॥

नापकुर्यान्नोपकुर्याद्भवतोनर्थकारिणौ ।
नातिक्रौर्यंनातिशाठ्यंधारयेन्नातिमार्दवम् १०॥

किसीका तिरस्कार वा उपकार विना विचारे न करे क्योंकि विना विचार किये ये दोनों अनर्थकारी होते हैं, अति क्रूरता, अति शठता, अति मृदुता इनको न करे ॥ १० ॥

नातिवादंनातिकार्यासक्तिमत्याग्रहंनच ।
अतिसर्वनाशहेतुह्यतोत्यंतंविवर्जयेत् ॥ ११ ॥

और तिसी प्रकार अत्यन्त वाद अत्यन्त कार्योंमें आसक्ति अत्यन्त आग्रह न करे क्योंकि सब जगह अति नाशका हेतु होता है इससे अतिको वर्जे दे ॥ ११ ॥

उद्वेजतेजनःक्रौर्यात्कार्पण्यादतिनिंदति ।
मार्दवान्नैवगणयेदपमानोतिवादतः ॥ १२ ॥

क्रूरतासे मनुष्य कंपता है, कृपणतासे अत्यन्त निन्दाको प्राप्त होता है, मृदुको कोई गिनता नहीं, अत्यन्त वादसे अपमान होता है ॥१२॥

अतिदानेनदारिद्र्यंतिरस्कारोतिलोभतः ।
अत्याग्रहान्नरस्यैवमौर्ख्यंसंजायतेखलु ॥१३॥

अत्यन्त दानसे दरिद्रता, अत्यन्त लोभसे

तिरस्कार और अत्यन्त आग्रहसे मनुष्यकी निश्चय मूर्खता होती है ॥ १३ ॥

अनाचाराद्धर्महानिरत्याचारस्तुमूर्खता ।
ह्यधिकोस्मीतिसर्वेभ्योह्यधिकज्ञानवानहम् १४

विना आचार किये धर्मकी हानि और अत्यन्त आचारसे मूर्खता होती है, मैं सबसे अधिक हूँ और अधिक ज्ञानवान हूँ ॥ १४ ॥

धर्मतत्त्वमिदमितिनैवंमन्येतबुद्धिमान् ।
नेच्छेत्स्वाम्यंतुदेवेषुगोषुचब्राह्मणेषुच॥१५॥

यही धर्मका तत्व है अन्य नहीं इसको बुद्धिमान् मनुष्य कभी न मानै और देवता, गौ, ब्राह्मण इनके स्वामी होनेकी इच्छा न करै ॥ १५ ॥

महानर्थकरंह्येतत्समग्रकुलनाशनम् ।
भजनंपूजनंसेवामिच्छेदेतेषुसर्वदा ॥ १६ ॥

क्योंकि इनकी स्वामिता महान् अनर्थको और समग्र कुलको नष्ट करती है किन्तु इनके भजन, पूजन, सेवनकी सदैव इच्छा करै १६

नज्ञायतेब्रह्मतेजःकस्मिन्कीदृक्प्रतिष्ठितम् ।
पराधीनंनैवकुर्यात्तरुणीधनपुस्तकम् ॥१७ ॥

और किस ब्राह्मणमें कैसा ब्रह्मतेज है यह प्रतीत नहीं हो सकता और तरुण स्त्री, धन पुस्तक इनको पराधीन न करै ॥ १७ ॥

कृतंचेल्लभ्यतेदैवाद्भ्रष्टंनष्टंविमर्दितम् ।
बह्वर्थंनत्यजेदल्पहेतुनाल्पंनसाधयेत् ॥१८ ॥

यदि पराधीन किये हुए ये दैवसे मिल भी जायँ तो क्रमसे भ्रष्ट, नष्ट, मर्दन किये हुए मिलते हैं अल्प कारणसे बड़े अर्थको न त्यागे और अल्पकी सिद्धि ॥ १८ ॥

बह्वर्थव्ययतोधीमानभिमानेनवैकचित् ।
बह्वर्थव्ययभीत्यातुसत्कीर्तिंनत्यजेत्सदा ॥१९॥

बहुत धनके व्ययसे न करे और बुद्धिमान् मनुष्य अभिमानसे वा अधिक खर्चके भयसे सदैव सत्कीर्तिको न त्यागे ॥ १९ ॥

भटानामसदुक्त्यातुनार्देत्कुप्यान्नतैःसह ।
लज्जतेनसुहृद्योनभिद्यतेदुर्मनाभवेत् ॥ २० ॥

और वीरोंके असद्वचनोंसे न डरे और न उनके सङ्ग कोप करे, जिस मित्रको लज्जा नहीं होती वह फट जाता है वा उदासीन हो जाता है ॥ २० ॥

वक्तव्यंनतथाकिंचिद्विनोदेपिचधीमता ।
आजन्मसेवितैर्दानैर्मानैश्चपरितोषितम् ॥२१॥

बुद्धिमान् मनुष्य विनोदमेंभी वैसे वचनको न कहै जिससे दूसरा उदास हो। जिसको दान वा मानसे जन्मपर्यंत प्रसन्न रक्खा हो उसको कटु वचन न कहै ॥ २१ ॥

तीक्ष्णवाक्यान्मित्रमपितत्कालंयातिशत्रुताम् ।
वक्रोक्तिशल्यमुद्धर्तुंनशक्यंमानसंयतः ॥२२॥

कठोर वचनसे मित्रभी उसी समय शत्रु हो जाता है क्योंकि कठोर वचनके शल्य(शस्त्र) को मनसे कोई नहीं उखाड़ सकता ॥ २२ ॥

वहेदमित्रंस्कंधेनयावत्स्यात्स्वबलाधिकः ।
ज्ञात्वानष्टबलंतंतुभिद्यात्घटमिवाश्मनि॥२३॥

शत्रु जबतक अपने बलसे अधिक हो तबतक अपने कांधेपर ले चले और जब उसका बल नष्ट हो जाय तब इस प्रकार नष्ट करे जैसे पत्थरपर पटक कर घटको ॥ २३ ॥

नभूषयत्यलंकारोनराज्यंनचपौरुषम् ।
नविद्यानधनंतादृक्यादृक्सौजन्यभूषणम् २४॥

अलंकार, राज्य, पुरुषार्थ, विद्या इनसे मनुष्यकी वसी शोभा नहीं होती जैसी सौजन्य (भलाई) रूप भूषणसे होती है ॥ २४ ॥

अश्वेजवोनृपेधैर्यंमणौकांतिःक्षमानृपे ।
हावभावौचवेश्यायांगायकेमधुरस्वरः ॥ २५ ॥

अश्वका वेग, बलका धैर्य, मणिकी कांति, राजाकी क्षमा, वेश्याके हावभाव, गानेवालेका मधुर स्वर, भूषण होते हैं ॥ २५ ॥

दातृत्वंधनिकेशौर्यंसैनिकेबहुदुग्धता ।
गोषुदमस्तपस्विषुविद्वत्सुवावदूकता ॥ २६ ॥

धनवानका दातृत्व (देना), सैनिक (सिपाही) का शूरता, गौओंका बहुत दुग्ध

तपस्वियोंका इंद्रियोंमें दमन, विद्वानोंका वावदूकता (सभामें बहुत बोलना) भूषण होता है ॥ २६ ॥

सभ्येष्वपक्षपातस्तु तथा साक्षिषु सत्यवाक् ।
अनन्यभक्तिर्भृत्येषु सुहितोक्तिश्च मंत्रिषु २७ ॥

सभासदोंमें पक्षपात न करना, साक्षियोंमें सत्यवाणी, भृत्योंमें स्वामिकी अनन्य भक्ति और मंत्रियोंमें राजाके हितके वचन भूषण होते हैं ॥ २७ ॥

मौनं मूर्खेषु च स्त्रीषु पातिव्रत्यं सुभूषणम् ।
महादुर्भूषणं चैतद्विपरीतममीषु च ॥ २८ ॥

मूर्खोंमें मौन और स्त्रियोंमें पातिव्रत्य भूषण होते हैं, इन पूर्वोक्त सम्पूर्णोंमें इनके विपरीत दुष्टभूषण होते हैं अर्थात् शोभाको नहीं देते ॥ २८ ॥

भात्येकनायकं नित्यं नैव निर्बहुनायकम् ।
न च हिंस्रमुपेक्षेत शक्तो हन्यात्तत्क्षणे ॥ २९ ॥

एक नायक (स्वामी) होय तो शोभाको प्राप्त होता है नायक न हो अथवा बहुत नायक हों तो शोभा नहीं होती और हिंसा करनेवालेकी उपेक्षा न करै समर्थ होय तो उसीसमय नष्ट करदे ॥ २९ ॥

पैशुन्यं चंडता चौर्यं मात्सर्यमतिलोभता ।
असत्यं कार्यघातित्वं तथालसकताप्यलम् ॥

पैशुन्य (चुगली खाना), चंडता, चोरी, मात्सर्य (पराये गुणोंमें दोष देखना), अति, लोभ, असत्य, कार्यको नष्ट करना और अत्यन्त आलसी ये सब होना ॥ ३० ॥

गुणिनामपि दोषाय गुणानाञ्छाद्य जायते ।
मातुः प्रियायाः पुत्रस्य धनस्य च विनाशनम् ३१ ।

गुणियोंके भी गुणोंको ढककर दोषके लिये होते हैं, माता, स्त्री, पुत्र और धन इनका नष्ट होना व क्रमसे ॥ ३१ ॥

वाल्ये मध्ये च वार्धक्ये महापापफलं क्रमात् ।
श्रीमतामनपत्यत्वमधनानां च मूर्खता ३२ ॥

बाल्य, यौवन, वृद्ध अवस्थामें महापापका फल होता है और धनवानोंको सन्तानका न होना और निर्धन होकर मूर्खता होनी ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां षंढपतित्वं च न सौख्याप्तिष्टनिर्गमः ।
मूर्खः पुत्रोऽथवा कन्या चंडी भार्या दरिद्रता ३३ ॥

स्त्रियोंको नपुंसक पति इनसे सुख और इष्टकी प्राप्ति नहीं होती मूर्ख पुत्र तथा विधवा कन्या, और चंडी स्त्री, दरिद्रता ॥ ३३ ॥

नीचसेवाटनं नित्यं नैतत्षट्कं सुखाय च ।
नाध्यापनेनाध्ययनेन देवेन गुरौ द्विजे ॥ ३४ ॥

नीचकी सेवा, नित्य भ्रमणा इन छःसे सुख नहीं होता, पढाने पढने, देवता, गुरु, ब्राह्मण, इनमें और ॥ ३४ ॥

न कलासु न संगीते सेवायां नार्जवे स्त्रियाम् ।
न शौर्ये न च तपसि साहित्येरमते मनः ॥ ३५ ॥

कला, संगीत, सेवा, नम्रता, स्त्री, शूरता, तप, साहित्य, (काव्योंकी रचना) इनमें जिसका मन न रमे ॥ ३५ ॥

यस्य मुक्तः खलः किं वा नररूपपशुश्च सः ।
अन्योदयासहिष्णुश्च छिद्रदर्शी विनिंदकः ३६ ॥

वह छोडा हुआ खल, नररूपधारी पशु होता है और जो अन्यके उदयको न सहे अथवा छिद्र देखे वा निन्दा करे ॥ ३६ ॥

द्रोहशीलः स्वांतमलः प्रसन्नास्यः खलः स्मृतः ।
एकस्यैव न पर्याप्तमस्ति यद्ब्रह्मकोशजम् ॥ ३७ ॥

आशावद्धस्योज्झितस्य तस्याल्पमपि पूर्तिकृत् ।
करोत्यकार्यं शास्त्यन्यं बोधयत्यनुमोदते ॥ ३८ ॥

वा द्रोहमें मन रक्खे जिसका अन्तःकरण मलीन हो और मुख प्रसन्न हो वह भी खल कहा है और ब्रह्मके सम्पूर्ण कोश (जगत्) का सम्पूर्ण धन आशावान् एक मनुष्यकी भी पूर्त्ति नहीं करसकता और आशाहीन मनुष्यकी अल्पधनसे भी पूर्त्ति हो जाती है और आशावान मनुष्य अकार्यको करताहै, उपदेश देता है और सम्मति देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

भवंत्यन्योपदेशार्थंधूर्ताःसाधुसमाःसदा ।
स्वकार्यार्थंप्रकुर्वंतिह्यकार्याणांशतंतुते ३९ ॥

धूर्त मनुष्य अन्यके उपदेशार्थ सदैव साधुओंके समान होते हैं और वे अपने प्रयोजनके लिये सकडों कुकर्म करते हैं ॥ ३९ ॥

पित्रोराज्ञांपालयतिसेवनेचनिरालसः ।
छायेववर्ततेनित्यंयततेचागमायवै ॥ ४० ॥

जो पुत्र माता, पिताकी आज्ञा पाले और सेवामें आलस्यन करे और छायाके समाननित्य वर्ते और प्राप्तिके लिये नित्य यत्न करे॥४०

कुशलःसर्वविद्यासुसपुत्रःप्रीतिकारकः ।
दुःखदोविपरीतोयोदुर्गुणीधननाशकः ॥४१॥

सब विद्याओंमें कुशल हो वह पुत्र पिताको प्रसन्नता कारक होता है और जो पूर्वोक्तसे विपरीत, दुर्गुणी, धनका नाशक हो वह पिताको दुःखदाई होता है ॥ ४१ ॥

पत्योर्नित्यंचानुरक्ताकुशलागृहकर्मणि ।
पुत्रप्रसूःसुशीलाचाप्रियापत्युःसुयौवना॥४२॥

जो स्त्री पतिमें नित्य अनुरक्त, गृहके कार्य्योंमें कुशल, पुत्रवती, सुशीला, श्रेष्ठ युवती हो वह स्त्री पतिको प्यारी होती है ॥ ४२ ॥

पुत्रापराधान्क्षमतेयापुत्रपरिपोषिणी ।
सामाताप्रीतिदानित्यंकुलटान्यातिदुःखदा४३॥

जो माता पुत्रके अपराधोंको सहकर पुत्रकी पालना करे वह माता नित्य प्रीतिको देती है और पूर्वोक्त अन्य जो व्यभिचारिणी वह दुःख देनेवाली होती है ॥ ४३ ॥

विद्यागमार्थंपुत्रस्यवृत्त्यर्थंयततेचयः ।
पुत्रंसदासाधुशास्तिप्रीतिकृत्सपितानृणी ४४॥

जो पिता पुत्रको विद्यालाभके अथवा जीविकाके लिये यत्न करे और सदैव पुत्रको अच्छी शिक्षा दे वह पिता प्रीति करनेवाला अनृणी (पुत्रके ऋणसे छूटा) होता है ॥४४॥

यःसाहाय्यंसदाकुर्यात्प्रतीपन्नवदेत्क्वचित् ।
सत्यंहितंवक्तियातिदत्तंगृह्णातिमित्रताम् ॥४५॥

और जो सदैव सहाय करे, कभी प्रतिकूल न कहे और सत्य हित वचनको कहे, माने और दे वह मित्र होता है ॥ ४५ ॥

नीचस्यातिपरिचयोह्यन्यगेहेसदागतिः ।
जातौसंघेप्रातिकूल्यंमानहानिर्दरिद्रता ॥४६॥

नीचोंका अत्यन्त परिचय, अन्यके घरमें सदैव गमन और जातिके समुदायमें विरोध और मानकी हानि, दरिद्रता ॥ ४६ ॥

व्याघ्राग्निसर्पहिंस्राणांनहिसंवर्धणंहितम् ।
सेवितस्यापिराज्ञोनैतेमित्राःकस्यसंतिहि ॥४७॥

सिंह, अग्नि, सर्प, घातक इनका सम्बंध हितकारी नहीं होता, और सेवा करनेसे राजा कभी मित्र नहीं होते ॥ ४७ ॥

दौर्मनस्यंचसुहृदांसुप्राबल्यंरिपोःसदा ।
विद्वत्स्वपिचदारिद्र्यंदारिद्र्याद्बहुपत्यता ॥४८ ॥

मित्रोंका दुष्ट मन होता है और शत्रुकी सदैव प्रबलता होती है, विद्वानोंमें दरिद्रता और दरिद्रतासे अधिक सन्तान होती है ॥ ४८ ॥

धनीगुणीवैद्यनृपजलहीनेसदास्थितिः ।
दुःखायकन्यकाप्येकापित्रोरपिचयाचनम् ४९

धनी, गुणी, वैद्य, राजा, जल इनसे रहित स्थानमें सदैव स्थिति (वास) और एक भी कन्या और माता पितासे भी याचना ये सब दुःखके लिये होते हैं ॥ ४९ ॥

सुरूपःसधनःस्वामीविद्वानपिबलाधिकः ।
नकामयेद्यथेष्टंयःस्त्रीणांनैवसुसौख्यकृत् ५०॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ रूपवान्, धनी, विद्वान्, अधिक बलवान होकर स्त्रियोंकी यथेष्ट कामना न करे वह सुखका भोगी नहीं होता॥५०॥

योयथेष्टकामयतेस्त्रीतस्यवशगाभवेत् ।
संधारणाल्लालनाच्चयथायातिवशंशिशुः ॥ ५१॥

जो स्त्रीकी यथेष्ट कामना करता है उसके वशमें स्त्री हो जाती है जैसे भली प्रकार रखने और लाडसे बालक वशमें हो जाता है ॥ ५१ ॥

कार्यंतत्साधकादींश्चतद्व्ययंसुविनिर्गमः ।
वीचिंत्यकुरुतेज्ञाननान्यथालब्धापिकाचित् ५२॥

जिसके व्ययको भलीप्रकार जाने उस कामको साधक आदिके द्वारा करै और ज्ञानी मनुष्य विचार कर कामको करता है और अन्यथा लघु कार्यको कभी नहीं करता ॥५२॥

नचव्ययाधिकंकार्यंकर्तुमीहेतपंडितः।
लाभाधिक्यंयक्रियेतचेषद्वाव्यवसायिभिः ५३॥

पंडित मनुष्य अधिक व्ययवाला काम न करै और व्यवसायी (उद्योगी) मनुष्य थोडे भी उस कामको करते हैं जिसमें अधिक लाभ हो ॥ ५३ ॥

मूल्यंमानंचपण्यानांयाथात्म्यान्मृग्यते सदा।
तपःस्त्रीकृषिसेवासोपभोग्येनापिभक्षणे ॥५४॥

और पण्य (बेचने योग्य) वस्तुओंके मोल और मानको सदैव ढूँढे, तप और स्त्री भोगनेके लिये और कृषिकी सेवा भक्षणके लिये होती है ॥ ५४ ॥

हितःप्रतिनिधिर्नित्यंकार्येन्येतंनियोजयेत्।
निर्जनत्वंमधुरखुक्जारश्चोरःसदेच्छति ॥५५॥

प्रतिनिधि सदैव हित होता है उसको अन्य काममें नियुक्त करै, मधुरका भोगी जार चोर ये सदैव निर्जन देशको चाहते हैं ॥ ५५ ॥

साहाय्यंतुबलिद्विष्टोवेश्याधानिकामित्रताम्।
कुनृपश्चछलंनित्यंस्वामिद्रव्यंकुसेवकः ॥५६॥

बलवान्का वरी सहायता और वेश्या धनवानकी मित्रता और खोटा राजा नित्य छल और खोटा सेवक स्वामीके द्रव्यकी सदैव इच्छा करते हैं ॥ ५६ ॥

तत्त्वंतुज्ञानवान्दंभतपोग्निंदेवजीवकः।
योग्येकांतंचकुलटाजारंवैद्यंचव्याधितः ॥५७॥

ज्ञानी मनुष्य तत्त्वकी, दंभ तपकी, देवजीवक अग्निकी, योगी एकान्तकी, व्यभिचारिणी जारकी, रोगी वैद्यकी और ॥ ५७ ॥

धृतपण्योमहर्घत्वंदानशीलंतुयाचकः।
राक्षितारंमृगयतेभीतश्छिद्रंतुदुर्जनः ॥५८ ॥

जिसके माल पडा हो वह महगेकी, याचक दानीकी, भयभीत रक्षा करनेवालेकी, दुर्जन छिद्रकी इच्छा करता है ॥ ५८ ॥

चंडायतेविवदतेस्वपित्यश्नातिमादकम्।
करोतिनिष्फलंकर्ममूर्खोवास्वेष्टनाशनम् ॥

मूर्ख मनुष्य प्रचंड हो जाय विवाद करे, सोवे,मादक वस्तु भक्षण करे वा निष्फल कर्म करे अथवा अपने इष्टका अनिष्ट करे ॥ ५९ ॥

तमोगुणाधिकंक्षात्रंब्राह्मंसत्त्वगुणाधिकम्।
अन्यद्रजोधिकंतेजस्तेपुसत्त्वाधिकंवरम् ॥

क्षत्रियमें तमोगुण ब्राह्मणमें सत्त्व गुण, इनसे अन्योंमें रजोगुण अधिक होता है, इन तीनोंमें जिसमें सत्त्वगुण अधिक हो वह श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥

सर्वाधिकोब्राह्मणस्तुजायतेहिस्वकर्मणा।
तत्तेजसोल्पतेजांसिसंतिचक्षत्रियादिषु ॥६१॥

ब्राह्मण अपने कर्ममें सबसे अधिक होता है और क्षत्रिय आदिकोंमें उसके तेजसे न्यून तेज होता है ॥ ६१ ॥

स्वधर्मस्थंब्राह्मणंहिदृष्ट्वाबिभ्यतिचेतरः।
क्षत्रियादिर्नान्यथास्वधर्मंचातः समाचरेत्६२

अपने धर्ममें टिके हुए ब्राह्मणको देखकर क्षत्रिय आदि डरते हैं अन्यथा नहीं, इससे ब्राह्मण अपने धर्मका आचरण करे ॥ ६२ ॥

नस्यात्स्वधर्महानिस्तुययावृत्त्याचसावरा।
सदेशः प्रवरोयत्रकुटुंबभरणंभवेत् ॥ ६३ ॥

वही जीविका श्रेष्ठ होती है जिसमें अपने धर्मकी हानि न हो, वही देश उत्तम होता है जिसमें कुटुम्बका पालन होय ॥ ६३ ॥

कृषिस्तुचोत्तमावृत्तिः यासरिन्मातृकामता।
मध्यमावैश्यवृत्तिश्चशूद्रवृत्तिस्तुचाधमा॥६४॥

जो नदीके तीरपर की जाय वह खेती उत्तम वृत्ति होती है और वैश्यकी वृत्ति मध्यम और शूद्रवृत्ति अधम होती है ॥ ६४ ॥

याञ्चाधमतरावृत्तिर्ह्युत्तमासातपस्विषु ॥
क्वचित्सेवोत्तमावृत्तिर्धर्मशीलनृपस्यच॥६५॥

याचनाकी वृत्ति अति अधम होती है परन्तु तपस्वियोंमें वह याचना उत्तम वृत्ति

होती है, और कहीं २ धर्मशील राजाकी सेवाभी उत्तम होती है ॥ ६५ ॥

अध्वर्य्यवादिकंकर्मकृत्वायागृह्यतेभृतिः ।
साकिंमहाधनायैववाणिज्यमलमेवकिम् ६६॥

अध्वर्यु आदिके कर्मको करिके जो वेतन ग्रहण किया जाता है क्या उससे बडा धन होता है और क्या वाणिज्यसे (लेन देन) से महाधन होता है अर्थात् नहीं होता ॥ ६६ ॥

राजसेवांविनाद्रव्यंविपुलंनैवजायते ।
राजसेवातिगहनाबुद्धिमद्भिर्विना न सा॥ ६७॥

राजसेवाके विना विपुल धन नहीं होता और राजसेवा अत्यन्त कठिन होती है बुद्धिमान मनुष्योंके बिना ६७ ॥

कर्तुंशक्याचेतरेणह्यासिधारेवसर्वदा ।
व्यालग्राहीयथाव्यालंमंत्रीमंत्रबलान्नृपम् ६८॥

राजसेवाको कोई नहीं कर सकता क्योंकि राजसेवा सदैव खड्गधाराके समान होती है, सर्पका पकडनेवाला जैसे सर्पको इसीप्रकार मंत्री मन्त्रके बलसे राजाको ॥ ६८ ॥

करोत्यधीनंतुनृपेभयंबुद्धिमतांमहत् ।
ब्राह्मतेजोबुद्धिमत्सुक्षात्रंराज्ञिप्रतिष्ठितम् ६९

अधीन कर लेता है और बुद्धिमान् मनुष्योंको राजाका बडा भय होता है, बुद्धिमानोंमें ब्रह्मतेज और राजाओंमें क्षत्रियोंका तेज रहता है॥ ६९ ॥

आरादेवसदाचास्तितिष्ठन्दूरेपिबुद्धिमान् ।
बुद्धिपाशैर्बंधयित्वासंताडयतिकर्षति ॥ ७० ॥

दूर टिकाभी बुद्धिमान् मनुष्य सदैव समीप रहता है बुद्धिकी फांसोंमें बांधकर ताडता है और खींचता है ॥ ७० ॥

समीपस्थोपिदूरेस्तिह्यप्रत्यक्षसहायवान् ।
नानुवाकहताबुद्धिर्व्यवहारक्षमाभवेत्॥ ७१ ॥

जिसको सहायताका प्रत्यक्ष (ज्ञान) न होय वह समीपमें टिका भी दूर होता है और शास्त्रके ज्ञानसे हीन बुद्धि व्यवहारके योग्य नहीं होती ॥ ७१ ॥

अनुवाकहतायातुनसासर्वत्रगामिनी ।
आदौवरंनिर्धनत्वंधनिकत्वमनंतरम् ॥७२ ॥

जो बुद्धि शास्त्रके ज्ञानसे हीन है वह सब जगह नहीं पहुँचती पहिले निर्धन होना और पीछेसे धनवान होना अच्छा होता है ॥ ७२ ॥

तथादौपादगमनंयानगत्वमनंतरम् ७३ ॥
सुखायकल्पतेनित्यंदुःखायविपरीतकम् ॥

तिसी प्रकार पहिले पैरों चलना और पीछेसे यान (सवारी) में चलना सदैव सुखदायी होता है और इससे विपरीत दुःखदायी होता है ॥ ७३ ॥

वरंहित्वानपत्यत्वंमृतापत्यत्वतः सदा ।
दुष्टयानात्पादगमोह्यौदासीन्यंविरोधतः॥७४॥

सन्तानके मरनेसे सन्तानका न होना और दुष्टयानसे पैरों चलना और विरोध करनेसे उदासीन रहना सदैव अच्छा होता है ॥७४॥

वरंदेशाच्छादनतश्चर्मणापादगूहनम् ।
ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता तु वरामता ७५ ॥

और देशके आच्छादनसे चर्म्मसे पैरोंका ढकना (जूता पहरना) अच्छा होता है और ज्ञानके लेशसे दुर्विदग्ध (अल्पज्ञता) से मूर्खता अच्छी कही है ॥७५॥

परगृहनिवासाद्धि्वरण्येनिवसनंवरम् ।
प्रदुष्टभार्यागार्हस्थ्याद्भैक्ष्यंवामरणंवरम् ॥७६॥

अन्यके घरमें निवाससे वनमें रहना और दुष्टभार्यावाले गृहस्थसे भिक्षा वा मरण श्रेष्ठ होता है ॥ ७६ ॥

श्वमैथुनमृणंगर्भाधानंस्वामित्वमेवच ।
खलसख्यमपथ्यंतुप्राक्सुखंदुःखनिर्गमम्७७।

श्वा (कुत्ता) का मैथुन,ऋण, गर्भाधान, स्वामी होना, खलकी मित्रता, अपथ्य इनमें पहिले सुख और पीछे निकासनेके समयमें दुःख होता है ॥ ७७॥

कुमंत्रिभिर्नृपोरोगीकुवैद्यैःकुनृपैःप्रजा ।
कुसंतत्याकुलंचात्माकुबुद्ध्याहीयतेऽनिशम् ॥

कुमंत्रियोंसे राजा कुवैद्योंसे रोगी कुत्सित राजाओंसे प्रजा खोटी सन्तानसे कुल कुबुद्धिसे आत्मा सदैव नष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

हस्त्यश्ववृषबालस्त्रीशुकानांशिक्षकोयथा ।
तथाभवंतितेनित्यंसंसर्गगुणधारकाः॥ ७९ ॥

हाथी, अश्व, बैल, बालक, स्त्री, शुक,तोता इनको शिक्षा देनेवाले जैसे हों वैसेही गुण हाथी आदिकोंमें संसर्गसे हो जाते हैं ॥ ७९॥

स्याज्जयोवसरोक्त्यासद्वसनैःसुप्रसिद्धता ।
सभायांविद्ययामानस्त्रितयंत्वधिकारतः ॥८०॥

समयके अनुसार वचनसे जय,अच्छे वस्त्रोंसे प्रसिद्धि, विद्यासे सभामें मान (बडाई) होती है और ये तीनों अधिकार मिलनेसे होते हैं ॥ ८० ॥

सुभार्यासुष्ठुचापत्यंसुविद्यासुधनंसुहृत् ।
सुदासदास्यौसद्देहःसद्देशसुनृपःसदा ॥ ८१॥

श्रेष्ठ भार्या,अच्छी सन्तान,उत्तम विद्या,उत्तम धन,उत्तम मित्र,उत्तम दास और दासी श्रेष्ठ देह श्रेष्ठ घर और उत्तम राजा ये सदैव ॥ ८१ ॥

गृहिणांहिसुखायालंदशैतानिनचान्यथा ।
वृद्धाःसुशीलाविश्वस्ताःसदाचाराःस्त्रियो नराः ॥ ८२ ॥

ये दस गृहस्थियोंके पूर्ण सुखके होते हैं और अन्यथा नहीं । वृद्ध सुशील विश्वासके योग्य सदाचारमें तत्पर स्त्री वा मनुष्य ॥ ८२ ॥

क्लीबावांतःपुरेयोज्यानयुवामित्रमप्युत ।
कालंनियम्यकार्याणिह्याचरेन्नान्यथाक्वचित्८३

वा नपुंसक इनको रणवासमें नियत करे और युवा चाहे मित्रभी हो तथापि नियुक्त न करे और समयके नियमसे कार्योंको करे अन्यथा कभी न करे ॥ ८३ ॥

गवादिष्वात्मवज्ज्ञानमात्मानंचार्थधर्मयोः ।
नियुंजीतान्नसंसिद्ध्यैमातरंशिक्षणेगुरुम्८४॥

जो मनुष्य आत्मज्ञानी हो उसको गौ आदिकोंकी सेवामें और आत्माको धन और धर्ममें और अन्नके पाकमें माताको और शिक्षा देनेमें गुरुको नियुक्त करे ॥ ८४ ॥

गच्छेद्नियमेनैवसदैवांतःपुरेनरः ।
भार्यानपत्यासद्यानंभारवाहीसुरक्षकः ८५

मनुष्य अपने रनवासमें सदैव विना नियम गमन करे. और जिसके सन्तान न हो ऐसी भार्या, अच्छा यान और भारका ले जानेवाला अच्छा रक्षक ॥ ८५ ॥

परदुःखहराविद्यासेवकश्चनिरालसः ।
षडेतानिसुखायालंप्रवासेतुनृणांसदा ८६ ॥

परदुःख हरनेवाली विद्या और निरालसी सेवक ये छः परदेशमें मनुष्यको सदैव सुखदायी होते हैं ॥ ८६ ॥

मार्गंनिरुध्यनस्थेयंसमर्थेनापिकर्हिचित् ।
सद्यानेनापिगच्छेन्नहट्टमार्गेनृपोपिच ॥८७ ॥

समर्थ भी मनुष्य मार्गको रोककर कदाचित् भी खडा नहो और राजाभीहट्टमार्ग(बाजार) में अच्छे यानसे गमन न करे ॥ ८७ ॥

ससहायःसदाचस्यादध्वगोनान्यथाक्वचित्।
समीपसन्मार्गजलेग्रामेध्वगोवसेत्॥८८॥

अध्वग (मार्ग चलनेवाला) सदैव सहायको रक्खे अन्यथा कभी न रहे और ऐसे गांवमें रात्रिको वसे जिसके समीप अच्छा मार्ग और जल दोनों अच्छे हों

तथाविधेवाविरमेन्नमार्गेविपिनेपिन ।
अत्यटनंचानशनमतिमैथुनमेवच ॥ ८९ ॥

और ऐसे ही ग्राममें विश्राम करे और मार्ग और वनमें विश्राम न करे, अति भ्रमण अति भोजन अति मैथुन ॥ ८९ ॥

अत्यायासश्चसर्वेषांद्राग्जराकरणंभवेत् ।
सर्वविद्यास्वनभ्यासोजराकारीकलासुच॥९०॥

अति परिश्रम ये चारों सब मनुष्योंके शीघ्र जरा करनेवाले होते हैं और संपूर्ण विद्याओंमें वा कलाओंमें अभ्यास न करना जरा करनेवाला होता है ॥ ९० ॥

दुर्गुणंतुगुणीकृत्यकीर्तयेत्सप्रियोभवेत् ।
गुणाधिक्यंकीर्तयतियःकिंस्यान्नपुनःसखा ९१

जो मनुष्य दुर्गुणको भी गुणरूपसे वर्णन करे वह प्यारा होता है, जो अधिक गुणोंका कीर्तन करता है वह तो मित्र क्यों न होगा ॥ ९१ ॥

दुर्गुणंवक्तिसत्येनप्रियोपिसोप्रियोभवेत् ।
गुणांहिदुर्गुणीकृत्यवक्तियःस्यात्कथंप्रियः९२॥

जो प्यारा होकर भी दुर्गुणोंको स्पष्टकहे वह शत्रु होता है और जो गुणकोही दुर्गुण कहकर वर्णन करैं वह प्रिय कैसे हो सकता है ॥ ९२ ॥

स्तुत्यावशंयांतिदेवाह्यंजसाकिंपुनर्नराः।
प्रत्यक्षदुर्गुणान्नैववक्तुंशक्नोतिकोप्यतः॥९३॥

स्तुति करनेसे देवता भी सुखसे वशमें हो जाते हैं नर क्यों न होंगे इससे कोई भी मनुष्य दुर्गुणोंको प्रत्यक्ष नहीं कह सकता ॥ ९३ ॥

स्वदुर्गुणान्स्वयंचातोविमृशेल्लोकशास्त्रतः ।
स्वदुर्गुणश्रवणतोयस्तुष्यतिनकुप्यति ॥९४॥

अपने दुर्गुणोंको लोक व शास्त्रसे स्वयं विचारे और अपने दुर्गुणोंके सुननेसे न प्रसन्न हो न क्रोध करे ॥ ९४ ॥

स्वोपहासप्रविज्ञानेयततेत्यजतिश्रुत ।
स्वगुणश्रवणान्नित्यंसमस्तिष्ठतिनाधिकः९५॥

और अपने अधिक ज्ञानमें भी उपहास समझकर यत्न करे और दुर्गुणोंको सुनकर त्यागे और अपने गुणोंको सुनकर सम रहै अधिक न हो ॥ ९५ ॥

दुर्गुणानांखनिरहंगुणाधानंकथंमयि ।
मय्येवचाज्ञताप्यस्तिमन्यतेसोधिकोखिलात् ॥

मैं दुर्गुणोंकी खानहूँ मुझमें गुण कैसे हो सकेत हैं और मुझमेंही मूर्खता है इस प्रकार जो मानता है वही सबसे अधिक है ॥ ९६ ॥

ससाधुस्तस्यदेवाहिकलालेशंलभंतिन ।
सदाल्पमप्युपकृतंमहत्साधुषुजायते॥ ९७ ॥

वही साधु है जिसकी कलाके लेशको भी देवता प्राप्त न हों और साधुओंमें अल्प भी उपकार सदैव महान् होता है ॥ ९७ ॥

मन्यतेसर्षपादल्पंमहच्चोपकृतंखलः ॥
तथानक्रीडयेत्कैश्चित्कलहायभवेद्यथा ॥९८ ॥

बडे भी उपकारको खल मनुष्य सरसोंसे अल्प मानता है और उस प्रकारकी क्रीडा किसीके संग भी न करे जिससे कलह हो ॥ ९८ ॥

विनोदेऽपिशपेन्नैवंतेभायाकुलटास्तिकिम् ।
अपशब्दाश्चनोवाच्यामित्रभावाच्चकेष्वपि ९९

विनोदमें भी ऐसा शाप न दे कि तेरी भार्य्या क्या व्यभिचारिणी है और मित्र भावसे किसीको अपशब्द न कह ॥ ९९ ॥

गोप्यंनगोपयेन्मित्रेतद्गोप्यंनप्रकाशयेत् ।
वैरीभूतोपिपश्चात्प्राक्कथितंवापिसर्वदा ३०० ॥

मित्रसे छिपाने योग्य वस्तुको न छिपावे और मित्रकी गोप्य वस्तुका प्रकाश न करे तथा पहिले कही हुई अयोग्य बातका वरी होनेपर कभी भी प्रकाश न करे ॥ ३०० ॥

विज्ञातमपियद्दौष्ट्यंदर्शयेत्तन्नकर्हिचित् ।
प्रतिकर्तुंयतेतैवगुप्तः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥१ ॥

जो दुष्टता जान भी ली हो उसको कभी न दिखावे और प्रतिकार करनेका यत्न करे जिसने अपनी रक्षा की हो उसका प्रतिकार करे ॥ १ ॥

यथार्थमपिनब्रूयाद्बलवद्विपरीतकम् ।
दृष्टंत्वदृष्टवत्कुर्याच्छ्रुतमप्यश्रुतंक्वचित् ॥२॥

बलवान् मनुष्यके यथार्थ के भी विपरीत को न कहे देखेको न देखेके समान व सुनेको न सुनेके समान करे ॥ २ ॥

मूकांधोबधिरःखंजोस्वापत्कालेभवेन्नरः ।
अन्यथादुःखमाप्नोतिहीयतेव्यवहारतः ॥३ ॥

मनुष्य अपनी आपत्तिके समयमें मूक, अन्ध, बधिर, खञ्ज हो जाय अन्यथा दुःखको व्यवहारसे हानिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

वदेद्वृद्धानुकूलंयन्नबालसदृशंक्वचित् ।
परवेश्मगतस्तत्स्त्रीवीक्षिणंनचकारयेत् ॥४ ॥

वृद्धोंके अनुकूल वचनको कहे, बालकोंके

सदृश कभी भी न कहै और पराये घरमें जाकर उसकी स्त्रीको न देखे ॥ ४ ॥

अधनादनतुज्ञातान्नगृह्णीयात्तुस्वामिना ।
स्वशिशुंशिक्षयेदन्यशिशुंनाप्यपराधिनम् ५॥

और निर्धन होकर भी स्वामीकी आज्ञाके विना कोई वस्तु ग्रहण न करे अपने बालकको शिक्षा दे और अन्यके अपराधीही बालकको न करे ॥ ५ ॥

अधर्मनिरतोयस्तुनीतिहीनश्छलांतरः ।
संकर्षकोतिदंडीतद्ग्रामंत्यक्त्वान्यतोवसेत् ६॥

जो ग्राम अधर्ममें सदैव रत नीतिसे हीन मनमें छली लोभी अत्यन्त दण्डवाला हो उस ग्रामको त्यागकर अन्यत्र वसे ॥ ६ ॥

यथार्थमपिविज्ञातमुभयोर्वादिनोर्मतम् ।
अनियुक्तोनवैब्रूयाद्धीनशत्रुर्भवेदतः ॥ ७ ॥

दोनों वादी प्रतिवादियोंके यथार्थ जाने हुए भी मतको राजाज्ञाके विना न कहे इससे मनुष्यका शत्रु कोई नहीं होता ॥ ७ ॥

गृहीत्वान्यविवादंतुविवदेन्नैवकेनचित् ।
मिलित्वासंघशोराजमंत्रंनैवतुतर्कयेत् ॥ ८ ॥

अन्यके विवादको ग्रहण करके किसीके सग विवाद न करे और किसी समुदायमें राजाके मंत्रकी तर्कना न करे ॥ ८ ॥

अज्ञातशास्त्रोनब्रूयाज्ज्योतिषंधर्मनिर्णयम् ।
नीतिदंडंचिकित्सांचप्रायश्चित्तंक्रियाफलम् ॥

विना शास्त्रके जाने ज्योतिष, धर्मनिर्णय नीति, दण्ड, चिकित्सा, प्रायश्चित्त, क्रियाका फल इनको न कहे ॥ ९ ॥

पारतंत्र्यात्परंदुःखंनस्वातंत्र्यंपरंसुखम् ।
अप्रवासीगृहीनित्यंस्वतंत्रः सुखमेधते ॥१०॥

पराधीनसे परे दुःख और स्वतन्त्रतासे परे सुख नहीं होता। जो गृहस्थी अप्रवासी और स्वतन्त्र होता है वह नित्य सुख पाता है॥१०॥

नूतनप्राक्तनानांचव्यवहारविदांधिया ।
प्रतिक्षणंचाभिनवोव्यवहारोभवेदतः ॥ ११॥

नवीन और पुराने व्यवहारोंके जो जानने-वाले हैं उनको बुद्धिसे देखे क्योंकि व्यवहार क्षण २ में नवीन होता है ॥ ११ ॥

वक्तुंनशक्यतेप्रायः प्रत्यक्षादनुमानतः ।
उपमानेनतज्ज्ञानंभवेदाप्तोपदेशतः ॥ १२ ॥

व्यवहारको प्रत्यक्ष कोई कह नहीं सकता किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान आप्तों (बडे) के उपदेशसे व्यवहारका ज्ञान होता है ॥ १२ ॥

कथितंतुसमासेनसामान्यंनृपराष्ट्रयोः ।
नीतिशास्त्रंहितायालंयाद्विशिष्टंनृपरेस्मृतम् ॥ १३ ॥

राजा और प्रजाके हितार्थ यह सामान्य नीतिशास्त्र संक्षेपसे कहा जो राजाके लिये उत्तम कहा है ॥ १३ ॥

तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

अध्यायः ४.

अथमिश्रप्रकरणंप्रवक्ष्यामिसमासतः ।
लक्षणंसुहृदादीनांसमासाच्छृणुताधुना ॥१॥

अब संक्षेपसे मिश्रप्रकरण कहता हूँ (प्रथम) मित्र आदिके लक्षणको संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

मित्रःशत्रुश्चतुर्धास्यादुपकारापकारयोः ।
कर्ताकारयिताचानुमंतायश्चसहायकः ॥२ ॥

मित्र और शत्रु उपकार तथा अपकारके करने कराने अनुमति देने सहायता करनेसे चार प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

यस्यसुद्रवतोचित्तंपरदुःखेनसर्वदा ।
इष्टार्थयततेन्यस्यप्रेरितः सत्करोतियः ॥३ ॥

पराये दुःखसे जिसका चित्त सदैव पिघले और विना प्रेरणाके अन्यके इष्टार्थ यत्न करे वा सत्कार जो करे ॥ ३ ॥

आत्मस्त्रीधनगुह्यानांशरणंसमयेसुहृत् ।
प्रोक्तोत्तमोपमन्यश्चद्विस्त्र्येकपदमित्रकः ॥४॥

वह मित्र जीव स्त्री धन गुप्त वस्तु इनके लिये समयपर शरण (रक्षक) और उत्तम

कहा है और अन्य तो एक दो तीन पैर तक मित्र होता है ॥ ४ ॥

अनन्यस्वत्वकामत्वमेकस्मिन्विषयेद्वयोः ।
वैरिलक्षणमेतद्वान्येष्टनाशनकारिता ॥ ५ ॥

एक वस्तुके विषय दो मनुष्यकी ऐसी बुद्धि हो कि यह अन्यकी नहीं, यह वा अन्यके इष्टको नष्ट करना वरीका लक्षण होता है ॥ ५ ॥

भ्रातृभावेपितुर्द्रव्यमखिलंममवैभवेत् ।
नस्यादेतस्यवश्येयंममैवस्यात्परस्परम् ॥ ६ ॥

भाईके विद्यमान होनेपर सम्पूर्ण पिताका द्रव्य मुझे मिले और मैं इसके वशमें न होऊं और ये मेरे वशमें रहे ऐसीपरस्परमतिहो ॥६॥

भोक्ष्येखिलमहंचैतद्विनान्यस्तस्तुवैरिणौ ।
द्वेष्टिद्विष्टउभौशत्रस्तश्चैकतरसंज्ञकौ ॥ ७ ॥

इन सबको मैं भोगूंगा और अन्य नहीं वे परस्पर वैरी होते हैं जो द्वेष करे और जिसके संग वैर करे वह दोनों एकस शत्रु होते हैं॥७॥

शूरस्योत्थानशीलस्यबलनीतिमतः सदा ।
सर्वेमित्राग्रूढवैरानृपाःकालप्रतीक्षकाः ॥ ८ ॥

जो राजा सदव शूर है, उत्थानशील (दूसरेपर चढनेवाला) है सेना और नीति वाला है उसके सब मित्रभी राजा गूढ (छिपे) समयके देखनेवाले वैरी होते हैं ॥ ८ ॥

भवन्तीतिकिमाश्चर्यराज्यलुब्धानतेहिकिम् ।
नराज्ञोविद्यतेमित्रंराजामित्रंनकस्यवै ॥ ९ ॥

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्या उनको राज्यका लोभ नहीं, न राजाका कोई मित्र है, न राजा किसीका मित्र है ॥ ९ ॥

प्राय कृत्रिममित्रंतेभवतश्चपरस्परम् ।
कोचित्स्वभावतोमित्राःशत्रवःसंतिसर्वदा १०॥

प्रायःदोनो परस्पर कृत्रिम (मतलबी) मित्र परस्पर होते हैं और कोई मनुष्य स्वभावसे मित्रभी सदैव शत्रु होते हैं ॥ १० ॥

मातामातृकुलंचैवपितातात्पितरौतथा ।
पितृपितृव्यात्मकन्यापत्नीतत्कुलमेवच ॥ ११॥

माता, माताका कुल, पिता, पिताकी माता पिता, पिताके चाचा, अपनी कन्या, पत्नी और पत्नीका कुल ॥ ११ ॥

पितृमातात्मभागिनीकन्यकासंततिश्चया ।
प्रजापालोगुरुश्चैवमित्राणिसहजानिहि ॥१२॥

पिता माताकी और अपनी भगिनी कन्याकी संतान, प्रजापालक (राजा) गुरु ये सब सदैव स्वाभाविक मित्र होते हैं ॥ १२ ॥

विद्याशौर्यंचदाक्ष्यंचबलंधैर्यंचपंचमम् ।
मित्राणिसहजान्याहुर्वर्तयंतिहितैर्बुधाः ॥१३॥

विद्या, शूरवीर, चतुराई, बल और पांचवीं धीरता येभी स्वाभाविक मित्र कहे हैं क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य इनसेही वर्तते हैं ॥ १३ ॥

स्वभावतोभवंत्येतेहिंस्त्रोदुर्वृत्तएवच ।
ऋणकारीपिताशत्रुर्माताचस्त्रीव्यभिचारिणी ।

हिंसक, दुराचारी ये स्वभावसे शत्रु और ऋणका कर्ता पिता और व्यभिचारिणी माता और पत्नी ये सब शत्रु होते हैं ॥१४॥

आत्मपितृभ्रातरश्चतत्स्त्रीपुत्राश्चशत्रवः ।
स्नुषाश्वश्रूःसपत्नीचननांदायातरस्तथा ॥

अपने और पिताके भाई, उनकी स्त्री, पुत्र पुत्रकी वधू, सास और सपत्नी, ननंद और याता (दुरानी जिठानी) ये सब परस्पर शत्रु होते हैं ॥ १५ ॥

मूर्खःपुत्रःकुवैद्यश्चारक्षकस्तुपिताप्रभुः ।
चंडोभवेत्प्रजाशत्रुरदाताधनिकश्चयः॥ १६ ॥

मूर्खपुत्र, कुवैद्य, रक्षा न करने वाला पिता और राजा और चंड (क्रोधी) और धनवान होकरके अदाता, ये सब प्रजाके शत्रु होते हैं ॥ १६ ॥

आसमंताच्चतुर्दिक्षुसन्निकृष्टाश्चयेनृपाः ।
तत्पराश्तत्परायेन्येक्रमाद्धीनबलारयः १७ ॥

और राजाके चारों दिशाओंमें चारों तरफ जो राजा होते हैं और उनसेपरले और उनसेभी परले हीनबल शत्रु ॥ १७ ॥

शत्रूदासीनमित्राणिक्रमात्तेस्युस्तुप्राकृताः ।
अरिर्मित्रमुदासीनोनंतरस्तत्परस्परम् १८

ये सब क्रमसे शत्रु ,उदासीन मित्र प्राकृत (स्वाभाविक) होते हैं शत्रु, मित्र, उदासीन और उसके अनन्तर (समीपवर्ती) येभी परस्पर ॥ १८ ॥

क्रमशोवातथाज्ञेयाश्चतुर्दिक्षुतथारयः ।
स्वसमीपतराभृत्याह्यमात्याद्याश्चकीर्तिताः १९

क्रमसे चारों दिशाओंमें उसीप्रकार शत्रु जानने और अपने अत्यन्त समीपके भृत्य और मन्त्री आदि भी शत्रु कहे हैं ॥ १९ ॥

बृंहयेत्कर्षयेन्मित्रंहीनाधिकबलंक्रमात् ।
भेदनीयाःपीडनीयाःकर्षणीयाश्चशत्रवः २० ॥

हीनबल मित्रको बढावें और अधिक बलको घटावे अर्थात् उससे कुछ सहायता ले और शत्रुओंकी सदैव भेदन पीडन कर्षण (हिंसा) करे ॥ २० ॥

विनाशनीयास्तेसर्वेसामादिभिरुपक्रमैः ।
मित्रशत्रूयथायोग्यैःकुर्यात्स्ववशवर्तिनौ २१॥

साम आदि उपयोंसे उन सबका विनाश करे मित्र और शत्रुको भी यथोचित उपायोंसे अपने वशमें करे ॥ २१ ॥

उपायेनयथाव्यालोगजःसिंहोपिसाध्यते ।
भूमिष्ठाःस्वर्गमायांतिवज्रंभिंदत्युपायतः२२ ॥

जैसे उपायसे सर्प, हाथी, सिंहको भी साध लेते हैं और पृथ्वीके वसनेवाले स्वर्गमें उपायसे जाते हैं औरउपायसेही वज्रको बींधते हैं ॥२२॥

सुहृत्संबंधिस्त्रीपुत्रप्रजाशत्रुषुतेपृथक् ।
सामदानभेददंडाश्चिंतनीयाःस्वयुक्तिभिः२३ ।

मित्र, सम्बन्धी, स्त्री, पुत्र, शत्रु, इन सबमें पृथक् २ साम, दान,भेद, दण्ड, इनकी चिन्त- (विचार) अपनी युक्तियोंसे करे ॥ २३ ॥

एकशीलवयोविद्याजातिव्यसनवृत्ततः ।
साहचर्यान्भवेन्मित्रमेभिर्यदितुसार्जवैः २४

एक स्वभाव, एक अवस्था,एक विद्या, एक जाति, एक व्यसन, एक जीविका, एक वास यदि ये सब नम्रता सहित हों तो इनसे मित्रता होजाती है ॥ २४ ॥

त्वत्समस्तुसखानास्तिमित्रेसाममिमंस्मृतम् ।
ममसर्वंतवैवास्तिदानंमित्रेसजीवितम् २५॥

मित्रके विषय साम यह कहा है कि तेरी बराबर कोई मित्र नहीं जो मेरे पास है वह सब तेरा है और दान जीवितकाभी मित्रके लिये कहा है ॥ २५ ॥

मित्रेन्यमित्रसुगुणान्कीर्तयेद्भेदनंहितत् ।
मित्रेदंडोनाकरिष्येमैत्रीमेवंविधोसिचेत्॥२६॥

और भेदन यह होता है कि मित्रके आगे दूसरे मित्रके गुणोंका कीर्तन करना और मित्र के लिये दंड यह होता है कि यदि तू ऐसा है तो तेरे संग मित्रता न करूँगा ॥ २६ ॥

येनिसंयोजयेदिष्टमन्यानिष्टमुपेक्षते ।
उदासीनःसनकथंभवेच्छत्रुःसुसांधिकः॥२७॥

जो मनुष्य इष्टका संयोग न करे और अन्यके अनिष्टकी उपेक्षा करे वह उदासीन भी सन्धी (मेल) करनेके समय शत्रु क्यों नहीं होता ॥ २७ ॥

परस्परमनिष्टंनचिन्तनीयंत्वया मया ।
सुसहाय्यंहिकर्तव्यंशत्रौसामप्रकीर्तितम् २८ ॥

मुझे और तुझे परस्पर अनिष्टकी चिन्ता न करनी चाहिये, किन्तु परस्पर सहायता करनी यह शत्रुके लिये साम कहा है ॥ २८ ॥

करैर्वाप्रमितग्रामैर्वर्त्सरेप्रबलंरिपुम् ।
तोषयेत्तद्धिदानंस्याद्यथायोग्येषुशत्रुषु ॥ २९॥

कर देने वा प्रमित (दो चार) ग्रामोंसे वर्षभरके लिये प्रबल शत्रुओंको प्रसन्न करदे यह यथायोग्य शत्रुओंके लिये दान होता है२९॥

शत्रुसाधकहीनत्वकरणात्प्रबलाश्रयात् ।
तद्धीनतोज्जीवनाच्चशत्रुभेदनमुच्यते ॥ ३० ॥

शत्रुको साधकसे हीन करना, प्रबलका आश्रय लेना उससे हीन होकर जीना यह शत्रुके लिये भेदन कहा है ॥ ३० ॥

दस्युभिःपीडनंशत्रोःकर्षणंधनधान्यतः ।
तच्छिद्रदर्शनादुग्रबलैर्नीत्याप्रभीषणाम् ॥३१॥

चोरोंसे शत्रुको पीडा देना और धनधान्यकी हिंसा करनी उसके छिद्रोंको देखना उग्रबल नीतिसे भय दिखाना और ॥ ३१ ॥

प्राप्तयुद्धानिवर्तित्वैस्त्रासनंदंडउच्यते ।
क्रियाभेदादुपायाहिभिद्यंतेचयथार्हतः ॥ ३२ ॥

प्राप्त हुए युद्धमें न हटकर त्रास देना यह शत्रुके लिये दंड कहा है और क्रियाके भेदसे उपायोंका भी यथायोग्य भेद हो जाता है ३२

सर्वोपायैस्तथाकुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्वास्यधिकानस्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ३३।

नीतिका ज्ञाता राजा तिस प्रकार सम्पूर्ण उपायोंसे आचरण करै जैसे मित्र उदासीन-शत्रु, ये तीनों अपनेसे अधिक न हों ॥ ३३॥

सामैवप्रथमंश्रेष्ठंदानंतुतदनंतरम् ।
सर्वदाभेदनंशत्रोर्दंडनंप्राणसंशये ॥ ३४ ॥

शत्रुके लिये सबसे पहले साम श्रेष्ठ है उसके पीछे दान, भेदन तो सदैव श्रेष्ठ और प्राणके संशयमें दंड कहा है ३४ ॥

प्रबलेरौसामदानेसामभेदौधिकेस्मृतौ ।
भेददंडौसमेकार्यौदंडः पूज्यप्रहीनके ॥ ३५ ॥

प्रबल शत्रुके लिये साम,दान अधिकके लिये साम, भेद कहे हैं, सम शत्रुके लिये भेद दण्ड करने और हीनके लिये दंड श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥

मित्रेचसामदानेस्तोनकदाभेददंडने ।
रिपोः प्रजानां संभेदः पीडनंस्वजयायवै ३६॥

मित्रके लिये साम, दान होते हैं भेद और दंड कभी नहीं, शत्रु तथा प्रजाका भेद और पीडा अपनी जयके लिये होते हैं ॥ ३६ ॥

रिपुप्रपीडितानांचसाम्नादानेनसंग्रहः ।
गुणवतांचदुष्टानांहितंनिर्वासनंसदा ॥ ३७ ॥

शत्रुओंने दी है पीडा जिनको ऐसे गुणवा-नोंका साम और दंडसे संग्रह करे और दुष्टोंका सदैव निर्वासन (निकासना) करे ॥ ३७ ॥

स्वप्रजानांनभेदनंनैवदंडनपालनम् ।
कुर्वीतसामदानाभ्यांसर्वदायत्नमास्थितः ३८ ॥

अपनी प्रजाओंका भेद और दंडसे पालन न करे किन्तु यत्नमें टिका हुआ राजा साम और दानसे पालन करे ॥ ३८॥

स्वप्रजादंडभेदैश्चभवेद्राज्यविनाशनम् ।
हीनाधिकायथानस्युःसदारक्ष्यास्तथाप्रजाः ॥

अपनी प्रजाके दंड और भेदसे राज्यका विनाश होता है, इससे राजा प्रजाकी इस प्रकार रक्षा करे जैसे प्रजा हीन और अधिक न हो॥ ३९ ॥

निवृत्तिरसदाचाराद्दमनंदंडतश्चतत् ।
येनसंदम्यतेजंतुरुपायोदंडएवसः ॥ ४० ॥

असत् आचरणसे जो निवृत्ति उसको दंड-से दमन कहते हैं जिससे प्राणी दमनको प्राप्त हो वह उपाय भी दंड होता है ॥ ४० ॥

सउपायोनृपाधीनः ससर्वेषांप्रभुर्यतः ।
निर्भर्त्सनंचापमानोनाशनंबंधनंतथा ॥ ४१ ॥
ताडनंद्रव्यहरणंपुरान्निर्वासनांकने ।
व्यस्तक्षौरमसद्यानमंगच्छेदोवधस्तथा ४२ ॥

वह उपाय राजाके अधीन है क्योंकि वह सबका प्रभु है निर्भर्त्सन (झिड़कना) द्रव्यका हरना, पुरसे निकासना, अंकित करना,उलटा क्षौर कराना, असद्यान (गधा आदि) पर चढाना अंगका छेदन और वध ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

युद्धमेतेह्युपायाःस्युर्दंडस्यैवप्रभेदकाः ।
जायंतेधर्मनिरताःप्रजादंडभयेनच ॥ ४३ ॥
करोत्याधर्षणंनैवतथाचासत्यभाषणम् ।
क्रूराश्चमार्दवंयांतिदुष्टादौष्ट्यंत्यजंतिच ॥४४॥

और युद्ध ये सब उपाय दण्डके ही भेद कहे हैं क्योंकि दंडके भयसे प्रजा धर्ममें निरत रहती है, दंडके भयसे आधर्षण (जबराई) असत्य भाषण कोई नहीं करता और क्रूर कोमल हो जाते हैं और दुष्ट मनुष्य दुष्टताको त्याग देते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पशवोपिवशंयांतिविद्रवंतिचदस्यवः ।
पिशुनामूकतांयांतिभयंयांत्याततायिनः ४५॥

पशुभी वशमें होते हैं, चोर भाग जाते हैं पिशुन (चुगलखोर) मूक होते हैं आततायी (हिंसक) डर जाते हैं ॥ ४५ ॥

करदाश्चभवंत्यन्येवित्रासंयांतिचापरे ।
अतोदंडधरोनित्यंस्यान्नृपोधर्मरक्षणे ॥४६॥

कोई दंडके मारे कर देने लगते हैं और कोई त्रासको प्राप्त हो जाते हैं इससे राजा सदैव धर्मरक्षाके लिये दंडधारी हो ॥ ४६ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्यकार्यंभवतिशासनम् ॥४७॥

जो गुरु भी अभिमानी हो कार्य, अकार्यको न जाने और कुमार्गमें चले तो राजा उसको भी शिक्षा दे ॥ ४७ ॥

राज्ञांसदंडनीत्याहिसर्वेसिध्यंत्युपक्रमाः ।
दंडएवहिधर्माणांशरणंपरमंस्मृतम् ॥ ४८ ॥

राजाकी दण्डसहित नीतिसे सब उपक्रम (आरम्भ) सिद्ध होते हैं, और दंड ही सम्पूर्ण धर्मोंका उत्तम शरण कहा है ॥ ४८ ॥

अहिंसवैसाधुहिंसापशुवच्छ्रुतिचोदनात् ।
दंडयस्यादंडनान्नित्यमदंडचस्यचदंडनात् ४९

दुर्जनोंकी हिंसा, वेदकी आज्ञाके अनुसार पशुके समान अहिंसा होती है, दंड देने योग्यको दंड न देना, दंड देने अयोग्यको दंड देना ॥ ४९ ॥

अतिदंडाच्चगुणिभिस्त्यज्यतेपातकीभवेत् ।
अल्पदानान्महत्पुण्यंदंडप्रणयनात्फलम् ५०॥

अथवा अत्यन्त दण्ड देना इनसे गुणी लोग राजाको त्याग देते हैं और वह राजा पातकी होता है, अल्पदानसे बडा पुण्य जैसे होता है तैसे राजाको दंड देनेसे फल मिलता है ॥ ५० ॥

शास्त्रेषूक्तंमुनिवरैः प्रवृत्त्यर्थंभयायच ।
अश्वमेधादिभिःपुण्यंतत्किंस्यात्स्तोत्रपाठतः॥

शास्त्रोंके विषय श्रेष्ठ मुनियोंने प्रवृत्ति और भयके लिये जो पुण्य अश्वमेधादि यज्ञोंका कहा है वह क्या स्तोत्रके पाठसे होता है अर्थात् नहीं होता ॥ ५१ ॥

क्षमयायत्तुपुण्यंस्यात्तत्किंदंडनिपातनात् ।
स्वप्रजादंडनाच्छ्रेयःकथंराज्ञोभविष्यति॥५२॥

क्षमासे जो पुण्य होता है वह क्या दण्ड देनेसे हो सकता है अपनी प्रजाके दण्डसे राजाका कल्याण कैसे होगा ॥ ५२ ॥

तंदंडाज्जायतेतकीर्तिर्धनपुण्यविनाशनम् ।
नृपस्यधर्मपूर्णत्वाद्दंडःकृतयुगेनहि ॥ ५३ ॥

प्रजाके दण्डसे कीर्ति, धन, पुण्यका नाश होता है, और राजा धर्मपूर्ण होनेसे सतयुगमें दंड नहीं ॥ ५३ ॥

त्रेतायुगेपूर्णदंडःपादाधर्मप्रजायतः ।
द्वापरेचार्धधर्मत्वात्त्रिपाद्दंडोविधीयते ॥ ५४ ॥

त्रेतायुगमें पूर्ण दंड इसलिये था कि प्रजामें चौथाई अधर्म रहा और द्वापरमें आधा धर्म रहनेसे त्रिपाद (३ हिस्से) दण्ड देना कहा है ॥ ५४ ॥

प्रजानिःस्वाराजदौष्ट्यादंडार्धेतुकलौयुगे ।
युगप्रवर्तकोराजाधर्माधर्मप्रशिक्षणात् ॥५५॥

राजाकी दुष्टतासे कलियुगमें प्रजा निर्धन हो जाती है इसलिये आधा दण्ड कहा है, धर्म और अधर्मकी शिक्षासे युगोंकी प्रवृत्ति राजासे होती है ॥ ५५ ॥

युगानांनप्रजानांनदोषःकिंतुनृपस्यहि।
प्रसन्नोयेननृपतिस्तदाचरतिवैजनः ॥ ५६ ॥

न युगोंका न प्रजाओंका दोष है किन्तु राजाका दोष है क्योंकि मनुष्य वही आचरण करता है जिससे राजा प्रसन्न रहै ॥ ५६ ॥

लोभाद्भयाच्चकिंतेनशिक्षितंनाचरेत्कथम् ।
सुपुण्योयत्रनृपतिर्धर्मिष्ठास्तत्रहिप्रजाः ॥५७॥

जो राजाने लोभ वा भयसे शिक्षा की है उसको प्रजा कैसे न करेगी जहां राजा पुण्यवान् होता है वहां प्रजाभी धर्मिष्ठ होती है ५७

महापापीयत्रराजातत्राधर्मपरोजनः ।
नकालवर्षीपर्जन्यस्तत्रभूर्नमहाफला ५८ ॥

जहां राजा महापापी होता है वहां मनुष्य

अधर्ममें तत्पर हो जाते हैं, न समय पर मेघ वर्षता है, न भूमिमें बहुत फल होते हैं ॥ ५८ ॥

जायेतेराष्ट्रहासश्चशत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ।
सुराप्यपिबरोराजानस्त्रैणोनातिकोपवान् ॥

देशकी हानि, शत्रुकी वृद्धि, धनका नाश होता है; मदिराका पीनेवाला भी राजा अच्छा परन्तु व्यभिचारी अत्यन्त क्रोधी अच्छा नहीं ॥ ५९ ॥

लोकांश्चंडस्तापयतिस्त्रैणोवर्णान्विलुंपाति ।
मद्यप्येकश्चभ्रष्टःस्याद्बुद्ध्याचव्यवहारतः ॥

क्रोधी राजा लोकोंको दुःख देता है, व्यभिचारी वर्णोंका नाश करता है, मदिरा पीनेवाला तो बुद्धि और व्यवहारसे आपही भ्रष्ट होता है ॥ ६० ॥

कामक्रोधौमद्यतमौसर्वमद्याधिकौयतः ।
धनप्राणहरोराजाप्रजायाश्चातिलोभतः ॥६१॥

काम और क्रोध, ये दोनों बड़ेभारी मद हैं और सब मद्योंसे अधिक हैं और राजा अत्यन्त लोभसे प्रजाके धन और प्राणोंको हरता है ॥ ६१ ॥

तस्मादेतत्त्रयंत्यक्त्वादंडधारीभवेन्नृपः ।
अंतर्मृदुर्बहिःक्रूरोभूत्वास्वांदंडयेत्प्रजाम् ६१॥

इससे राजा इन तीनोंको छोड़ कर दण्डधारी हो भीतर कोमल और बाहरसे क्रूर अपनी प्रजाको दण्ड दे ॥ ६२ ॥

अत्युग्रदंडकल्पःस्यात्स्वभावाहितकारिणः ।
राष्ट्रकर्णेजपैर्नित्यंहन्यतेचस्वभावतः ॥ ६३ ॥

स्वभावसे जो अपने अहितकारी हैं उनको अतिउग्र दण्ड दे, जो स्वभावसे सूचक (चुगल) हैं उनसे देश नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

अतोनृपःसूचितोपिविमृशेत्कार्यमादरात् ।
आत्मनश्चप्रजायाश्चदोषदर्श्युत्तमोनृपः॥६४॥

इससे राजा सूचना करने परभी कार्यको आदरसे विचारे जो राजा अपना और प्रजाका दोष देखता है वह उत्तम होता है ॥ ६४ ॥

विनियच्छतिचात्मानमादौभृत्यांस्ततः प्रजाः । कायिकोवाचिकोमानसिकःसांसर्गिकस्थता ॥ ६५ ॥

राजा प्रथम अपनी आत्माका फिर भृत्यों का फिर प्रजाका नियमन करै और देहसे वाणीसे मनसे तथा संगसे ॥ ६५ ॥

चतुर्विधोऽपराधःसबुद्ध्यबुद्धिकृतोद्विधा ।
पुनर्द्विधाकारितश्चतथाज्ञेयोनुमोदितः॥६६॥

यह चार प्रकारका अपराध, १ जानकर किया और २ विना जाने किया दोप्रकारका कहाहै फिर वह दोप्रकारका होता है एक कराया और दूसरा अनुमोदन किया ॥ ६६ ॥

सकृदसकृदभ्यस्तःस्वभावैःसचतुर्विधः ।
नेत्रवक्त्रविकाराद्यैर्भावैर्मानसिकंतथा ॥

फिर वह चार प्रकारका होताहै कि एक बार किया, बारंबार किया, अभ्यास किया और स्वभावसे किया, नेत्र, मुखके विकार आदि भावोंसे मानसिक अपराधको ॥ ६७ ॥

क्रियया कायिकंवीक्ष्यवाचिकंक्रूरशब्दतः ।
सांसर्गिकंसाहचर्यैर्ज्ञात्वागौरवलाघवम् ॥६८॥

और देहके अपराधको करनेसे तथा वाणीके अपराधको कठोर शब्दसे सांसर्गिक अपराधको साहचर्यसे देखकर लाघव और गौरवको जानकर ॥ ६८ ॥

उत्पन्नोत्पत्स्यमानानांकार्याणांदंडमावहेत् ।
प्रथमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥ ६९ ॥

पैदाहुए और पैदाहोनेवाले कार्य्योंका दण्ड दे जो उत्तम पुरुष पहिलेही साहस करे वह उत्तम दण्डके योग्य होता है ॥ ६९ ॥

न्याय्यंकिमितिसंपृच्छेत्त्वैवेयमसत्कृतिम् ।
उपहासंयथोक्तंचाद्विगुणांत्रिगुणंततः ॥ ७० ॥

क्या न्याय है यह पूछे और यह असत्कर्म तैने किया है, फिर दोबार वा तीनबार यथोक्त उपहासको पूछे ॥ ७० ॥

मध्यमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ।
धिग्दंडंप्रथमंचाद्यसाहसंतदनंतरम् ॥ ७१ ॥

यदि उत्तम पुरुष मध्यम साहस करे तो वह दण्डके योग्य होताहै उसको पहिले धिक्कारका दण्ड और पीछे साहसका दण्ड होताहै ॥ ७१ ॥

यथोक्तंतुतथासम्यग्यथावृद्धिह्यनंतरम् ।
उत्तमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥ ७२ ॥

प्रथम भली प्रकार यथोक्त दण्ड और पीछे से दण्डकी वृद्धि होती है।यदिउत्तमपुरुष उत्तम साहसकरे तो वह दण्डके योग्य होता है॥७२॥

प्रथमंसाहसंचादौमध्यमंतदनंतरम् ।
यथोक्तंद्विगुणंपश्चाद्वरोधंततःपरम् ॥ ७३ ॥

उसको पहिले साहसका दंड फिर मध्यम साहसका फिर शास्त्रोक्तसे दूना दंड फिर अवरोध (कैद) होताहै ॥ ७३ ॥

बुद्धिपूर्वंनृपातेनाविनैतदंडकल्पनम् ।
उत्तमत्वंमध्यमत्वंनीचत्वंचात्रकीर्त्यते ॥७४॥

जो जानकर मनुष्यको मारे उसको विना विचारे दंडकी कल्पना करे, यहांपर उत्तम मध्यम नीच दंडको कहते हैं ॥ ७४ ॥

गुणेनैवतुमुख्यांहिकुलेनापिधनेनच ।
प्रथमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ॥ ७५ ॥

गुण, कुल वा धनसे मुख्यता होती है, मध्यम पुरुष प्रथम साहसको करे तो दंडके योग्य होता है ॥ ७५ ॥

धिग्दंडमर्धदंडंचपूर्णदंडमनुक्रमात् ।
द्विगुणंत्रिगुणंपश्चात्संरोधंनीचकर्मच॥७६॥

उसको क्रमसे धिक्कारका दंड आधा दंड पूर्ण दंड दूना वा तिगुना दंड होताहै और पीछेसे संरोध (कैद) वा नीचकर्म करनेका दंड देना ॥ ७६ ॥

मध्यमं साहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।
अर्धंयथोक्तंद्विगुणंत्रिगुणंबंधनंततः ॥७७॥

मध्यम पुरुष मध्यम साहसको करे तो दंडयोग्य होता है उसको आधा दंड वा शास्त्रोक्तसे दुगुना तिगुना दंड होता है और फिर बंधन (कैद) ॥ ७७ ॥

मध्यमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ।
पूर्वसाहसमादौतुयथोक्तंद्विगुणंततः ॥ ७८॥

नीच जो मध्यम साहस करे तो दंडके योग्य होता है उसको प्रथम साहसका दंड पीछे शास्त्रका दंड होता है ॥ ७८ ॥

उत्तमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।
मध्यमंसाहसंचादौयथोक्तंतदनंतरम् ॥७९ ॥

यदि मध्यम पुरुष उत्तम साहस करै तो दण्डके योग्य होता है, उसको पहिले मध्यम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रोक्त होता है ॥ ७९ ॥

द्विगुणंत्रिगुणंपश्चाद्यावज्जीवंतुबंधनम् ।
प्रथमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८० ॥

फिर शास्त्रोक्तसे दूना वा तिगुना दण्ड फिर जन्मभर बंधन होता है, यदि अधम मनुष्य प्रथम साहस करे तो दण्डके योग्य होता है ॥ ८० ॥

ततःसंरोधनंनित्यंमार्गसंस्करणार्थकम् ।
उत्तमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८१ ॥

फिर संरोध और नित्य मार्गका संस्कार (सडककी सफाई) अधम मनुष्य उत्तम साहस करै तो वह दंडके योग्य होता है ॥ ८१ ॥

मध्यमंसाहसंचादौयथोक्तंद्विगुणंततः ।
यावज्जीवंबंधनंचनीचकर्मैवकेवलम् ८२ ॥

उसको प्रथम मध्यम साहसका दंड पीछे शास्त्रोक्त और फिर शास्त्रोक्त दूना फिर जन्मभर बंधन फिर केवल नीचकर्म कराना कहा है ॥ ८२ ॥

हरेत्पादंधनात्तस्ययःकुर्याद्धनगर्वतः ।
पूर्वंततोर्धमखिलंयावज्जीवंतुबंधनम् ८३ ॥

जो मनुष्य धनके अभिमानसे पहला अपराध करे उसके चौथाई धनको राजा हर ले फिर आधे धनको फिर सब धनको हरै फिर जन्मभर बंधन करै ॥ ८३ ॥

सहायगौरवाद्विद्यामदाच्चबलदर्पतः ।
पापंकरोतियस्तंतुबंधयेत्ताडयेत्सदा ॥ ८४ ॥

जो मनुष्य किसीको सहायताके घमंडसे वा विद्या और बलके मदसे पापकरे उसका बंधनकरे वा सदैव ताडना दे ॥ ८४ ॥

भार्यापुत्रश्चभगिनीशिष्योदासःस्नुषाऽनुजः ।
कृतापराधास्ताड्यास्तेतनुरज्जुसुवेणुभिः ८५॥

भार्य्या, पुत्र, बहन, शिष्य, दास, पुत्रवधू, छोटाभाई ये अपराध करें तो छोटी रस्सी और बांससे ताड़ना दे ॥ ८५ ॥

पृष्ठतस्तुशरीरस्यनोत्तमांगेकथंचन ।
अतोन्यथातुप्रहरेच्चोरवद्दंडमर्हति ॥ ८६ ॥

इन्हेंभी देहकी पीठपर मारे उत्तम अंगमें कभी न मारे इससे अन्यथा जो प्रहार करता है वह चौरके दण्डका भागी होता है ॥ ८६ ॥

नीचकर्मकरंकुर्याद्बंधयित्वातुपापिनम् ।
मासमात्रंत्रिमासंवाषण्मासंवापिवत्सरम् ८७॥

पापी मनुष्यसे बांधकर एक मास तीन मास छः मास वा वर्षभर नीचकर्म करावे ८७॥

यावज्जीवंतुवाकश्चिन्नकश्चिद्वधमर्हति ।
ननिहन्याच्चभूतानिवितिजागर्तिवैश्रुतिः ८८॥

अथवा जीवन पर्यन्त, कोई भी जीव वधके योग्य नहीं होता क्योंकि श्रुतिमें यह लिखा है कि प्राणियोंकी हत्या न करे ॥ ८८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवधदंडंत्यजेन्नृपः ।
अवरोधाद्बंधनेनताडनेनचकर्षयेत् ॥ ८९ ॥

तिससे सम्पूर्ण यत्नसे वधके दंडको राजा त्यागदे अवरोध, बंधन, ताडनासेही दंड दे ८९

लोभान्नकर्षयेद्राजाधनदंडेनवैप्रजाम् ।
नासहायास्तुपित्राद्यादंड्याःस्युरपराधिनः९०

राजा लोभसे धनका दंड देकर प्रजाको दुःखी न करे अपराध करनेवाले पिता आदिकोंका यदि कोई सहायक न हो तो दंड न दे ॥ ९० ॥

क्षमाशीलस्यवैराज्ञोदंडग्रहणमीदृशम् ।
नापराधंतुक्षमतेप्रचंडोधनहारकः ॥ ९१ ॥

जो राजा क्षमाशील है उसका दंड ऐसा (पूर्वोक्त) होता है और जब राजा प्रचण्ड होकर धनका हरनेवाला और अपराधकी क्षमा नहीं करता ॥ ९१ ॥

नृपायेदातदालोकःक्षुभ्यतेभिद्यतेपरैः ।
अतःसुभागदंडीस्यात्क्षमावान्रंजकोनृपः ९२॥

तब सम्पूर्ण जगत् चलायमान और दूसरोंसे पीडित होता है इससे राजा सुभाग (थोड़ा) दंड दे और क्षमासे प्रजाको प्रसन्न रक्खे ॥ ९२ ॥

मद्यपःकितवस्तेनोजारश्चंडश्चहिंसकः ।
त्यक्तवर्णाश्रमाचारोनास्तिकः शठएवच ॥

राजा इतने मनुष्योंको राज्यसे निकाल दे कि मदिरा पीनेवाला, धूर्त, चोर, जार, क्रोधी, हिंसक, वर्ण और आश्रमके आचरणका त्यागी नास्तिक और शठ ॥ ९३ ॥

मिथ्याभिशापकःकर्णेजपार्यदेवदूषकौ ।
असत्यवाक्न्यासहारतिथावृत्तीविघातकः ॥

मिथ्या दुःखदाई, सूचक, सजन और देवताओंके दूषक, झूठा, न्यास, (धरोहर) का चोर, जीविकाका नष्ट करनेवाला ॥ ९४ ॥

अन्योदयासहिष्णुश्चह्युत्कोचग्रहणेरतः ।
अकार्यकर्तामंत्राणांकार्याणांभेदकस्तथा ॥

जो दूसरेके प्रतापको न सहे, उत्कोच (रिशवत) का ग्रहण करनेवाला, कुकमकारी, मन्त्र और कार्योंका नष्ट करनेवाला ॥९५॥

अनिष्टवाक्परुषवाग्जलारामप्रबाधकः ।
नक्षत्रसूचीराजद्विट्कुमंत्रीकूटकार्यवित् ॥

अनिष्ट वा कठोर वचन कहनेवाला जल और बागका हिंसक, नक्षत्रसूची, (जो दुकान दुकानपर नक्षत्रोंको बतावे ऐसा ज्योतिषी) राजाका बैरी, छोटा मन्त्री, कपटी ॥ ९६ ॥

कुवैद्यामंगलाशौचशीलामार्गनिरोधकाः ।
कुसाक्ष्युद्धतवेषश्चस्वामिद्रोहीऽव्ययाधिका ॥

खोटा वैद्य, अमंगली, सदा अशुद्ध, मार्गके रोकनेवाला, छोटा साक्षी, जिसका वेष उद्धत

हो, स्वामीका द्रोही और अधिक व्ययका कर्ता ॥ ९७ ॥

अग्निदोगरदोवेश्यासक्तः प्रबलदंडकृत्।
तथापाक्षिकसभ्यश्चबलाल्लिखितग्राहकः ९८॥

अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, वेश्यागामी, प्रबल दण्डका दाता, पक्षपाती, सभासद, बलसे लिखाई लेनेवाला ॥ ९८ ॥

अन्यायकारीकलहशीलोयुद्धपराङ्मुखः।
साक्ष्यलोपीपितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः९९॥

अन्याय कर्त्ता, कलही, युद्धमें पराङ्मुख, साक्षीने जो कुछ कहा हो उसका नाश करनेवाला और पिता, माता, सती स्त्री, मित्र इनके संग द्रोहका कर्ता ॥ ९९ ॥

असूयकः शत्रुसेवीमर्मच्छेदीचवंचकः।
स्वकीयद्विड्गुप्तवृत्तिर्वृषलोग्रामकंटकः १००॥

पराये गुणोंमें दोषोंको ढूंढनेवाला, शत्रुका सेवक, मर्मका छेदक, वंचक, अपनोंका द्वेषी, गुप्त (छिपी) जिसकी जीविका हो, शूद्र और ग्रामका कंटक ॥ १०० ॥

विनाकुटुंबभरणात्तपोविद्यार्थिनं सदा।
तृणकाष्ठादिहरणेशक्तः सन्भैक्ष्यभोजकः॥

जो कुटुम्बका भरण पोषण किये विना तप करे वा विद्या सीखे और तृण और काष्ठ आदिके लानेमें समर्थ होकर जो भिक्षा मांगकर भोजन करे ॥ १ ॥

कन्यायाअपिविक्रेताकुटुंबवृत्तिह्रासकः।
अधर्मसूचकश्चापिराजनिष्टमुपेक्षकः॥ २॥

जो कन्याको बेचै, कुटुम्बकी जीविकाको कमकरे जो अधर्मकी सूचना करे और राजाके अनिष्टकी उपेक्षा करे ॥ २ ॥

कुलटापतिपुत्रौस्त्रीस्वतंत्रावृद्धनिंदिता।
गृहकृत्योज्झितानित्यंदुष्टाचारप्रियस्नुषा॥३॥

व्यभिचारिणीका पति तथा पुत्र और स्वतन्त्र तथा वृद्धोंसे निंदित स्त्री और जो पुत्रकी वधू घरके कृत्यको न करे सदैव दुष्टाचरण करे ॥ ३ ॥

स्वभावदुष्टानेतान्हिज्ञात्वाराष्ट्राद्विवासयेत्।
द्वीपेनिवासितव्यास्तेबद्धादुर्गोदरथेवा ॥ ४ ॥

इन सम्पूर्ण स्वभावदुष्टोंको राजा देशसे निकाल दे या किसी द्वीपमें बांधकर किलेमें इन सबको बसादे ॥ ४ ॥

मार्गसंरक्षणेयोज्याःकदन्नन्यूनभोजनाः।
तत्तज्जात्युक्तकर्माणिकारयीतचतैर्नृपः॥५॥

खोटा अन्न और अल्प भोजन देकर इनको मार्गकी रक्षामें नियुक्त करे और इनसे तिस२ जातिके जो कर्म हैं वे करावे ॥ ५ ॥

एवंविधानसाधूंश्चसंसर्गेणचदूषितान्।
दंडयित्वाचसन्मार्गेशिक्षयेत्तान्नृपःसदा ॥६॥

इस प्रकारके असाधुओं और संसर्गसे दूषितोंको दण्ड देकर राजा सन्मार्गकी शिक्षा सदैव दे ॥ ६ ॥

राज्ञोराष्ट्रस्यविकृतिंतथामंत्रिगणस्यच।
इच्छंतिशत्रुसंबंधात्तेतान्हन्याद्द्रुतंनृपः ७॥

जो मनुष्य शत्रुओंके सम्बंधसे राजा देश और मंत्रियोंके गणोंके बिगाडनेकी इच्छा करे उनको राजा शीघ्रही नष्ट करदे ॥ ७ ॥

नेच्छेच्चयुगपद्ग्रासंगणदौष्ट्येगणस्यच।
एकैकंवातयेद्राजावत्सोश्नातियथास्तनम् ॥

यदि किसी समुदायकी दुष्टता हो तो समुदायकी एकवार हानिको न चाहे किन्तु एक २ का नाश इस प्रकार करे जैसे वत्स एक २ स्तनको पीता है ॥ ८ ॥

अधर्मशीलोनृपतिर्यदातंभीषयेज्जनः।
धर्मशीलातिबलवद्रिपोराश्रयतःसदा ॥ ९ ॥

जब राजा अधर्मशील हो तब प्रजा उसको धर्मशील अत्यन्त बलवान् शत्रुके आश्रयसे सदैव भय दे ॥ ९ ॥

यावत्तुधर्मशीलःस्यात्सनृपस्तावदेवहि।
अन्यथानश्यतेलोकोद्राङ्नृपोपिविनश्यति ॥

जितने कालतक राजा धर्मशील रहता है उतनेही कालतक वह राजा होता है और

अन्यथा जगत् और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

मातरंपितरंभार्यांयःसंत्यज्यविवर्तते ।
निगडैर्बंधयित्वातंयोजयेन्मार्गसंसृतौ ११॥

माता, पिता, भार्य्या, इनको जो त्यागकर वर्ते उसको बेडियोंसे बांधकर संसारके मार्गमें लावे ॥ ११ ॥

तद्भृत्यर्धंतुसंदद्यात्तेभ्योराजाप्रयत्नतः ।
विद्यात्पणसहस्रंतुदंडउत्तमसाहसः ॥ १२ ॥

और उसको आधी भृति उन माता आदियोंसे राजा प्रयत्नसे दिलावे, एक सहस्रपण दण्ड उत्तम साहस होता है ॥ १२ ॥

दशमाषमितंताम्रंतत्पणोराजमुद्रितम् ।
वराटिसार्धशतकंमूल्यंकार्षापणश्चसः॥ १३ ॥

दश मासे तांबा जो राजमुद्रासे अंकित हो उसे पण कहते हैं और १५० वराटि (कौडी) योंका जो मोल हो उसे कार्षापण कहते हैं ॥ १३ ॥

तदर्धश्चतदर्धश्चमध्यमःप्रथमःक्रमात् ।
प्रथमेसाहसेदंडःप्रथमश्चक्रमात्परौ ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तसे आधेको मध्यम और उससे आधेको प्रथम साहस कहते हैं पहले साहस में प्रथम फिर क्रमसे मध्य और उत्तम दंड होते हैं ॥ १४ ॥

मध्यमेमध्यमोधार्यश्चोत्तमेतूत्तमोनृपैः ॥
सोपायाःकथितामिश्रेमित्रोदासीनशत्रवः१५॥

और राजा मध्यम साहसमें मध्यम और उत्तम साहसमें उत्तम दंड दे इस मिश्रप्रकरणमें मित्र उदासीन शत्रु और उनके उपाय कहे हैं ॥ १५ ॥

अथकोशप्रकरणंब्रुवेमिश्रेद्वितीयकम् ।
एकार्थसमुदायोयःसकोशःस्यात्पृथक्पृथक्१६

अब मिश्र प्रकरणमें दूसरा कोशका प्रकरण कहते हैं, जो एक प्रकारके धनका समुदाय हो उसे पृथक् २ कोश (खजाना) कहते हैं ॥ १६ ॥

येनकेनप्रकारेणधनंसंचिनुयान्नृपः ।
तेनसंरक्षयेद्राष्ट्रंबलंयज्ञादिकाःक्रियाः ॥ १७ ॥

राजा जिस किसी प्रकारसे धनका संचय करे उस धनसे देश सेनाकी रक्षा और यज्ञ आदि कर्म करे ॥ १७ ॥

बलप्रजारक्षणार्थंयज्ञार्थंकोशसंग्रहः ।
परत्रेहचसुखदोनृपस्यान्यश्चदुःखदः ॥ १८ ॥

सेना प्रजाकी रक्षा और यज्ञ इनके लिये कोशका संग्रह परलोक और इस लोकमें सुखदाई होता है और अन्यकोश दुःखका दाता कहा है ॥ १८ ॥

स्त्रीपुत्रार्थंकृतोयश्चसोपभोगायकेवलः ।
नरकायैवसज्ञेयोनपरत्रसुखप्रदः ॥ १९ ॥

जो कोश स्त्री और पुत्रके ही लिये किया हो वह केवल उपभोगके लिये होता है और परलोकमें नरकार्थ है सुखदाई नहीं ॥ १९ ॥

अन्यायेनार्जितोयस्माद्येनतत्पापभाक्चसः ।
सुपात्रतोगृहीतंयद्दत्तंवावर्धतेचयत् ॥ २० ॥

अन्यायसे जितने कोशका संचय किया वह उसके पापका भागी होता है जो धन सुपात्रसे ग्रहण किया हो अथवा दिया हो वह बढता है ॥ २० ॥

स्वागमीसद्व्ययीपात्रमपात्रंविपरीतकम् ।
अपात्रस्यधनंसर्वंहरेद्राजानदोषभाक् २१ ॥

जो मनुष्य सुमार्गसे संचय और सुमार्गमें व्यय करता है वह पात्र होता है इससे विपरीत कुपात्र ,कुपात्रका संपूर्ण धन हरनेसे राजा दोषका भागी नहीं होता ॥ २१ ॥

अधर्मशीलनृपतेःसर्वतः संहरेद्धनम् ।
छलाद्बलाद्दस्युवृत्त्यापरराष्ट्राद्धरेत्तथा २२ ॥

अधर्मशील राजाके धनको सब प्रकारसे हरले कि छल बल चोरी तथा परके देशसे हरे ॥ २२ ॥

त्यक्त्वानीतिबलंस्वीयप्रजापीडनतोधनम् ।
संचितंयेनतत्तस्यसराज्यंशत्रुसाद्भवेत् ॥

जिस राजाने नीति और बलको त्यागकर

अपनी प्रजाकी पीडासे धनका संचय किया हो उस राजाका राज्य शत्रुओंके आधीन हो जाता है ॥ २३ ॥

दंडभूभागशुल्कानामाधिक्यात्कोशवर्धनम् ।
अनापदि नकुर्वीत तीर्थदेवकरग्रहात् ॥ २४ ॥

राजा दंड पृथ्वीका भाग शुल्क (महसूल) इनकी अधिकतासे आपत्कालको छोडकर खजाना न बढावै और तीर्थ और देवसे कर लेकर ॥ २४ ॥

यदाशत्रुविनाशार्थं बलसंरक्षणोद्यतः ।
विशिष्टदंडशुल्कादि धनं लोकात्तदाहरेत् ॥ २५ ॥

जब राजा शत्रुके विनाशार्थ सेनाकी रक्षा में उद्यत हो उस समय अधिक दण्ड और शुल्क आदि द्वारा प्रजासे धनको ग्रहण करे ॥ २५ ॥

धनिकेभ्योभृतिंदत्त्वास्वापत्सुतद्धनंहरेत् ।
राजास्वापत्समुत्तीर्णस्तत्स्वंदद्यात्सवृद्धिकम् ॥

अपनी आपत्तिमें राजा सूदपर धनियोंसे धनले और जब आपत्तिसे उत्तीर्ण (रहित) हो जाय तब सूदसहित दे ॥ २६ ॥

प्रजान्यथाहीयतेवैराज्यंकोशोनृपस्तथा ।
हीनाः प्रबलदंडेनसुरथाद्यानृपायतः ॥ २७ ॥

अन्यथा प्रजा, राज्य, कोश, राजा ये सब हीन हो जाते हैं, क्योंकि प्रबल दंडसे सुरथ आदि राजा हीन हो गये हैं ॥ २७ ॥

दंडभूभागशुल्कैस्तुविनाकोशाद्बलस्यच ।
संरक्षणंभवेत्सम्यग्यावद्विंशतिवत्सरम् ॥ २८ ॥

दण्ड भूमिका कर और कोश इनके विना बलकी रक्षा जबतक बीस वर्ष तक भली प्रकार हो ॥ २८ ॥

तथाकोशस्तुसंधार्यः स्वप्रजारक्षणक्षमः ।
बलमूलंभवेत्कोशः कोशमूलंबलंस्मृतम् ॥

तिस प्रकार अपनी रक्षाके योग्य कोशकी रक्षा राजा करे क्योंकि कोशका मूल बल और बलका मूल कोश कहा है ॥ २९ ॥

बलसंरक्षणात्कोशराष्ट्रवृद्धिररिक्षयः ।
जायतेत्रयंस्वर्गः प्रजासंरक्षणेनवै ॥ ३० ॥

बलको रक्षासे कोश, और देशकी वृद्धि तथा शत्रुका क्षय होते हैं ये तीनों और स्वर्ग प्रजाकी रक्षासे होतेहैं ॥ ३० ॥

यज्ञार्थंद्रव्यमुत्पन्नंयज्ञः स्वर्गसुखायुषे ।
अर्थनाशोबलंकोशोराष्ट्रवृद्ध्यैत्रयंत्विदम् ॥

द्रव्य यज्ञके लिये और यज्ञ स्वर्ग, सुख, अवस्थाके लिये होते हैं, शत्रुका अभाव बल कोश ये तीनों राष्ट्र (देश) वृद्धिके लिये होते हैं ॥ ३१ ॥

तद्वृद्धिर्नीतिनैपुण्यात्क्षमाशीलनृपस्यच ।
जायतेतोयतैतैवयावद्बुद्धिर्बलोदयम् ३२ ॥

क्षमाशील राजाकी नीतिनिपुणतासे उनकी वृद्धि होती है इससे जितनी बुद्धि और बल का उदय हो तितने कोश वृद्धिका यत्न करे ३२

मालाकारस्यवृत्त्यैवस्वप्रजारक्षणेनच ।
शत्रुंहिकरदीकृत्यतद्धनैः कोशवर्धनम् ॥ ३३ ॥

जो राजा मालीकी वृत्ति और अपनी प्रजा की रक्षासे शत्रुओंको करदेनेवाले बनाकर शत्रुओंके धनसे कोशको बढावे ॥ ३३ ॥

करोतिसनृपः श्रेष्ठोमध्यमोवैश्यवृत्तितः ।
अधमःसेवयादंडतीर्थदेवकरग्रहैः ॥ ३४ ॥

वह राजा उत्तम होता है, जो वैश्यवृत्ति करे वह मध्यम और सेवा करे वा दंड तीर्थ तथा देवतासे कर ले वह अधम होता है ॥ ३४ ॥

प्रजाहीनधनारक्ष्याभृत्यामध्यधनाः सदा ।
यथाधिकृत्प्रतिभुवोधिकद्रव्यास्तथोत्तमाः ॥

जो प्रजा धनहीन और भृत्य मध्यमधन हों उनकी सदैव रक्षा करे और साक्षी जितने अधिक धनी हों उतनेही उत्तम होते हैं ॥ ३५ ॥

धनिकाश्चोत्तमधनानहीनानाधिकान्नृपैः ।
द्वादशाब्दप्रपूर्यद्धनंतन्नीचसंज्ञकम् ॥ ३६ ॥

जो धनी उत्तम धनवाले हों और न हीन हों न अधिक हों उसको राजा रक्खे, जिसे धनसे १२ वर्ष तक निर्वाह होसके वह धन नीच होता है ॥ ३६ ॥

पर्याप्तंषोडशाब्दानांमध्यमंतद्धनंस्मृतम् ।
त्रिंशदब्दप्रपूर्यत्कुटुंबस्योत्तमंधनम् ॥ ३७ ॥

और जिससे १६वर्षतक कुटुम्बकी पालना हो वह धन मध्यम कहा है और जिससे ३० वर्षतक पालनाहोवह उत्तम धन होता है॥३७॥

क्रमादर्धंरक्षयेद्वास्वापत्त्यैनृपएषुवै ।
मूलैर्व्यर्थंवहरन्त्यर्थैर्नवृद्ध्यावणिजः क्वचित् ॥

राजा अपने आपत्तिके लिये इन धनिक आदिकोंमें क्रमसे आधे धनकी रक्षा करे जो व्यापारी आधेमूल धनसे (जमासे) सूदके लिये व्यापार करताहै वह कभी व्यापारी नहीं होता ॥ ३८ ॥

विक्रीणंतिमहार्घेतुहीनार्घेसंचयंतिहि ।
व्यवहारेधृतंवैश्यैस्तद्धनेनविनासदा॥३९ ॥

जो द्रव्य व्यवहारमें लग रहा है उसके विना सदैव महंगेमें वेंचते हैं और मन्देमें लेते हैं ॥ ३९ ॥

अन्यथास्वप्रजातापोनृपंदहतिसान्वयम् ।
धान्यानांसंग्रहःकार्योवत्सरत्रयपूर्तिदः ॥४०॥

अन्यथा प्रजाका सन्ताप वंश सहित राजा को नष्ट करता है और इतने अन्नका संग्रह करे जिससे ३ वर्ष पूरा पड जाय ॥ ४० ॥

तत्तत्कालेस्वराष्ट्रार्थंनृपेणात्महितायच ।
चिरस्थायीसमृद्ध नामधिकोवापिचेष्यते४१॥

तिस २ समयमें अपने देश और अपने लिये अन्नसंग्रह रक्खे और जो समृद्ध हैं उनको चिरकालतक रहने योग्य अथवा अधिक अन्नभी अच्छा है ॥ ४१ ॥

सुपुष्टंकांतिमज्जातिश्रेष्ठंशुष्कंनवीनकम् ।
ससुगंधवर्णरसंधान्यंसं वीक्ष्यरक्षयेत्॥४२ ॥

जो वस्तु पुष्ट वा कान्तिवालीहै वह सूखी और नवीन अच्छी होती है और जो सुगंध वर्ण रसवाली हैं उनको देख२ कर रक्षा करे ॥ ४२ ॥

सुसमृद्धंचिरस्थायीमहार्घमपिनान्यथा ।
विषवह्निहिमव्याप्तंकीटजुष्टंनधारयेत् ॥ ४३ ॥
निःसारतांनहिप्राप्तंव्ययेतावन्नियोजयेत् ।
व्ययीभूतंतुयद्द्रव्यंतावत्तुल्यंतुनवीनकम् ॥४४॥

जो वस्तु अधिक हो और चिरकालतक रहसके वह महंगीभी अच्छी अन्यथा नहीं और जो वस्तु विष,अग्नि, शीत, जीव इनकी मारी हो उसे न रक्खे ॥ ४३ ॥ और जिस वस्तुका सार बनरहा हो, उसेही खर्चमें लावे और जितनी खर्च हो चुकी हो उसकी तुल्य नवीन ॥ ४४ ॥

गृह्णीयात्सुप्रयत्नेनवत्सरेवत्सरेनृपः।
औषधीनांचधातूनांतृणकाष्ठादिकस्यच ॥

वर्ष २ में बडे यत्नसे ग्रहण करता है और औषधी तृणकाष्ठादिकाभी संचय रक्खे ॥४५॥

यन्त्रशस्त्रास्त्राग्निचूर्णभांडादेर्वाससांतथा ।
यद्यच्चसाधकंद्रव्यंयद्यत्कार्येभवेत्सदा ४६ ॥

जो शस्त्र, अस्त्र, अग्नि, चूर्ण (दारू) भाण्ड, वस्त्र, इनका भी संचय रक्खे और कार्योंमें जो जो द्रव्य साधक हो सदैव ॥ ४६ ॥

संग्रहस्तस्यतस्यापिकर्तव्यः कार्यसिद्धिदः ।
संरक्षयेत्प्रयत्नेनसंगृहीतंधनादिकम् ॥ ४७ ॥

उस २की कार्य सिद्धिके लिये संग्रह करना और संग्रह किये हुए धन आदिकी प्रयत्नसे रक्षा करे ॥ ४७ ॥

अर्जनेतुमहद्दुःखंरक्षणेतच्चतुर्गुणम् ।
क्षणंचोपेक्षितंयत्ताद्विनाशंद्राक्समाप्नुयात् ॥

धनके संचयमें महादुःख और उसकी रक्षामें उससे चौगुना दुःख होता है यदि क्षणमात्र भी धनरक्षाकी उपेक्षा की जाय तो शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ४८ ॥

अर्जकस्यैवयद्दुःखंस्याद्यथार्जितनाशने ।
स्त्रीपुत्राणामपितथानान्येषांतुकथंभवेत् ॥

संचय करनेवाले मनुष्यको संचित धनके नाशमें जो दुःख होता है वह दुःख स्त्री, पुत्र और अन्योंको कैसे हो सकता है ॥ ४९ ॥

स्वकार्येशिथिलोयःस्यात्किमन्येनभवंतिहि।
जागरूकःस्वकार्येयस्तत्सहायाश्चतत्समाः ॥

जो मनुष्य अपने कार्यमें शिथिल होता

है तो अन्य क्यों न होंगे और जो अपने काम में जागता है उसके सहायकभी जागते हैं ५०

योजानात्यर्जितुंसम्यगर्जितंनहिरक्षितुम् ।
नातःपरतरोमूर्खोवृथातस्यार्जनाश्रमः ॥५१॥

जो मनुष्य सञ्चय करना जानता है और सञ्चयकी रक्षा भलीप्रकार नहीं करसकता उससे परेकोई मूर्ख नहीं उसका सञ्चय करना वृथा है ॥ ५१ ॥

एकस्मिन्नधिकारेतुयोद्वावधिकारोतिसः ।
मूर्खोजीवद्विभार्यश्चह्यतिविस्रंभवांस्तथा ५२ ॥

जो मनुष्य एक काममें दोनोंको अधिकार देता है जिसके पहिलीके जीवते दूसरी स्त्री हो और जिसको अत्यन्त विश्वास हो उससे परे कोई मूर्ख नहीं ॥ ५२ ॥

महाधनाशोरसतः स्त्रीभिर्निर्जितएवहि ।
तथायः साक्षितांपृच्छेच्चौरजारातताविषु ॥

जो मनुष्य महालोभी हो और जिसको हाव भावसे स्त्रियोंने जीत लिया हो और जो मनुष्य चोर, जार, आततायी, (हिंसक) इनको साक्षी पूछे वह भी मूर्ख है ॥ ५३ ॥

संरक्षेत्कृपणवत्कालेदद्याद्विरक्तवत् ।
वस्तुयाथात्म्यविज्ञानेस्वयमेवयतेत्सदा ५४ ॥

कृपणके समान धनकी रक्षा करे और समयपर विरक्तके समान दे और वस्तुके यथार्थ जाननेके लिये सदैव स्वयं यत्न करे ॥ ५४ ॥

परीक्षकैः स्वयंराजारत्नादीन्वीक्ष्यरक्षयेत् ।
वज्रंमुक्ताप्रवालंचगोमेदश्चेंद्रनीलकः॥ ५५ ॥

और राजा परीक्षकों (जौहरी) से और स्वयं परीक्षा करके रत्न आदिकी रक्षा करे कि वज्र, मोती, मूंगा, गोमेद इन्द्रनील ॥

वैदूर्यः पुष्करागश्चपाचिर्माणिक्यमेवच ।
महारत्नानिचैतानिनवप्रोक्तानिसूरिभिः ५६ ॥

वैदूर्य, पुखराज, पाची, माणिक्य सूरियोंने ये नौ ९ महारत्न कहे हैं ॥ ५६ ॥

रवेःप्रियंरक्तवर्णमाणिक्यंत्विंद्रगोपरुक् ।
रक्तपीतसितश्यामच्छायैर्मुक्ताप्रियाविधोः ॥

लाल वर्णका इन्द्रगोपके समान जिसकी कान्ति हो ऐसा माणिक्य सूर्यको प्याराहैलाल पीला, सुपेद, श्याम कान्तिवाला मोती चन्द्रमाको प्रिय है ॥ ५७ ॥

सपीतरक्तरुग्भौमप्रियंविद्रुममुत्तमम् ।
मयूरचासपत्राभापाचिर्बुधहिताहरित् ५८ ॥

पीलापन लिये लाल मूँगा मंगलको प्रिय है और मोर वा चासके पंखोंके समान वर्ण पाची बुधको हित होती है ॥ ५८ ॥

स्वर्णच्छविःपुष्करागःपीतवर्णोगुरुप्रियः ।
अत्यंतविशदंवज्रंतारकाभंकवेःप्रियम् ५९ ॥

स्वर्णकी जिसमें झलक हो ऐसा पीला पुखराज गुरुको प्यारा है और तारोंके समान जिसकी कांतिहो ऐसा वज्र शुक्रको प्रियहै५९

हितः शनेरिन्द्रनीलोह्यसितोघनमेघरुक् ।
गोमेदःप्रियकृद्राहोरीषत्पीतारुणप्रभः ६० ॥

सजल मेघके समान जिसकी कांति हो ऐसा कृष्ण इन्द्रनील शनैश्वरको प्रिय है, किञ्चित पीला लाल कांतिवाला गोमेद राहुको प्रिय है ॥ ६० ॥

ओतुलक्ष्माश्चलसंतुवैदूर्यंकेतुप्रीतिकृत् ।
रत्नश्रेष्ठतरंवज्रंनीचंगोमेदविद्रुमम् ॥ ६१ ॥

बिलावके नेत्रोंके समान जिसकी कांतिहो और जिसमें लकीर हों ऐसा वैडूर्य केतुको प्रिय है, रत्नोंमें वज्र श्रेष्ठतर है और गोमेद और मूंगा नीच होतेहैं ॥ ६१ ॥

गारुत्मतंचमाणिक्यमौक्तिकंश्रेष्ठमेवहि ।
इन्द्रनीलपुष्करागौवैदूर्यंमध्यमंस्मृतम् ६२ ॥

गारुत्मत (पाची) माणिक्य और मोती श्रेष्ठ है, इन्द्रनील, पुखराज, वैदूर्य ये मध्यम कहाते हैं ॥ ६२ ॥

रत्नश्रेष्ठोदुर्लभश्चमहाद्युतिरहेर्मणिः ।
अजालगर्भसद्वर्णरेखाबिंदुविवर्जितम् ॥६३ ॥

सर्पकी मणि जो रत्नोंमें श्रेष्ठ है वह कांतिवाली दुर्लभ होती है जिसके गर्भमें जाल न हो, उत्तम वर्ण हो जिसमें रेखा और बिन्दु न हों ॥ ६३ ॥

सत्कोणंसुप्रभंरत्नंश्रेष्ठंरत्नाविदोविदुः ।
शर्कराभंदलाभंचाचिपिटंवर्तुलंहितत् ॥ ६४ ॥

जिसमें कोण अच्छीहों और कांतिभीअच्छी हो और जो खांडकी आकृति हो वा कमल दल तुल्य हो चिकना और गोल हो ऐसे रत्नोंको रत्नके ज्ञाता श्रेष्ठ जानते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णाःप्रभाः सितारक्तपीतकृष्णास्तुरत्नजाः ।
यथावर्णंयथाछायंरत्नंयद्दोषवर्जितम् ॥ ६५ ॥

रत्नके रंग सफेद, रक्त, पीला, काला,होतेहैं जिस रत्नकी शास्त्रोक्त कांति और वर्ण हों तथा दोषसे जो रहित हो ॥ ६५ ॥

श्रीपुष्टिकीर्तिशौर्यायुःकरमन्यदसत्स्मृतम् ।
पद्मरागस्तुमाणिक्यभेदःकोकनदच्छविः ॥

वह रत्न,लक्ष्मी,पुष्टि, कीर्ति,शूरता,अवस्था इनको करता है और अन्य रत्न असत् कहा है कमलके समान जिसकी कांति हो ऐसा पद्मराज माणिक्यकाही एक भेद है ॥ ६६ ॥

नधारयेत्पुत्रकामानारीवज्रंकदाचन ।
कालेनहीनंभवतिमौक्तिकंविद्रुमंधृतम् ६७ ॥

पुत्रकी कामना जिसे हो वह स्त्री वज्रको कभी भी धारण न करे। बहुत धारण किये मोती और मूंगा हीन हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

गुरुत्वात्प्रभयावर्णाद्विस्तारादाश्रयादपि ।
आकृत्याचाधिमूल्यंस्याद्रत्नंयद्दोषवर्जितम्

गुरु (भारीपन) कांति, वर्ण, विस्तार और आश्रय आकृति, इनसे रत्नका अधिक मोल हो जाता है जो दोषोंसे वर्जित हो ॥६८

नायसोल्लिख्यतेरत्नंविनामौक्तिकाविद्रुमात् ।
पाषाणेनापिचप्रायइतिरत्नविदोविदुः॥६९ ॥

मोती और मूंगेसे अन्य जितने रत्न हैं उन पर लोहे और पत्थरकी लकीर प्रायः नहीं होती यह रत्नोंके ज्ञाताओंने कहा है॥ ६९ ॥

मूल्याधिक्यायभवतियद्रत्नंलघुविस्तृतम् ।
गुर्वल्पंहीनमौल्यंस्याद्रत्नंयादिचसद्गुणम् ७०॥

जो रत्न हलके और बडे होते हैं उनका मोल अधिक होता है और सद्गुण भी जो रत्न गुरु भारी और अल्प होता है उनका मोल कम होता है ॥ ७० ॥

शर्कराभंहीनमौल्यंचिपिटंमध्यमंस्मृतम् ।
दलाभंश्रेष्ठमूल्यंस्याद्यथाकामान्तुवर्तुलम् ॥

खांडके समान जिसकी कांति हो वह कम मोलका और चिपटा मध्यम मोलका होता है कमलदलके समान जिसकी कांति हो यथोचित गोल हो वह श्रेष्ठ मोलका होता है ॥ ७१ ॥

नजरांयांतिरत्नानिविद्रुमंमौक्तिकंविना ।
राजादौष्ट्याच्चरत्नानांमूल्यंहीनाधिकंभवेत् ॥

विद्रुम मूंगा और मोती इनके बिना सब रत्न बृद्धावस्था (हीनपना) को प्राप्त नहीं होते हैं और राजाके मूर्खपनासे रत्नोंका मौल्य न्यूनाधिक होता है ॥ ७२ ॥

मत्स्याहिशंखवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः ।
जायतेमौक्तिकंतेषुभूरिशुक्त्युद्भवंस्मृतम् ॥

मत्स्य, सर्प, शंख, बाराह, बांस, मेघ, शुक्ति (सीप) इनसे मोती पैदा होता है, परन्तु शुक्तिसे अधिक पैदा होता है॥ ७ ३॥

कृष्णंसितंपीतरक्तंद्विचतुःसप्तकंचुकम् ।
कनिष्ठंमध्यमंश्रेष्ठंक्रमाच्छुक्त्युद्भवंविदुः॥७४।

काला, सपेद, पीला. रक्त जिसमें दो चार सात कंचुक (पडदे) हों ऐसा मोती कनिष्ठ मध्यम श्रेष्ठ शुक्तिसे उत्पन्न कहा है ॥ ७४ ॥

तदेवहिभवेद्वेध्यमवेध्यानीतराणितु ।
कुर्वंतिकृत्रिमंतद्वत्सिंहलद्वीपवासिनः ७५ ॥

और वह बींधने योग्य होता है इतर नहीं बींधे जाते हैं सिंहलद्वीपके वासी कृत्रिमभी मोती बनाते हैं ॥ ७५ ॥

तत्संदेहविनाशार्थंमौक्तिकंसुपरीक्षयेत् ।
उष्णेसलवणस्नेहेजलेनिश्युषितंहितत् ॥७६॥

उस संदेहकी निवृत्तिके लिये मोतीकी परीक्षा भली प्रकार करै उष्ण लवण वा स्नेह संयुक्त जलमें रात्रिमें बसकर ॥ ७६ ॥

ब्रीहिभिर्मर्दितंनेयाद्वैवर्ण्यंतदकृत्रिमम् ।
श्रेष्ठाभंशुक्तिजंविद्यान्मध्याभंत्वितराद्विदुः ७७

जो मोती धानोंमें मलनेसे विवर्ण (मैला) न हो जाय वह अकृत्रिम (असल) होता है जो शुक्तिसे पैदा होता है उसकी कांति श्रेष्ठ और अन्यकी मध्यम कांति होती है ॥ ७७ ॥

तुलाकल्पितमूल्यंस्याद्रत्नंगोमेदकंविना ।
क्षुमाविंशतिभीरक्तीरत्नानांमौक्तिकंविना७८॥

गोमेदके विना सब रत्नोंका तोलसे मोल होता है बीस अलसियोंकी रत्ती सब रत्नोंकी होती है एक मोतीके विना ॥ ७८ ॥

रक्तित्रयंतुमुक्तायाश्चतुःकृष्णकलैर्भवेत् ।
चतुर्विंशतिभिस्ताभीरत्नंटकस्तुरक्तिभिः ॥

मोतीकी तीन रत्ती चार कृष्णलोंकी होती है और २४ चौबीस रत्तियोंका एक टंक रत्नोंका होता है ॥ ७९ ॥

टंकैश्चतुर्भिस्तालःस्यात्स्वर्णविद्रुमयाःसदा ।
एकस्यैवहिवज्रस्यत्वेकरक्तिमितस्यच ॥८०॥

चार टंकोंका एक तोला सोने और मूंगेका सदैव होता है, जो वज्र एक रत्ती भरका एक हो ॥ ८० ॥

सुविस्तृतदलस्यैवमूल्यंपंचसुवर्णकम् ।
रक्तिकादलविस्तारान्छ्रेष्ठंपंचगुणंयदि ॥८१॥

जिसके दलका विस्तार भी अच्छा हो उसका मोल पांच सुवर्ण होता है जो रत्तीके दलसे पांच गुना विस्तार हो ॥ ८१ ॥

यथायथाभवेन्न्यूनंहीनमौल्यंतथातथा ।
अत्राष्टरक्तिकोमाषोदशमाषैःसुवर्णकः ८२

जितना न्यून हो उतना २ ही कम मोल होता है और यहां ८ रत्तियोंका १ माषा और दशमाषोंका एक सुवर्ण होता है ॥ ८२ ॥

मूल्यंपंचसुवर्णानांराजताशीतिकर्षकम् ।
यथागुरुतरंवज्रंतन्मूल्यं रक्तिवर्गतः ॥ ८३ ॥

पांच सुवर्णोंका मोल चांदीके अस्सी कर्षका (रुपैया) होता है जितना भारी वज्र हो उसका मोलभी रत्तियोंके समूहसे होता है ८३

तृयीयांशविहीनंतुचिपिटस्यप्रकीर्तितम् ।
अर्धंतुशर्कराभस्यचोत्तमंमूल्यमीरितम्॥८५॥

चिपिटका मूल्य तेहाई कम होता है जो शर्कराकी कांतिवालेके तोलसे आधा हो उसका मोल उत्तम कहा है ॥ ८४ ॥

रक्तिकायाश्चद्वेवज्रेतदर्धंमूल्यमर्हतः ।
तदर्धंवहयोर्हतिमध्याहीनायथागुणैः ॥ ८५ ॥

जो दो २ वज्र एकरत्तीके हों उनका उससे आधा मोल कहा है और जो गुणोंसे जैसे मध्य वा हीन हों वे उससे भी आधे मोल योग्य होते हैं ॥ ८५ ॥

उत्तमार्धंतदर्धंवाहीरकागुणहीनतः ।
शतादूर्ध्वंरक्तिवर्गाद्ध्रसेद्विंशतिरक्तिकाः ॥

जो हीरे गुणहीन होनेसे उत्तमसे आधे वा उस आधेसे भी आधे हों उनमें सौ १०० रत्तियोंसे ऊपर बीस२० रत्ती कम समझ ले अर्थात् २० का मोल कम करदे ॥ ८६ ॥

प्रतिशतात्तुवज्रस्यसुविस्तृतदलस्यच ।
तथैवचिपिटस्यापिविस्तृतस्यचह्रासयेत् ॥

जिसका दल विस्तार अच्छा हो वज्रके प्रति सौ और विस्तृत चिपिटके भी २० रत्ती कम करदे ॥ ८७ ॥

शर्कराभस्यपंचाशच्चत्वारिंशच्चवैकतः ।
रत्नंनधारयेत्कृष्णंरक्तबिंदुयुतंसदा ॥८८॥

शर्करा (कंकर) के वज्रकी पचास वा चालीस रत्ती मोल कम करै और काले और रक्तबिंदुवाले रत्नको कभी न धारे ॥ ८८ ॥

गारुत्मकंतूत्तमंचेन्माणिक्यंमूल्यमर्हतः ।
सुवर्णरक्तिमात्रंचयथारक्तिततोगुरु ॥ ८९ ॥

जो उत्तम गारुत्मत होय तो माणिक्यके मोल योग्य होता है यदि रत्तीमात्र सुवर्णसे रत्तीमात्र भारी हो ॥ ८९ ॥

रक्तिमात्रःपुष्करागोनीलःस्वर्णार्धमर्हतः ।
चलत्रिसूत्रीवैदूर्यश्चोत्तमंमूल्यमर्हति ॥ ९० ॥

एक रत्तीका नीला पुखराजका आधासुवर्ण मोल होता है। जिस वैदूर्यमें तीन सूत्र हों वह उत्तम मोलके योग्य होता है ॥ ९० ॥

प्रवालंतोलकमितंस्वर्णार्धंमूल्यमर्हति ।
अत्यल्पमूल्योगोमेदोनोन्मानंतुयतोर्हति ॥

एक तोला मूंगेका आधा सुवर्ण मोल यो-ग्य होता है अति अल्प मोलका गोमेद उन्मान (तोलना) के योग्य नहीं होता ॥ ९१ ॥

संख्यातःस्वल्परत्नानांमूल्यंस्याद्धीरकादृिना ।
अत्यंतरमणीयानांदुर्लभानांचकामतः ॥९२॥

छोटे रत्नोंका मोल हीरेको छोड़कर गिनतीसे होता है जो अति रमणीय वा यथार्थमें दुर्लभ हैं ॥ ९२ ॥

भवेन्मूल्यंनमानेनतथातिगुणशालिनाम् ।
व्यंघ्रिश्चतुर्दशहतोवर्गोमौक्तिकरक्तिजः ९३

तैसेही अत्यन्त गुणवालोंका मोल मानसे नहीं होता और मोतियोंकी रत्तियोंके समूहको चौथाई कम करके चौदहगुना करै ॥ ९३ ॥

चतुर्विंशतिभिर्भक्तोलब्धान्मूल्यंप्रकल्पयेत् ।
उत्तमंतुसुवर्णार्धमूनमूनंयथागुणम् ॥ ९४ ॥

फिर चौबीसका भाग दे उसमें जो लब्ध हो उससे मोलकी कल्पना करै, उत्तमका मोल आधा सुवर्ण और न्यून न्यूनका गुणके अनुसार होता है ॥ ९४ ॥

मुक्तायारक्तिवर्गस्यप्रतिरक्तौकलानव ॥
कल्पयेत्पंचभागान्हित्रिंशद्भिः प्रारभजेच्च तान् ॥ ९५ ॥

मोतियोंकी रत्तियोंके समूहमें प्रति रत्ति ९ कला समझे उनमेंसे पांचभागोंमें तिसका भाग दे ॥ ९५ ॥

लब्धंकलासुसंयोज्यकलाःषोडशभिर्भजेत्
मूल्यंतल्लब्धतोयोज्यंमुक्तायावायथागुणम्९६

जो लब्ध हो उसे कलाओंमें मिला दे और कलाओंसें सोलहका भाग दे उससे जो लब्धहो उसीसे मोतीका मोल जाने वा गुणके अनुसार ॥ ९६ ॥

रक्तंपतिंवर्तुलंचेन्मौक्तिकंचोत्तमंसितम् ॥
अधमंचिपिटंशर्कराभमन्यत्तमध्यमम् ॥ ९७॥

जो मोती रक्त, पीला, सफेद और गोल हो वह उत्तम और जो कंकरके समान वा चिपटा हो वह अधम, और अन्य मध्यम होता है ॥ ९७ ॥

रत्नेस्वाभाविकादोषाःसंतिधातुषुकृत्रिमाः ।
अतोधातून्संपरीक्ष्यतन्मूल्यंकल्पयेद्बुधः ९७

रत्नमें दोष स्वाभाविक और धातुओंमें दोष कृत्रिम होते हैं, इससे बुद्धिमान् मनुष्य धातुओंकी परीक्षा करके उनके मोलकी कल्पना करे ॥ ९८ ॥

सुवर्णरजतंताम्रंवंगंसीसंचरंगकम् ।
लोहंचधातवःसप्तह्येषामन्येतुसंकराः ॥ ९९ ॥

सुवर्ण, चांदी, तांबा, वंग, सीसा, रांग, लोहा ये सात धातु होती हैं और बाकी तो संकर (मेळजोल) ॥ ९९ ॥

यथापूर्वंतुश्रेष्ठंस्यात्स्वर्णंश्रेष्ठतरंमतम् ।
वंगताम्रभवंकांस्यंपित्तलंताम्ररंगजम्॥२०० ॥

ये पूर्व २ की श्रेष्ठ होती हैं और इनमें सोना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है वंग और तांबेसे कांसी तांबा और रांग मिलाकर पीतल होती है ॥ २०० ॥

मानसममपिस्वर्णंतनुस्यात्पृथुलाःपरे ।
एकच्छिद्रसमाकृष्टेसमखंडेद्वयोर्यदा ॥१॥

सोना, मानके, समानभी पतला हो सकता है और धातु पृथुल(मोटी)रहती है एक छिद्रमें खींचनेसे जब दोनोंके खंड समान हो जाँय॥ १ ॥

धातोःसूत्रमानसमंनिर्दिष्टस्यभवेत्तदा ।
यंत्रशस्त्रास्त्ररूपंयन्महामूल्यंभवेदयः ॥ २ ॥

तब निर्दिष्ट, (शुद्ध) धातुका सूत मानके समानहोताहै और जिस लोहेके यंत्र शस्त्र अस्त्र बने वह भी बहुत मोलका होता है ॥ २ ॥

रजतंषोडशगुणंभवेत्स्वर्णस्यमूल्यकम् ।
ताम्रंरजतमूल्यंस्यात्प्रायोशीतिगुणंतथा ३॥

सोनेका मोल चांदीसे सोलह गुना होता है और चांदीसे अस्सी गुणा (भाग) तांबेका मोल होता है ॥ ३ ॥

ताम्राधिकंसार्धगुणेवंगंवंगात्तथापरे ।
रंगसीसेद्वित्रिगुणंताम्राल्लोहेतुषड्गुणम् ४ ॥

तांबेसे डेढगुणा अधिक वंग और तैसे ही वंगसे अन्य धातु होती हैं, वंग और सीसा क्रमसे दूने तिगुने और तांबेसे छःगुना लोहा होता है ॥ ४ ॥

मूल्यमेतद्विशिष्टंतुयुक्तमाङ्मूल्यकल्पनम्।
सुश्रृंगवर्णासुदुग्धावहुदुग्धासुवत्सका ॥ ५ ॥

यह विशिष्ट (उत्तम) मोल कहा और मोलकी कल्पना तो पहिले कह आये और जिसके अच्छे सींग, दुहनेमें सुशील, बहुत दूध दे, बछडा अच्छा हो ॥ ५ ॥

तरुण्यल्पावामहतीमूल्याधिक्याहिगौर्भवेत् ।
पतिवत्साप्रस्थदुग्धातन्मूल्यंराजतंपलम् ॥ ६ ॥

जवान हो, चाहे वह छोटी हो चाहे बडी, पर वह गो अधिक मोलकी होती है, जिसका दूध वत्सने पी लिया हो और प्रस्थभर दूध दे उस गौका मोल एकपल चांदी होता है॥ ६ ॥

अजायाश्चगवार्धंस्यान्मेष्यामूल्यमजार्धकम् ।
दृढस्ययुद्धशीलस्यपलंमेषस्यराजतम् ॥ ७ ॥

बकरीका मोल गौसे आधा,भेडका बकरीसे आधा और जो मींढा दृढ तथा युद्धके योग्य हो उसका मोल एक पल चांदी होता है ॥ ७ ॥

दशवाष्टौपलंमूलंराजतंतूत्तमंगवाम् ।
पलंमेष्याअवेश्चापिराजतंमूल्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥

दश वा आठ पल चांदी गायका उत्तममूल्य होता है, मेषी और भेडका मोल एकपल चांदी उत्तम होता है ॥ ८ ॥

गवांसमंसार्धगुणंमाहिष्यामूल्यमुत्तमम् ।
सुश्रृंगवर्णबलिनोवोढुःशीघ्रगमस्यच ॥ ९ ॥

गौओंके समान वा डेढगुना भैंसका मोल उत्तम है, जिस बैलके सींग अच्छे हों बलवान हो बोझ ले जानेमें समर्थ हो और तेज चलता हो ॥ ९ ॥

अष्टतालवृषस्यैवमूल्यंषष्टिपलंस्मृतम् ।
माहिषस्योत्तमंमूल्यंसप्तचाष्टौपलानिच ॥ १० ॥

आठ ताल (विलस्त) ऊंचाहो ऐसे बैलका मोल ६० साठ पल चांदी है. और भैंसका उत्तम मोल, सात वा आठ पल चांदी है॥ १०॥

द्वित्रिचतुःसहस्रंवामूल्यंश्रेष्ठंगजाश्वयोः ।
उष्ट्रस्यमाहिषसमंमूल्यमुत्तममीरितम् ११ ॥

हाथी और अश्वका उत्तम मोल दो तीन वा चार सहस्र पल है और ऊंटका मोल भैंसके समान उत्तम कहा है ॥ ११ ॥

योजनानांशतंगंताचैकेनाह्नाश्वउत्तमः ।
मूल्यंतस्यसुवर्णानांश्रेष्ठंपंचशतानिहि॥ १२॥

जो घोडा सौ योजन एक दिनमें चले वह उत्तम होता है उसका उत्तम मोल पांच शत ५०० सुवर्ण होता है ॥१२ ॥

त्रिंशद्योजनगंतावैउष्ट्रःश्रेष्ठस्तुतस्यवै ।
पलानांतुशतंमूल्यंराजतंपरिकीर्तितम् ॥ १३ ॥

तीन योजन चलनेवाला ऊंट उत्तम होता है उसका उत्तम मोल चांदीके सौ पल कहा है ॥ १३ ॥

चतुर्माषमितंस्वर्णंनिष्कइत्यभिधीयते ।
पंचरक्तिमितोमाषोगजमौल्येप्रकीर्तितः ॥

चार माशे सोनेको निष्क कहते हैं हाथीके मोलमें पांच रत्तीका मासा कहा है ॥ १४ ॥

रत्नभूतंतुतत्तत्स्याद्यद्यदप्रतिमंभुवि ।
यथादेशंयथाकालंमूल्यंसर्वस्यकल्पयेत् १५ ॥

जो २ वस्तु पृथ्वीपर अप्रतिम (नायाब) हो वह सब रत्नरूप है और देश वा समयके अनुसार सबके मोलकी कल्पना कर ले ॥१५॥

नमूल्यंगुणहीनस्यव्यवहाराक्षमस्यच ।
नीचमध्योत्तमत्वंचसर्वस्मिन्मूल्यकल्पने॥

जो वस्तु गुणसे हीन वा व्यवहारके अयोग्य हो उसका कुछ मोल नहीं, सब जगह मूल्यकी कल्पनामें नीच मध्यम उत्तमता है॥१६

चिंतनीयंबुधैर्लोकाद्वस्तुजातस्यसर्वदा ।
विक्रेतृक्रेतृतोराजभागःशुल्कमुदाहृतम्॥१७॥

बुद्धिमान् मनुष्य लोकसे वस्तुओंके मूल्यकी सदैव चिन्ता करै वेचनेवाले और लेनेवालेसे जो राजभाग लिया जाय उसको शुल्क कहते हैं ॥ १७ ॥

शुल्कदेशाहट्टमार्गाःकरसीमाःप्रकीर्तिताः।
वस्तुजातस्यैकवारंशुल्कंग्राह्यंप्रयत्नतः १८ ॥

शुल्कके देश,हट्टके मार्ग, करकी सीमा कही है और वस्तुओंका शुल्क एकबारही ग्रहण करे ॥ १८ ॥

क्वचिन्नैवासकृच्छुल्कंराष्ट्रेग्राह्यंनृपेश्छलात् ।
द्वात्रिंशांशंहरेद्राजाविक्रेतुःक्रेतुरेववा १९ ॥

और देशमेंसे वारंबार शुल्कको राजा छल से कभी ग्रहण न करे और राजा बेचनेवाले वा लेनेवालेसे ३२ बत्तीसवां भाग ग्रहण करे ॥१९ ॥

विंशांशंवाषोडशांशंशुल्कंमूलाविरोधकम् ।
नहीनसममूल्याद्धिशुल्कंविक्रेतृतोहरेत् २०

अथवा २० बीसवां वा १६ वां भाग लाभमें से ग्रहण करे । मूल धनका नाश न करे और मोलसे कम वा बराबर बेचनेवालेसे न ले ॥ २० ॥

लाभंदृष्ट्वाहरेच्छुल्कंक्रेतृतश्चसदानृपः ।
बहुमध्याल्पफलितांभुवंमानमितांसदा २१

राजा लाभको देखकर खरीदने वालेसे शुल्क ले और अधिक मध्यम अल्पफलको पृथ्वीमें प्रमाणसे सदैव ॥ २१ ॥

ज्ञात्वापूर्वंभागमिच्छुःपश्चाद्भागंविकल्पयेत् ।
हरेच्चकर्षकाद्भागंयथानष्टोभवेन्नसः ॥ २२ ॥

पहिले जानकर भागका अभिलाषी राजा पीछेसे भागकी कल्पना करे और किसानसे ऐसा भाग ले जिससे किसान न बिगडे ॥२२॥

मालाकारइवग्राह्योभागोनांगारकारवत् ।
बहुमध्याल्पफलतस्तारतम्यंविमृश्यच ॥२३॥

राजा मालीके समान भागको ले कोयले करनेवालेके समान न ले और पहिले बहुत मध्यम अल्प फलकी न्यूनाधिकताको विचारले ॥ २३ ॥

राजभागादिव्ययतोद्विगुणंलभ्यतेयतः ।
कृषिकृत्यंतुतच्छ्रेष्ठंतन्न्यूनंदुःखदंनृणाम् ॥

जिस खेतीमें राजाका भाग और खर्चसे दूना लाभ हो वह श्रेष्ठ और उससे न्यून मनुष्योंको दुःखदाई होती है ॥ २४ ॥

तडागवापिकाकूपमातृकादेवमातृकात् ।
देशान्नदीमातृकात्तुराजानुक्रमतःसदा ॥२५॥

जिन देशोंमें तलाव, बावडी, कूप, नदी बहुत हों उनमेंसे क्रमसे सदैव ॥ २५ ॥

तृतीयांशंचतुर्थांशमर्धांशंतुहरेत्फलम् ।
षष्ठांशमूषरात्तद्वत्पाषाणादिसमाकुलात् ॥

तीसरा, चौथा आधा छठा भाग राजा ग्रहण करे जो भूमि ऊपर वा पत्थरोंसे व्याकुल (युक्त) हो उससे छठा भाग ग्रहण करे ॥ २६ ॥

राजभागस्तुरजतशतकर्षमितोयतः ।
कर्षकाल्लभ्यतेतस्मैविंशांशमुत्सृजेन्नृपः ॥

जिस भूमिमें १०० कर्ष चांदीके पैदा हों उसमें किसानके २० वां भाग राजा छोड दे ॥ २७ ॥

स्वर्णादथचरजतात्तृतीयांशंचताम्रतः ।
चतुर्थांशंतुषष्ठांशंलोहाद्वंगाच्चसीसकात् ॥२८॥

सोने और चांदीसे तीसरा भाग, तांबेसे चौथा लोहा वंग सीसेसे छठा भाग ग्रहण करे ॥ २८ ॥

रत्नार्धंचैवक्षारार्धंखनिजाद्व्ययशेषतः ।
लाभाधिक्यंकर्षकादेर्यथादृष्ट्वाहरेत्फलम् ॥

रत्न और खार (लवणादि) इनका आधा खर्चसे बचाकर ग्रहण करे और किसानके अधिक लाभको देखकर करले ॥ २९ ॥

त्रिधावापंचधाकृत्वासप्तधादशधापिवा ।
तृणकाष्ठादिहरकाद्विंशत्यंशंहरेत्फलम् ॥३०॥

तीन, पांच, सात वा दश-भाग करके भूमिसे कर ले,तृण काष्ठ आदिके बेचने वालों से बीसवां भाग कर ले ॥ ३० ॥

अजाविगोमहिष्यश्ववृद्धितोष्टांशमाहरेत् ।
महिष्यजाविगोदुग्धात्षोडशांशंहरेन्नृपः ३१॥

बकरी, भेड, गौ, भैंस इनकी वृद्धिसे आठवां भाग ले और इनके दूधमेंसे राजा सोलहवां भाग ले ॥ ३१ ॥

कारुशिल्पिगणात्पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत् ।
तस्य वृद्ध्यै तडागं वा वापिकां कृत्रिमां नदीम् ॥

कारीगर शिल्पी इनके समूहसे पक्षमें एक दिन काम कराले और ये बहुत हों तलाव बावडी, कृत्रिम नदी (नहर) इनको ॥ ३२ ॥

कुर्वन्त्यन्यं तद्विधं वा कर्षन्त्यभिनवां भुवम् ।
तद्व्ययद्विगुणं यावत्तेभ्यो भागमाहरेत् ॥ ३३ ॥

बनाते हों या अन्य ऐसाही काम करते हों अथवा नई भूमिको खोदते हों तो उनसे तबतक कर न ले जबतक उनके खर्चसे दूना लाभ हो ॥ ३३ ॥

भूविभागं भृतिशुल्कं वृद्धिमुत्कोचकं करम् ।
सद्य एव हरेत्सर्वं न तु कालविलम्बनैः ॥ ३४ ॥

भूमिका भाग, भृतिका शुल्क, व्याज उत्कोच (रिशवत) इनके करको उसीसमय ले विलम्ब न करे ॥ ३४ ॥

दद्यात्प्रतिकर्षकाय भागपत्रं सचिह्नितम् ।
नियम्य ग्रामभूभागमेकस्माद्धनिकाद्धरेत् ॥

औ किसानको मोहर लगाकर करका पत्र (रसीद) दे ग्रामकी भूमिके करको नियत करके एक धनी (चौधरी) से ले ॥ ३५ ॥

गृहीत्वा तत्प्रतिभुवं धनं प्राक् तत्सुमन्तुना ।
विभागशो गृहीत्वापि मासि मासि ऋतौ ऋतौ ॥
षोडशद्वादशदशाष्टांशतो वाधिकारिणः ।
स्वांशात्षष्ठांशभागेन ग्रामपान्सन्नियोजयेत् ॥

और उस धनीके प्रतिभू जामिन को पहिले ग्रहण करले और जिसके पास उसकी बराबर धनहो उसे प्रतिभू न करे और महीनेरवा ऋतु २में विभा गसे ग्रहण करके १६, १२, १०, ८, अधिकारीनियतकरे अपने अंशमेंसेछठे भागसे ग्रामके अधिपतिको नियुक्त करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

गवादिदुग्धान्न फलं कुटुंबार्थान्न हरेन्नृपः ।
उपभोगे धान्यवस्त्रक्रेतृतो नाहरेत्फलम् ॥ ३८ ॥

गौ आदिका जो दूध कुटुम्बकेही लायक हो उससे और जो उपभोगके लिये अन्न वस्त्र खरीदे उससे राजा कर न ले ॥ ३८ ॥

वार्धुषिकान्नकौसीदाद्द्वात्रिंशांशं हरेन्नृपः ।
गृहाद्याधारभूशुल्कं कृष्टभूमिरिवाहरेत् ३९

व्यापारी और व्याज लेनेवालेसे ३२ वां भाग राजा ले जिस भूमिमें घर हों उसका कर (डयूटी) भूमिके समान ग्रहण करे ॥ ३९ ॥

तथा चापणिकेभ्यस्तु पण्यभूशुल्कमाहरेत् ।
मार्गसंस्काररक्षार्थं मार्गगेभ्यो हरेत्फलम् ॥

और हाटवालोंसे हाटकी भूमिके करको ले और मार्ग चलनेवालोंसे मार्ग (सडक) की रक्षाके लिये कर ले ॥ ४० ॥

सर्वतः फलभुग्भूत्वा दासवत्स्यात्तु रक्षणे ।
इति कोशप्रकरणं समासात्कथितं किल ४१ ॥

सबसे कर लेकर दासके समान रक्षा करे यह कोशका प्रकरण संक्षेपसे कहा ॥ ४१ ॥

अथ मिश्रे तृतीयं तु राष्ट्रं वक्ष्ये समासतः ।
स्थावरं जंगमं वापि राष्ट्रशब्देन गीयते ४२ ॥

अब मिश्र प्रकरणमें राष्ट्र (देश)को संक्षेपसे कहते हैं, स्थावर और जंगम भेदसे दो प्रकारका कहा है ॥ ४२ ॥

यस्याधीनं भवेद्यावत्तद्राष्ट्रं तस्य वै भवेत् ।
कुबेरता शतगुणाधिका सर्वगुणात्ततः ४३ ॥

जितना देश जिसके आधीन हो वह राज्य उसीका होताहै और उससे सौगुनी अधिक सब गुणवाली कुबेरता होती है ॥ ४३ ॥

ईशता चाधिकतरा सा नाल्पतपसः फलम् ।
सदा व्यतिपृथिव्यां तु नान्यो देवो यतः स्मृतः ॥

ईशता (राजहोना) उससभी अधिक है और वह अल्प तपका फल नहीं । वह पृथ्वीमें क्रीडा करता है इससे राजासे अन्य पृथ्वीमें देवता नहीं कहा ॥ ४४ ॥

तस्याश्रितो भवेल्लोकस्तद्वदाचरति प्रजा ।
भुंक्ते राष्ट्रफलं सम्यग्गतो राष्ट्रकृतं त्वघम् ॥ ४५ ॥

जगत् उसके आश्रय होता है, प्रजा उसीके समान आचरण करती है राजा, देशके फल (पुण्य) और पापको भोगता है ॥ ४५ ॥

स्वस्वधर्मपरोलोकोयस्यराष्ट्रेप्रवर्तते ।
धर्मनीतिपरोराजाचिरंकीर्तिंसचाश्नुते ॥४६॥

जिसके राज्यमें प्रजा अपने २ धर्ममें तत्पर रहे धर्म और नीतिमें तत्पर राजा चिरकाल तक कीर्तिको भोगता है ॥ ४६ ॥

भूमौयावद्यस्यकीर्तिस्तावत्स्वर्गेसतिष्ठति ।
अकीर्तिरेवनरकोनान्योस्तिनरकोदिवि ॥

जिसकी कीर्ति जबतक भूमिमें टिकती है तबतक वह स्वर्गमें रहता है अकीर्ति ही नरक है दूसरा नरक परलोकमें नहीं ॥ ४७ ॥

नरदेहाद्विनात्वन्योदेहोनरकएवसः ।
महत्पापफलंविद्याद्व्याधिव्याधिस्वरूपकम् ॥

मनुष्यके देहसे जो अन्यदेह वही नरक है क्योंकि वह आधी और व्याधीरूप महापापका फल होता है ॥ ४८ ॥

स्वयंधर्मपरोभूत्वाधर्मेसंस्थापयेत्प्रजाः ।
प्रमाणभूतंधर्मिष्ठमुपसर्पंत्यतःप्रजाः ॥४९ ॥

स्वयं धर्ममें तत्पर होकर प्रजाको धर्ममें टिकावै प्रामाणिक और धर्मिष्ठ राजाके समीप सब प्रजा प्राप्त होती हैं ॥ ४९ ॥

देशधर्माजातिधर्माःकुलधर्माःसनातनाः
मुनिप्रोक्ताश्चयेधर्माःप्राचीनानूतनाश्चये ५०॥

देशके धर्म, जातिके धर्म और सनातन कुलके धर्म जो मुनियोंने कहे हैं तथा जो प्राचीन और नवीन धर्म हैं ॥ ५० ॥

तेराष्ट्रगुप्त्यैसंधार्याज्ञात्वायत्नेनसन्नृपैः ।
धर्मसंस्थापनाद्राजाश्रियंकीर्तिंप्रविंदति ५१॥

वे जानकर यत्नसे उत्तम राजा देशरक्षाके लिये धारण करे । धर्मकी स्थापनासे राजाको लक्ष्मी और कीर्ति मिलती है ॥ ५१ ॥

चतुर्धाभेदिताजातिर्ब्रह्मणाकर्मभिःपुरा ॥
तत्तत्सांकर्यसांकर्यात्प्रतिलोमानुलोमतः ॥

प्रथम कर्मोंसे ब्रह्माने चार प्रकार जातिका विभाग किया उनके प्रतिलोम, अनुलोम, संकर और संकरोंके संकरसे ॥ ५२ ॥

जात्यानंत्यंतुसंप्राप्तंतद्वक्तुंनैवशक्यते ।
मन्यंतेजातिभेदंयेमनुष्याणांतुजन्मना ५३॥

अनंत जाती होगई जिनको कह नहीं सकते जो मनुष्योंके जन्मसे जाति भेदको मानते हैं ॥ ५३ ॥

तएवाहिविजानंतिपार्थक्यंनामकर्मभिः ।
जरायुजांडजाःस्वेदोद्भिज्जाजातिसुसंग्रहात् ॥

वेही पृथक् २ नाम कर्मसे जाति भेदको जानते हैं । जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज जाति संग्रहसे होती है ॥५४ ॥

उत्तमोनीचसंसर्गाद्भवेन्नीचस्तुजन्मना ।
नीचोभवेन्नोत्तमस्तुसंसर्गाद्वापिजन्मना ५५॥

जो जन्मसे उत्तम है वह नीचके संसर्गसे नीच हो जाता है और जो जन्मसे नीच है वह संसर्गसे उत्तम कभी नहीं होता ॥ ५५ ॥

कर्मणोत्तमनीचत्वंकालतस्तुभवेद्गुणैः ।
विद्याकलाश्रयेणैवतन्नामाजातिरुच्यते ५६॥

गुण और समयसे कर्मके द्वारा उत्तम नीच होता है विद्या और कलाके आश्रयसे उसी नामकी जाति कहाती है ॥ ५६ ॥

इज्याध्ययनदानानिकर्माणितुद्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहोध्यापनंचयाजनंब्राह्मणेधिकम् ॥

यज्ञ करना, पढना, दानदेना ये द्विजातियोंके कर्म हैं और ब्राह्मणके ये तीन कर्म अधिक हैं प्रतिग्रह, यज्ञकराना और पढ़ाना ५७

सद्रक्षणंदुष्टनाशःस्वांशादानंतुक्षात्रिये ।
कृषिगोगुप्तिवाणिज्यमधिकंतुविशांस्मृतम् ॥

सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंका नाश, अपने भागका लेना ये काम क्षत्रियके और खेती गौओंकी रक्षा व्यवहार वे वैश्योंके अधिक कहे हैं ॥ ५८ ॥

दानंसेवैवशूद्रादेर्नीचकर्मप्रकीर्तितम् ।
क्रियाभेदैस्तुसर्वेषांभृतिवृत्तिरनिंदिताम् ॥

शूद्र आदिका कर्म दान और सेवा ही नीच कर्म कहा है और कामके भेदसे भृति (नौकरी) सबकीही निन्दासे रहित वृत्ति है ॥ ५९ ॥

सीरभेदैःकृषिःप्रोक्तामन्वाद्यैर्ब्राह्मणादिषु ।
ब्राह्मणैःषोडशगवंचतुरूनंयथापरैः ॥ ६० ॥

मनु आदि ऋषियोंने ब्राह्मण आदिकोंके लिये सीर (हल) के भेदसे खेती कही है कि ब्राह्मण एक हलपर सोलह बैल और अन्य वर्ण चार चार बैल कम बैलोंको रक्खें ॥ ६० ॥

द्विगवंवांत्यजैःसीरंदृष्ट्वाभूमार्दवंतथा ।
ब्राह्मणेनविनान्येषांभिक्षावृत्तिर्विगर्हिता ॥

अन्त्यज दो बैल रक्खे अथवा जैसी भूमि कोमल हो वैसेही बैलोंकी संख्या कम रक्खे और ब्राह्मणके विना अन्य वर्णोंको भिक्षाकी वृत्ति निंदित है ॥ ६१ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्चविधिचोदितैः ।
वेदःकृत्स्नोधिगंतव्यःसरहस्योद्विजन्मना ६२ ।

तपोंके भेदोंसे, शास्त्रोक्त विविध व्रतोंसे रहस्यों सहित सम्पूर्ण वेदोंको द्विजाति पढे ॥ ६२ ॥

योधीतविद्यःसकलःससर्वेषांगुरुर्भवेत् ।
नचजात्यानधीतोयोगुरुर्भवितुमर्हति ॥ ६३ ॥

जिसने सम्पूर्ण विद्या पढी हो वह सबका गुरु होता है जो पढा हुआ न हो वह जातिसे गुरु नहीं होता ॥ ६३ ॥

विद्याह्यनंताश्चकलाःसंख्यातुंनैवशक्यते ।
विद्यामुख्याश्चद्वात्रिंशच्चतुःषष्टिकलाःस्मृताः

विद्या और कला अनन्त हैं वे गिननेको शक्य नहीं हैं और मुख्य विद्या बत्तीस ३२ हैं और चौंसठ कला मुख्य हैं ॥ ६४ ॥

यद्यत्स्याद्वाचिकंसम्यक्कर्मविद्याभिसंज्ञकम् ।
शक्तोमूकोपियत्कर्तुंकलासंज्ञंतुतत्स्मृतम् ६५

जो जो कर्म वाणीका विषय है उसका ही नाम विद्या है और जिसको मूक (गूंगा) भी करसके उसको कला कहते हैं ॥ ६५ ॥

उक्तंसंक्षेपतोलक्ष्मविशिष्टंपृथगुच्यते ।
विद्यानांचकलानांचनामानितुपृथक्पृथक् ॥

संक्षेपसे यह लक्षण कहा अब पृथक् २ विशेष लक्षण कहते हैं, विद्या और कलाओंके पृथक् २ नाम भी कहते हैं ॥ ६६ ॥

ऋग्यजुःसामचाथर्वावेदाआयुर्धनुःक्रमात् ।
गांधर्वश्चैवतंत्राणिउपवेदाःप्रकीर्तिताः ६७

ऋक्, यजु, साम, अथर्व ये चार वेद हैं आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और तन्त्र ये चार उपवेद कहे हैं ॥ ६७ ॥

शिक्षाव्याकरणंकल्पोनिरुक्तंज्योतिषंतथा ।
छंदःषडंगानीमानिवेदानांकीर्तितानिहि ॥

व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द ये छः वेदोंके अंग कहे हैं ॥ ६८ ॥

मीमांसातर्कसांख्यानिवेदांतोयोगएवच ।
इतिहासाःपुराणानिस्मृतयोनास्तिकंमतम् ॥

मीमांसा, तर्क (न्याय), सांख्य, वेदान्त, योग, इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकोंका मत ॥ ६९ ॥

अर्थशास्त्रंकामशास्त्रंतथाशिल्पमलंकृतिः ।
काव्यानिदेशभाषावसरोक्तिर्यावनंमतम् ॥

अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकार, काव्य, देशभाषा, अवसरकी उक्ति, यवनोंका मत ॥ ७० ॥

देशादिधर्माद्वात्रिंशदेताविद्याभिसंज्ञिताः ।
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामप्रोक्तमृगादिषु ॥ ७१ ॥

बत्तीस देश आदिके धर्म इनका विद्या नाम है और ऋक् आदिकोंमें मन्त्र और ब्राह्मणका भी वेद नाम कहा है ॥ ७१ ॥

जपहोमार्चनंयस्यदेवताप्रीतिदंभवेत् ।
उच्चारान्मन्त्रसंज्ञंतद्विनियोगिचब्राह्मणम् ॥

जिसके उच्चारणसे जप होम पूजन देवताको प्रसन्न करै उसको मन्त्र कहते हैं और जिसमें विनियोग हो उसे ब्राह्मण कहते हैं ॥ ७२ ॥

ऋग्रूपायत्रयेमन्त्राःपादशोर्धर्चशोपिवा ।
येषांहोत्रंसऋग्भागःसमाख्यानंचयत्रवा ॥

ऋग्वेदरूप जो मन्त्र है चाहै वे पाद हों चाहै आधी ऋचाके हों जिनसे होताके करनेका कर्म होता है अथवा जिसमें इतिहास हों वह ऋग्वेदका भाग है ॥ ७३ ॥

अश्लिष्टपठितामंत्रावृत्तगीतविवर्जिताः ।
आध्वर्यवंयत्रकर्मत्रिगुणंयत्रपाठनम् ॥ ७४ ॥

जो मन्त्र भिन्न भिन्न पढे हैं और जिनमें वृत्तान्त और गीत न हों और जिसमें अध्वर्युका कर्म्म हो और जो तिगुना पढा जाय ७४॥

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदयजुर्वेदःसउच्यते ।
यज्ञेर्थेंस्त्रपश्रसार्दूर्ध्वगीततत्सामसंज्ञकम् ॥७५ ॥

वह मन्त्र और ब्राह्मणरूप यजुर्वेद कहा है, जिसमें यज्ञके बीच शस्त्र आदिका ऊँचे स्वरसे गाना है उसको सामवेद कहते हैं॥७५॥

अथर्वांगिरसोनामह्युपास्योपासनात्मकः ।
इतिवेदचतुष्कंतुह्युद्दिष्टंचसमासतः ॥ ७६ ॥

जिसमें उपासना (पूजा) और उपास्य (पूजाके योग्य) वर्णन हो वह अथर्व और अंगिरा है ये संक्षेपसे चारों वेद कहे ॥ ७६ ॥

विंदत्यायुर्वेत्तिसम्यगाकृत्योषधिहेतुतः ।
यस्मिन्ऋग्वेदोपवेदःसचायुर्वेदसंज्ञकः ॥८७॥

जिसमें आकृति और हेतुसे भली प्रकार अवस्थाका ज्ञान हो वह ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद कहाता है ॥ ७७ ॥

युद्धशस्त्रास्त्रकुशलोरचनाकुशलोभवेत् ।
यजुर्वेदोपवेदोऽयंधनुर्वेदस्तुयेनसः ॥ ७८ ॥

जिससे युद्ध शस्त्र अस्त्र रचना आदिमें कुशल हो वह यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद होता है ॥ ७८ ॥

स्वरैरुदात्तादिधर्मैस्तंत्रीकंठोत्थितैःसदा ।
सतालैर्गानिविज्ञानंगांधर्वोवेदएवसः ॥ ७९ ॥

स्वर और उदात्त आदि स्वरोंके धर्मोंसे जो वीणा वा कण्ठसे निकलते हैं और ताल सहित हैं इनसे जिसमें गानेका ज्ञान हो वह गांधर्व वेद है ॥ ७९ ॥

विविधोपास्यमन्त्राणांप्रयोगास्तुविभेदतः।
कथिताःसोपसंहारास्तद्धर्मनियमैश्चषट् ॥
अथर्वणांचोपवेदस्तन्त्ररूपःसएवहि ॥

जिसमें अनेक प्रकारकी पूजाके मन्त्रोंके प्रयोग और उनकी समाप्ति धर्म नियमों सहित कही हो वे छः अथर्ववेदका उपवेद तन्त्र रूप है ॥ ८० ॥

स्वरतःकालतःस्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः ।
सवनाद्यैश्चसाशिक्षावर्णानांपाठशिक्षणात् ॥

जिससे स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदानसे और सवन आदिसे वर्णोंके पढने की शिक्षा हो वह शिक्षा होती है । ॥ ८१ ॥

प्रयोगोयत्रयज्ञानामुक्तोब्राह्मणशेषतः ।
श्रौतकल्पःसविज्ञेयःस्मार्तकल्पस्तथेतरः८२ ॥

जिस ब्राह्मणके शेषभागसे यज्ञोंका प्रयोग (विधान) हो, वह श्रौतकल्प जानना और उससे भिन्न स्मार्त कल्प होता है ॥ ८२ ॥

व्याकृतःप्रत्ययाद्यैश्चधातुसंधिसमासतः ।
शब्दापशब्दाव्याकरणंएकद्विबहुलिंगतः ॥

जिसमें प्रत्यक्ष आदि धातु सन्धि समाससे शब्द और अपशब्दका व्याख्यान हो और एक दो बहुत लिंगके भेदसे शब्दोंका वर्णन हो वह व्याकरण कहा है ॥ ८३ ॥

शब्दनिर्वचनंयत्रवाक्यार्थैकार्थसंग्रहः ॥
निरुक्तंतत्समाख्यानाद्वेदांगंश्रौतसंज्ञकम् ८४

जिसमें वाक्यार्थोंसे एक अर्थका संग्रह हो वह श्रौत नामका वेदांग कहा है ॥ ८४ ॥

नक्षत्रग्रहगमनैःकालोयेनविधीयते ॥ ८५ ॥
संहिताभिश्चहोराभिर्गणितंज्योतिषंहितत् ।

जिसमें नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिसे समयकी विधि हो संहिता और होरासे गणित हो वह ज्योतिष होता है ॥ ८५ ॥

म्यरस्तजभ्नगैर्लांतैःपद्यान्यत्रप्रमाणतः ८६ ॥
कल्पितैश्छंदःशास्त्रंतद्वेदानांपादरूपधृक् ।

और जहां मगण, यगण, रगण, सगण तगण, जगण, भगण, नगण, गुरु और लघुके प्रमाणसे पद्य (श्लोक) हों वह कलरूप छन्दःशास्त्र वेदोंका अंग है ॥ ८६ ॥

यत्राव्यवस्थितावार्थकल्पनाविधिभेदतः ॥
मीमांसावेदवाक्यानांसैवन्यायश्चकीर्तितः ।

जहां अर्थकी कल्पना विधिके भेदसे निश्चितहो वह मीमांसा और वेद वाक्योंका न्याय कहा है ॥ ८७ ॥

भावाभावपदार्थानांप्रत्यक्षादिप्रमाणतः॥८८॥
सविवेकोयत्रतर्कःकणादादिमतंच ।

भाव और अभावरूप पदार्थोंका प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे विवेक सहित वर्णन हो वह कणाद आदिका मत तर्कशास्त्र है ॥ ८८ ॥

पुरुषोऽष्टौप्रकृतयोविकाराःषोडशेतिच ॥८९॥
तत्त्वादिसंख्यावैशिष्ट्यात्सांख्यमित्यभिधीयते ।

जिसमें पुरुष (ईश्वर) आठ प्रकृति और सोलह विकार और तत्व आदिकोंकी संख्या युक्त होनेसे वह सांख्य कहाता है ॥ ८९ ॥

ब्रह्मैकमद्वितीयंस्यान्नानानेहास्तिकिंचन ॥
मायिकंसर्वमज्ञानाद्भातिवेदांतिनांमतम् ।

ब्रह्म ही एक अद्वितीय है और नाना (माया) कुछ भी नहीं है सम्पूर्ण अज्ञानसे मायारूपही भासता है यह वेदांतियोंका मत है ॥ ९० ॥

चित्तवृत्तिनिरोधस्तुप्राणसंयमनादिभिः॥९१॥
तद्योगशास्त्रंविज्ञेयंयस्मिन्ध्यानसमाधितः ।

जिसमें प्राणोंके संयम आदिसे चित्तकी वृत्तिका निरोध वा ध्यान समाधिसे चित्तवृत्तिका अवरोध हो वह योगशास्त्र कहाता है ॥ ९१ ॥

प्राग्वृत्तकथनंचैकराजकृत्यमिषादितः ॥९२॥
यस्मिन्सइतिहासः स्यात्पुरावृत्तः सएवहि ॥

राजाके कर्म आदिके मिषसे जिसमें प्राचीन वृत्तांतका कथन हो ॥ ९२ ॥ वह इतिहास और पुरा वृत्त कहा है ॥

सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवंशोमन्वंतराणिच ॥ ९३ ॥
वंशानुचरितंयस्मिन्पुराणंतद्विकीर्तितम् ।

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वंतर ॥ ९३ ॥ और वंशोंके चरित्रोंका वर्णन हो वह पुराण कहा है ॥

वर्णादिधर्मस्मरणंयत्रवेदाविरोधकम्॥ ९४ ॥
कीर्तनंचार्थशास्त्राणांस्मृतिःसाचप्रकीर्तिता ।

और जिसमें वेदके अनुकूल वर्ण आदिकोंके धर्मका स्मरण हो ॥ ९४ ॥ और अर्थशास्त्रका जिसमें कीर्तन हो वह स्मृति कही है ॥

युक्तिर्बलवतीयत्रसर्वंस्वाभाविकंमतम् ॥
कस्यापिनेश्वरःकर्तानवेदोनास्तिकंमतम् ।

और जिसमें युक्ति बलवान् हो और अन्य सब वर्णन स्वाभाविक हो ॥ ९५ ॥ ईश्वर किसीकाभी कर्ता नहीं है और न वेद है, वह नास्तिक मत है ॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनराजवृत्तंहिशासनम्॥९६॥
सुयुक्त्यार्थार्जनंयत्रह्यर्थशास्त्रंतदुच्यते ।

श्रुति स्मृतिके अनुकूल जिसमें राजाके वृत्तान्तकी शिक्षा हो ॥ ९६ ॥ और युक्तिसे धनके संचयका वर्णन हो वह अर्थशास्त्र कहाता है।

शशादिभेदतः पुंसामनुकूलादिभेदतः ॥
पद्मिन्यादिप्रभेदेनस्त्रीणांस्वीयादिभेदतः ९७॥
तत्कामशास्त्रंसत्त्वादिलक्ष्मयत्रास्तिचोभयोः ।

जिसमें शश आदिके भेद और अनुकूल आदि भेदसे पुरुषोंके ॥ ९७ ॥ और पद्मिनी आदिभेद और स्वीय आदि भेदसे स्त्रियोंके लक्षण और सत्व आदि दोनोंके लक्षणोंका वर्णन हो वह कामशास्त्र कहाहै ॥ ९८ ॥

प्रासादप्रतिमारामगृहवाप्यादिसत्कृतिः ।
कथितायत्रतच्छिल्पशास्त्रमुक्तंमहर्षिभिः ९९॥

जिसमें प्रासाद, (मंदिर) प्रतिमा, आराम, (बगीचा) घर और बावडी आदिका बनाना कहाहो वह बडे २ ऋषियोंने शिल्पशास्त्र कहा है॥ ९९ ॥

समन्यूनाधिकत्वेनसारूप्यादिप्रभेदतः ।
अन्योन्यगुणभूषादिवर्ण्यतेलंकृतिश्चसा२००

सम, न्यून, अधिक आदिसे और सारूप्य आदिके भेदसे जहां परस्परके गुण और भूषा (शोभा) आदिका वर्णन हो वह अलंकारशास्त्र कहाता है॥ २०० ॥

सरसालंकृतादुष्टशब्दार्थंकाव्यमेवतत् ।
विलक्षणचमत्कारवीजंपद्यादिभेदतः ॥ १ ॥

जिसमें रसों सहित अलंकार और शब्दोंका शुद्ध अर्थ हो और पद्य (श्लोक)आदिके भेदसे विलक्षण चमत्कारका बीज हो वह काव्य कहाता है ॥ १ ॥

लोकसंकेततोर्थानांसुग्रहावाक्तुदैशिकी ।
विनाकौशिकशास्त्रीयसंकेतैः कार्यसाधिका ॥

जिसमें जगत्की रीतिसे देशकी वाणीका ज्ञान भली प्रकार हो और कोश और शास्त्रके संकेतोंके विना कार्योंकी सिद्धि जिससे हो २॥

यथाकालोचितावाग्यावसरोक्तिश्चसास्मृता ।
ईश्वरः कारणंयत्रादृश्योस्तिजगतः सदा॥ ३॥

समयके अनुसार जो वाणी उसे अवसरोक्ति कहते हैं, जिसमें जगत्का कारण ईश्वर सदैव अदृश्य माना है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतीविनाधर्माधर्मौस्तस्तच्चयावनम्।
श्रुत्यादिभिन्नधर्मोस्तियत्रतद्यावनंमतम् ॥ ४ ॥

श्रुति और स्मृतिके विना धर्म अधर्मका वर्णन हो वह यावन (यवनोंका शास्त्र फारसी) माना है और श्रुति आदिसे भिन्न धर्म जिसमें हो वह यवनोंका मत है ॥ ४ ॥

कल्पितश्रुतिमूलोवामूलेर्लोकैर्धृतःसदा ।
देशादिधर्मः सज्ञेयोदेशेदेशेकुलेकुले ॥ ५ ॥

कल्पित हो वा श्रुतिके अनुसार हो और जिसको लोकाने मूल (सत्य) मान रक्खा हो यह देश आदिका धर्म कहा और देश २ और कुल २ में ॥ ५ ॥

पृथक्पृथक्तुविद्यानांलक्षणंसंप्रकाशितम् ।
कलानांनपृथङ्नामलक्ष्मचास्तीहकेवलम् ॥

भिन्न भिन्न होता है यह विद्याओंका लक्षण प्रकाश किया, कलाओंका पृथक् २ नाम नहीं है केवल लक्षण है ॥ ६ ॥

पृथक्पृथक्क्रियाभिर्हिकलाभेदस्तुजायते ।
यांयांकलांसमाश्रित्यतन्नाम्नाजातिरुच्यते ॥

भिन्न भिन्न कर्मोंसे क्रियाका भेद होता है और जिस जिस कलाका आश्रय हो उसी २ नामसे जाति कहाती है ॥ ७ ॥

हावभावादिसंयुक्तंनर्तनंतुकलास्मृता ।
अनेकवाद्यविकृतौज्ञानंतद्वादनेकला ॥ ८ ॥

हाव भाव आदि सहित जो नृत्य उसे कला कहते हैं और अनेक प्रकारके बाजोंके विकारका ज्ञान हो वहां उसके बजानेमें कला होती है ॥ ८ ॥

अनेकरूपाविर्भावकृतिज्ञानंकलास्मृता ।
वस्त्रालंकारसंधानंस्त्रीपुंसोश्चकलास्मृता ॥९॥

अनेक रूपोंके आविर्भाव (प्रकटता) से जिसमें कार्यौंका ज्ञान हो वह कला कही है स्त्री और पुरुषके वस्त्र और भूषणोंके सन्धान (धारण) को भी कला कहते हैं ॥ ९ ॥

शय्यास्तरणसंयोगेपुष्पादिग्रथनंकला ।
द्यूताद्यनेकक्रीडाभीरंजनंतुकलास्मृता ॥१०॥

शय्या और बिछौनेपर पुष्प आदिके गूँथनेको कला कहते हैं और द्यूत आदि अनेक क्रीडासे जो रंजन उसे कला कहते हैं ॥१०॥

अनेकाशनसंधानैरतेर्ज्ञानंकलास्मृता ।
कलासप्तकमेतद्धिगांधर्वेसमुदाहृतम् ११ ॥

अनेक आसनोंसे रति (मैथुन) के सन्धानके ज्ञानको कला कहते हैं, ये सात कला गांधर्व वेदमें कही हैं ॥ ११ ॥

मकरंदासवादीनांमद्यादीनांकृतिः कला ।
शल्यमूढाहृतौज्ञानंशिराव्रणव्यधेकला १२ ॥

मकरन्द और आसव आदि मद्योंके आकारको कला कहते हैं, छिपे हुए शल्य (घाव के निकालनेके ज्ञानको और नसोंके बांधनेको कला कहते हैं ॥ १२ ॥

हीनाधिरससंयोगान्नादिसंपाचनंकला ।
वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला॥१३॥

हीन और अधिक रसके संयोगसे अन्न आदिके पचानेको कला कहते हैं और वृक्ष आदिके कलम लगाने और पालनको कला कहते हैं ॥ १३ ॥

पाषाणादिद्रुतिर्धातोस्तद्भस्मकरणेकला।
यावदिक्षुविकाराणांकृतिज्ञानंकलास्मृता॥

पत्थर आदि धातुओंको बनाना और उनकी भस्म करनेकी कला और सम्पूर्ण इक्षुओंके गुड आदि विकारोंको जानना कला कही है॥ १४॥

धात्वौषधीनांसंयोगक्रियाज्ञानंकलास्मृता।
धातुसांकर्यपार्थक्यकरणंतुकलास्मृता॥१५॥

धातु औषधि इनके संयोगकी क्रियाका ज्ञान कला है और मिलीहुई धातुओंका पृथक् करना कला कही है॥ १५॥

संयोगापूर्वविज्ञानंधात्वादीनांकलास्मृता।
क्षारनिष्कासनज्ञानंकलासंज्ञंतुतत्स्मृतम् १६॥

धातु आदिके अपूर्व संयोगके ज्ञानको कला और क्षार आदिके निकालनेके ज्ञानको कला कहते हैं॥ १६॥

कलादशकमेतद्धिह्यायुर्वेदागमेषुच।
शस्त्रसंधानविक्षेपपदादिन्यासतःकला॥१७॥

ये दश कला आयुर्वेदके आगमोंमें होती हैं, और शस्त्रको लगाना और चरण आदिके न्यास(रखनेसे) फेकनेको कला कहते हैं॥१७॥

संध्याघाताकृष्टिभेदैर्मल्लयुद्धंकलास्मृता।
कलाभिर्लक्षितेदेशेयन्त्राद्यस्त्रनिपातनम् १८॥

सन्धि (मेल) आघात (पटकना) और आकृष्टि (खींचने) के भेदसे मल्लयुद्धको और कलाओंसे जाने हुए देशमें अस्त्रके निपातन (गेरने) को कला कहते हैं॥ १८॥

वाद्यसंकेततोव्यूहरचनादिकलास्मृता।
गजाश्वरथगत्यादियुद्धसंयोजनंकला १९॥

बाजेके संकेतसे व्यूह (सेना) की रचनाको कला कहते हैं और गज, अश्व, रथ आदिकी गतिके द्वारा युद्धके मेलको कला कहते हैं॥ १९॥

कलापञ्चकमेतद्धिधनुर्वेदागमेस्थितम्।
विविधासनमुद्राभिर्देवतातोषणंकला २०॥

ये पांच कला धनुर्वेदके आगम(ग्रन्थों)में स्थित हैं और अनेक प्रकारके आसन और मुद्राओंसे देवताकी प्रसन्नताको कला कहते हैं॥ २१॥

सारथ्यंचगजाश्वादेर्गतिशिक्षाकलास्मृता।
मृत्तिकाकाष्ठपाषाणधातुभांडादिसत्क्रिया॥

गज, अश्व आदिकी गति (चलने) की शिक्षा और सारथीके कामको कला कहते हैं मट्टी, काष्ठ, पत्थर, धातु इनके अच्छे२ पात्र बनानेको कला कहते हैं॥ २१॥

पृथक्कलाचतुष्कंतुचित्राद्यालेखनंकला।
तडागवापीप्रासादसमभूमिक्रियाकला २२

ये चार कला पृथक् हैं चित्र आदिके लिखनेको कला कहते हैं और तलाव बावडी प्रासाद इनकी समभूमिका जो करना उसको भी कला कहते हैं॥ २२॥

घट्याद्यनेकयंत्राणांवाद्यानांतुकृतिःकला।
हीनमध्यादिसंयोगवर्णाद्यैरञ्जनंकला २३

घटी आदिके अनेक यन्त्र और बाजोंके बनानेको कला कहते हैं और अल्प मध्य आदि वर्णों (रंगों) से रंगनेको कला कहते हैं॥ २३॥

जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैश्चक्रियाकला।
नौकारथादियानानांकृतिज्ञानंकलास्मृता२४

जल, वायु, अग्नि इनके संयोगऔर निरोधको कला कहते हैं और नाव, रथ आदि यानोंको बनानेकी रीतिको कला कहते हैं॥ २४॥

सूत्रादिरज्जुकरणविज्ञानंतुकलास्मृता।
अनेकतंतुसंयोगैःपटबंधःकलास्मृता २५॥

सूत आदिकी रज्जु करनेका जो ज्ञान उसे भी कला कहते हैं अनेक तन्तुओंके संयोगसे जो पट (कपडा) का बुनना उसको कला कहते हैं॥ २५॥

वेधादिसदसज्ज्ञानंरत्नानांचकलास्मृता।
स्वर्णादीनांतुयाथात्म्यविज्ञानंचकलास्मृता॥

रत्नोंके बींधनेमें सत् असत्का जो ज्ञान वहभी कला और सोने आदि धातुओंके यथार्थ स्वरूपका जो विज्ञान उसको कला कहते हैं॥ २६॥

कृत्रिमस्वर्णरत्नादिक्रियाज्ञानंकलास्मृता ।
स्वर्णाद्यलंकारकृतिःकालेलेपादिसत्कृतिः २७

कृत्रिम (नकली) सुवर्ण रत्न आदिकी क्रियाका जो ज्ञान उसको कला और सुवर्ण आदिके भूषणोंको बनाने और लेप आदिके भली प्रकार करनेको कला कहते हैं ॥ २७ ॥

मार्दवादिक्रियाज्ञानंचर्मणांतुकलास्मृता।
पशुचर्मांगनिर्हारक्रियाज्ञानंकलास्मृता २८

चर्म आदिकी कोमलताके ज्ञानको कला कहते हैं और पशुके चर्म और अंगके निर्हार (स्वच्छता) करनेके ज्ञानको कला कहते हैं ॥ २८ ॥

दुग्धदोहादिविज्ञानेघृतांततुकलास्मृता ।
सीवनंकंचुकादीनांविज्ञानंहिकलात्मकम् ॥

दूधके दुहने और घीके निकासने आदिके ज्ञानको कला कहते हैं और कंचुक आदिके सीनेका जो अच्छा ज्ञान उसको भी कला कहते हैं ॥ २९ ॥

बाह्वादिभिश्चतरणंकलासंज्ञंजलेस्मृतम् ।
मार्जनंगृहभांडादेर्विज्ञानंतुकलास्मृता ३०

जलमें भुजा आदिसे तरना उसको भी कला और घरके पात्र आदिके मांजनेका जो ज्ञान उसको भी कला कहते हैं ॥ ३० ॥

वस्त्रसंमार्जनंचैवक्षुरकर्मकलेह्युभे ।
तिलमांसादिस्नेहानांकलानिष्कासनेकृतिः ॥

वस्त्रोंका धोना और (क्षुरकर्म केशछेदन) ये दोनोंभी कला और तिल मांस आदिके स्नेह (तेल) आदिका जो ज्ञान उसको भी कला कहते हैं ॥ ३१ ॥

सीराद्याकर्षणज्ञानंवृक्षाद्यारोहणंकला ।
मनोनुकूलसेवायाःकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

हल चलानेका ज्ञान और वृक्षपर चढना इनको कला और स्वामीके मनके अनुकूल सेवाका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३२ ॥

वेणुतृणादिपात्राणांकृतिज्ञानंकलास्मृता ।
काचपात्रादिकरणविज्ञानंतुकलास्मृता ३३॥

बांस और तृण आदिके पात्रोंका जो ज्ञान उसको कला और कांचके पात्र करनेको कला कहते हैं ॥ ३३ ॥

संसेचनंसंहरणंजलानांतुकलास्मृता ।
लोहाभिसारशस्त्रास्त्रकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

जलोंके सींचने और निकासनेके ज्ञानको कला कहते हैं, लोहा और अभिसारके शस्त्र अस्त्रके बनानेका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३४ ॥

गजाश्ववृषभोष्ट्राणांपल्याणादिक्रियाकला ।
शिशोःसंरक्षणेज्ञानंधारणेक्रीडनेकले ३५॥

हाथी, अश्व, बैल, ऊंट इनके पल्याण आदिके करने जो ज्ञान वह कला और बालककी रक्षाके ज्ञानमें बालक धारण और क्रीडा ये दोनों कला हैं ॥ ३५ ॥

सुयुक्तताडनज्ञानमपराधिजनेकला ।
नानादेशीयवर्णानांसुसम्यग्लेखनेकला ॥

अपराधीकी ताडनाके ज्ञानको कला और नाना देशके अक्षरों को अच्छी तरह लिखनेका जो ज्ञान उसकोकला कहते हैं ॥ ३६ ॥

तांबूलरक्षादिकृतिविज्ञानंतुकलास्मृता ।
आदानमाशुकारित्वंप्रतिदानंचिरक्रिया ३७॥

पानोंकी रक्षा करनेकी जो विधि उसकोभी कला कहते हैं, सीखना और शीघ्र करना, प्रतिदान (सिखाना) और विलम्बसे करना ३७

कलासुद्वौगुणौज्ञेयौद्विकलेपरिकीर्तिते ।
चतुःषष्टिकलाह्येताःसंक्षेपेणनिदर्शिताः॥ ३८॥

यां यांकलांसमाश्रित्यतांतांकुर्यात्सएवहि ।

ये पूर्वोक्त जो कलाओंमें दो गुण हैं ये भी दो कला कही हैं,ये पूर्वोक्त चौसठ कला संक्षेपसे दिखाई ॥ ३८ ॥ जो जिस २ कलाका आश्रय ले उस २ कोही वह करै ।

ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिःक्रमात् ॥
चत्वारआश्रमाश्चैतेब्राह्मणस्यसदैवहि ।
अन्येषामंत्यहीनाश्चक्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम् ३९

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति

(संन्यासी) क्रमसे ॥ ३९ ॥ ये चार आश्रम ब्राह्मणके सदैव कहे हैं और संन्यास को छोडकर क्षत्री वैश्य शूद्रोंके तीन आश्रम होते हैं ॥ ४० ॥

विद्यार्थंब्रह्मचारीस्यात्सर्वेषांपालनेगृही ।
वानप्रस्थःसंदमनेसंन्यासीमोक्षसाधने ॥४१॥

विद्याके लिये ब्रह्मचर्य और सबकी पालनाके लिये गृहस्थ और इंद्रियोंके दमन करनेके लिये वानप्रस्थ और मोक्षकी सिद्धिके लिये संन्यास आश्रम है ॥ ४१ ॥

वर्तयंत्यन्यथादंड्यायावर्णाश्रमजातयः ।
जपस्तपस्तीर्थसेवाप्रव्रज्यामंत्रसाधनम् ॥४२॥

जो २ वर्ण और आश्रमकी जाति जप, तप, तीर्थसेवा, संन्यास, मंत्रकी सिद्धि अन्यथा वर्ताव करती हैं वे दंड देने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

यदिराज्ञोपेक्षितानिदण्डतोशिक्षितानिच ।
कुलान्यकुलतांयांतिह्यकुलानिकुलीनताम् ४३

यदि राजा दंड और शिक्षा न दे तो कुलभी अकुल और अकुलही कुलीन होजाते हैं ॥ ४३ ॥

देवपूजांनैवकुर्यात्स्त्रीशूद्रस्तुपतिंविना ।
नविद्यतेपृथक्स्त्रीणांत्रिवर्गविधिसाधनम् ॥४४॥

देवताकी पूजा स्त्री और शूद्र अपने पतिकी आज्ञा विना न करें। पतिसे पृथक् स्त्रियोंको धर्म अर्थ काम संबंधी कोई विधि नहीं है ॥ ४४ ॥

पत्युःपूर्वंसमुत्थायदेहशुद्धिंविधायच ।
उत्थाप्यशयनीयानिकृत्वावेश्मविशोधनम् ४५॥

स्त्री पतिसे पहिले उठकर देहकी शुद्धि करके शय्याके वस्त्रोंको उठावे और घरको शुद्ध करै (बुहारै) ॥ ४५ ॥

मार्जनैर्लेपनैःप्राप्यसानलंयज्ञसाङ्गणम् ।
शोधयेद्यज्ञपात्राणिस्निग्धान्युष्णेनवारिणा ४६

मार्जन तथा लीपनेसे अग्निशाला और आंगनको शुद्ध करै और चिकने यज्ञके पात्रोंको उष्ण जलसे धोवे ॥ ४६ ॥

प्रोक्षणीयानितान्येवयथास्थानंप्रकल्पयेत् ।
शोधयित्वातुपात्राणिपूरयित्वातुधारयेत् ॥४७॥

और उनको धोकर जहांके तहां रख दे और पात्रोंको शुद्धकरके जल भरकर रखदे ॥ ४७ ॥

महानसस्यपात्राणिबहिःप्रक्षाल्यसर्वशः ।
मृद्भिस्तुशोधयेच्चुल्लींतत्राग्निंसेंधनंन्यसेत् ४८॥

महानस (रसोई) के सब पात्रोंको बाहिर धोवे और चुल्हीको लीपकर अग्नि और ईंधन उसमें रखदे ॥ ४८ ॥

स्मृत्वानियोगपात्राणिरसान्नद्रविणानिच ।
कृतपूर्वाह्णकार्येयंश्वशुरावभिवादयेत् ४९ ॥

जोडके पात्रोंका और रस अन्न द्रव्य इनका स्मरण और प्रातःकालके कामको करके सास और श्वशुरको नमस्कार करै ॥ ४९ ॥

ताभ्यांभर्त्रापितृभ्यांवाभ्रातृमातुलबांधवैः ।
वस्त्रालंकाररत्नानिप्रदत्तान्येवधारयेत् ॥ ५० ॥

सास सशुर माता पिता भाई मातुल बांधव इन्होंने जो वस्त्र वा भूषण दिये हों उनको ही धारण करै ॥ ५० ॥

मनोवाक्कर्मभिःशुद्धापतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगतास्वच्छासखीवहितकर्मसु ॥५१॥

मन वाणी कर्मसे शुद्ध और पतिकी आज्ञाकारिणी छायाके समान अनुकूल सखीके समान हित कारिणी रहै ॥ ५१ ॥

दासीवदिष्टकार्येषुभार्याभर्तुःसदाभवेत् ।
ततोऽन्नसाधनंकृत्वापतयेविनिवेद्यसा ॥५२॥

स्त्री इष्ट कामोंमें अपने भर्ताकी दासीके समान ही सदा रहै फिर अन्नको सिद्ध करके और पतिको निवेदन करके ॥ ५२ ॥

वैश्वदेवोद्धृतैरन्नैर्भोजनीयांश्चभोजयेत् ।
पतिंचतदनुज्ञाताशिष्टमन्नाद्यमात्मना ॥५३॥
भुक्त्वानयेदहःशेषंसदाऽऽयव्ययचिंतया ॥

वैश्वदेवसे बचे हुए अन्नोंसे कुटुंबके मनुष्योंको जिमावे, पतिको जिमाकर उसकी

आज्ञासे शेष अन्नको खा भोजन करके शेष दिनको आय और व्यय (खर्च) की चिंतामें ही बितावे ॥ ५३ ॥

पुनःसायंपुनःप्रातर्गृहशुद्धिंविधायच ।
कृतान्नसाधनासाध्वीसभृत्यंभोजयेत्पतिम्॥५४॥

फिर सायंकाल फिर प्रातःकाल घरकी शुद्धि करके और भोजन बनाकर भृत्योंसमेत पतिको जिमावे ॥ ५४ ॥

नातितृप्तास्वयंभुक्त्वागृहनीतिंविधायच ।
आस्तृत्यसाधुशयनंततःपरिचरेत्पतिम् ॥ ५५

आप अधिक न खाकर और घरकी नीतिको करके और भली प्रकार शय्याको बिछाकर पतिकी सेवा करे ॥ ५५ ॥

सुप्तेपत्यौतदभ्यास्यस्वयंतद्गतमानसा ।
अनग्नाचाप्रमत्ताचानिष्कामाविजितेंद्रिया५६॥

जब पति सोजांय तब आपभी उनके समीप उनमें ही मन लगाकर सो जाय नंगी न सोवै मतवाली न रहै कामदेवको त्यागै इंद्रियोंको जीतै ॥ ५६ ॥

नोच्चैर्वदेन्नपरुषंनबह्वारुचिमप्रियम् ।
नकेनचिच्चविवदेदप्रलापविवादिनी ५७ ॥

पतिके संग ऊंचे स्वरसे कडवा चिल्लाकर कुप्यारा वचन न बोले किसीके संग विवाद लडाई न करै और वृथा न बके॥ ५७ ॥

नचास्यव्ययशीलास्यान्नधर्म्मार्थविरोधिनी ।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावंचनान्यतिनिंद्यताम्॥५८॥

पतिके धनमेंसे बहुत खर्च न करै और धर्मको वा धनको न बिगाडै और प्रमाद, उन्माद, रूसना, ईर्ष्या इनको न करै निंदा न करै ॥ ५८ ॥

पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहंकारदर्पताम् ।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान्साध्वी विवर्जयेत् ॥ ५९ ॥

चुगली, हिंसा, मोह, अहंकार, अभिमान, नास्तिकता, साहस अविचारसे करना, चोरी दंभ इन सबको साध्वी स्त्री त्याग दे ॥ ५९ ॥

एवंपरिचरन्तीसापतिंपरमदैवतम् ।
यशस्यामिहयात्येवपरत्रैषासलोकताम् ६० ॥

इस प्रकार पर देवतारूप अपने पतिकी जो सेवा करतीहै वह इसलोकमें यश और मर कर पतिलोकमें जाती है ॥ ६० ॥

योषितोनित्यकर्मोक्तंनैमित्तिकमथोच्यते ।
रजसोदर्शनादेषासर्वमेवपरित्यजेत् ६१ ॥

यह स्त्रीका नित्यकर्म कहा । अब नैमित्तिक कर्म कहते हैं, रजके दर्शनसे स्त्री सबको त्याग दे ॥ ६१ ॥

सर्वैरलक्षितासीघ्रंलज्जितांतर्गृहेवसेत् ।
एकांबराकृशादीनास्नानालंकारवर्जिता ॥
स्वपेद्भूमावप्रमत्ताक्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ६२ ॥

ऐसे भीतरके घरमें बैठे जहां कोई न देखे एक वस्त्र धारै स्नान तथा भूषणोंको त्याग दे भूमिमें सोवे, प्रमाद न करै ऐसे जब तीन दिन बीतजांय ॥ ६२ ॥

स्नायीतसात्रिरात्रांतेसचैलाभ्युदितेरवौ ।
विलोक्यभर्तृवदनंशुद्धाभवतिधर्मतः ६३ ॥

चौथे दिन सूर्योदय होने पर स्नानकरै और पतिके मुखको देखकर शुद्ध होती है ॥ ६३ ॥

कृतशौचापुनःकर्मपूर्ववच्चसमाचरेत् ।
द्विजस्त्रीणामयंधर्मःप्रायोऽन्यासामपीष्यते ॥

इसप्रकार शुद्ध होकर स्त्री पूर्ववत् कर्म आचरै यह धर्म द्विजाति स्त्रियोंका है और प्रायः अन्योंका भी है ॥ ६४ ॥

कृषिपण्यादिकृत्येषुभवेयुस्ताःप्रसाधिकाः ।
संगीतैर्मधुराऽऽलापैःस्वायत्तस्तुपतिर्यथा ॥

और वे जाति खेती व्यापारके कृत्योंमें चतुर होती हैं, उत्तम गाना, मीठा वचन इनसे जिस प्रकार अपना पति अपने आधीन रहै ॥ ६५ ॥

भवेत्तथाऽऽचरेयुर्वैमायाभिःकार्यकेलिभिः ।
नास्तिभर्तृसमोनाथोनास्तिभर्तृसमंसुखम्॥

तिसप्रकार ही माया और कार्योंकी केलिसे स्त्री आचरण करै क्योंकि पतिके समान नाथ नहीं और पतिके समान सुख नहीं॥६६॥

विसृज्यधनसर्वस्वंभर्ताबैशरणंस्त्रियः ॥
मितंददातिहिपितामितंभ्रातामितंसुतः ॥६७॥

संपूर्ण धन और सर्वस्वको छोडकर स्त्रीका शरण भर्ता ही है, पिता, भाई, पुत्र ये सब मित (थोडासा) ही देते हैं ॥ ६७ ॥

अमितस्यप्रदातारंभर्तारंकानपूजयेत् ।
शूद्रोवर्णश्चतुर्थोपिवर्णत्वाद्धर्ममर्हति ६८ ॥

अमित (अनतुले) के देनेवाले भर्ताको कौन स्त्री न पूजेगी चौथा वर्ण शूद्र भी वर्ण होनेसे धर्मके योग्य है ॥ ६८ ॥

वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ।
पुराणाद्युक्तमंत्रैश्चनमोंतैःकर्मकेवलम् ६९

वेदके मंत्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिके विना केवल पुराण आदिके नमोंत मंत्रोंसेही शूद्रका कर्म होता है ॥ ६९ ॥

विप्रवद्विप्रविन्नासुक्षत्रविन्नासुक्षत्रवत् ॥
प्रजाताःकर्मकुर्युर्वैवैश्यविन्नासुवैश्यवत् ७०

ब्राह्मणने विवाहीमें पैदा हुए ब्राह्मणके समान, क्षत्रियने विवाहीमें पैदा हुए क्षत्रियके समान, और वैश्यकेही विवाहीमें पैदाहुये वैश्यकेही समान कर्मोंको करैं अर्थात् जिस वर्णकी स्त्री हो उस वर्णके कर्म न करैं ॥ ७० ॥

वैश्यासुक्षत्रविप्राभ्यांजातःशूद्रासुशूद्रवत् ।
अधमादुत्तमायांतुजातःशूद्राधमःस्मृतः ॥

क्षत्रिय और ब्राह्मणसे वैश्या वा शूद्रामें पैदा हुए माताके समान कर्मोंको करैं और अधम वर्णसे उत्तमवर्णकी स्त्रीमें पैदा हुआ तो शूद्रसेभी अधम कहा है ॥ ७१ ॥

सशूद्रादनुसत्कुर्यान्नाममंत्रेणसर्वदा ।
ससंकरचतुर्वर्णाएकत्रेकत्रयावनाः ॥ ७२ ॥

वह शूद्रके अनुसारही नाममंत्रसे कर्मको सदैव करै, संकरजातियों सहित चारों वर्ण एक २ जगह यवन होते हैं ॥ ७२ ॥

वेदभिन्नप्रमाणास्तेप्रत्यगुत्तरवासिनः ।
तदाचार्यैश्चतच्छास्त्रंनिर्मितंतद्धितार्थकम् ॥

उनके मतमें वेदप्रमाण नहीं हैं वे पश्चिम और उत्तरमें बसते हैं, उनकेही आचार्योंने उनके हितके लिये उनका शास्त्र रचा है॥ ७३॥

व्यवहारायया नीतिरुभयोरविवादिनी ।
कदाचिद्बीजमाहात्म्यक्षेत्रमाहात्म्यतः
क्वचित् ॥ ७४ ॥

जो नीति व्यवहारके लिये विवाद वाली न हो वह नीति है कदाचित् बीजके माहात्म्यसे और कदाचित् क्षेत्र (स्त्री) के महात्म्यसे ॥ ७४ ॥

नीचोत्तमत्वंभवतिश्रेष्ठत्वंक्षेत्रबीजतः ।
विश्वामित्रश्चवासिष्ठोमातंगोनारदादयः ७५॥

नीचता और उत्तमता होती है क्षेत्र वा बीजसे श्रेष्ठता होती है जैसे विश्वामित्र वसिष्ठ मातंग और नारद आदि ॥ ७५ ॥

स्वस्वजात्युक्तधर्मायःपूर्वैराचरितःसदा ।
तमाचरेत्त्वसाजातिर्दंड्यास्यादन्यथानृपैः ॥

अपनी २ जातिके लिये कहाहुआ जो २ धर्म बडोंने सदासे किया हो वह जाति उसको ही करै अन्यथा करै तो राजाने दंड देने योग्य है ॥ ७६ ॥

जातिवर्णाश्रमान्सर्वान्पृथक्चिह्नैःसुलक्षयेत् ।
यंत्राणिधातुकाराणांसंरक्षेन्निशिसर्वदा ७७

जाति वर्ण आश्रम इन सबको पृथक् चिह्नोंसे भलीप्रकार चिह्नवाले करै और धातु बनानेवालोंके यंत्रोंकी रात्रिमें सदैव रक्षा करै ॥ ७७ ॥

कारुशिल्पिगणान्राष्ट्रेरक्षेत्कार्यानुमानतः ।
अधिकान्कृषिकृत्सेवाभृत्यवर्गेनियोजयेत् ॥

कारीगर और शिल्पी इनके समूहकी देशमें कार्यके अनुमानसे रक्षा करै, यदि अधिक होजाय तो खेती सेवा भृत्योंमें नियुक्त करदे ॥७८॥

चौराणांपितृभूतास्तेस्वर्णकारादयस्त्वतः ।
गंजागृहंपृथग्ग्रामात्तस्मिन्रक्षेत्तुमद्यपान् ॥

क्योंकि सुनार आदि वे सब चोरोंके पितारूप होते हैं और मदिरा बनानेके या पीनेके घरको गांवसे पृथक् करै और मदिरा पीनेवालोंकी उसमें रक्षा करै ॥ ७९ ॥

नदिवामद्यपानंहिराष्ट्रेकुर्यात्क्वचिद्धिचित् ।
ग्रामेग्राम्यान्वनेवन्यान्वृक्षान्संरोपयेन्नृपः ॥

और अपने राज्यमें मदिराका पान दिनमें कभी न करावे और गांवमें गांवके वृक्षोंको और वनमें वनके वृक्षोंको राजा लगवावे ॥ ८० ॥

उत्तमान्विंशतिकरैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः ।
सामान्यान्दशहस्तैश्चकनिष्ठान्पंचभिःकरैः ॥

बहुत बडे उत्तम २ वृक्षोंको बीसहाथके, मध्यम वृक्षोंको पंद्रह हाथके, सामान्य वृक्षोंको दश हाथके और छोटे २ वृक्षोंको पांच हाथके अंतर पर लगवावे ॥ ८१ ॥

अजाविगोशकृद्भिर्वाजलैर्मांसैश्चपोषयेत् ।
उदुंबराश्वत्थवटचिंचाचंदनजंभलाः ॥ ८२ ॥

और उनको बकरी भेड गौके गोबरसे और जल और मांससे पुष्ट करावे गूलर, पीपल, वड, इमली चंदन जंभल और ॥८२॥

कदंबाशोकवकुलबिल्वाम्रातककपित्थकाः ।
राजादनाम्रपुन्नागतुदकाष्ठाम्रचंपकाः ८३

कदंब,अशोक, वकुल,बेल, आम्रातक, कैथ, राजादनाम्र (मालदा आदि) पुन्नाग, तुदकाष्ठ, आम्र चंपा और ॥ ८३ ॥

नीपकोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटभिःसटाः ।
शिंशिपाशिशुवदरनिंबजंभीरक्षीरिकाः ८४ ॥

नीप, कोकाम्र, सरल, अनार, अखरोट, भिस्वट, शीसम, शिशु, बेरी, निंब, जंभीरी, क्षीरिक और ॥ ८४ ॥

खर्जूरदेवकुरजफल्गुतापिच्छशिसभलाः ।
कुद्दालोलवलीधात्रीकुमकोमातुलुंगकः ८५

खजूर, देवरंजक,फल्गु, तापिच्छ,(तमाल) सेंभल, कुद्दाल, लवली, आवला, कुमक, मातुलुंग (सुपारी) और ॥ ८५ ॥

लकुचोनारिकेलश्चरंभान्येसत्फलाद्रुमाः ।
सुपुष्पाश्चैवयेवृक्षाग्रामाभ्यर्णेनियोजयेत् ॥

बहेडा, नारियल, रंभा (केला) ये सब और जो अच्छे फलवाले वृक्ष हैं अथवा अच्छे पुष्पवाले वृक्ष हैं इन सबको ग्रामके समीपमें लगवावे ॥ ८६ ॥

येचकंटकिनोवृक्षाः खदिराद्यास्तथापरे ।
आरण्यकास्तेविज्ञेयास्तेषांतत्रनियोजनम् ॥

और जो कांटेवाले और खदिर (खैर) आदि अन्य जो वृक्ष हैं वे वनके समझने इससे उनको वनमें लगवावे ॥ ८७ ॥

खदिराश्मंतशाकाग्निमंथस्योनाकवञ्जुलाः ।
तमालशालकुटजधवार्जुनपलाशकाः ॥ ८८ ॥

खैर, अश्मंतक, शाक, अग्निमंथ(अमलतास) स्योनाक, वञ्जुल, तमाल, शाला कुटज, धव, अर्जुन, ढाक और ॥ ८८ ॥

सप्तपर्णशमीतूनदेवदारुविकंकताः ।
करमर्देगुदीभूर्जविषमुष्टिकरीरकाः ॥ ८९ ॥

सप्तपर्ण, शमी, छोंकर, तून, देवदारु, विकंकत, करमर्द, इंगुदी, भोजपत्र, विषमुष्टि, तिकरीर और ॥ ८९ ॥

शल्लकीकाश्मरीपाठातिंदुकोवीजसारकः ।
हरीतकीचभल्लातःशम्याकोर्कश्चपुष्करः ९०॥

शल्लकी, काश्मरी, पाठा, तेंदु, विजयसार, हरडे, भिलावे, शम्याक, आक, पोहकरमूल और ॥ ९० ॥

अरिमेदश्चपीतद्रुःशाल्मलिश्चविभीतकः ।
नरवेलोमहावृक्षोऽपरेयेमधुकादयः ॥ ९१ ॥

अरिमेद, पीतवृक्ष, शाल्मली, विभीतक, नरवेल, महावृक्ष और अन्य जो मधुक (महुआ) आदि हैं ॥ ९१ ॥

प्रतानवन्त्यःस्तंबिन्योगुल्मिन्यश्चतथैवच ।
ग्राम्याग्रामेवनेवन्यानियोज्यास्तेप्रयत्नतः ९२।

फैलनेवाली, गुच्छेवाली और गुल्मवाली जो लता हैं इन सबको गाँवके योग्य गांवोंमें और वनमें लगाने योग्य वनमें प्रयत्नसे लगावे।

कूपवापीपुष्करिण्यस्तडागाःसुगमास्तथा ।
कार्याः खातादित्रिगुणविस्तारपदधानिकाः ९३

कूप, बावडी, पुष्करिणी, तालाब इनको सुगम करै और खोदनेसे दूनी वा तिगुनी इनकी पदधानी (मण वाट आदि) बनवावे ॥ ९३ ॥

यथातथाह्यनेकाश्चराष्ट्रेस्याद्विपुलंजलम् ।
नदीनांसेतवः कार्याविबन्धाः सुमनोहराः॥९४॥

जैसे जैसे देशमें बहुत जल हो ऐसे ऐसे अनेक कूप आदि बनावे और नदियोंके पुल और बांध अच्छे मनोहर करावे ॥ ९४ ॥

नौकादिजलयानानिपारगानिनदीषुच ।
यज्जातिपूज्योयोदेवस्तद्विद्यायाश्चयोगुरुः ॥

नदियोंमें पार जानेके लिये नाव और जलके यान आदि करावे जिस जातिके पूजने योग्य जो देव हो और उस जातिकी विद्याका जो गुरु हो ॥ ९५ ॥

तदालयानितज्जातिगृहपंक्तिमुखेन्यसेत् ।
शृंगाटकेग्राममध्येविष्णोर्वाशंकरस्यच॥९६॥

उनके स्थान उसी जातिके घरोंकी पंक्तिके सन्मुख बसावे, चौराहे और गांवके मध्यमें विष्णु, वा शिवका वा ॥ ९६ ॥

गणेशस्यरवेर्देव्याःप्रासादान्क्रमतोन्यसेत् ।
मेर्वादिषोडशविधलक्षणान्सुमनोहरान्॥९७॥

गणेश, सूर्य, देवी इसके मन्दिर क्रमसे बनवावे मेरु आदि सोलह प्रकारके और बडे मनोहर और ॥ ९७ ॥

वर्तुलांश्चतुरस्रान्वायंत्राकारान्समंडपान् ।
प्राकारगोपुरगणयुतान्द्वित्रिगुणोच्छ्रितान् ।

गोल, चतुष्कोण, मण्डप सहित, यंत्रोंके आकार और परकोटा गोपुरके समूहोंसे युक्त दूने वा तिगुने ऊँचे बनवावे ॥ ९८ ॥

यथोक्तांतःसुप्रतिमाञ्जलमूलान्विचित्रितान् ।-
रम्यःसहस्रशिखरःसपादशतभूमिकः ॥९९॥

जिनके भीतर शास्त्रोक्त प्रतिमा हों ऐसे विचित्र जलके मूल (बडे २ तलाव) जो रमणीक हों, सहस्र जिसके शिखर हों, सवासौ हाथ जिसकी भूमि हो ॥ ९९ ॥

सहस्रहस्तविस्तारोच्छ्रायःस्यान्मेरुसंज्ञकः ।
ततस्ततोष्टांशहीनाअपरेमन्दरादयः ॥४००॥

सहस्र हाथका जिसका विस्तार और ऊँचाई हो उसका मेरु नाम है, उससे आठ आठ अंशसे जो कम हों वे क्रमसे मन्दर होते हैं ॥ ४०० ॥

मन्दरःकूक्षमालीचद्युमणिश्चंद्रशेखरः ।
माल्यवान्पारियात्रोरत्नशीर्षोह्रिधातुमान् ॥

मन्दर, कूक्षमाली, द्युमणि, चन्द्रशेखर, माल्यवान्, पारियात्र, रत्नशीर्ष, धातुमान् ॥५०१॥

पद्मकोशःपुष्पहासः श्रीकरः स्वस्तिकाभिधः
महापद्मःपद्मकूटःषोडशोविजयाभिधः ५०२॥

पद्मकोश, पुष्पहास, श्रीकर, स्वस्तिक, महापद्म, पद्मकूट, विजय ये सोलह मेरु आदि लक्षण होते हैं ॥ ५०२ ॥

तन्मण्डपश्चतत्तुल्यःपादन्यूनोच्छ्रितःपुरः ।
स्वाराध्यदेवताध्यानैःप्रतिमास्तेषुयोजयेत् ॥

इनका मण्डप भी इनकेही तुल्य होता है, इनसे चौथाई कम जिसकी ऊँचाई हो वह पुर होता है, और अपनी अपनी आराधना के योग्य देवताओंके ध्यानसे इनमें प्रतिमा नियत करै ॥ ३ ॥

सात्त्विकीराजसीदेवप्रतिमातामसीत्रिधा ।
विष्ण्वादीनांचयायत्रयोग्यापूज्यातुतादृशी ॥

सात्त्विकी, राजसी, तामसी, यह तीन प्रकारकी विष्णु आदिकी प्रतिमा होती हैं जो जहां योग्य हो उसकोही वहां पूजे ॥ ४ ॥

योगमुद्रान्वितास्वस्थावराभयकरान्विता ।
देवेंद्रादिस्तुतासासात्त्विकीसाप्रकीर्तिता ॥५ ॥

जिस प्रतिमामें योगमुद्रा हों जो स्वस्थ हो जिसके वर और अभय मुद्रायुक्त हाथ हों, जिसकी देव और इन्द्र आदि स्तुति करैं वह प्रतिमा सात्त्विकी कही है ॥ ५ ॥

तिष्ठंतीवाहनस्थावानानाभरणभूषिता ।
याशस्त्रास्त्राभयवरकरासाराजसीस्मृता ॥ ६ ॥

जो प्रतिमा खडी हो वा वाहनपर स्थित

हो, नाना भूषणोंसे भूषित हो और शस्त्र अस्त्र अभय वरदायक जिसके कर हों वह राजसी कही है ॥ ६ ॥

शस्त्रास्त्रैर्दैत्यहंत्रीयाउग्ररूपधरासदा ।
युद्धाभिनंदिनीसातुतामसीप्रतिमोच्यते ॥ ७ ॥

जो शस्त्र अस्त्रोंसे दैत्योंको हननेवाली और सदैव उग्ररूप धारे हो और युद्ध जिसको प्रिय हो वह प्रतिमा तामसी कही है ॥ ७ ॥

संक्षेपतस्तुध्यानादिविष्णवादीनातथोच्यते ।
प्रमाणंप्रतिमानांचतदंगानांसुविस्तरम् ॥ ८ ॥

अब संक्षेपसे विष्णु आदिकोंका यथार्थ ध्यान और प्रतिमा तथा उनके अंगोंका विस्तारसे प्रमाण वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थांशोह्यंगुलंपरिकीर्तितम् ।
तदंगुलैर्द्वादशभिर्भवेत्तालस्यदीर्घता ॥ ९ ॥

अपनी मुष्टिके चौथे भागको अंगुल कहते है और बारह अंगुलकी एक ताल दीर्घता (बिलस्त) होती है ॥ ९ ॥

वामनीसप्ततालास्यादष्टतालातुमानुषी ।
नवतालास्मृतादैवीराक्षसीदशतालिका ॥ १० ॥

वामनी सात तालकी और मानुषी आठ तालकी, नौ तालकी दैवी और दश तालकी राक्षसी प्रतिमा कही है ॥ ११० ॥

सप्ततालाह्युच्चतावामूर्तीनांदेशभेदतः ।
सदैवस्त्रीसप्ततालासप्ततालश्चवामनः ॥ ११ ॥

अथवा देशके भेदसे मूर्तियोंकी ऊंचाई सात तालकी होती है स्त्री और वामन सदैव सात तालके होते हैं ॥ ११ ॥

नरोनारायणोरामोनृसिंहोदशतालकः ।
दशतालाकृतयुगेत्रेतायांनवतालिका ॥ १२ ॥

नर, नारायण, राम, नृसिंह ये सब दश तालके होते हैं, परन्तु सत्ययुगके दश तालके, त्रेतामें नौ तालके और ॥ १२ ॥

अष्टतालाद्वापरेतुसप्ततालाकलौस्मृता ।
नवतालप्रमाणेतुमुखंतालामितंस्मृतम् ॥ १३ ॥

द्वापरमें आठ तालके कलियुगमें सात ताल के कहे हैं नौ तालकी मूर्तिके प्रमाणमें एक तालका मुख कहा है ॥ १३ ॥

चतुरंगुलंललाटंस्यादधोनासातथैवच ।
नासिकाधश्चहन्वंतचतुरंगुलमीरितम् ॥ १४ ॥

चार अंगुलका मस्तक और नाकका अधोभाग कहा है, नासिकासे नीचे हनु (ठोडी) तक चार अंगुलका कहा है ॥ १४ ॥

चतुरंगुलाभवेद्ग्रीवातालेनहृदयंपुनः ।
नाभिस्तस्मादधःकार्यातालेनकनशोभिता १५

चार अंगुलकी ग्रीवा और एक तालका हृदय कहा है, हृदयके नीचे एक तालकी शोभायमान नाभी करनी ॥ १५ ॥

नाभ्यधश्चभवेन्मेढ्रंभागेनैकेनवापुनः ।
द्वितालौह्यायतावूरूजानुनीचतुरंगुले ॥ १६ ॥

नाभिके नीचे एक भागसे लिंग इंद्रिय और दो ताल लंबे ऊरू और चार अंगुलके जानु बनवावे ॥ १६ ॥

जंघेऊरूसमेकार्येगुल्फाधश्चतुरंगुलम् ।
नवतालात्मकामिदमूर्ध्वमानंबुधैःस्मृतम् १७ ॥

नीचकी जंघा (पींडि) ऊरूके समान करने, गुल्फके नीचेका भाग चार अंगुलका करना, नौ ताल ऊंची मूर्तिका प्रमाण पंडितोंने यह कहा है ॥ १७ ॥

शिखावधितुकेशांतंत्र्यंगुलंसर्वमानतः ।
दिशानयाचविभजेत्सप्ताष्टदशतालिकम् १८ ॥

केशोंसे शिखापर्यंत संपूर्ण भाग तीन अंगुलके मानसे करना, इसी रीतिसे सात आठ दश तालकी मूर्तमभी अंगोंके मान समझने ॥ १८ ॥

चतुस्तालात्मकौबाहौह्यंगुल्यंतावुदाहृतौ ।
स्कंधादिकूर्परांतंचविंशत्यंगुलमुत्तमम् ॥ १९ ॥

अंगुलीपर्यंत चार तालकी भुजा कही है और स्कंधसे कूर्पर (ताल) पर्यंत बीस अंगुल का प्रमाण उत्तम कहा है ॥ १९ ॥

त्रयोदशांगुलंचाधःकक्षायाःकूर्परांतकम् ।
अष्टाविंशत्यंगुलस्तुमध्यमांतःकरःस्मृतः २०

कुक्षिके नीचेसे कूर्पर्पयंत तेरह अंगुलका और मध्यमा अंगुलीके अततक अट्ठाईस अंगुलका कर कहा है ॥ २० ॥

सप्तांगुलंकरतलंमध्यापंचांगुलामता ।
सार्धत्रयांगुलोंगुष्ठस्तर्जनीमूलपूर्वभाक् २१ ॥

सात अंगुलका हाथका तल और पांच अंगुलका मध्य कहा है, साढे तीन अंगुलका अंगूठा तर्जनीके मूलके पूर्वभागसे होता है ॥ २१ ॥

पर्वद्वयात्मकान्यासांपर्वाणित्रीणित्रीणितु ।
अर्धांगुलेनांगुलेनहीनानामाचतर्जनी॥२२॥

अंगूठेके दो पव होते हैं अन्य अंगुलियोंके तीन २ पव होते हैं । अनामिका और तर्जनी आधा अंगुल और अंगुल कम होती है ॥ २२ ॥

कनिष्ठिकानामिकातोंगुलोनाचप्रकीर्तिता ।
चतुर्दशांगुलौपादौह्यंगुष्ठोद्व्यंगुलोमतः २३॥

कनिष्ठिका अनामिकासे एक अंगुल कम होती है चौदह अंगुलका पाद और दो अंगुलका अंगूठा होता है ॥ २३ ॥

प्रदेशिनीद्व्यंगुलातुसार्धांगुलमथेतराः ।
शिरोज्झितौपाणिपादौगूढगुल्फौप्रकीर्तितौ ॥

प्रदेशिनी (अंगूठेके पासकी अंगुली) दो अंगुलकी अन्य अंगुलियां डेढ अंगुलकी होती हैं शिरके विना हाथ और पैर ऐसे अच्छे होते हैं जिनके गुल्फ छिपे हैं ॥२ ॥

सद्भिःप्रस्तुतायेयमूर्तेरवयवाःसदा ।
नहीनानाधिकामानात्तेतेज्ञेयाःसुशोभनाः२५॥

जो २ शरीरके अवयव हैं वे २ विद्वानोंकी प्रशंसा योग्य और शोभित तभी होते हैं जब मानसे न्यून न हों न ज्यादे ॥ २५ ॥

नस्थूलानकृशावापिसर्वेसर्वमनोरमाः ।
सर्वांगैःसर्वरम्योहिकाश्चिल्लक्षेप्रजायते ॥२६॥

जो न अधिक स्थूल हो न कृश हो और सबप्रकारसे उत्तम हो ऐसा लक्षोंमें कोई ही होता है जो सबप्रकारसे सम्पूर्ण अंगोंमें रमणीक हो ॥ २६ ॥

शास्त्रमानेनयोरम्यःसरम्योनान्यएवहि ।
शास्त्रमानविहीनंयदरम्यंतद्विपश्चिताम् २७ ॥

शास्त्रके मानसे जो रमणीक हो अर्थात जिसके अंगोंका प्रमाण शास्त्रोक्तहो वह श्रेष्ठ है अन्य नहीं जो शास्त्रोक्त मानसे हीन है वह विद्वानोंकी अपेक्षा रमणीक नहीं ॥ २७ ॥

एकेषामेवतद्रूपंलग्नंयत्रचयस्यहृत् ।
अष्टांगुलंललाटंस्यात्तावन्मात्रौभ्रुवौमतौ॥२८॥

जिस मनुष्यमें जिसका हृदय लग्न (आसक्त) होजाय वह बात किसीको ही प्रतीत होती है, आठ २ अंगुलका मस्तक और दोनों भ्रुकुटी होती हैं ॥ २८ ॥

अर्धांगुलाभ्रुवोर्लेखामध्येधनुरिवायता ।
नेत्रेचत्र्यंगुलायामेद्व्यंगुलेविस्तृतेशुभे ॥२९ ॥

भ्रुकुटीकी लेखाके मध्यमें धनुषके समान विस्तार हो और आधा अंगुल चौडी हो और नेत्र तीन अंगुल लंबे तथा दो अंगुल चौडे शुभ होते हैं ॥ २९ ॥

तारकात्तृतीयांशानेत्रयोःकृष्णरूपिणी ।
द्व्यंगुलंतुभ्रुवोर्मध्यंनासामूलमथांगुलम् ॥३०॥

नेत्रोंके तारे कृष्ण और नेत्रोंके तीसरे हिस्सके होते हैं भ्रुकुटियोंका मध्य दो अंगुल और नासिकाका मूलएक अंगुलका होता है३०

नासाग्रविस्तरंतद्वद्द्व्यंगुलंतद्विलद्वयम् ।
शुकमुखाकृतिर्नासासरलावाद्विधाशुभा ३१ ॥

नासिकाके अग्रभागका विस्तार और दोनों बिल दो अंगुलके होते हैं तोतेके मुखके समान जिसका आकार अथवा सीधी जो हो वह दो प्रकारकी नासिका शुभ होती है ॥ ३१ ॥

निष्पावसदृशंनासापुटयुग्मंसुशोभनम् ।
कर्णौचभ्रूसमौज्ञेयौदीर्घौतुचतुरंगुलौ ॥३२॥

निष्पावके तुल्य जो हो ऐसे नासिकाके दोनों पुट श्रेष्ठ कहे हैं और भ्रुकुटियोंके समान और दीर्घ (लंबे) चार अंगुल कान उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥

कर्णपालिद्व्यंगुलास्यात्स्थूलाचार्धांगुलामता ।
नासावंशोर्धांगुलस्तुश्लक्ष्णाग्रःकिंचिदुन्नतः ॥

कानोंकी पाली (पिछलीत्वचा) दो अंगुल लंबी और आधा अंगुल मोटी कही है और नाकका बांस आधा अंगुल मोटा और आगेसे चिकना और कुछ ऊंचा हो तो अच्छा है ॥ ३३

ग्रीवामूलाच्चस्कंधांतमष्टांगुलमुदाहृतम् ।
बाह्वन्तरंद्वितालंस्यात्तालमात्रंस्तनांतरम् ॥

ग्रीवाके मूलसे स्कंधतक जो भाग है वह आठ अंगुल होना चाहिये दोनों भुजाओंका अन्तर (बीच) दो ताल और स्तनोंका अन्तर एक ताल होता है ॥ ३४ ॥

षोडशांगुलमात्रंतुकर्णयोरंतरंस्मृतम् ।
कर्णहन्वग्रांतरंतुसदैवाष्टांगुलंमतम् ॥ ३५ ॥

दोनों कानोंका अन्तर सोरह अंगुलका कहा है और कान और हनु (ठोढी) इनका अन्तर सदैव आठ अंगुलका कहाहै ॥ ३५ ॥

नासाकर्णांतरंतद्वत्तदर्धंकर्णनेत्रयोः ।
मुखंतालीतृतीयांशमोष्ठावर्धांगुलौमतौ ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार आठ अंगुलका अन्तर नाक और कानोंका होता है और इससे आधा अन्तर कान और नेत्रोंका होता है, तालका तीसरा भाग मुखका होता है और आधा अंगुलके ओष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥

द्वात्रिंशदंगुलःप्रोक्तःपरिधिर्मस्तकस्यच ।
दशांगुलाविस्तृतिस्तुद्वादशांगुलदीर्घता ३७ ॥

मस्तक (शिर) की परिधि बत्तीस अंगुलकी कही है और दश अंगुलका विस्तार और बारह अंगुलकी लम्बाई कही है ॥ ३७ ॥

ग्रीवामूलस्यपरिधिर्द्वाविंशत्यंगुलात्मकः ।
हन्मूलेपरिधिर्ज्ञेयश्चतुःपंचाशदंगुलः ॥ ३८ ॥

ग्रीवाके मूलकी परिधि बाईस अंगुलकी कही है, हृदयके मूलकी परिधि (फेर) चव्वन ५४ अंगुल कही है ॥ ३८ ॥

हीनांगुलचतुस्तालपरिधिर्हृदयस्यच ।
आस्तनात्पृष्ठदेशांतापृथुताद्वादशांगुला ३९

चार अंगुल कम एक ताल परिधि हृदयकी होती है और स्तनोंसे लेकर पृष्ठ देशतक बारह अंगुलकी मोटाई होती है ॥ ३९ ॥

सार्धत्रितालपरिधिःकट्याश्चद्व्यंगुलाधिकः ।
चतुरंगुलउत्सेधोविस्तारःस्यात्षडंगुलः ४० ॥

दो अंगुल ऊपर साढे तीन ताल परिधि कटि (कमर) की होती है और चार अंगुल उँचाई और छः अंगुलका विस्तार होता है ४० ॥

पश्चाद्भागेनितंबस्यस्त्रीणामंगुलतोधिकः ।
बाह्वग्रमूलपरिधिःषोडशाष्टादशांगुलः ४१ ॥

स्त्रियोंके नितम्बके पश्चात् भाग एक अंगुल अधिक होते हैं और भुजाओंके अग्र भागकी परिधि सोलह अंगुल और मूल भागकी अठारह अंगुल होती है ॥ ४१ ॥

हस्तमूलाग्रपरिधिश्चतुर्दशदशांगुलः ।
पंचांगुलापादकरतलयोर्विस्तृतिःस्मृता ४२ ॥

हाथके मूलकी परिधि चौदह अंगुल और अग्रभागकी परिधि दश अंगुल होती है और हाथ और पादोंके तलका विस्तार पांच अंगुलका होता है ॥ ४२ ॥

ऊरुमूलस्यपरिधिर्द्वात्रिंशदंगुलात्मकः ।
ऊनविंशत्यंगुलःस्यादूर्वग्रपरिधिःस्मृतः ४३

ऊरु (रान) के मूलकी परिधि बत्तीस अंगुलकी होती है और अग्रभागकी परिधि उन्नीस अंगुलकी होती है ॥ ४३ ॥

जंघामूलाग्रपरिधिःषोडशद्वादशांगुलः ।
मध्यमामूलपरिधिर्विज्ञेयश्चतुरंगुलः ॥ ४४ ॥

जंघाके मूलकी परिधि सोलह अंगुल और अग्र भागकी परिधि बारह अंगुल कही है और मध्यमाके मूलकी परिधि चार अंगुलकी होती है ॥ ४४ ॥

तर्जन्यनामिकामूलपरिधिः सार्धत्र्यंगुलः ।
कनिष्ठिकायाःपरिधिर्मूलेत्र्यंगुलएवहि ॥ ४५ ॥

तर्जनी और अनामिकाके मूलकी परिधि साढे तीन अंगुल होती है और कनिष्ठिकाके मूलकी परिधि तीन अंगुल होती है ॥ ४५ ॥

स्वमूलपरिधेःपादहीनोग्रे परिधिःस्मृतः ।
हस्तपादांगुष्ठयोश्चचतुःपंचांगुलंक्रमात् ४६ ॥

और अपने मूलकी परिधिसे चौथाई कम

अग्र भागकी परिधि होती है हाथ और पैरके अंगूठोंकी परिधि क्रमसे चार पांच अंगुलकी होती है ॥ ४६ ॥

पादांगुलीनांपरिधिर्हयंगुलःसमुदाहृतः ।
मंडलंस्तनयोर्नाभेःसार्धांगुलमथांगुलम्॥४७।

पैरकी अंगुलियोंकी परिधि तीन अंगुल होती है, स्तनोंका मंडल डेढ अंगुल और नाभिका मंडल एक अंगुल होता है ॥ ४७ ॥

सर्वांगानांयथाशोभिपाटवंपरिकल्पयेत् ।
नोर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिंमीलिताक्षींप्रकल्पयेत् ॥

सम्पूर्ण अंगोंका पाटव (उन्नमता) शोभाके अनुसार बनावै, और ऊपर और नीचेको जिसकी दृष्टि हो और जिसके नेत्र मिचे हों ऐसी प्रतिमा न बनावै ॥ ४८ ॥

नोग्रदृष्टिंतुप्रतिमांप्रसन्नाक्षींविचिंतयेत् ।
प्रतिमायास्तृतीयांशमर्धांशंतत्सुपीठकम् ॥

जिसकी दृष्टि उग्र हो ऐसी भी न बनावै किन्तु जिसके नेत्र प्रसन्न हों ऐसी बनावै,प्रतिमाके प्रमाणसे साढेतीन अंश कम पीठ (आसन) बनावै ॥ ४९ ॥

द्विगुणंत्रिगुणंद्वारंप्रतिमायाश्चतुर्गुणम ।
एकद्वित्रिचतुर्हस्तंपीठंदेवालयस्यच ॥५०॥

प्रतिमासे दूना व तिगुना वा चौगुना मंदिर का द्वार बनावै, एक दो तीन वा चार हाथ देवायतनका पीठ बनावै ॥ ५० ॥

पीठतस्तुरमुच्छ्रायोभित्तेर्दशकरात्मकः ।
द्वाराद्द्विगुणोच्छ्रायःप्रासादस्योर्ध्वभूमिभाक्

पीठसे दश हाथ ऊंची भीत बनावै और द्वारसे द्विगुण ऊंचा मंदिरके ऊपरका भाग बनावै ॥ ५१ ॥

शिखरंचोच्छ्रायसमंद्विगुणंत्रिगुणंतुवा ।
एकभूमिंसमारभ्यसपादशतभूमिकम् ॥५२॥

ऊंचाईके समान द्विगुना वा तिगुना शिखर नावै और एक भूमि (मंजिल) से लेकर सवासौ भूमि तक ॥ ५२ ॥

प्रासादंकारयेच्छक्त्याह्यष्टास्त्रपद्मसन्निभम् ।
चतुर्दिक्षुमंडपंवापिचतुःशालंसमंततः ॥५३॥

शक्तिके अनुसार अष्टपद्मके समान मंदिरको बनावै और चारों दिशाओंमें मंडप और धर्मशाला बनावै ॥ ५३ ॥

सहस्रस्तंभसंयुक्तश्चोत्तमोन्यःसमोधमः ।
प्रासादेमंडपेवापिशिखरंयदिकल्प्यते ॥ ५४॥

जिसमें सहस्र स्तम्भ हों ऐसा मंदिर उत्तम और अन्य मध्यम और अधम होते हैं यदि प्रासादवा मंडपमेंशिखर बनाया जायतो॥५४॥

स्तम्भास्तत्रनकर्तव्याभित्तिस्तत्रसुखप्रदा।
प्रासादमध्यविस्तारःप्रतिमायाःसमंततः ५५॥

वहां स्तम्भ न बनावै भीतीही वहाँ सुखदायक होती है और मंदिरके मध्यका विस्तार प्रतिमाके चारों तरफ ॥ ५५ ॥

षड्गुणोष्टगुणोवापिपुरतोवासुविस्तरः ।
वाहनंमूर्तिसदृशंसार्धवाद्विगुणंस्मृतम्॥५६ ॥

छहगुणा वा आठगुणा अथवा प्रतिमाके आगे विस्तारपूर्वक बनाना चाहिये और मूर्तिके तुल्य डेढ गुण वा दूना वाहन कहा है ॥ ५६ ॥

यत्रनोक्तंदेवतायारूपंतत्रचतुर्भुजम् ।
अभयंचवरंदद्याद्यत्रनोक्तंयदायुधम् ॥ ५७ ॥

जहां देवताका रूप न कहा हो वहांचतुर्भुजी रूप और जहां आयुध न कहाहो वहां अभय और वर आयुध बनावै ॥ ५७ ॥

अधःकरेतूर्ध्वकेशंखंचक्रंतथांकुशम् ।
पाशंवाडमरुंशूलंकमलंकलशंस्रजम् ५८ ॥

हाथके नीचे और ऊपर शंख, चक्र, अंकुश, पाश, डमरू, शूल, कमल, माला ॥५८॥

लड्डुकंमातुलुंगंवावीणांमालांचपुस्तकम् ।
मुखानांयत्रबाहुल्यंतत्रपङ्क्त्यानिवेशनम् ॥

लड्डू, मातुलिंग,वीणा, माला और पुस्तक बनावे जहां मुख बहुत हों वहां पंक्तिसे मुख बनावे ॥ ५९ ॥

तत्पृथग्ग्रीवमुकुटंसुमुखंस्वक्षिकर्णयुक् ।
भुजानांयत्रबाहुल्यंनतत्रस्कंधभेदनम्॥६०॥

इन मुखोंकी ग्रीवा और मुकुट पृथक् २ हों और जिसमें नेत्र, मुख, कान ये अच्छे हों वही अच्छा होताहै और जिसकी भुजा बहुत हों वहां स्कंध भेद न करै ॥ ६० ॥

कूर्परोर्ध्वंतुसूक्ष्माणिचिपिटानिदृढानिच ।
भुजमूलानिकार्याणिपक्षमूलानिवैयथा॥६१॥

कूर्पर (केहुनी) के ऊपर सूक्ष्म, चिकने, दृढ भुजाओंके मूळ इस प्रकारके बनावे जैसे पंखोंके मूल होते हैं ॥ ६१ ॥

ब्रह्मणस्तुचतुर्दिक्षुमुखानांविनियोजनम् ।
हयग्रीवोवराहश्चनृसिंहश्चगणेश्वरः ॥ ६२ ॥

ब्रह्माके मुख चारों दिशाओंमें बनावे हयग्रीव, वराह, नृसिंह, गणेशजी ॥ ६२ ॥

मुखैर्विनानराकारान्नृसिंहश्चनखैर्विना ।
तिष्ठंतींसूपविष्टांवास्वासनेवाहनस्थिताम् ६३।
प्रतिमामिष्टदेवस्यकारयेदुक्तलक्षणाम् ।
हीनश्मश्रुनिमेषांचसदाषोडशवार्षिकीम् ६४

इनका आकार मुखके विना मनुष्यके समान बनावै और नरसिंहकी मूर्ति नखोंके विना मनुष्याकारकी बनावै, सुंदर आसन और वाहनपै बैठी अथवा खडी हुई इष्टदेवकी प्रतिमाको उक्त रीतिसे बनवावै, जिसके श्मश्रु और निमिष न हों और सदा सोळह वर्षकी प्रतीत हो ऐसीप्रतिमाको बनावै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

दिव्याभरणवस्त्राढ्यांदिव्यवर्णक्रियांसदा ।
हीनांग्योनाधिकांग्यश्चकर्त्तव्यादेवताःक्वचित्

जिसके भूषण, वस्त्र, वर्ण, क्रिया सदैव दिव्य हों ऐसी बनावै, अंगहीन और अधिकांगी देवप्रतिमा कदाचित् न बनावै ॥६५॥

हीनांगीस्वामिनंहंतिह्यधिकांगीचशिल्पिनम्
कृशादुर्भिक्षदानित्यंस्थूलारोगप्रदासदा ६६॥

अंगहीन प्रतिमा स्वामीको और अधिकांगी शिल्पी (बनानेवाले) को नष्ट करती है, कृश प्रतिमा दुर्भिक्षको स्थूळ रोगको सदैव देती है ॥६६ ॥

गूढसंध्यस्थिधमनीसर्वदासौख्यवर्धिनी ।
वराभयाब्जशंखाढ्यहस्ताविष्णोश्चसात्त्विकी ॥

जिस प्रतिमाकी संधि, अस्थि, नाडी ये छिपेहुए हों वह सर्वदा सुखकी वृद्धि करती है और जिसके हाथमें वर, अभय, शंख हों ऐसी विष्णुकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६७ ॥

मृगवाद्याभयवरहस्तासोमस्यसात्त्विकी ।
वराभयाब्जलड्डूकहस्तेभास्यस्यसात्त्विकी ॥

मृग वाद्य अभय वर जिसके हाथमें हो ऐसी शिवजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है, और वर अभय कमल लड्डू जिसके हाथमें हों ऐसी गणेशजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥६८॥

पद्ममालाभयवरकरासत्त्वाधिकारवेः ।
वीणालुंगाभयवरकरासत्त्वगुणाश्रियाः ६९ ॥

पद्म माला अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी सूर्यप्रतिमा सत्त्वगुणी होती है, वीणा लुंग अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी लक्ष्मीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६९ ॥

शंखचक्रगदापद्मैरायुधैरादितः पृथक् ।
षट्षड्भेदाश्चमूर्तीनांविष्णवादीनांभवंतिहि ॥

शंख चक्र गदा पद्म और आयुधोंसे विष्णु आदिकोंकी मूर्तियोंके पृथक् २ छः २ भेद होते हैं ॥ ७० ॥

यथोपाधिप्रभेदनसंसंयोगविभागतः ।
समस्तव्यस्तवर्णादिभेदज्ञानंप्रजायते ७१ ॥

यथोचित उपाधिके भेद और संयोग विभागसे समस्त और व्यस्त वर्ण आदि भेदका ज्ञान होता है ॥ ७१ ॥

लेख्यालेप्यासैकतीचमृन्मयपैष्टिकीतथा ।
एतासांलक्षणाभावेनैकीश्चद्दोषईरितः ७२ ॥

लिखी, लिपी, रेतेकी और मिट्टीकी चूर्णकी प्रतिमाओंमें लक्षणोंके अभावमेंभी कोई दोष नहीं कहा है ॥ ७२ ॥

बाणलिंगेस्वयंभूतेचंद्रकांतसमुद्भवे ।
रत्नजेगंडिकोद्भूतेमानदोषोनसर्वथा ॥७३॥

स्वयमेव पैदा हुए अथवा चन्द्रकांतमणिसे पैदा हुए बाणलिंगमें रत्नसे पैदा हुए अथवा गंडकीनदीसे पैदा हुओंमें प्रमाणका दोष सर्वथा नहीं है ॥ ७३ ॥

पाषाणधातुजायांतुमानदोषान्विचिंतयेत् ।
श्वेतपीतारक्तकृष्णपाषाणैर्युगभेदतः ॥ ७४ ॥

पाषाण और धातुसे पैदाहुई प्रतिमाओंमें प्रमाणके दोषोंकी चिन्ता करै और युगोंके भेद-से श्वेत पीत रक्त कृष्ण पाषाणके भेदसे ॥७४॥

प्रतिमांकल्पयेच्छिल्पीयथारुच्यपरैः स्मृता ।
श्वेतास्मृतासात्विकीतुपीतारक्तातुराजसी ॥

प्रतिमाकी कल्पना शिल्पी करै अन्य पाषाणोंकी यथारुचि करनी कही है श्वेत प्रतिमा सत्त्वगुणी पीत और रक्त रजोगुणी होती है ॥ ७५ ॥

तामसीकृष्णवर्णातुयुक्तलक्ष्मयुतायदि ।
सौवर्णीराजतीताम्रीरैतिकीवाकृतादिषु॥७६॥

कृष्णवर्ण प्रतिमा तमोगुणी होती है यदि उक्तलक्षणोंसे युक्त हो अथवा सतयुग आदि में सुवर्ण चांदी तांबा पीतलकी प्रतिमा कही है ॥ ७६ ॥

शांकरीश्वेतवर्णावाकृष्णवर्णातुवैष्णवी ।
सूर्यशक्तिगणेशानांताम्रवर्णास्मृतापिच ॥

शिवजीकी प्रतिमा श्वेतवर्ण, विष्णुकी कृष्णवर्ण और सूर्य देवी गणेश इनकी तांबेके वर्णके समान प्रतिमा कही है ॥ ७७ ॥

लौहीसीसमयीवापियथोद्दिष्टास्मृताबुधैः ॥
चलार्चायांस्थिरार्चायांप्रासादाद्युक्तलक्षणम् ।
प्रतिमांस्थापयेन्नान्यांसर्वसौख्यविनाशिनीम् ॥
सेव्यसेवकभावेषुप्रतिमालक्षणंस्मृतम् ॥७९ ॥

लोहे वा सीसेकी शास्त्रोक्तरीतिसे विद्वानोंने कही है, चलकी पूजा वा स्थिरकी पूजामें प्रासाद (मंदिर) आदिके उक्त लक्षणवाली प्रतिमाको स्थापन करे और सब सुखोंको नष्ट करनेवाली अन्य प्रतिमाको स्थापन न करै और सेव्यसेवक भावमें भीप्रतिमाका लक्षण कहा है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

प्रतिमायाश्चयेदोषाह्यर्चकस्यतपोबलात् ।
सर्वत्रेश्वरचित्तस्यनाशंयांतिक्षणात्किल ८० ॥

जो प्रतिमाके दोष हैं वे ईश्वरमें है चित्त जिसका ऐसे पूजा करनेवालेके तपोबलसे क्षणमात्रमें ही निश्चयसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ८० ॥

देवतायाश्चपुरतोमंडपेवाहनंन्यसेत् ।
द्विबाहुर्गरुडःप्रोक्तःसुचंचुस्वक्षिपक्षयुक् ८१॥

देवताके आगे मंडपमें वाहनोंका न्यास (स्थापन) करै दो भुजावाला श्रेष्ठ चंचु नेत्र पक्षवाला गरुड कहा है ॥ ८१ ॥

नराकृतिश्चंचुमुखोमुकुटीकवचांगदी ।
बद्धांजलिर्नम्रशीर्षःसेव्यपादाब्जलोचनः ८२॥

नरके समान आकार चंचु जिसके मुखमें हो, मुकुट कवच अंगद धारण किये हो हाथ जोडे हो नम्रशिर हो सेव्य (देवता) के चरण कमलमें जिसके नेत्र हों ऐसा गरुड आदि वाहन हो ॥ ८२ ॥

वाहनत्वंगतायेयेदेवतानांचपक्षिणः ।
कामरूपधरास्तेतेतथासिंहवृषादयः ॥८३ ॥

जो पक्षी देवताओंके वाहन हुए हैं वे सब कामरूपधारी अथवा सिंह वृष आदि ॥ ८३ ॥

स्वनामाकृतयश्चैतेकार्यादिव्यायुधैः सदा ।
सुभूषितादेवताग्रमंडपेध्यानतत्पराः ॥८४॥

अपने नामकी आकृति दिव्य (सुंदर) आयुधों सहित सदैव करने और ऐसे बनाने जो भली प्रकार भूषित और देवताके आगे मंडपमें ध्यानके विषय तत्पर हों ॥ ८४ ॥

मार्जाराकृतिकःपीतःकृष्णचिह्नोबृहद्वपुः ।
असटोव्याघ्रइत्युक्तःसिंहःसूक्ष्मकटिर्महान् ॥

बिलावके समान जिसका आकार पीला कृष्णचिह्न, बडाशरीर हो और गरदनमें बाल नहीं वह व्याघ्र कहा है और कटि पतली और रूप महान् हो वह सिंह कहा है ॥ ८५ ॥

बृहद्भ्रूगंडनेत्रस्तुभालरोमामनोहरः ।
सटावान्धूसरोऽकृष्णलांछनश्चमहाबलः॥८६॥

जिसकी भृकुटी, गंडस्थल, नेत्र बडे हों मस्तक पर रेखा हो मनोहर हो, केसर युक्त हो, धूसर रंग हो और काला चिह्न न हो, महाबली हो ऐसा सिंह होता है ॥ ८६ ॥

भेदःसटालंछनतोनाकृत्याव्याघ्रसिंहयोः ।
गजाननंनराकारध्वस्तकर्णपृथूदरम् ॥ ८७ ॥

सटा (केसर) चिह्नको छोड स्वरूपमें व्याघ्र सिंहका कोई भेद नहीं है, गजाननकी मूर्ति नराकारकी हो, जिसके कान ध्वस्त हों पेट बडा हो ॥ ८७ ॥

बृहत्संक्षिप्तगहनपीनस्कंधांघ्रिपाणिनम् ।
बृहच्छुंडंभग्नवामरदाभिच्छितवाहनम् ॥८८ ॥

बडे संक्षिप्त गहन पुष्ट हैं स्कंध, चरण, हाथ जिसके और बडी शुंड, टूटा वाम दांत और यथेच्छ हैं वाहन जिसका. ऐसी ॥ ८८ ॥

ईषत्कुटिलदंडाग्रवामशुंडमदक्षिणम् ।
संध्यस्थिधमनीगूढंकुर्यात्मानामितंसदा ८९ ॥

कुछेक कुटिल शुंडका अग्र हो, वामभुजा पर शुंड हो दक्षिण पर नहीं और संधि अस्थि धमनी (नाडी) ये सब जिसकी ढकी हों ऐसी गणेशकी मूर्ति सदैव प्रमाणसे बनावे ॥ ८९ ॥

सार्धश्चतुस्तालमितःशुंडादंडःसमस्ततः ।
दशांगुलंमस्तकंचभ्रूगंडश्चतुरंगुलः ॥ ९० ॥

संपूर्ण शुण्डका दंड साढेचार तालका हो, दश अंगुलका मस्तक और चार अंगुलका भृकुटियोंका गंडस्थल हो ॥ ९० ॥

नासोत्तरोष्ठरूपाचशेषशुंडासपुष्करा ।
दशांगुलंकर्णदैर्घ्यंतदष्टांगुलविस्तृतम् ९१ ॥

नासिका और ऊपरके ओष्ठरूप जो शुंड वह पुष्कर सहित हो, कानोंकी लंबाई दश अंगुल और चोडाई आठ अंगुल हो ॥ ९१ ॥

कर्णयोरंतरंव्यासोद्व्यंगुलस्तालसंमितः ।
मस्तकेऽस्यैवपरिधिर्ज्ञेयःषट्त्रिंशदंगुलः ९२

कानोंके मध्यका व्यास दो अंगुल ऊपर एक ताल होता है और इसके मस्तककी परिधि छत्तीस अंगुल होती है ॥ ९२ ॥

नेत्रोपांतेचपरिधिःशीर्षतुल्यःसदामतः ।
सद्व्यंगुलद्वितालःस्यान्नेत्राधःपरिधिःकरे ९३

नेत्रोंके समीपकी परिधि शिरके तुल्य कही है और हाथीके नेत्रोंके नीचेकी परिधि दो अंगुल और दो ताल होती है ॥ ९३ ॥

कराग्रपरिधिर्ज्ञेयः पुष्करेचदशांगुलः ।
त्र्यंगुलंकंठदैर्घ्यंतत्परिधिस्त्रिंशदंगुलः ॥९४ ॥

हाथके और पुष्करके अग्रभागकी परिधि दश अंगुल कंठकी लंबाई तीन अंगुल और कंठकी परिधि तीस अंगुल होतीहै ॥ ९४ ॥

परिणाहस्तूदरेचचतुस्तालात्मकः सदा ।
षडंगुलोनियोक्तव्याष्टांगुलोवापिशिल्पिभिः ॥

उदरका विस्तार सदैव चारतालका होता है परंतु शिल्पी उसमें छः अंगुल वा आठ अंगुल और मिला दें ॥ ९५ ॥

दंतः षडंगुलोदीर्घस्तन्मूलपरिधिस्तथा ।
षडंगुलश्चाधरोष्ठःपुष्करंकमलान्वितम् ॥९६ ॥

छः अंगुलका मोटा दंत होता है और उसके मूलकी परिधि भी तितनीही होती है और नीचेका ओष्ठ छःअंगुल हो और पुष्कर (शुंड) कमल सहित बनानी चाहिये ॥ ९६ ॥

ऊरुमूलस्यपरिधिःषट्त्रिंशदंगुलोमतः ।
त्रयोविंशत्यंगुलःस्यादूर्वग्रपरिधिस्तथा ॥९७ ॥

ऊरूके मूलकी परिधि छत्तीस अंगुल मानी है और ऊरूके अग्रभागकी परिधि तेईस अंगुलकी होती है ॥ ९७ ॥

जंघामूलेतुपरिधिर्विंशत्यंगुलसंमितः ।
परिधिर्बाहुमूलादग्रेधिकोद्व्यंगुलोंगुलः ॥९८॥

जंघाके मूलकी परिधि बीस अंगुलकी होती है और बाहुके मूल और अग्रभागकी परिधि दो अंगुल वा क्रमसे एक अंगुल अधिक बीस अंगुल होती है ॥ ९८ ॥

कर्णनेत्रांतरंनित्यंविज्ञेयंचतुरंगुलम् ।
मलमध्यायांततुदशसप्तषडंगुलम् ॥ ९९ ॥

कान और नेत्रोंका अंतर सदैव चार अंगुलका होता है और नेत्रोंके मूल मध्य अ-ग्रका अंतर क्रमसे दश सात छः अंगुल होता है ॥ ९९ ॥

नेत्रयोःकथितंतज्ज्ञैर्गणपस्यविशेषतः ।
उत्सेधःपृथुतास्त्रीणांस्तनेपंचांगुलामता१००

तिलके ज्ञाताओंने गणेशके नेत्रोंकी ऊंचाई विशेषकर पूर्वोक्त कहीहैऔर स्त्रियोंकेस्तनोंका ऊंचाई और लंबाई पांच अंगुल मानी है१००॥

स्त्रीकट्यांपरिधिःप्रोक्तस्त्रितालोद्व्यंगुलाधिकः।
स्त्रीणामवयवान्सर्वान्सप्ततालैर्विभावयेत् ॥१॥

स्त्रियोंकी कमरकी परिधि दो अंगुल ऊपर तीन तालकी और स्त्रियोंके संपूर्ण अवयव सात तालके होते हैं ॥ १ ॥

सप्ततालादिमानेपिमुखंस्याद्द्वादशांगुलम् ।
बालादीनामपिसदादीर्घतातुपृथक्पृथक् ॥२॥

सप्त तालके प्रमाणमें भी मुख बारह अंगुलका होता है और बाल (केश) आदिकी दीर्घता भी पृथक् २ होती है ॥ २ ॥

शिशोस्तुकंधराह्रस्वापृथुशीर्षंप्रकीर्तितम् ।
कंठाधोवर्धतेयाद्दक्ताद्दक्शीर्षंनवर्धते ॥ ३ ॥

बालककी ग्रीवा छोटी और शिर बडा होता है और कंठसे नीचे जितना बालक बढता है उतना शिर नहीं बढता ॥ ३ ॥

कंठाधोमुखमानेनवृत्तसार्धंचतुर्गुणम् ।
द्विगुणःशिश्नपर्यतोह्यधःशेषंतुसक्थितः ॥४॥

कण्ठके नीचे मुखके प्रमाणसे साढे चार-गुना और नीचेका शेष सक्थिसे लेकर लिंग-पर्यन्त दो गुना बढता है ॥ ४ ॥

सपादद्विगुणौहस्तौद्विगुणौवामुखेनहि ।
स्थौल्येतुनियमोनास्तियथाशोभंप्रकल्पयेत् ॥

और मुखसे सवा दो गुने वा दुगुने हाथ बढते हैं और स्थूलता (मोटाई) में नियम नहीं उसको शोभाके अनुसार रचना ॥ ५ ॥

नित्यंप्रवर्धतेबालःपंचाब्दात्परतोभृशम् ।
स्यात्षोडशेब्देसर्वांगःपूर्णास्त्रीविंशतौपुमान् ६

पांच वर्षसे ऊपरकी अवस्थामें बालक अत्यन्त बढता है और सोलह वर्षमें स्त्री और बीस वर्ष पुरुष सम्पूर्ण अंगोंसे पूर्ण हो जाता है ॥ ६ ॥

ततोर्हतिप्रमाणंतुसप्ततालादिकंसदा ।
कश्चिद्बाल्येपिशोभाढ्यस्तारुण्येवार्धकेक्वचित्

फिर सप्तताल आदि प्रमाणके योग्य हो जाता है और बाल्य अवस्थामें और कोई यौवनमें और वृद्ध अवस्थामें शोभासे युक्त होता है ॥ ७ ॥

मुखाधस्त्र्यंगुलाग्रीवाहृदयंतुनवांगुलम् ।
तथोदरंचबस्तिश्चसक्थित्वष्टादशांगुलम् ॥८॥

मुखके नीचे ग्रीवा तीन अंगुल हृदय नव अंगुल होता है तिसी प्रकार उदर बस्ति सक्थि अठारह अंगुल होती है ॥ ८ ॥

त्र्यंगुलंतुभवेज्जानुजंघात्वष्टादशांगुला ।
गल्फाधस्त्र्यंगुलंज्ञेयंसप्ततालस्यसर्वदा ॥ ९ ॥

जानु तीन अंगुल और जंघा अठारह अंगुल और गुल्फके नीचेका भाग तीन अंगुलका सात तालके मनुष्यका सदैव होता है ॥ ९ ॥

वेदांगुलाभवेद्ग्रीवाहृदयंतुदशांगुलम् ।
दशांगुलंचोदरंस्याद्बस्तिश्चैवदशांगुलः १० ॥

और चार अंगुलकी ग्रीवा दश अंगुलका हृदय उदर और बस्ति दश अंगुलकी हो ॥१०॥

एकविंशांगुलंसक्थिजानुस्याच्चतुरंगुलम् ।
एकविंशांगुलाजंघागुल्फाधश्चतुरंगुलम् ॥

इक्कीस अंगुल सक्थि चार अंगुल जानु इक्कीस अंगुल जंघा गुल्फ (टकने) के नीचे चार अंगुलका प्रमाण ॥ ११ ॥

अष्टतालप्रमाणस्यवानुक्तमिदंसदा ।
त्रयोदशांगुलंकेशांतंमुखंहृदयंतथा ॥ १२ ॥

आठ तालके प्रमाण मनुष्यका सदैव कहाहै मुख और हृदय तेरह अंगुलका होता है ॥ १२ ॥

उदरंचतथावस्तिर्दशतालेषुसर्वदा ।
गुल्फाधश्चतथाग्रीवाजानुपंचांगुलंस्मृतम् ॥

उदर और वस्ति दश अंगुलकी दश तालके मनुष्यकी होती है गुल्फके नीचेका भाग, जानु और ग्रीवा पांच अंगुलके कहे हैं ॥ १३ ॥

षड्विंशत्यंगुलंसक्थितथाजंघाप्रकीर्तिता ।
एकांगुलेमूर्ध्निमणिर्दशतालेप्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥

छब्बीस अंगुल सक्थि और दश अंगुल जंघा कही है तालके मनुष्यमें मस्तककी मणि चार अंगुलकी कही है ॥ १४ ॥

पंचाशदंगुलौबाहूदशतालेस्मृतौसदा ।
द्व्यंगुलोद्व्यंगुलौचोनौततोहीनप्रमाणके १५॥

दश तालके मनुष्यकी भुजा पचास अंगुलकी होती है और उससे अल्प प्रमाणके मनुष्यकी भुजा दो दो अंगुल कम होती है ॥ १५ ॥

पाटवंतुयथाशोभिसर्वमानषुकल्पयेत् ।
नवतालप्रमाणेनह्यूनाधिक्यंप्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥

सब प्रमाणके मनुष्योंमें शोभाके अनुसार चतुराईकी कल्पना करे और नौ तालके मनुष्यके न्यूनाधिककी कल्पना न करे ॥ १६ ॥

दशतालेतुविज्ञेयौपादौपंचदशांगुलौ ।
एकैकांगुलहीनौस्तस्ततोन्यूनप्रमाणके १७ ॥

दश तालके मनुष्यमें चौदह अंगुलके पैर जानने और उससे न्यून मनुष्यके प्रमाणमें एक २ अंगुल कम होते हैं ॥ १७ ॥

नपंचांगुलतोहीनानषडंगुलतोधिका ।
करस्यमध्यमाप्रोक्ताव्युरुमानेषुसद्विदैः १८ ॥

हाथकी मध्यमा अंगुलसे कम और छः अंगुलसे अधिक विद्वानोंने अधिकसे अधिक मानमें नहीं कही है ॥ १८ ॥

क्वचित्तुबालसदृशंसदैवतरुणंवयः ।
मूर्तीनांकल्पयेच्छिल्पीनवृद्धसदृशंक्वचित् ॥

कहीं तरुण अवस्था भी बालके सदृश होती है और शिल्पी वृद्धके सदृश मूर्त्तियोंकी कल्पना कभी न करे ॥ १९ ॥

एवंविधान्नृपोराष्ट्रेदेवान्संस्थापयेत्सदा ।
प्रतिसंवत्सरंतेषामुत्सवान्सम्यगाचरेत् ॥ २० ॥

राजा ऐसे देवताओंका स्थापन अपने राज्यमें सदैव करे, प्रतिवर्ष उन उनके उत्सवोंको भली प्रकार करे ॥ २० ॥

देवालयेमानहीनांमूर्तिंभग्नांनधारयेत् ।
प्रासादांश्चतथादेवाञ्जीर्णानुद्धृत्ययत्नतः ॥

प्रमाणसे रहित और टूटी फूटी मूर्तिको देवालयमें न रहने दे, जीर्ण मन्दिर और देवताओंका यत्नसे उद्धार करके ॥ २१ ॥

देवतांतुपुरस्कृत्यनृत्यादीन्वीक्ष्यसर्वदा ।
नमत्तःस्वोपभोगार्थीविदध्याद्यत्नतोनृपः २२ ॥

देवदर्शन और नृत्यको देखकर प्रसन्नचित्त राजा अपने उपभोगके लिये यत्न न करे ॥ २२ ॥

प्रजाभिर्विधृतायेयेह्युत्सवास्तांश्चपालयेत् ।
प्रजानंदेनसंतुष्येत्तद्दुःखैर्दुःखितोभवेत् २३ ॥

और जिन उत्सवोंको प्रजा करती हो तिनकी सदैव पालना करे, प्रजाके आनन्दसे और दुःखसे दुःखित हो ॥ २३ ॥

दुष्टनिग्रहणंकुर्याद्व्यवहारानुदर्शनैः ।
स्वाज्ञयावर्तितुंशक्तयाऽधीनाजाताचसाप्रजा ॥

और व्यवहारोंके देखनेसे दुष्टोंको दंड क्योंकि जो प्रजा अपने आधीन हो वह अपनी आज्ञामें रह सकती है ॥ २४ ॥

स्वेष्टहानिकरःशत्रुर्दुष्टःपापप्रचारवान् ।
इष्टसंपादनंन्याय्यंप्रजानांपालनंहितत् ॥ २५ ॥

जो अपने इष्टकी हानि करे पापाचारी हो वह शत्रु होता है इष्ट (वांछित) की सम्पत्ति करना उचित हो क्योंकि इसीको प्रजाका पालन कहते हैं ॥ २५ ॥

शत्रोरनिष्टकरणान्निवृत्तिःशत्रुनाशनम् ।
पापाचारनिवृत्तिर्यैर्दुष्टनिग्रहणंहितत् ॥ २६ ॥

शत्रुको अनिष्ट न करने देनेको शत्रुनाशन कहते हैं और जिनसे पापाचरणोंकी निवृत्ति हो उसे दुष्टनिग्रहण कहते हैं ॥ २६ ॥

स्वप्रजाधर्मसंस्थानंसदसत्प्रविचारतः ।
जायतेचार्थसंसिद्धिर्व्यवहारस्तुयेनसः ॥२७॥

साधु असाधुके विचारसे अपनी प्रजाको धर्ममें स्थापन करे और जिसे अर्थ सिद्ध होय उसे व्यवहार कहते हैं ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः ।
सप्राड्विवाकःसामात्यःसब्राह्मणपुरोहितः२८॥

क्रोध लोभसे रहित और प्राड्विवाक (वकील) मन्त्री ब्राह्मण पुरोहित इन कर्के सहित राजा धर्मशास्त्रके अनुसार ॥ २८ ॥

समाहितमतिःपश्येद्व्यवहारानअनुक्रमात् ।
नकैःपश्येच्चकार्याणिवादिनोःशृणुयाद्वचः२९

सावधान मन होकर क्रमसे व्यवहारों (मुकदमे)को देखे और वादियों (मुद्दईमुद्दाले) के कार्य्योंको अकेला न देखे और उनके वचनोंको ॥ २९ ॥

रहसिचनृपःप्राज्ञःसभ्याश्चैवकदाचन ।
पक्षपाताधिरोपस्यकारणानिचपंचवै ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् राजा और सभासद एकांतमें कदाचित् न सुने पक्षपात करनेके ये पांच कारण होते हैं कि ॥ ३० ॥

रागलोभभयद्वेषावादिनोश्चरहःश्रुतिः ।
पौरकार्याणियोराजानकरोतिसुखेस्थितः ३१॥

राग (प्रीति) लोभ भय वैर और एकांतमें वादी प्रतिवादीका वचन सुनना जो राजा सुखमें स्थित हुआ पुरवासियोंके कार्य्योंको नहीं करता ॥ ३१ ॥

व्यक्तंसनरकेघोरेपच्यतेनात्रसंशयः ।
यस्त्वधर्मेणकार्याणिमोहात्कुर्यान्नराधिपः ३२॥

यह प्रकट है इसमें संशय नहीं वह घोर नरकमें पडता है जो राजा विना जाने अधर्मसे कार्य्योंको करता है ॥ ३२ ॥

अचिरात्तंदुरात्मानंवशेकुर्वंतिशत्रवः ।
अस्वर्ग्यालोकनाशायपरानीकभयावहा ३३॥

उस दुरात्माको शत्रुजन थोडे ही कालमें वशकर लेत हे नरककी दाता जगतकी नाशक शत्रुसेना को भय देनेवाली ॥ ३३ ॥

आयुर्बीजहरीराज्ञामस्तिवाक्येस्वयंकृतिः ।
तस्माच्छास्त्रानुसारेणराजाकार्याणिसाधयेत् ॥

अवस्थाके बीजको नाशक शक्ति राजाओंके वाक्यमें स्वयं सिद्ध होती है तिससे राजा शास्त्रोंके अनुसार कार्य्योंको सिद्ध करे ॥ ३४ ॥

यदानकुर्यान्नृपतिःस्वयंकार्यविनिर्णयम् ।
तदातत्रनियुंजीतब्राह्मणंवेदपारगम् ॥३५॥

जिस समय राजा कार्योंका निर्णय न करे उस समय कार्यनिर्णयके लिये ऐसे ब्राह्मणको नियत करे जो वेदोंका पारगामी हो ॥ ३५ ॥

दांतंकुलीनंमध्यस्थमनुद्वेगकरंस्थिरम् ।
परत्रभीरुंधर्मिष्ठमुद्युक्तंक्रोधवर्जितम् ॥३६ ॥

और दान्त (जितेन्द्रिय) कुलीन मध्यस्थ (समबुद्धि) अनुद्वेगकारी (कोमलवचन) स्थिरबुद्धि परलोकसे भीरु (डरनेवाला) धर्मिष्ठ उद्योगी और क्रोधसे रहित हो ॥३६॥

यदाविप्रोनविद्वान्स्यात्क्षत्रियंतान्नियोजयेत् ।
वैश्यंवाधर्मशास्त्रज्ञंशूद्रंयत्नेनवर्जयेत् ॥३७ ॥

यदि विद्वान् ब्राह्मण न मिले तो क्षत्री, क्षत्री न मिले तो धर्मशास्त्रके ज्ञाता वैश्यको उस पदपर नियत करे शूद्रको तो यत्नसे वर्ज दे ॥ ३७ ॥

यद्वर्णजोभवेद्राजायोज्यस्तद्वर्णजःसदा ।
तद्वर्णएवगुणिनःप्रायशःसंभवंतिहि ॥ ३८ ॥

जिस वर्णका राजा हो उसी वर्णके मनुष्यको नियत करे क्योंकि उसी वर्णमें प्रायः गुणवान् मनुष्य होते हैं ॥ ३८ ॥

व्यवहारविदःप्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ।
रिपौमित्रेसमायेचधर्मज्ञाःसत्यवादिनः॥३९ ॥

व्यवहारके ज्ञाता आचारशील और गुणोंसे संयुक्त शत्रु और मित्रमें समान धर्मज्ञ सत्यवादी जो हों ॥ ३९ ॥

निरालसाजितक्रोधकामलोभाःप्रियंवदाः ।
राज्ञानियोजितव्यास्तेसभ्याःसर्वासुजातिषु ४० ।

निरालसी क्रोध काम लोभ ये जिन्होंने जीते हों, प्रियवादी हों ऐसे सभासद सब जातियोंमेंसे राजाने नियुक्त करने ॥ ४० ॥

कीनाशाःकारुकाःशिल्पिकुसीदिश्रेणिनर्तकाः
लिंगिनस्तस्कराःकुर्युःस्वेनधर्मेणनिर्णयेत् ॥४१

किसान, कारीगर (शिल्पी) व्यवहारी नर्तक संन्यासी चोर ये सब अपने धर्मसे निर्णय करे ॥ ४१ ॥

अशक्योनिर्णयोह्यन्यैस्तज्जैरेवतुकारयेत् ।
आश्रमेषुद्विजातीनांकार्येविवदतांमिथः॥४२॥

क्योंकि इनके निर्णयको अन्य नहीं करसकते इन्हींकी जातिसे निर्णय करावे जो द्विजाति अपने आश्रमोंके कार्योंमें परस्पर विवाद करते हों ॥ ४२ ॥

नविब्रूयान्नृपोधर्मंचिकीर्षुर्हितमात्मनः ।
तपस्विनांतुकार्याणित्रैविद्यैरेवकारयेत्॥४३ ॥

वहां अपने हित चाहनेवाला राजा धर्मके विरुद्ध न कहै और तपस्वियोंके कार्योंको तीनों वेदपाठी ब्राह्मणोंसे करावै ॥ ४३

मायायोगाविदांचैवनस्वयंकोपकारणात् ।
सम्यग्विज्ञानसंपन्नेनोपदेशंप्रकल्पयेत् ॥४४॥
उत्कृष्टजातिशीलानांगुर्वाचार्यतपस्विनाम् ।

मायावी और योगियोंके कार्यको क्रोधके डरसे राजा स्वयं न करै और भलीप्रकार ज्ञानवान् मनुष्यको उपदेश न करै उत्तम जाति तथा शीलवाले और गुरु आचार्य तपस्वियोंकेभी ॥ ४४ ॥

आरण्यास्तुस्वकैःकुर्युःसार्थिकाःसार्थिकैःसह॥

वनके वासी और सार्थिक (साझी) इनके कार्य इनकेही सङ्ग मिलकर करे ॥ ४५ ॥

सैनिकाःसैनिकैरेवग्रामेष्युभयवासिभिः ।
अभियुक्ताश्चयेयत्रयन्निबंधंनियोजयेत्॥४६ ॥

सैनिकों (सेनाके योद्धा)के कार्य सैनिकोंके संग और ग्रामवासियोंके कार्य ग्राम और वनवासियोंके संग बैठकर करे जिसपदपर जो नियुक्तहो उनका निबंध जो राजाने नियत कर दिया हो ॥ ४६ ॥

तत्रत्यगुणदोषाणांतएवहिविचारकाः ।
राजातुधार्मिकान्सभ्यान्नियुंज्यात्सुपरीक्षितान् ॥ ४७ ॥

उसके गुण और दोषोंके विचार करनेवाले वे ही होते हैं परंतु राजा धार्मिक और भलीप्रकार परीक्षा करनेवाले सभासदोंको नियत करे ॥ ४७ ॥

व्यवहारधुरंवोढुंयेसक्ताःपुंगवाइव ।
लोकवेदज्ञधर्मज्ञाःसप्तपंचत्रयोपिवा ॥ ४८॥

जो व्यवहारके बोझा उठानेमें ऐसे समर्थ हों कि जैसे बैल और जो लोक वेद धर्म इनके ज्ञाता हों और सात पांच तीन हों ॥ ४८ ॥

यत्रोपविष्टाविप्राःस्युःसायज्ञसदृशीसभा ।
श्रोतारोवणिजस्तत्रकर्तव्याः सुविचक्षणाः ॥

जिससभामें ब्राह्मण बैठेहों वह सभा यज्ञसमान होती है और उससभामें अच्छे पण्डित कार्योंके सुननेवाले वैश्य राजाने नियत करने ॥ ४९ ॥

अनियुक्तोनियुक्तोवाधर्मज्ञोवक्तुमर्हति ।
दैवींवाचंसवदतियःशास्त्रमुपजीवति ॥ ५० ॥

राजाका नियुक्तहो वा अनियुक्त धर्मज्ञाता सभामें बोल सक्ता है क्योंकि जो शास्त्रको जानता है वह दैवीवाणीको कहताहै ॥ ५० ॥

सभावानप्रवेष्टव्यावक्तव्यंवासमंजसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवंश्चापिनरोभवतिकिल्बिषी ॥

यातो मनुष्य सभामें जाय नहीं और जाय तो यथार्थ कहै क्योंकि न बोलने विरुद्ध बोलनेसे मनुष्यको पातक लगता है ॥ ५१ ॥

राज्ञायेविदिताःसम्यक्कुलश्रेणिगणादयः ।
साहसस्तेयवर्ज्यानिकुर्युः कार्याणितेनृणाम् ॥
विचार्यश्रेणिभिःकार्यंकुलैर्यन्नविचारितम् ।
गणैश्चश्रेण्यविज्ञातंगणाज्ञातंनियुक्तकैः ॥५३॥

जिन कुलश्रेणी गण आदिको राजा भली प्रकार जानता हो वे मनुष्योंके उन कार्योंको करे जिनमें साहस (हित) चोरीका सम्बंध न हों ॥ ५२ ॥ जिस कार्यका विचार कुलवालोंकी बुद्धिमें न आयाहो उस कार्यको विचारकर श्रेणी करे श्रेणियोंके बिना जाने कार्यको गण करे गणके बिना जानेको राजाका अधिकारी पुरुष करे ॥ ५३ ॥

कुलादिभ्योधिकाःसभ्यास्तेभ्योध्यक्षोऽधिकः
कृतः ।सर्वेषामधिकोराजाधर्माधर्मनियोजकः॥

कुलसे अधिक सभासद और सभासदोंसे अधिक अधिपति (मन्त्री) और सबसे अधिक धर्म अधर्मका नियुक्त करनेवाला राजा होता है॥ ५४ ॥

उत्तमाऽधममध्यानांविवादानांविचारणात् ।
उपर्युपरिबुद्धीनांचरंतीश्वरबुद्धयः ॥ ५५ ॥

उत्तम मध्यम अधम जो विवाद उनके विचार करनेसे सब बुद्धियोंके ऊपर ईश्वर (राजा) की बुद्धि विचरती हैं ॥ ५५ ॥

एकंशास्त्रमधीयानोनविंद्यात्कार्यनिर्णयम् ।
तस्माद्बह्वागमःकार्योविवादेषूत्तमोनृपैः ॥

एक शास्त्रका पढा हुआ मनुष्य कार्यके निर्णयको नहीं जानसकता तिससे राजा विवादोंके निर्णयार्थ ऐसे उत्तम मनुष्यको नियत करै जिसने बहुत शास्त्र पढे हों ॥ ५६ ॥

सव्रतेयंसधर्मःस्यादेकोवाध्यात्मचिन्तकः ।
एकद्वित्रिचतुर्वारंव्यवहारानुचिंतनम् ॥ ५७ ॥

वह और अध्यात्म (ब्रह्म) की चिंता करनेवाला एकभी जिसको कहै वह धर्म होता है और एक दो तीन बार व्यवहारोंका अनुचिंतन ॥ ५७ ॥

कार्यंपृथक्पृथक्सभ्यैराज्ञाश्रेष्ठोत्तरैः सह ।
अर्थिप्रत्यर्थिनौसभ्यैर्लेखकप्रेक्षकांश्चयः ५८ ॥

पृथक् २ क्रमसे श्रेष्ठ सभासदोंके संग बैठ कर करै और अर्थिप्रत्यर्थि (मुदई मुद्दाले) सभासद लेखक और देखने वालोंको जो ॥ ५८ ॥

धर्मवाक्यैरंजयतिसभ्यस्तारायिताभयात् ।
नृपोधिकृतसभ्याश्चस्मृतिर्गणकलेखकौ ५९॥

धर्मके काक्योंसे प्रसन्न करै वह सभासदोंको भयसे निवृत्त करता है राजा अधिकारी (मंत्री), सभासद, धर्मशास्त्र, गणक, लेखक ॥ ५९ ॥

हेमाग्न्यंबुस्वपुरुषाःसाधनांगानिवैदश ।
एतद्दशांगकरणंयस्यामध्यस्यपार्थिवः ॥ ६०॥

सुवर्ण, अग्नि जल और राजाके पुरुष (सिपाही) ये दश कार्यसिद्धिके अंग हैं इस दश अंगरूप सामग्री सहित राजा जिसमें बैठ कर ॥ ६० ॥

न्यायान्याय्येकृतमतिःसासभाध्वरसन्निभा ।
दशानामपिचैतेषांकर्मप्रोक्तंपृथक्पृथक्॥६१॥

न्याय और अन्यायमें बुद्धिको करता है वह सभा यज्ञके तुल्य है और इन दशोंका कर्मभी पृथक् २ कहा है ॥ ६१ ॥

वक्ताध्यक्षोनृपःशास्तासभ्याःकार्यपरीक्षकाः ।
स्मृतिर्विनिर्णयंब्रूतेजयंदानंदमंतथा ॥ ६२ ॥

अध्यक्ष (मंत्री) पढकर सुनावे राजा शिक्षादे, सभासद कार्यकी परीक्षा करैं धर्मशास्त्र उसके निर्णयको और जय दान दमको कहता है ॥ ६२ ॥

शपथार्थेहिरण्याग्नीअंबुतृषितक्षुब्धयोः ।
गणकोगणयेदर्थंलिखेन्न्याय्यंचलेखकः ॥

शपथ (सौगंध) के लिये सुवर्ण, अग्नि, तृषावान् और क्रोधीके लिये जल गणक अर्थ (द्रव्य आदि) को गिने और लेखक न्यायको लिखे ॥ ६३ ॥

शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौगणनाकुशलौशुची ।
नानालिपिज्ञौकर्तव्यौराज्ञागणकलेखकौ ॥

शब्द बोलनेके तत्त्वको जाननेवाले, गिनतीमें कुशल और शुद्ध अनेक लिपिके ज्ञाता जो हों ऐसे गणक और लेखक राजाको नियत करने ॥ ६४ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेणअर्थशास्त्रविवेचनम् ।
यत्राधिक्रियतेस्थानेधर्माधिकरणंहितत् ॥

जिस स्थानमें धर्मशास्त्रके अनुसार अर्थशास्त्र (व्यवहार) का विवेचन होनेका अधिकरण (प्रस्ताव) हो उस स्थानको धर्माधिकरण कहते हैं ॥ ६५ ॥

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तुब्राह्मणैःसहपार्थिवः ।
मंत्रज्ञैर्मंत्रिभिश्चैवविनीतःप्रविशेत्सभाम् ६६॥

व्यवहार देखनेका अभिलाषी राजा नम्र होकर ब्राह्मण और मंत्रके ज्ञाता मंत्रियों सहित सभामें प्रवेश करै ॥ ६६ ॥

धर्मासनमधिष्ठायकार्यदर्शनमारभेत् ।
पूर्वोत्तरसमोभूत्वाराजापृच्छेद्विवादिनोः ॥६७॥

राजा धर्मासन (राजगद्दी) पर बैठकर कार्योंके देखनेका प्रारंभ करै और प्रारंभ तथा अंतमें समान (इकसा) होकर विवादियोंको पूछे ॥ ६७ ॥

प्रत्यहंदेशदृष्टैश्चशास्त्रदृष्टैश्चहेतुभिः ।
जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणिधर्मांस्तथैवच ॥

प्रतिदिन देश तथा शास्त्रमें देखे हेतुओंसे जाति देश और श्रेणियोंके धर्मोंको ॥ ६८ ॥

समीक्ष्यकुलधर्मांश्चस्वधर्मंप्रतिपालयेत् ।
देशजातिकुलानांचयेधर्माःप्राक्प्रवर्तिताः ॥

और कुलके धर्मोंको देखकर अपने धर्मकी पालना करै और देश जाति कुल इनके जो धर्म पूर्व वर्णन किये हैं ॥ ६९ ॥

तथैवतेपालनीयाःप्रजाप्रक्षुभ्यतेन्यथा ।
उद्वह्यतेदाक्षिणात्यैर्मातुलस्यसुताद्विजैः ७० ।

उनकी पालना उसी प्रकार करै क्योंकि उनके अन्यथा करनेसे प्रजा क्षोभको प्राप्त हो जाती है दक्षिण देशके द्विज मातुलकी कन्याको विवाह लेते हैं ॥ ७० ॥

मध्यदेशेकर्मकराःशिल्पिनश्चगराशिनः ।
मत्स्यादाश्चनराःसर्वेव्यभिचाररताःस्त्रियः ॥

मध्यदेशके द्विज कर्म (सेवा) करते हैं शिल्पी हैं और विषको खाते हैं और सब नर मत्स्योंको खाते हैं, स्त्री व्यभिचारमें रत हैं ७१ ॥

उत्तरेमद्यपानार्यःस्पृश्यानृणांरजस्वला ।
खशजाताःप्रगृह्णन्तिभ्रातृभार्यामभर्तृकाम् ७२॥

उत्तरकी स्त्री मदिरा पीती हैं, मनुष्य रजस्वला स्त्रियोंको स्पर्श करते हैं। खश देशके मनुष्य अपने भ्राताकी विधवा स्त्रीको ग्रहण कर लेते हैं ॥ ७२ ॥

अनेनकर्मणानैतेप्रायश्चित्तदमार्हकाः ।
येषांपरंपराप्राप्ताःपूर्वजैरप्यनुष्ठिताः ॥ ७३ ॥

इस पूर्वोक्त अपने २ कर्मसे ये प्रायश्चित्त और दंडके योग्य नहीं हैं जिनके जो कर्म परंपरासे चले आये हों और पहिले पुरुषोंने भी किये हों ॥ ७३ ॥

तएवतैर्नदुष्येयुराचारान्नेतरस्यतु ।
न्यायान्पश्येत्तुमध्याह्नेपूर्वाह्णेस्मृतिदर्शनम् ७४॥

उनही कर्मोंसे वे दूषित नहीं होते और इतरके कर्मोंसे दूषित होतेही हैं राजा मध्याह्न के समय न्याय देखे और पूर्वाह्णमें स्मृति (धर्मशास्त्र)को देख ॥ ७४ ॥

मनुष्यमारणेस्तेयेसाहसेस्तोयिकेसदा ।
नकालनियमस्तत्रसद्यएवविवेचनम् ॥ ७५ ॥

मनुष्य मारना, चोरी, साहस और आवश्यक कार्यमें समयका कोई नियम नहीं है किन्तु उसी समय विवेचन करै ॥ ७५ ॥

धर्मासनगतंदृष्ट्वाराजानंमंत्रिभिः सह ।
गच्छेन्निवेद्यमानंयत्प्रतिरुद्धमधर्मतः ॥७६॥

मंत्रियों सहित राजाको धर्मासनपर बैठा देखकर जाय और जो निवेदन करना हो उसको अधर्मके त्यागपूर्वक (सत्य २) कहै ॥ ७६ ॥

यथासत्यंचिंतयित्वालिखित्वावासमाहितः ।
नत्वावाग्रांजलिःप्रह्वोह्यर्थीकार्यंनिवेदयेत् ७७॥

सत्यके अनुसार विचार कर, सावधानी से लिखकर और नवकर हाथ जोडकर नमस्कार करके अर्थी (मुद्दई) अपने कार्यको निवेदन करै ॥ ७७ ॥

यथार्हमेनमभ्यर्च्यब्राह्मणैःसहपार्थिवः ।
सांत्वेनप्रशमय्यादौस्वधर्मंप्रतिपादयेत् ॥७८॥

इस अर्थीको ब्राह्मणोंसहित राजा यथायोग्य सत्कार करके और प्रथम शांतिके वाक्योंसे समझाकर अपने धर्मको कहै ॥ ७८॥

कालेकार्यार्थिनंपृच्छेत्प्रणतंपुरतःस्थितम् ।
किंकार्यंकाचतेपीडामाभैषीर्ब्रूहिमानव ॥७९॥

नमन किये और आगे खडे हुए कार्यार्थीको समयपर पूछे कि तेरा क्या कार्य है और तुझे क्या पीडा (दुःख) है तू कह और हे मनुष्य ! भय मत कर ॥ ७९ ॥

केनकस्मिन्कदाकस्मात्पीडितोसिदुरात्मना ।
एवंपृष्टःस्वभावोक्तंतस्यसंशृणुयाद्वचः ।८०॥

किस दुरात्माने किस जगह किस समय और किस कारणसे तुझे दुःख दिया है इस प्रकार पूछकर उस अर्थीके स्वभावसे कहे हुए वचनको भली प्रकार सुने ॥ ८० ॥

प्रसिद्धलिपिभाषाभिस्तदुक्तंलेखकोलिखेत् ।
अन्यदुक्तंलिखेदन्यद्योर्थिप्रत्यर्थिनांवचः८१॥

प्रसिद्ध लिपि (अक्षर) और भाषामें उस अर्थीके कहे हुएको लेखक लिखे जो (लेखक) अर्थिप्रत्यर्थिके अन्य कहे वचनको अन्य लिखै ॥ ८१ ॥

चौरवत्त्रासयेद्राजा लेखकंद्रागतंद्रितः ।
लिखितंतादृशंसभ्यानविब्रूयुः कदाचन॥८२॥

उस लेखकको राजा चोरके समान उसी समय सावधान होकर दंड दे और सभासद् जो लिखा हो उसके विरुद्ध कदाचित् न भी कहैं ॥ ८२ ॥

बलाद्गृह्णंतिलिखितंदंडयेत्तांस्तुचौरवत् ।
प्राड्विवाकोनृपाभावेपृच्छेद्वसभागतम्८३॥

जो बलसे लिखकर ग्रहण करै उन सभासदोंको चोरके समान दंड दे और राजाके न होनेपर सभामें आये मनुष्यको प्राड्विवाक पूछे ॥ ८३ ॥

वादिनैपृच्छतिप्राड्वाविवाकोविविनक्त्यतः ।
विचारयतिसभ्यैर्वाधर्माऽधर्मौविवक्तिवा ८४ ॥

वादी विवादीको पूछनेसे प्राड् और सत्य असत्यके विवेक करनेसे विवाक अथवा सभासदोंके संग विचार और धर्म अधर्मके विवेकसे प्राड्विवाक (वकील) को कहते हैं ॥ ८४ ॥

सभायांयेहितायोग्याःसभ्यास्तेचापिसाधवः ।
स्मृत्याचारव्यपेतेनमार्गेणाधर्षितः परैः८५॥

जो सभासद सभामें हित और योग्य हों वे साधु (अच्छे) होते हैं, धर्मशास्त्र और लोकाचारसे भिन्न जो मार्ग उस रीतिसे अन्य मनुष्य जिसको दुःख दे और ॥ ८५ ॥

आवेदयतिचेद्राज्ञेव्यवहारपदंहितत् ।
नोत्पादयेत्स्वयंकार्यंराजानाप्यस्यपूरुषः८६ ॥

वह राजाके यहां आकर निवेदन करे वही व्यवहार (झगडा) का स्थान होता है और राजा वा राजाका कोई मनुष्य स्वयं व्यवहारको पैदा न करै ॥ ८६ ॥

नरागेणनलोभेननक्रोधेनग्रसेन्नृपः ।
परैरप्रापितानर्थान्नचापिस्वमनीषया ॥८७॥

राजा भी प्रीति लोभ क्रोधसे व्यवहार न ग्रसे (छिपावे) और दूसरोंने नहीं प्राप्त हुए अर्थाका अपनी बुद्धिसे न उठावे ॥ ८७ ॥

छलानिचापराधांश्चपदानिनृपतेस्तथा ।
स्वयमेतानिगृह्णीयान्नृपस्त्वावेदकैर्विना॥८८॥

छल अपराध और राजाकी पदवी इनको तो राजा निवेदन करनेवालोंके विना भी ग्रहण करले ॥ ८८ ॥

सूचकस्तोभकाभ्यांवाश्रुत्वाचैतानितत्त्वतः ।
शास्त्रेणनिंदितस्त्वर्थीनापिराज्ञाप्रचोदितः८९ ॥

सूचक (चुगुल) स्तोभक (बहकानेवाला) से इनके यथार्थ तत्वको सुनकर जो अर्थी शास्त्रसे निंदित और राजाने जिसको कुछ कहा न हो ॥ ८९ ॥

आवेदयतियत्पूर्वंस्तोभकःसउदाहृतः ।
नृपेणविनियुक्तोयःपरदोषानुवीक्षणे ॥ ९० ॥

और राजाके प्रति प्रथम ही निवेदन करै उसे स्तोभक कहते हैं और राजाने जिसको दूसरोंके अपराध देखनेके लिये नियत कर रक्खा हो ॥ ९० ॥

नृपंसंसूचयेज्ज्ञात्वासूचकःसउदाहृतः ।
पथिभंगीपराक्षेपीप्राकारोपरिलंघकः ॥ ९१ ॥

और जो जानकर राजाको बता देता है वह सूचक कहा है, मार्गका भंजक, दूसरेकी निंदा, परकोटेका लंघन इनको जो करै ॥९१॥

विपानस्यविनाशीचतथाचायतनस्यच ।
परिखापूरकश्चैवराजच्छिद्रप्रकाशकः ९२ ॥

जो चौबच्चा और घरको नष्ट करै और खाईको मिट्टीसे भर दे और जो राजाके छिद्र (बुराई) को प्रकाश करै ॥ ९२ ॥

अंतःपुरंवासगृहंभांडागारंमहानसम् ।
प्रविशत्यनियुक्तोयोभोजनंचनिरीक्षते ९३ ॥

अंतःपुर (रनवास) बसनेका स्थान, पात्रोंका घर और भोजन बनानेका स्थान इनमें जो विना कहे चले जाय और जो भोजनको देखे ॥ ९३ ॥

विण्मूत्रश्लेष्मवातानांक्षेप्ताकामान्नृपाग्रतः ।
पर्यंकासनबंधीचाप्यग्रस्थानीवरोधकः॥९४ ॥

और जो विष्ठा मूत्र थूक अधोवायु इनको जानकर राजाके आगे फेंके और पलंगपर आसन लगाकर बैठे और राजाके मुख्य स्थानका विरोध करै ॥ ९४ ॥

नृपातिरिक्तवेषश्चाविधृतःप्रविशेत्तुयः ।
यश्चोपद्वारेणविशेदवेलायांतथैवच ॥ ९५ ॥

राजाके विरुद्ध वेषको धारण करै और धारण करके प्रवेश करै और जो प्रसिद्ध द्वारसे अन्यद्वारसे अथवा असमयपर प्रवेश करै ॥ ९५ ॥

शय्यासनेपादुकेचशयनासनरोहणे ।
राजन्यासन्नशयनेयस्तिष्ठतिसमीपतः ॥९६॥

और जो राजाकी शय्यापर सोतेके समय शय्या आसन खडाऊं अपने शय्या पर राजाके समीप बैठे ॥ ९६ ॥

राज्ञोविद्विष्टसेवीचाप्यदत्तविहितासनः ।
अन्यवस्त्राभरणयोःस्वर्णस्यपरिधायकः ९७॥

जो राजाके विरोधीसे मिल विना दिये आसन पर बैठे अन्यके वस्त्र भूषण सुवर्ण इनको धारण करै ॥ ९७ ॥

स्वयंग्राहेणतांबूलंगृहीत्वाभक्षयेत्तुयः ।
अनियुक्तप्रभाषीचनृपाक्रोशकएवच ॥९८ ॥

और जो पानको विना दिये स्वयं लेकर भक्षण करै, राजाकी आज्ञाके विना सम्भाषण करै और राजाकी निन्दा करै ॥९८ ॥

एकवस्त्रस्तथाभ्यक्तोमुक्तकेशोवगुंठितः ।
विचित्रितांगःस्रग्वीचपरिधानविधूनकः९९॥

एकवस्त्र धारण किये,उबटना किये, केशोंको खोलकर, घूंगट लगायकर, अंगको चीतकर, माला पहनकर और वस्त्रोंको हिलाकर जो राजाके समीप जाय ॥ ९९ ॥

शिरःप्रच्छादकश्चैवच्छिद्रान्वेषणतत्परः ।
आसंगीमुक्तकेशश्चघ्राणकर्णाक्षिदर्शकः ६००

शिरको ढके छिद्रोंको जो ढूंढे जिसका मन दूसरे काममें लगा हो जिसके केश खुले हों जो नाक कान नेत्र इनको दिखावे॥ ६०० ॥

दंतोल्लेखनकश्चैवकर्णनासाविशोधकः ।
राज्ञःसमीपेपंचाशच्छलान्येतानिसंतिहि ॥१॥

दांतोंके मैलको जो निकासे कान नाकके मैलको निकासे, ये पूर्वोक्त पचास ५० छल राजाके समीप होते हैं ॥ १ ॥

आज्ञोल्लंघनकर्तारःस्त्रीवधोवर्णसंकरः ।
परस्त्रीगमनंचौर्यंगर्भश्चैवपतिंविना ॥ २ ॥

आज्ञाका अवलंघन करनेवाले,स्त्रीकी हत्या, वर्णोंका संकर, पराई स्त्रीका गमन, चोरी, पतिके विना गर्भकी स्थिति ॥ २ ॥

वाक्पारुष्यमवाच्यायदंडपारुष्यमेवच ।
गर्भस्यपातनंचैवेत्यपराधादशैवतु ॥ ३ ॥

कठोर वाणी निन्दाके अयोग्यको कठोर दंड, गर्भका पातन ये दश अपराध होते हैं ॥ ३ ॥

उत्कृतीसस्यघातीचाप्याग्निदश्चतथैवच ।
राज्ञोद्रोहप्रकर्ताचतन्मुद्राभेदकस्तथा ॥ ४ ॥

अन्नको जो काटे सस्य (घास) को नष्ट करै, अग्नि लगावे, राजाका जो द्रोह करै, राजाकी मुद्रा (मोहर) को जो नष्ट करै ॥४॥

तन्मंत्रस्यप्रभेत्ताचबद्धस्यचविमोचकः ।
अस्वाभिविक्रयंदानंभागंदंडंविचिन्वाति ॥५॥

राजाके मन्त्रको जो नष्ट करै बद्ध (कैदी) को ज़ो छोड दे विना स्वामीके जो बेच दे वा दान करै, दंडके भागको जो ढूंढे ॥ ५ ॥

पटहाघोषणाच्छादिद्रव्यमस्वामिकंचयत् ।
राजावलीढद्रव्यंचयच्चैवागोविनाशनम् ॥६॥

ढंडोरेके शब्दको जो छिपावे, विना स्वामी-के द्रव्यको और राजाके मिलाने योग्य द्रव्य (कर आदि) को जो ले और जो अपराधीके अपराधको नष्ट करै ॥ ॥ ६ ॥

द्वाविंशतिपदान्याहुर्नृपज्ञेयानिपंडिताः ।
उद्धतःक्रूरवाग्वेषोगर्वितश्चंडएवहि ॥७ ॥

हे पंडितो ये बाईस २२ पद राजाके जानने योग्य हैं और जो उद्धत (उद्दंड) कठोर वाणी तथा वेषवाला हो अभिमानी और क्रोधी हो ॥ ७ ॥

सहासनश्चातिमानीवादींदंडमवाप्नुयात् ।
अर्थिनाकथितंराज्ञेतदावेदनसंज्ञकम् ॥ ८ ॥

जो एक आसनपर बैठे, अति अभिमानी, विवादी हो वह दंड देने योग्य है जो विषय अर्थी राजाके आगे आकर कहै उसे आवेदन (अर्जी) कहते हैं ॥ ८ ॥

कथितंप्राड्विवाकादौसाभाषाखिलबोधिनी ।
सपूर्वपक्षःसभ्यादिस्तंविमृश्ययथार्थतः ॥९॥

और प्राड्विवाक आदिसे कहै उसे भाषा कहते हैं उसीसे सबको बोध होता है उसी पूर्वपक्षको सभ्य आदि यथार्थ रीतिसे विचार कर ॥ ९ ॥

अर्थितःपूरयेद्धीनंतत्साक्ष्यमाधिकंत्यजेत् ।
वादिनश्चाह्रितंसाक्ष्यंकृत्वाराजाविमुद्रयेत् १०।

उसमें जो काम हो उसको अर्थी (मुद्दई) से पूछकर पूर्ण करै और उसकी अधिक साक्षियोंको त्यागदे वादीके हस्ताक्षरसे चि-न्हित कराकर राजाकी मुद्रासे अंकित करै (मोहर लगा दे) ॥ १० ॥

अशोधयित्वापक्षंयेह्युत्तरंदापयंतितान् ।
रागाल्लोभाद्भयाद्वापिस्मृत्यर्थैवाधिकारिणः ॥

विना पूर्वपक्षको शुद्ध किये जो उत्तर दिवाते हैं उनको और प्रीति लोभ भयसे जो धर्मशास्त्रके अधिकारी विरुद्ध करैं ॥ ११ ॥

सभ्यादीन्दंडयित्वातुह्यधिकारान्निवर्तयेत् ।
ग्राह्याग्राह्यंविवादंतुसुविमृश्यसमाश्रयन् १२॥

उन सभासद आदिकोंको दंड दिवाकर उनके अधिकारोंको छीन ले और ग्रहण करने योग्य और अयोग्य विवादको भली प्रकार विचार कर राजा करै ॥ १२ ॥

संजातपूर्वपक्षंतुवादिनंसंनिरोधयेत् ।
राजाज्ञयासत्पुरुषैःसत्यवाग्भिर्मनोहरैः॥१३॥

जब वादीका पूर्वपक्ष पूरा होले तब उस वादीको राजाकी आज्ञाके अनुसार सज्जन सत्यवादी मनोहर पुरुष रोक दें ॥ १३ ॥

निरालसैंगितज्ञैश्चदृढशस्त्रास्त्रधारिभिः ।
वक्तव्येर्थेह्यतिष्ठंतमुक्त्वामंतंचतद्वचः ॥ १४ ॥

और जो आलस्यरहित चेष्टाके ज्ञाता दृढ

शस्त्र अस्त्रोंको जो धारण किये हों, जो वादी कहने योग्य अर्थमें न टिकै अथवा अपने कहे वचनका अवलंघन करै ॥ १४ ॥

आसेधयेद्विवादार्थीयावदाह्वानदर्शनम्।
प्रत्यर्थिनंतुशपथैराज्ञयावानृपस्यच ॥ १५ ॥

उसको तबतक रोक दें जबतक राजाकी आज्ञा न हो और प्रत्यर्थी (मुद्दाले) को सौगंध और राजाकी आज्ञासे रोकै ॥ १५ ॥

स्थानासेधःकालकृतःप्रवासात्कर्मणस्तथा।
चतुर्विधःस्यादासेधोनासिद्धस्तंविलंघयेत् १६

और वह आसेध स्थान काल, परदेश और कर्मसे पैदा होनेसे चार प्रकारका होता है उस आसेधको प्राप्तहुआ मनुष्य आसेधका अवलंघन न करै ॥ १६ ॥

यस्त्विन्द्रियनिरोधेनव्याहारोच्छासनादिभिः।
आसेधयेदनासेधैःसदंड्योनत्वतिक्रमी ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इंद्रियोंके रोकने, वाणी, ऊर्ध्व-श्वास आदि अनासेधरूपोंसे आसेध करै वही दंड देने योग्य होता है और अवलंघन करने वाला दंड्य नहीं होता ॥ १७ ॥

आसेधकालआसिद्धआसेधंयोनिवर्तते।
सविनेयोन्यथाकुर्वन्नासेद्धादंडभाग्भवेत् ॥ १८ ॥

आसेधके समयपर आसेधको प्राप्तहुआ जो मनुष्य आसेधसे हटता है अन्यथा करने पर वहदंड देने योग्य होता है आसेध करानेवाला दंडका भागी नहीं होता ॥ १८ ॥

यस्याभियोगंकुरुतेतत्त्वेनाशंकयाथवा।
तमेवाह्वानयेद्राजामुद्रयापुरुषेणवा ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यपर अपराधकी शंका हो वा जो यथार्थ अपराधी हो उस मनुष्यको ही राजा अपने पुरुष अथवा मुद्रासे बुलावे ॥ १९ ॥

शंकाऽसतांतुसंसर्गादनुभूतकृतेस्तथा।
वोढाभिदर्शनात्तत्त्वंविज्ञास्यतिविचक्षणः २० ॥

दुष्टोंके संबन्धसे अथवा वारंवार कार्यके देखनेसे शंका होती है और अपराधियोंके संग गमनसे पंडितजन तत्वको जानलेते हैं ॥ २० ॥

अकल्पबालस्थविराविषमस्थाक्रियाकुलान्।
कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान् ॥

असमर्थ, बालक, वृद्ध, कठिण, काममें व्याकुल, कार्यमें अत्यंत आसक्त, व्यसनी, राजाके कार्य और उत्सवोंमें व्याकुल ॥ २१ ॥

मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तभृत्यान्नाह्वानयेन्नृपः।
नहीनपक्षांयुवतींकुलेजातांप्रसूतिकाम् २२

मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त, रोगी ऐसे भृत्योंसे अपराधियोंको राजा न बुलावे और हीन (दुर्बल) जिसका पक्ष हो उस स्त्रीको कुलीन स्त्री और प्रसूता स्त्रीकोभी राजा न बुलावे ॥ २२ ॥

सर्ववर्णोत्तमांकन्यांनज्ञातिप्रमुखाः स्त्रियः।
निर्वेष्टुकामोरोगार्तोयियक्षुर्व्यसनेस्थितः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणकी कन्या और जातिमें मुख्य स्त्री इनकोभी न बुलावे विवाहमें उद्यत (लगा), रोगसे दुःखी, यज्ञका कर्ता, विपत्तिमें स्थित ॥ २३ ॥

अभियुक्तस्तथान्येनराजकार्योद्यतस्तथा।
गवांप्रचारेगोपालाःसस्यवापेकृषीवलाः ॥

और अन्यके संग जिसका विरोध हो जो राजाके काममें लगा हो, जो गोपाल गौ-ओंको चुगा रहे हों और जो किसान खेत बो रहे हों ॥ २४ ॥

शिल्पिनश्चापितत्कालमायुधीयाश्चविग्रहे ॥
अव्याप्तव्यवहारश्चदूतोदानोन्मुखोव्रती ॥ २५ ॥

जो शिल्पी हो और जो तत्कालमें लडाईमें आयुध धारण किये हों जो व्यवहारको न जानता हो, दूत, दान देनेको जो उद्यत हो और जो व्रतमें आसक्त हो ॥ २५ ॥

विषमस्थाश्चनासेयानचैतानाह्वयेन्नृपः।
नदीसंतारकांतारदुर्देशोपप्लवादिषु ॥ २६ ॥

जो विषय(भयानक) स्थानमें बैठे हों इनका आसेद न करै (न पकडे) न राजा इनको बुलावे नदीका तिरना वन और भयानक देशके उपद्रव आदिमें ॥ २६ ॥

असिद्धस्तंपरासेधमुक्त्वामन्त्वापराध्नुयात् ।
कालंदेशंचविज्ञायकार्याणांचबलाबलम् २७॥

जो मनुष्यको पकडे और वह उसके पकडनेको रोंके तो अपराधी नहीं होता कार्य और देशको और कार्योंके बल अबलको जानकर ॥ २७ ॥

अकल्पादीनापिशुनान्यानैह्वानयेन्नृपः ।
ज्ञात्वाभियोगंयेपिस्युर्वनेप्रव्रजितादयः २८ ॥

असमर्थ और सज्जन आदिको राजा यान (सवारी) में बुलवावे और जो वनमें संन्यासी आदि हों अपराध जानकर ॥ २८ ॥

तानप्याह्वानयेद्राजागुरुकार्येष्वकोपयन् ।
व्यवहारानभिज्ञेनह्यन्यकार्याकुलेनच २९ ॥

उनकोभी गुरु (भारी) कामके लिये इस प्रकार बुलावे जिस वे कुपित नहों जो व्यवहारको न जानताहो अथवा अन्य कार्यमें व्याकुल हो ॥ २९ ॥

प्रत्यर्थिनार्थिनातज्ज्ञःकार्यःप्रतिनिधिस्तदा ।
अप्रगल्भजडोन्मत्तवृद्धस्त्रीबालरोगिणाम् ॥

ऐसा प्रत्यर्थी और अर्थी व्यवहारके ज्ञाता प्रतिनिधि (मुखत्यार) को सदैव करले जो प्रगल्भ न हो, जड, उन्मत्त, वृद्ध, स्त्री, बालक, रोगी ॥ ३० ॥

पूर्वोत्तरंवदेद्बंधुर्नियुक्तोवाथवानरः ।
पितामातासुहृद्बंधुर्भ्रातासंबंधिनोपिच ॥ ३१ ॥

इनके पूर्व और उत्तर पक्षको बन्धु अथवा नियुक्त (मुखत्यार) मनुष्य अथवा पिता, माता, मित्र, भ्राता वा सम्बन्धी कहैं ॥ ३१ ॥

यदिकुर्युरुपस्थानंवादंतत्रप्रवर्तयेत् ।
यः कश्चित्कारयेत्किंचिन्नियोगाद्येनकेनचित् ॥

जो ये उपस्थान (पूर्वपक्ष) ठीक २ कर दें तो वहां विवादको प्रवृत्त करै, जो मनुष्य जिस किसीसे नियुक्त करके अपने किंचित कार्यको कराले ॥ ३२ ॥

तत्तेनैवकृतंज्ञेयमनिवर्त्यंहितत्स्मृतम् ।
नियोगितस्यापिभृतिंविवादात्षोडशांशिकीम् ॥

वह कार्य उसीका किया समझना वह हट नहीं सकता और जिस मनुष्यको नियत करै उसको सोलह भाग भृति (नोकरी) दे ॥ ३३ ॥

अन्यथाभृतिगृह्णंतंदंडयेच्चानियोगिनम् ।
कार्यानित्योनियोगीचनृपेणस्वमनीषया ३४ ॥

जो नियुक्त किया मनुष्य अन्यथा भृतिको ग्रहण करता है उसको दंड दे और राजाभी सदाके लिये अपनी बुद्धिसे एक नियुक्त मनुष्य करै ॥ ३४ ॥

लोभेनत्वन्यथाकुर्वन्नियोगीदंडमर्हति ।
योनभ्रातानचपितानपुत्रोननियोगकृत् ॥ ३५ ॥

यदि नियुक्त मनुष्य लोभसे अन्यथा करै तो दंडके योग्य होता है, जो भ्राता, पिता, पुत्र ये नियोगको न करैं और ॥ ३५ ॥

परार्थवादीदंड्यःस्याद्व्यवहारेषुविब्रुवन् ॥
तदधीनकुटुंबिन्यःस्वैरिण्योगणिकाश्चयाः ३६
निष्कुलायाश्चपतितास्तासामाह्वानमिष्यते ।

पराये अर्थको कहै व्यवहारमें विरुद्ध कहता हुआ वह दंडके योग्य होता है और जिन स्त्रियोंके आधीन कुटुम्ब हो और जो व्यभिचारिणी और वेश्या हों ॥ ३६ ॥ जिनके कुल न हों और पतित हो ऐसी स्त्रियोंका बुलाना श्रेष्ठ है ॥

प्रवर्तयित्वावादंतुवादिनौतुमृतौयदि ॥ ३७ ॥
तत्पुत्रोविवदेत्तज्ज्ञोह्यन्यथातुनिवर्तयेत् ।

यदि विवादको लगाकर दोनों वादी मरगये हों ॥ ३७ ॥ तो व्यवहारका ज्ञाता उसका पुत्र विवाद करै यदि पुत्र न करै तो विवादको निवृत्त करदे ॥

मनुष्यमारणेस्तेयेपरदाराभिमर्शने ॥ ३८ ॥
अभक्ष्यभक्षणेचैवकन्याहरणदूषणे ।
प्रतिनिधिर्नदातव्यःकर्तातुविवदेत्स्वयम् ।
पारुष्येकूटकरणेनृपद्रोहेचसाहसे ॥ ३९ ॥

मनुष्यके मारना, चोरी, पराई स्त्रीके स्पर्शमें ॥ ३८ ॥ अभक्ष्य वस्तुके भक्ष-

णमें कन्याके हरने या दोष लगानेमें, कठोर वचन कहने, झूठ करने, राजाके द्रोहऔरसाहसमें प्रतिनिधिको न दे किंतु अपराध करनेवाला स्वयं विवाद करै ॥ ३९ ॥

आहूतोयत्रनागच्छेद्दर्पाद्बंधुबलान्वितः ।
अभियोगानुरूपेणतस्यदंडंप्रकल्पयेत् ॥४०॥

जो बंधु और बलसे संयुक्त मनुष्य बुलाने पर न जाय तो अपराधके अनुसार उसके दंडकी कल्पना करै ॥ ४० ॥

दूतेनाह्वानितंप्राप्ताधर्षकंप्रतिवादिनम् ॥ ४१॥
दृष्ट्वाराज्ञातयोश्चिन्त्योयथार्हप्रतिभूस्त्वतः ।
दास्याम्यदत्तमेतेनदर्शयामितवांतिके ॥४२॥

दूतके बुलानेसे प्राप्त हुये जो अपराधी और प्रतिवादी उनको ॥ ४१ ॥ देखकर राजा उन दोनोंके यथोचित साक्षीकी चिन्ता करै जो यह न देगा तो मैं दूंगा और आपके समीप पहुँचा दूँगा ॥ ४२ ॥

एनमाधिंदापयिष्येह्यस्मात्तेनभयंक्वचित् ।
अकृतंचकारिष्यामिह्यनेनायंचवृत्तिमान् ४३॥

और इससे आधि (धरोहर) को दिवाऊंगा इससे आपको कदाचित् भी भय न होगा जो इसने नहीं किया है उसे कराढूंगा और यह आजीविकावाला है ॥ ४३॥

अस्तीतिनचमिथ्यैतदंगीकुर्यादतंद्रितः ।
प्रगल्भोबहुविश्वस्तश्चाधीनोविश्रुतोधनी ४४॥

यह कभी मिथ्या नहीं बोलेगा इस बातको निरालस होकर स्वीकार करै जो धनी प्रगल्भ हो जिसका अधिक विश्वास हो जो अधीन हो और विख्यात धनवान् हो ॥ ४४ ॥

उभयोःप्रतिभूर्ग्राह्यःसमर्थःकार्यनिर्णये ।
विवादिनौसंनिरुध्यततोवादंप्रवर्तयेत्॥ ४५ ॥

वादी और प्रतिवादीके ऐसे साक्षीको राजा ग्रहण करै जो कार्य निर्णय करनेमें समर्थ हो दोनों वादी प्रतिवादियोंको रोककर वादकी प्रवृत्तिको राजा करै ॥ ४५॥

स्वपुष्टौराजपुष्टौवास्वभृत्यापुष्टिरक्षकौ ॥
ससाधनौतत्त्वमिच्छुःकूटसाधनशंकया ॥४६॥

जो स्वयं पोषण करै वा राजा जिसका पोषण करै अथवा अपनी भृति (नोकरी) से जो पोषण और रक्षा करै इन सबके साधन सहित तत्त्वकी इच्छाको राजा करै क्योंकि कोई साधन झूंठा न होजाय ॥ ४६ ॥

प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तंसाध्यंसत्कारणान्वितम् ।
निश्चितंलोकसिद्धंचपक्षंपक्षविदोविदुः ॥४७॥

प्रतिज्ञाके दोषोंसे रहित अच्छे कारणों सहित जो निश्चय किया और लोक सिद्ध साध्य, पक्षके जाननेवाले उसको पक्ष कहते हैं ॥ ४७ ॥

अन्यार्थमर्थहीनंचप्रमाणागमवर्जितम् ।
लेख्यहीनाधिकंभ्रष्टंभाषादोषाउदाहृताः ॥

जो अन्य अर्थवाला हो अथवा अर्थसे हीन (रहित) हो प्रमाण और आगमसे वर्जित हो लिखने योग्य बातसे हीन हो वा अधिक हो वा भ्रष्ट हो ये भाषा (अर्जी) के दोष कहे हैं ॥ ४८ ॥

अप्रसिद्धंनिराबाधंनिरर्थंनिष्प्रयोजनम् ।
असाध्यंवाविरुद्धंवापक्षाभासंविवर्जयेत् ॥४९॥

जो प्रसिद्ध न हो निराबाध हो निरर्थक हो निष्प्रयोजन हो असाध्य हो वा विरुद्ध हो ऐसे पक्षाभास (नामका पक्ष) को वर्ज दे ॥ ४९ ॥

नकेनचिच्छ्रुतोदृष्टःसोऽप्रसिद्धउदाहृतः ।
अहंमूकेनसंशप्तोवंध्यापुत्रेणताडितः ५० ॥

जो किसीने सुना न हो न देखाहो उसको अप्रसिद्ध कहते हैं, जैसे कि मुझे गूंगेने गाली दी और वंध्याके पुत्रने मुझे मारा॥५०॥

अधीतेसुस्वरंगातिस्वेगेहेविहरत्ययम् ।
धत्तेमार्गमुखद्वारंममगेहसमीपतः ॥ ५१ ॥

यह मनुष्य मेरे घरके समीप अपने घरमें बडे ऊंचे स्वरसे पढता है गाताहै और अपने घरका दरवाजा भेडकर क्रीडा करताहै ॥५१॥

इतिज्ञेयंनिराबाधंनिष्प्रयोजनमेवतत्।
सदामद्दत्तकन्यायांजामाताविहरत्ययम्॥५२॥

इसको निराबाध जानना और वही निष्प्रयोजन होता है, यह मेरा जमाई मेरी दी हुई कन्यामें सदैव विहार करता है॥५२॥

गर्भंधत्तेनवंध्येयंमृतोयंनप्रभाषते।
किमर्थमितितज्ज्ञेयमसाध्यंचविरुद्धकम् ५३॥

और गर्भ धारण करती है क्योंकि मेरी कन्या वंध्या नहीं है और मेरे संग मरा यह बोलता क्यों नहीं इसको असाध्य और विरुद्ध कहते हैं॥५३॥

मद्दत्तदुःखसुखतोलोकोदुष्यतिनंदति।
निरर्थमितिवाज्ञेयंनिष्प्रयोजनमेववा॥५४॥

मेरे दिये दुःखसे जगत दुःखी और सुखसे प्रसन्न होताहै इसको निरर्थक वा निष्प्रयोजन जानना॥५४॥

श्रावयित्वातुयत्कार्यंत्यजेदन्यद्वदेदसौ।
अन्यपक्षाश्रयाद्वादीहीनोदंडचश्चसस्मृतः॥

जो यह पुरुष एक कार्यको सुना कर त्याग दे और अन्य कार्यको कहने लगे वह वादी अन्यपक्षके आश्रयसे हीन और दंड देने योग्य कहा है॥५५॥

विनिश्चितेपूर्वपक्षेग्राह्याग्राह्यविशोधिते।
प्रतिज्ञार्थेस्थिरीभूतेलेखयेदुत्तरंततः॥५६॥

जब पूर्वपक्ष (अर्जी) का निश्चय हो जाय और ग्रहण करनेयोग्य वा अयोग्यका निश्चय होजाय और प्रतिज्ञा कियाहुआ अर्थ स्थिर हो जाय उसके अनंतर उत्तरको लिखैं॥५६॥

तत्राभियोक्ताप्राक्पृष्टोह्यभियुक्तस्त्वनंतरम्।
प्राड्विवाकसदस्याद्यैर्दाप्यतेह्युत्तरंततः ५७॥

उस समय वादीको प्रथम पूछे और प्रतिवादीको उसके अनंतर और फिर प्राड्विवाक और सभासद आदिसे उत्तर दिवावे॥५७॥

श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यंपूर्वावेदकसन्निधौ।
पक्षस्यव्यापकंसारमसंदिग्धमनाकुलम् ५८॥

सुने हुए अर्थका उत्तर वादीके सन्मुख लिखना चाहिये जो संपूर्ण पक्षका व्यापक (पूरा) हो और सार, संदेहरहित व्याकुलतासे न दिया हो॥५८॥

अव्याख्यागम्यमित्येतन्निर्दुष्टंप्रतिवादिना।
संदिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरिच ५९॥

जो टीकाके विना समझाय और प्रतिवादी जिसमें कोई दोष न दे और जो उचित उत्तरसे भिन्न हो अथवा अत्यन्त अल्प और अत्यन्त अधिक हो वह संदिग्ध उत्तर कहाता है॥५९॥

पक्षैकदेशेव्याप्यंयत्तत्तुनैवोत्तरंभवेत्।
नवाहूतोवदेत्किंचिद्धीनोदंड्यश्चसस्मृतः ६०

जो उत्तर पूर्व पक्षके एकदेशका हो वह उत्तर नहीं होता और प्रतिवादी बुलाने पर कुछ न कहै वह हीन और दंड देने योग्य कहा है॥६०॥

पूर्वपक्षेयथार्थेतुनदद्यादुत्तरंतुयः।
प्रत्यर्थीदापनीयःस्यात्सामादिभिरुपक्रमैः६१॥

जो प्रतिवादी यथार्थभी पूर्वपक्षका उत्तर न दे वह शांति आदि उपायोंसे दंड देने योग्य होता है॥६१॥

मोहाद्वायदिवाशाठ्याद्यन्नोक्तंपूर्ववादिना।
उत्तरांतर्गतंवापितत्प्रष्टव्यंद्वयोरपि॥६२॥

मोह वा शठतासे जो बात पूर्व वादीने न कही हो,अथवा जो उत्तरमें ही आजाय वहबात पूछकर दोनोंकी ग्रहण करने योग्य है॥६२॥

सत्यंमिथ्योत्तरंचैवप्रत्यवस्कंदनंतथा।
पूर्वन्यायविधिश्चैवमुत्तरंस्याच्चतुर्विधम्॥६३॥

सत्य, मिथ्या, उत्तर और प्रत्यवस्कन्दन और पूर्वन्यायका विधान इन भेदोंसे उत्तर चार प्रकारका होता है॥६३॥

अंगीकृतंयथार्थंयद्वाद्युक्तंप्रतिवादिना।
सत्योत्तरंतुतज्ज्ञेयंप्रतिपत्तिश्चसास्मृता ६४

जिस वादीके कथनको प्रतिवादीने यथार्थ मानलियाहो उसको सत्योत्तर कहते हैं और वही प्रतिपत्ति कही है ॥ ६४ ॥

श्रुत्वाभाषार्थमन्यस्तुयादितंप्रतिषेधति ।
अर्थतःशब्दतोवापिमिथ्यातज्ज्ञेयमुत्तरम् ॥

भाषा (अर्जी) के अर्थको सुनकर यदि उसका कोई अर्थ वा शब्दसे निषेध करै वह उत्तर मिथ्या जानना ॥ ६५ ॥

मिथ्यैतन्नाभिजानामितदातत्रमसन्निधिः ।
अजातश्चास्मितत्कालेइतिमिथ्याचतुर्विधम् ६६

यह मिथ्या है, मैं जानता नहीं, उस समय मैं वहां समीपमें नहीं था और उस समय मैं पैदाही नहीं हुआथा इस प्रकार मिथ्या चार प्रकारका है ॥ ६६ ॥

अर्थिनालिखितोह्यर्थःप्रत्यर्थीयदितंतथा ।
प्रपद्यकारणंब्रूयात्प्रत्यवस्कंदनंहितत् ६७ ॥

वादीने जो अर्थ लिखा हो उसको यदि वादी मानकर कोई कारण कहै उस उत्तरको प्रत्यवस्कन्दन कहते हैं ॥ ६७ ॥

अस्मिन्नर्थेममानेनवादःपूर्वमभूत्तदा ।
जितोयमस्तिचेद्ब्रूयात्प्राङ्न्यायःसउदाहृतः ॥

इस बिषयमें मेरा इनके संग पहिले विवाद हुआथा उसमें इसको पराजय कर चुकाहूं उस उत्तरको प्राङ्न्याय कहते हैं ॥ ६८ ॥

जयपत्रेणसभ्यैर्वासाक्षिभिर्भावयाम्यहम् ।
मयाजितःपूर्वमिति प्राङ्न्यायस्त्रिविधःस्मृतः

वह प्राङ्न्याय इन भेदोंसे तीन प्रकारका कहा है कि जयके पत्रसे वा सभासदोंसे वा साक्षियोंसे मैं भावना (निश्चय) कर सकताहूं ॥ ६९ ॥

अन्योन्ययोःसमक्षंतुवादिनोःपक्षमुत्तरम् ।
नहिगृह्णंतियेसभ्यादंडयास्तेचौरवत्सदा ७० ॥

जो सभासद दोनों वादी और प्रतिवादीके समक्ष (सामने) पक्ष वा उत्तरको ग्रहण न करैं वे सदैव चोरके समान दंड देने योग्य हैं ॥ ७० ॥

लिखितेशोधितेसम्यक्सतिनिर्दोषउत्तरे ।
अर्थिप्रत्यर्थिनोर्वापिक्रियाकारणमिष्यते ७१ ॥

तब दोनों वादी और प्रतिवादीकी क्रिया (मुकद्दमा) का करना अच्छा कहा है जब उत्तर लिखकर और शुद्ध होकर निर्दोष हो जाय ॥ ७१ ॥

पूर्वपक्षःस्मृतःपादोद्वितीयश्चोत्तरात्मकः ।
क्रियापादस्तृतीयस्तुचतुर्थोनिर्णयाभिधः ॥

और इन भेदोंसे न्याय चार प्रकारसे होता है प्रथम पाद पूर्वपक्ष, दूसरा पाद उत्तर, तीसरा पाद क्रिया और चौथा पाद निर्णय कहा है ॥ ७२ ॥

कार्यंहिसाध्यमित्युक्तंसाधनंतुक्रियोच्यते ।
अर्थीतृतीयपादेतुक्रियायाःप्रतिपादयेत् ७३ ॥

कार्यको साध्य कहते हैं और क्रियाको साधन और वादी क्रियारूप तीसरे पादमें साधनको कहै ॥ ७३ ॥

चतुष्पाद्व्यवहारःस्यात्प्रतिपत्त्युत्तरंविना ।
क्रमागतान्विवादांस्तुपश्येद्वाकार्यगौरवात् ॥

और प्रतिपत्ति उत्तरके बिना व्यवहारके चार पाद होते हैं, और सभामें क्रमसे आये जो विवाद उनको कार्यके गौरवानुसार राजा देखै ॥ ७४ ॥

यस्यवाभ्यधिकापीडाकार्यंवाभ्यधिकंभवेत् ।
वर्णानुक्रमतोवापिनेयत्पूर्वंविवादयेत् ॥७५॥

जिसको अधिक पीडा हो अथवा जिसका कार्य अधिक हो अथवा जो चारों वर्णोंमें उत्तम हो उसकाही प्रथम न्याय वा विवादका निर्णय करै ॥ ७५ ॥

कल्पयित्वोत्तरंसभ्यैर्दातव्यैकस्यभावना ।
साध्यस्यसाधनार्थंहिनिर्दिष्टायस्यभावना ॥

सभासद उत्तरकी कल्पना करके यह देखैं कि देने योग्य वस्तुमें भावना किसकी है और साध्य वा साधनके लिये जिसकी भावना देखी हो ॥ ७६ ॥

विभायेत्प्रतिज्ञातंसोऽखिलंलिखितादिना ।
नचैकस्मिन्विवादेतुक्रियास्याद्वादिनोर्द्वयोः ॥

वही मनुष्य संपूर्ण प्रतिज्ञा कियेका लिखने आदिसे निश्चय करादे और एक विवादमें दो वादियोंकी क्रिया नहीं होती ॥ ७७ ॥

मिथ्याक्रियापूर्ववादेकारणप्रतिवादिनि ।
प्राङ्न्यायकारणोक्तौतु प्रत्यर्थीनिर्दिशेत्क्रियाम्

पूर्व वादमें जो प्रतिवादी कारणको कहै वहां मिथ्याक्रिया होती है और प्रथम न्यायके कारणको प्रतिवादी कहै वहां प्रतिवादी ही उसका कारण दिखावे ॥ ७८ ॥

तत्त्वाच्छलानुसारित्वाद्भूतंभव्यंद्विधास्मृतम् ।
तत्त्वंसत्यार्थाभिधायिकूटाद्यभिहितंछलम् ७९

यथार्थ और छलके अनुसार भूत और भव्य दो प्रकारका कहा है जो सत्य अर्थका अभिधायी हो वह तत्त्व और जो कूटादिअर्थोंको कहै वह छल कहा है ॥ ७९ ॥

कारणात्पूर्वपक्षोपि उत्तरत्वं प्रपद्यते ।
ततोर्थीलेखयेत्सद्यःप्रतिज्ञातार्थसाधनम् ॥८०॥

किसी कारणसे पूर्वपक्ष भी उत्तर होजाता है; फिर अर्थी (वादी) अपने प्रतिज्ञा किये अर्थके साधनको लिखै ॥ ८० ॥

तत्साधनंतुद्विविधंमानुषंदैविकंतथा ।
त्रिधास्याल्लिखितंभुक्तिः साक्षिणश्चेतिमानुषम् ॥ ८१ ॥

वह साधन मानुष और दैविकभेदसे दो प्रकारका है तिनमें मानुष साधन इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है कि लिखाहुआ, वा भोगाहुआ अथवा जिसमें कोई साक्षीहो ॥८१॥

दैवंघटादितद्भव्यंभूतालाभेनियोजयेत् ।
युक्त्यानुमानतोनित्यंसामादिभिरुपक्रमैः ८२॥

घट (तोल) आदि दैव होता है उसको भूत और भव्यके न मिलनेपर युक्ति अनुमान और साम आदि उपायोंसे नियुक्त करै ॥८२॥

नकालहरणंकार्यंराज्ञासाधनदर्शने ।
महान्दोषोभवेत्कालाद्धर्मव्यापत्तिलक्षणः८३

राजा साधनके देखनेमें विलंब न करै क्योंकि समयके विलंबसे धर्मका नाशरूप महान् दोष होता है ॥ ८३ ॥

अर्थीप्रत्यर्थिप्रत्यक्षंसाधनानिप्रदर्शयेत् ।
अप्रत्यक्षंतयोर्नैवगृह्णीयात्साधनंनृपः ॥ ८४ ॥

वादी अपने साधनों (सबूत) को प्रतिवादीके सामने दिखावे और राजा वादी और प्रतिवादीके अप्रत्यक्ष (पीछे) साधनको स्वीकार न करै ॥ ८४ ॥

साधनानांचयेदोषावक्तव्यास्तेविवादिना ।
गूढास्तुप्रकटाःसभ्यैःकालशास्त्रप्रदर्शनात् ॥

और प्रतिवादीके साधनोंमें जो दोष हों उनको वादी कहै और जो दोष गुप्त हों उनको काल और शास्त्रके अनुसार सभासद् प्रगट करैं ॥ ८५ ॥

अन्यथादूषयन्दंड्यः साध्यार्थाद्वहीयते ।
विमृश्यसाधनंसम्यक्कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥

यदि वादी अन्यथा (झूंठा) ही दोष दिखावे तो दंडदेने योग्य है और अपने साध्य अर्थको प्राप्त नहीं होता और राजा साधनको भलीप्रकार विचार कर कार्यका निर्णय करै ॥ ८६ ॥

कूटसाधनकारीतुदंड्यःकार्यानुरूपतः ।
द्विगुणंकूटसाक्षीतुसाक्ष्यलोपीतथैवच ८७ ॥

झूंठा साधन करनेवालेको कार्यके अनुसार राजा दंड दे और झूंठे साक्षी और साक्षीके लोप करने वालेको दूना दंड दे ॥ ८७ ॥

अधुनालिखितंवच्मियथावदनुपूर्वशः ।
अनुभूतस्मारकंतुलिखितंब्रह्मणाकृतम् ८८ ॥

अभी लिखे हुयेको क्रमसे यथार्थ कहताहूँ और जो अनुभूत (बीती) का जतानेवाला है वह लेख ब्रह्माका किया सम

राजकीयंलौकिकंचद्विविधंलिखितंस्मृतम् ।
स्वहस्तलिखितंवान्यहस्तेनापिविलेखितम्८९॥

लेख दो प्रकारका होता है एक राजकीय और दूसरा लौकिक वह चाहै अपने हाथसे लिखा हो वा अन्यके हाथसे लिखा हो ॥ ८९ ॥

असाक्षिमत्साक्षिमच्चसिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः ।
भोगदानक्रियाधानसंविद्दासऋणादिभिः ॥९०

और चाहै वह साक्षीसे युक्त हो वा अयुक्त हो उसकी सिद्धि देशरीतिके अनुसार होती है और भोगन दान क्रिया आधान (धरोहर) संवित् (करार) दास और ऋण आदि भेदसे ॥ ९० ॥

सप्तधालौकिकंचैतत्त्रिविधंराजशासनम् ।
शासनार्थंज्ञापनार्थंनिर्णयार्थंतृतीयकम् ॥९१॥

लौकिक सात प्रकारका और राजाका शासन तीन प्रकारका है, शिक्षाके लिये जतानेके लिये और तीसरा निर्णयके लिये ॥ ९१ ॥

राज्ञास्वहस्तसंयुक्तंस्वमुद्राचिह्नितंतथा ।
राजकीयंस्मृतंलेख्यंप्रकृतिभिश्चमुद्रितम् ॥

जो राजाने अपने हाथसे लिखा हो अथव जिसपर राजाके प्रकृति (मंत्री) आदिने अपनी राजमुद्रा लगा दी हो अथवा ॥ ९२ ॥

निवश्यकालंवर्षंचमासंपक्षांतिथिंतथा ।
वेलाप्रदेशंविषयंस्थानंजात्याकृतिवयः ॥९३॥

जिसमें संवत ऋतु महीना पक्ष तिथि समय देश विषय स्थान जाति आकार और अवस्था और ॥ ९३ ॥

साध्यंप्रमाणंद्रव्यंचसंख्यांनामतथात्मनः ।
राज्ञांचक्रमशोनामानिवासंसाध्यनामच॥९४॥

साध्य (दावेका द्रव्य आदि) प्रमाण द्रव्य संख्या अपना नाम और क्रमसे राजाओंका नाम निवास और साध्यका नाम और ॥ ९४ ॥

क्रमात्पितॄणांनामानिपितामहतृतीयकम् ।
क्षमालिंगानिचान्यानिपक्षेसंकीर्त्यलेखयेत् ९५

पितरोंके नाम पितामह और प्रपितामहके नाम और क्षमाआदिके अन्य चिह्न इन सबको पक्ष (अर्जी) में कहकर लिखवावे ॥ ९५ ॥

यत्रैतानिनालिख्यंतेहीनंलेख्यंतदुच्यते ।
भिन्नक्रमंव्युत्क्रमार्थंप्रकीर्णार्थंनिरर्थकम्॥९६॥

जिसमें ये सब न लिखे जांय उसको हीनलेख कहते हैं और क्रमरहित और जिसका क्रम उलटा हो वा जिसका अर्थ प्रकीर्ण (कम) हो अथवा निरर्थक हो ॥ ९६ ॥

अतीतकाललिखितंनस्यात्तत्साधनक्षमम् ।
अप्रगल्भेणचस्त्रियावलात्कारेणयत्कृतम् ॥

जो समय (मियाद) बिताकर लिखा है वह लेख साधनके योग्य नहीं होता और जो अप्रगल्भ मनुष्यने अथवा स्त्रीने किया हो वह भी साधनयोग्य नहीं ॥ ९७ ॥

सद्भिर्लेख्यैःसाक्षिभिश्चभोगैर्दिव्यैःप्रमाणताम् ।
व्यवहारेनरोयातिचेहासुप्राप्नुतेसुखम् ॥९८॥

और अच्छे लेख, साक्षी, भोग (वर्तना वा कवजा) दिव्य इनसे मनुष्य व्यवहारमें प्रमाणताको प्राप्त होता है और चेष्टाओंमें सुखका भागी होता है ॥ ९८ ॥

स्वेतरःकार्यविज्ञानीयःससाक्षीत्वनेकधा ।
दृष्टार्थश्चश्रुतार्थश्चकृतश्चैवाऽकृतोद्विधा ॥९९॥

अपनेसे भिन्न जो कार्यका ज्ञाता वह साक्षी होता है उसके अनेक भेद हैं एक वह जिसने देखाहो और जिसने सुना हो और वह साक्षी दो प्रकारका होता है, किया हो वा न किया हो ॥ ९९ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यादनुभूतंतुप्राग्यथा ।
दर्शनैःश्रवणैर्यःससाक्षीतुल्यवाग्यदि ७००

वादी और प्रतिवादीके समीप जैसा प्रथम जिसने देखने वा सुननेसे जानाहो वह साक्षी होता है यदि उसकी वाणी एकसी रहै ॥ ७०० ॥

यस्यनोपहताबुद्धिःस्मृतिःश्रोत्रंचनित्यशः ।
सुदीर्घेणापिकालेनससैसाक्षित्वमर्हति ॥ १ ॥

जिसकी बुद्धि, स्मरण और श्रोत्र ये सदैव बहुतकालतक नष्ट नहीं वह मनुष्य साक्षी होनेके योग्य होताहै ॥ १ ॥

अनुभूतःसत्यवाग्यःसैकःसाक्षित्वमर्हति ।
उभयानुमतःसाक्षीभवत्येकोपिधर्मवित् ॥ २ ॥

जिसको सब सच्चा जानते हों वह एकही साक्षी होने योग्य होताहै वादी और प्रतिवादी दोनोंकी संमतिसे एकभी धर्मका जाननेवाला साक्षी होसकताहै ॥ २ ॥

यथाजातियथावर्णंसर्वेसर्वेषुसाक्षिणः ।
गृहिणोनपराधीनाःसूरयश्चाप्रवासिनः ॥३॥

जाति और वर्णके अनुसार सबही सबके साक्षी होसकतेहैं जो गृहस्थी पराधीन नहीं और जो शूरवीर परदेशमें न रहते हों वे और ॥ ३ ॥

युवानःसाक्षिणःकार्याःस्त्रियःस्त्रीषुचकीर्तिताः।
साहसेषुचसर्वेषुस्तेयसंग्रहणेषुच ॥ ४ ॥

जो युवा हों वे साक्षी करने और स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करनी कही हैं, और संपूर्ण साहस चोरी और संग्रहणोंमें और ॥ ४ ॥

वाग्दंडयोश्चपारुष्येनपरीक्षेतसाक्षिणः ।
बालोज्ञानादसत्यात्स्त्रीपापाभ्यासाच्चकूटकृत् ५

कठोर वाणी और कठोर दंडमें साक्षियोंकी परीक्षा न करै अज्ञानसे बालक और झूंठी स्त्री और पापके अभ्याससे छलका कर्ता ॥ ५ ॥

विब्रूयाद्बांधवःस्नेहाद्वैरीनिर्यातनादरिः ।
अभिमानाच्चलोभाच्चविजातिश्चशठस्तथा॥६॥

बन्धु स्नेहसे और शत्रु वरसे विरुद्ध कह सकता है तथा अभिमानसे लोभसे विजाति और शठभी विरुद्ध कह सकते हैं ॥ ६ ॥

उपजीवनसंकोचाद्भृत्यश्चैवेहसाक्षिणः ।
नार्थसंबंधिनोविद्यायौनसंबंधिनोपिन ॥ ७ ॥

उपजीवन (नौकरी) के संकोचसे भृत्य येसब साक्षी नहीं हो सकते और धनके सम्बन्धी विद्या और योनिके सम्बन्धी भी साक्षी नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

श्रेण्यादिषुचवर्गेषुकश्चिच्चेद्द्वेष्यतामियात् ।
तस्यतेभ्योनसाक्ष्यंस्याद्द्वेष्टारःसर्वएवते ॥८॥

जो श्रेणी आदि समूहमें कोई वैरभावको प्राप्त हो जाय उनसे उसकी साक्षी नहीं हो सकती क्योंकि वे सब वैरी होते हैं ॥ ८ ॥

नकालहरणंकार्यंराज्ञासाक्षिप्रभाषणे ।
अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्येसाध्यार्थेपिचसन्निधौ ॥

राजा साक्षीके कथनमें समयको न बितावे और वादी प्रतिवादीके सामने और साध्य अर्थकी समीपतामें ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षंवादयेत्साक्ष्यंनपरोक्षंकथंचन ।
नांगीकरोतियःसाक्ष्यंदंड्यःस्याद्दिशितोयदि ॥

प्रत्यक्ष साक्षीको कहावे परोक्षमें कदाचित् न कहावे जो साक्षीको अंगीकार न करै वह साध्यके दंड देनेयोग्य है ॥ १० ॥

यःसाक्षान्नैवनिर्दिष्टोनाहूतोनैवदेशितः ।
ब्रूयान्मिथ्येतितथ्यंवादंड्यःसोपिनराधमः ॥

जिसको साक्षीके लिये न कहा हो न बुलाया हो न आज्ञा दी हो वह नीच नर मिथ्या वा सत्य जैसी साक्षी दे दड देने योग्य है ॥ ११ ॥

द्वैधेबहूनांवचनंसमेषुगुणिनांवचः ।
तत्राधिकगुणानांचगृह्णीयाद्वचनंसदा ॥१२॥

जो साक्षीमें दो प्रकार हों तो जिस तरफ बहुतोंका वचन हो उसको सत्य ग्रहण करै यदि दोनों पक्षोंमें साक्षी बराबर हों तो गुणवालोंका वचन ग्रहण करै और गुणवालोंमें भी जो अधिक गुणवाले हों उनके वचन सदैव ग्रहण करै ॥ १२ ॥

यत्रानियुक्तोपीक्षेतशृणुयाद्वापिकिंचन ।
पृष्टस्तत्रापितद्ब्रूयाद्यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥१३॥

जहां विना नियुक्त किया भी पुरुष देख

वा कुछ सुने वहां वह भी अपने देखै और सुनेके अनुसार साक्षीको कह सकता है ॥ १३॥

विभिन्नकालेयज्ज्ञातंसाक्षिभिश्चांशतःपृथक् ।
एकैकंवादयेत्तत्रविधिरेषसनातनः ॥ १४ ॥

और भिन्न २ समयमें साक्षियोंने जहां पृथक् २ जाना होय वहां एक २ से साक्षीका कथन करावे यह सनातनिक विधि है ॥ १४॥

स्वभावोक्तंवचस्तेषांग्राह्यंयान्नबलात्क्वचित् ।
उक्तेतुसाक्षिणासाक्ष्येनप्रष्टव्यंपुनःपुनः ॥ १५॥

उनके स्वभावसे कहे हुए वचनको ग्रहण करै और बलसे कभी न करै जब साक्षी देनेवाला अपनी साक्षीको कहदे तब वारंवार न पूछे ॥ १५ ॥

आहूयसाक्षिणःपृच्छेन्नियम्यशपथैर्भृशम् ।
पौराणैःसत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्तनैः ॥ १६॥

साक्षियोंको बुलाकर गंगा आदिकी सोगंदसे पुराणके सत्य वचन, धर्मका माहात्म्य इनको कहकर पूछे ॥ १६ ॥

अनृतस्यातिदोषैश्चभृशमुत्त्रासयेच्छनैः ।
देशेकालेकथंकस्मात्किंदृष्टंवाश्रुतंत्वया ॥ १७॥

झूठ बोलनेमें अत्यन्त दोषोंसे बारम्बार भय दिखावे और शनैः २ इस प्रकार पूछे कि किस देशमें किस कालमें किस प्रकार किस कारण से तैंने इस विषयमें क्या देखा क्या सुना १७॥

लिखितंलेखितंयत्तद्वदसत्यंतदेवहि ।
सत्यंसाक्ष्यंब्रुवन्साक्षीलोकानाप्नोतिपुष्कलान् ।

जो लिखा हो अथवा लिखवाया हो उसीको सत्य कहो साक्षीमें सच बोलता हुआ साक्षी उत्तम २ लोकोंको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

इहचानुत्तमांकीर्तिंवागेषाब्रह्मपूजिता ।
सत्येनपूज्यतेसाक्षीधर्मःसत्येनवर्धते १९ ॥

इस लोकमें उत्तम कीर्ति होती है यह वाणी वेदमें भी पूजित कही है सत्यसे साक्षी पुजाता है सत्यसे धर्म बढता है ॥ १९ ॥

तस्मात्सत्यंहिवक्तव्यंसर्ववर्णेषुसाक्षिभिः ।
आत्मैवह्यात्मनःसाक्षीगतिरात्मैवह्यात्मनः २०

तिससे सब वर्णोंमें साक्षी सत्य कहै अपनी आत्माका साक्षी आप है अपनी आत्माका गति आत्मा ही है ॥ २० ॥

मावमंस्थास्त्वमात्मानंनृणांसाक्षिणमुत्तमम् ।
मन्यतेवैपापकारीनकश्चित्पश्यतीतिमाम् २१

मनुष्योंके यथार्थ साक्षी आत्माका अनादर तू मतकर पाप करनेवाला मनुष्य यह मानता है कि मुझे कोई नहीं देखता ॥ २१ ॥

तांश्चदेवाःप्रपश्यंतितथाह्यंतरपूरुषः ।
सुकृतंयत्त्वयाकिंचिज्जन्मांतरशतैःकृतम् २२

उसको देवता और सबका अन्तर्यामी परमेश्वर देखता है सो जो अनेक जन्मोंमें तैंने कुछ पुण्य किया है ॥ २२ ॥

तत्सर्वंतस्यजानीहियंपराजयसेमृषा ।
समाप्नोषिचतत्पापंशतजन्मकृतंसदा २३ ॥

वह सब पुण्य उसका जान जिसको तू झूठी पराजय करता है, उसने जो सौ जन्मोंमें पाप किया है उसको तू प्राप्त होगा ॥ २३ ॥

साक्षिणंश्रावयेद्देवसभायामरहोगतम् ।
दद्याद्देशानुरूपंतुकालंसाधनदर्शने ॥ २४ ॥

इस प्रकार साक्षीको सभामें सबके सन्मुख सुनावे और देशके अनुसार साधन (सबूत) दिखानेके लिये समय दे ॥ २४ ॥

उपाधिंवासमीक्ष्यैवदैवराजकृतंसदा ।
विनष्टेलिखितेराजासाक्षिभोगैर्विचारयेत् २५॥

और दैव राजाकी उपाधिको देखकर लिखित नष्ट हो जाय तो राजा साक्षी और भोग (कबजा) से विचार करै ॥ २५ ॥

लेखसाक्षिविनाशेतुसद्भोगादेवचिंतयेत् ।
सद्भोगाभावतःसाक्षीलेखतोविमृशेत्सदा २६॥

लेख और साक्षी दोनों न मिलें तो उत्तम भोगसे ही विचार करै और अच्छा भोग न होय तो साक्षी और लेखसे सदैव विचार करै ॥ २६ ॥

केवलेनचभोगेनलेखेनापिचसाक्षिभिः ।
कार्यंनचिंतयेद्राजालोकदेशादिधर्मतः २७ ॥

केवल भोगसे या केवल लेख अथवा साक्षियोंसे राजा लोक और देशके धर्मानुसार कार्यकी चिन्ता करै ॥ २७ ॥

कुशलालेख्यबिंबानिकुर्वंतिकुटिलाःसदा ।
तस्मान्नलेख्यसामर्थ्यात्सिद्धिरेकांतिकी मता ॥ २८ ॥

कुशल और कुटिल जो लिखनेवाले हैं वे सदैव बनावटके लेख कर लेते हैं तिससे लेखके बलसे सिद्धिका निर्णय नहीं माने ॥ २८ ॥

स्नेहलोभभयक्रोधैःकूटसाक्षित्वशंकया ।
केवलैःसाक्षिभिर्नैवकार्यंसिध्यतिसर्वदा २९ ॥

स्नेह, लोभ, भय, क्रोध इनसे झूठी साक्षीकी शंका होसकती है इससे केवल साक्षियोंसे ही कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ २९ ॥

अस्वामिकंस्वामिकंवाभुंक्तेयद्बलदर्पितः ।
इतिशंकितभोगेनकार्यंसिध्यतिकेवलैः ३०॥

बलके अभिमानवाला मनुष्य अपनी और पराईको भोग सकता है इस प्रकार केवल शंकावाले भोगोंसे ही कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३० ॥

शंकितव्यवहारेषुशंकयेदन्यथानहि ।
अन्यथाशंकितान्सभ्यान्दंडयेच्चौरवन्नृपः ॥

जिन व्यवहारोंमें शंका हो उनमें अन्यथ शंका न करै यदि राजाके सभासद अन्यथा शंका करैं तो राजा चोरके समान दंडदे॥३१॥

अन्यथाशंकनान्नित्यमनवस्थाप्रजायते ।
लोकोविभिद्यतेधर्मोव्यवहारश्चहीयते ३२ ॥

अन्यथा शंका करनेसे व्यवहारकी अनवस्था होती है अर्थात निवटेरा नहीं होता लोकमें धर्म और व्यवहार दोनों नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

सागमोदीर्घकालश्चविच्छेदोपरमोज्झितः ।
प्रत्यर्थिसन्निधानश्चभुक्तोभोगःप्रमाणवत् ३३ ॥

आगम (लेख) और दीर्घकाल और दूसरेका छोडा हुआ विच्छेद (भोगका अभाव) और प्रत्यर्थीकी समीपता इस प्रकार भोगाहुआ भोग प्रामाणिक होता है ॥ ३३ ॥

संभोगंकीर्तयेद्यस्तुकेवलंनागमंक्वचित् ।
भोगच्छलापदेशेनविज्ञेयःसतुतस्करः ॥३४॥
आगमेपिबलंनैवभुक्तिःस्तोकापियत्रनो ।

जो मनुष्य केवल भोगको बतावे और आगमको न बता दे वह भोगके छलके बहानेसे तस्कर (चोर) जानना वह आगम भी बलवान नहीं होता जहां कुछभी भोग न होय ॥ ३४ ॥

यंकंचिद्दशवर्षाणिसन्निधौप्रेक्षतेधनी ॥ ३५ ॥
भुज्यमानंपरैरर्थंनसतंलब्धुमर्हति ।

धनवाला मनुष्य जिस किसीको दश वर्षतक अपने समीप यह देखता है कि ॥३५॥ इसमें पैदा हुये धनको दूसरे भोग रहे हैं उस धन को वह धनवान नहीं लेसकता ॥

वर्षाणिविंशतिर्यस्यभूर्भुक्तातुपरैरिह ३६ ॥
सतिराज्ञिसमर्थस्यतस्यसेहनासिध्यति ।

जिस मनुष्यकी भूमिको २० बीस वर्षतक भोगाहो राजा विद्यमान और भूमिका स्वामीभी समर्थ होय उसकी वह भूमि सिद्ध नहीं हो सकती ॥ ३६ ॥

अनागमंतुयोभुंक्तेबहून्यब्दशतान्यपि ३७ ॥
चौरदंडेनतंपापंदण्डयेत्पृथिवीपतिः ॥

और आगमके विना जो बहुतसे सैकडों वर्ष भी भोगे ॥ ३७ ॥ उस पापीको राजा चोरके समान दंड दे ।

अनागमापियाभुक्तिर्विच्छेदोपरमोज्झिता ।
षष्टिवर्षात्मिकासापहर्तुंशक्यानकेनचित् ३८॥

और विना आगमभी निरंतर जो भोग॥३८॥ आठ वर्षतक होय उसको कोई नहीं छीन सकता है ॥

आधिःसीमाबालधनंनिक्षेपोपानिधिःस्त्रियः ।
राजस्वंश्रोत्रियस्वंचनभोगेनप्रणश्यति ।

उपेक्षांकुर्वतस्तस्यतूष्णींभूतस्यतिष्ठतः ४०॥
कालेऽतिपन्नेपूर्वोक्तेतत्फलंनाप्नुतेधनी ।
भोगःसंक्षेपतश्चोक्तस्तथादिव्यमथोच्यते ४१॥

आधि (धरोहर) सीमा (ग्रामपर्यान्त) बालकका धन, सौंपना, स्त्री ॥ ३९ ॥ और राजा वेदपाठीका द्रव्य ये भोग (वर्तना) सेवन नहीं होता यदि वह उपेक्षा करै और चुपका बैठा रहै ॥ ४० ॥ तो पूर्वोक्त मर्यादाके बीतनेपरभी धनका स्वामी उसके फलको प्राप्त होता है संक्षेपसे भोग वर्णन किया अब दिव्य वर्णन करते हैं ॥ ४१ ॥

प्रमादाद्धनिनोयत्रत्रिविधंसाधनंनचेत् ।
अर्थश्चापह्नुतेवादतित्रोक्तस्त्रिविधोविधिः ॥

यदि धनवालेके प्रमादसे जहां पर तीन प्रकारका साधन न होय और वादी अर्थ (धन)-को छिपाया चाहे तो वहां तीन प्रकारकी विधि कही है ॥ ४२ ॥

चोदनाप्रतिकालश्चयुक्तिलेशस्तथैवच ।
तृतीयःशपथःप्रोक्तस्तैरेवंसाधयेत्क्रमात् ॥४३॥

प्रेरणा समयका व्यत्यय और युक्तिका लेश और तीसरा शपथ (सौगंद) इन तीनसे कार्यकी सिद्धि राजा करै ॥ ४३ ॥

विशिष्टतर्कितायाचशास्त्रशिष्टाविरोधिनी ।
योजनास्वार्थसंसिद्ध्यैसायुक्तिस्तुनचान्यथा ॥

जो उत्तम तर्कना होय शास्त्र और शिष्टोंका जिसमें विरोध न होय और अपने अर्थकी सिद्धि का योग होय उसे युक्ति कहते हैं अन्यको नहीं ॥ ४४ ॥

दानंप्रज्ञापनाभेदःसंप्रलाभक्रियाचया ।
चित्तापनयनंचैवहेतवोह्यभिभावकाः ॥४५॥

देना, समझना, फोडना और उत्तम लोभ देना और मनको वशमें करना ये सब कार्यसिद्धिके हेतु होते हैं॥ ४५ ॥

अभीक्ष्णंचोद्यमानोपिप्रतिहन्यान्नतद्वचः ।
त्रिचतुःपंचकृत्वोवापरतोर्थंसदाप्यते ॥४६॥

वारंवार प्रेरण करनेसे भी जो अपने वचनके तीन चार पांच वार कहनेसे न लौटे तो उसको प्रतिवादीसे धन मिल सकता है ॥ ४६ ॥

युक्तिष्वप्यसमर्थासुदिव्यैरेनंविमर्दयेत् ।
यस्माद्देवैःप्रयुक्तानिदुष्करार्थेमहात्मभिः ॥

जहां युक्ति भी असमर्थ होय (नचले) वहां दिव्योंसे मनुष्यका मर्दन करै क्योंकि देवता और महात्माओंने दुष्कर कर्मके लिये दिव्य कहे हैं ॥ ४७ ॥

परस्परविशुद्ध्यर्थंतस्माद्दिव्यानिवाप्यतः ।
सप्तर्षिभिश्चभीत्यर्थंस्वीकृतान्यात्मशुद्धये ४८॥

परस्पर कार्यकी शुद्धिके लिये दिव्य उपाय होते हैं और डरानेके लिये सप्तर्षियोंनेभी आत्मशुद्धिके लिये दिव्योंको स्वीकार किया है ॥ ४८ ॥

स्वमहत्त्वाच्चयोदिव्यंनकुर्याज्ज्ञानदर्पतः ।
वसिष्ठाद्याश्रितंनित्यंसनरोधर्मतस्करः॥ ४९ ॥

जो अपने महत्वसे और ज्ञानके अभिमानसे वसिष्ठआदि ऋषियोंके स्वीकार किये दिव्यको न मानै वह मनुष्य धर्मका तस्कर होता है ॥ ४९ ॥

प्राप्तेदिव्येपिनशपेद्ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ।
संहरन्तिचधर्मार्धंतस्यदेवानसंशयः ॥ ५० ॥

ज्ञानका दुर्बल ब्राह्मण दिव्यकी प्राप्तिके समय निदान कर जो सौगन्द न करै तो देवता उसके आधे धर्मको हर लेते हैं ॥ ५० ॥

यस्तुस्वशुद्धिमन्विच्छन्दिव्यंकुर्यादतन्द्रितः।
विशुद्धोलभतेकीर्तिंस्वर्गंचैवान्यथानहि ५१॥

जो मनुष्य अपनी शुद्धिकी इच्छा करताहुआ आलस्यको छोडकर दिव्यका स्वीकार करता है, विशुद्ध हुआ वह कीर्ति और स्वर्गको प्राप्त होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ५१ ॥

अग्निर्विषंघटस्तोयंधर्माधर्मौचतंडुलाः।
शपथाश्चैवनिर्दिष्टामुनिभिर्दिव्यनिर्णये ५२ ॥

अग्नि, विष, तुला, जल,धर्म, अधर्म, चावल और सौगंद ये सब दिव्यके निर्णयमें मुनियोंने कहे हैं ॥ ५२ ॥

पूर्वंपूर्वंगुरुतरंकार्यंदृष्ट्वानियोजयेत् ।
लोकप्रत्ययतःप्रोक्तंसर्वंदिव्यंगुरुस्मृतम् ५३॥

इनमें पहिला २ अधिक होता है और इनको कार्यको देखकर नियुक्त करै और जगत्‌की प्रतीतिसे कहा हुआ दिव्य संपूर्णही गुरु कहा है ॥ ५३ ॥

तप्तायोगोलकंधृत्वागच्छेन्नैवपदंकरे ।
तप्तांगारेषुवागच्छेत्पद्भ्यांसप्तपदानिहि ५४

तपाये हुए लोहेका गोला हाथपर रखनेसे यदि चिह्न न पडै अथवा जो मनुष्य सात पदतक तपाये हुए अंगारों पर गमन करै॥५४॥

तप्ततैलगतंलोहमाषहस्तेननिर्हरेत् ।
सुतप्तलोहपत्रंवाजिह्वयासंलिहेदपि ॥ ५५ ॥

तपाये हुए तेलमें डाले हुए मासे भर लोहको हाथसे उठाले अथवा तपाये हुए लोहेके पत्रको जिह्वासे चाटले ॥ ५५ ॥

गरंप्रभक्षयेद्धस्तैःकृष्णसर्पंसमुद्धरेत् । कृत्वा
स्वस्यतुलासाम्यंहीनाधिक्यंविशोधयेत् ॥ ५६

विषको भक्षण कर ले अथवा हाथसे काले सांपको ले (यदि इन पूर्वोक्तोंसे न मरे अथवा हानि न होय तो जानना कि सच्चा है) अथवा तुलामें अपनी बराबरके पदार्थको रखकर हीन और अधिकताकी जांच करै ॥ ५६ ॥

स्वेष्टदेवस्नपनजमद्यादुदकमुत्तमम् ।
यावन्नियमितःकालस्तावदंबुनिमज्जनम् ॥

अपने इष्ट देवके स्नानके उत्तम जलका पान करै अथवा नियमित कालतक जलमें डूबा रहै ॥ ५७॥

अधर्मधर्ममूर्तीनामदृष्टहरणंतथा ।
कर्षमात्रांस्तंडुलांश्चचर्वयेच्चविशंकितः ॥५८॥

अधर्म और धर्मकी मूर्तियोंको न देखे न हरै और एक तोलाभर चावल शंकाको त्याग कर चाब ले ॥ ५८ ॥

स्पर्शयेत्पूज्यपादांश्चपुत्रादीनांशिरांसिच ।
धनानिसंस्पृशेद्वाक्तुसत्येनापिशपेत्तथा ५९॥

अपने पूज्य पिता आदिके चरणोंका,पुत्र आदिके शिरोंका अथवा धनका स्पर्श करै और शीघ्रही सत्यसे सौगंदको ग्रहण करै ॥ ५९ ॥

दुष्कृतंप्राप्नुयामद्यनश्येत्सर्वंतुसत्कृतम् ।
सहस्रेपहृतेचाग्निःपादोनचविषंस्मृतम् ॥६०॥

मुझे आज पाप प्राप्त हो और संपूर्ण सत्कर्म नष्ट हो जांय हजारकी चोरी पर अग्नि और इससे चौथाई कमपर विषदेना कहा है ॥६० ॥

त्रिभागोनेघटःप्रोक्तोह्यर्धेचसलिलंतथा ।
धर्माधर्मौतदर्धेचह्यष्टमांशेचतंडुलाः ॥६१ ॥

त्रिभागसे कममें घट (तुला) आधेमें जल और उससे आधेमें धर्म और अधर्म आठवें अंशकी चोरीमें चावल ॥ ६१ ॥

षोडशांशेचशपथाएवंदिव्यविधिःस्मृतः ।
एषांसंख्यानिकृष्टानांमध्यानांद्विगुणास्मृता ॥

और सोलहवें भागमें शपथ (सौगंद) इस प्रकार दिव्य प्रमाणकी विधि कही है और निकृष्टोंकी यह संख्या है मध्यम दिव्योंकी संख्या दूनी कही है ॥ ६२ ॥

चतुर्गुणोत्तमानांचकल्पनीयापरीक्षकैः ।
शिरोवर्तियदानस्यात्तदादिव्यंनदीयते ॥६३॥

और परीक्षक जन उत्तम दिव्योंकी चौगुनी संख्याकी कल्पना करै जब शिरोवर्ति अर्थात् शिरका कांपना न हो तो उस समयमें दिव्य प्रमाणको न दे ॥ ६३ ॥

अभियोक्ताशिरःस्थानेदिव्येषुपरिकीर्त्यते ।
अभियुक्तायदातव्यंदिव्यंश्रुतिनिदर्शनात् ॥

अभियोक्ता (अर्जी देनेवाला) का शिर भी दिव्योंमें गिना है, श्रुतिकी आज्ञासे अभियुक्त (मुद्दायले) को भी दिव्य देना ॥ ६४ ॥

नकश्चिदभियोक्तारंदिव्येषुविनियोजयेत् ।
इच्छयात्वितरःकुर्यादितरावर्तयच्छिरः ॥६५॥

कोई भी न्याय करनेवाला अभियोक्ता (मुद्दई) को दिव्य प्रमाणोंमें नियुक्त न करै अर्थात् उससे दिव्य न लेवावे और इतर अपनी इच्छासे दिव्यको करै और दूसरा शिरको हिलादे ॥ ६५ ॥

पार्थिवैःशंकितानांचानिर्दिष्टानांचदस्युभिः ।
आत्मशुद्धिपराणां चदिव्यंदेयंशिरोविना ॥

जिन मनुष्योंपर राजाओंकी शंका हो और जो चोरोंके संग देखे हों और जो अपराधी अपनी शुद्धि चाहते हों उन सबको दिव्य देना परंतु शिरके बिना ॥ ६६ ॥

परदाराभिशापेचह्यगम्यागमनेषुच ।
महापातकशस्तेचदिव्यमेवचनान्यथा ॥ ६७॥

पराई दाराके अभिशाप (गालीदेना) गमनके अयोग्य स्त्रीका गमन, महापातकी, इतने अपराधियोंको दिव्य प्रमाण दे अन्यथा नदे६७॥

चौर्याभिशंकायुक्तानांतप्तमाषोविधीयते ।
प्राणांतिकविवादेतुविद्यमानेपिसाधने ॥ ६८ ॥

जो प्राणी चोरीकी शंकासे युक्त हैं उनको तपाये हुये मासेभर सोनेका दिव्य कहा है जो विवाद प्राणांतिक (खूनके) हों उनमें चाहे साधनभी विद्यमान हो ॥ ६८ ॥

दिव्यमालंवतेवादीनपृच्छेत्तत्रसाधनम् ।
सोपधंसाधनंयत्रतद्राज्ञेश्राविर्तयादि ॥ ६९ ॥

वहांपर वादी दिव्यप्रमाणको आलंबन (स्वीकार) करे तो ऐसे स्थलमें न्याय करनेवाला साधनको न पूछे यदि कहीं साधनमें कोई छल प्रतीत होय और वह राजाको सुना दिया होय तो ॥ ६९ ॥

शोधयेत्तुदिव्येनराजाधर्मासनास्थितः ।
यन्नामगोत्रैर्यल्लेख्यतुल्यंलेख्यंयदाभवेत् ७०॥

धर्मासनपै बैठा हुआ राजा उसको दिव्यसे शोधन करै जो भाषा पत्रिका (अर्जी) लिखना नाम और गोत्रके तुल्य होय ॥ ७० ॥

अगृहीतधनेतत्रकार्येदिव्येननिर्णयः ।
मानुषसाधनंनस्यात्तत्रदिव्यंप्रदापयेत् ७१ ॥

और प्रतिवादीने धनको ग्रहण न किया होय तो वहांपर दिव्य प्रमाणसे निर्णय करै और जहां कोई लौकिक साधन न होय वहां पर भी दिव्यको दे ॥ ७१ ॥

अरण्येनिर्जनेरात्रावंतर्वेश्मनिसाहसे ।
स्त्रीणांशीलाभियोगेषुसर्वार्थापह्नवेषुच ७२ ॥

निर्ज्जन वनमें, रात्रि, गृहके भीतर, साहस (हिंसा आदि) स्त्रियोंके आचरणका अभियोग और सर्वथा झूठ इनमें ॥ ७२ ॥

प्रदुष्टेषुप्रमाणेषुदिव्यैःकार्यविशोधनम् ।
महापापाभिशस्तेषुनिक्षेपहरणेषुच ॥ ७३ ॥
दिव्यैःकार्यपरीक्षेतराजासत्स्वपिसाक्षिषु ॥

और जहां अन्य प्रमाणोंकी दुष्टता होगई हो वहां दिव्य प्रमाणोंसे शोधन करै महान् पापोंके अभिशाप (लगाना) में और निक्षेप (धरोहर) हरनेमें ॥ ७३॥ चाहे साक्षीभी विद्यमान होय तो भी राजा दिव्योंमें ही झूठे सच्चेकी परीक्षा करै ॥

प्रथमायत्रभिद्यंतेसाक्षिणश्चतथापरे ॥ ७४ ॥
परेभ्यश्चतथाचान्येतंवादंशपथैर्नयेत् ।

जिस बादमें पहिले साक्षी और दूसरे साक्षी भेदनको प्राप्त होजायँ ॥ ७४ ॥ और किसी प्रकार अन्यभी साक्षी टूट जायँ ऐसे बादको राजा शपथोंसे निर्णय करै ॥

स्थावरेषुविवादेषुपुगश्रेणीगणेषुच ॥ ७५ ॥
दत्तादत्तेषुभृत्यानांस्वामिनांनिर्णयेसति ।
विक्रियादानसंबंधेक्रीत्वाधनमयच्छति ॥७६॥
साक्षिभिर्लिखितेनाथभुक्त्याचैतान्प्रसाधयेत् ।

स्थावरोंके विवादोंमें पुगश्रेणी (सभा) गणोंमें ॥ ७५ ॥ दिये और न दियेमें सेवक और स्वामीके देनेके और न देनेके निर्णयमें बेचने और दानके संबंधमें और पदार्थकोखरीदकर धनके न देनेमें ॥ इन सबका निर्णय साक्षियोंके लेखसे अथवा भुक्ति (वर्तना से करै ॥ ७६॥

विवाहोत्सवद्यूतेषुविवादेसमुपस्थिते ७७ ॥
साक्षिणः साधनंतत्रनादिव्यंनचलेखकम् ।

विवाह उत्सव द्यूत (जूआ) यदि इनमें विवाद उपस्थित होय तो ॥ ७७ ॥ वहां साक्षी ही निर्णयके साधन होते हैं न दिव्य न लेख॥

द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहादिषुतथा ७८ ॥
भुक्तिरेवतुगुर्वीस्यान्नदिव्यंनचसाक्षिणः ।

द्वार मार्गका करना और जलके प्रवाह आदिके भोगमें ॥ ७८ ॥ भोगना (वर्तना) ही भारी प्रमाण है और न दिव्य है न साक्षी हैं ॥

यद्येकोमानुषींब्रूयादन्योब्रूयात्तुदैविकीम् ।
मानुषींतत्रगृह्णीयान्नतुदैवींक्रियांनृपः ॥७९॥

जिस विवादमें एक मनुष्य मानुषी क्रियाको कहै और दूसरा दिव्य क्रियाको कहै वहांपर राजा मानुषी क्रियाको ग्रहण करै दैवीको नहीं ॥ ७९ ॥

यद्येकदेशप्राप्तापिक्रियाविद्येतमानुषी ॥ ८०॥
साग्राह्यानतुपूर्णापिदैविकविदतांनृणाम् ।

जो किसी एक देशमें भी मानुषी क्रिया मिल जाय तो विवाद करते हुए मनुष्योंमें उस मानुषीक्रियाको राजा ग्रहण करै और पूरी भी दिव्य क्रियाको ग्रहण न करै ॥ ८० ॥

प्रमाणैर्हेतुचरितैःशपथेननृपाज्ञया ॥ ८१ ॥
वादिसंप्रतिपत्त्यावानिर्णयोष्टविधःस्मृतः ।

प्रमाण, हेतु आचरण, शपथ (सौगंध) राजाकी आज्ञा, वादीकी संप्रतिपत्ति (संतोष) इस प्रकार पूर्वोक्त निर्णय आठ तरहका कहा है ॥ ८१ ॥

लेख्यंयत्रनविद्येतनभुक्तिर्नचसाक्षिणः ॥८२॥
नचदिव्यावतारोस्तिप्रमाणंतत्रपार्थिवः ।

जिस विवादमें न लेख होय, न भुक्ति होय और न साक्षी होय और न दिव्यका कोई निश्चय होय ऐसे स्थलमें राजा ही प्रमाण है ॥ ८२ ॥

निश्चेतुंयेनशक्याःस्युर्वादाःसंदिग्धरूपिणः ।
सीमाद्यास्तत्रनृपतिःप्रमाणंस्यात्प्रभुर्यतः ॥
स्वतंत्रःसाधयन्नर्थान्राजापिस्याच्चकिल्बिषी ॥ ८४ ॥

उसीसे संदेह रूप विवाद निश्चय करनेको शक्य होतेहैं ॥ ८३ ॥ सीमा आदि संदेहके विवादमें भी राजा ही प्रमाण है क्योंकि वह प्रभु है जो राजा स्वतंत्र होयके अर्थों (विवाद) को सिद्ध करता है वह भी पापी होता है॥८४॥

धर्मशास्त्राऽविरोधेनह्यर्थशास्त्रंविचारयेत् ।
राजामात्यप्रलोभेनव्यवहारस्तुदुष्यति ॥८५॥

धर्मशास्त्रके अविरोधसे राजा नीति शास्त्रको विचारै जिस व्यवहारमें राजा और मंत्रीको लोभ होता है वह दूषित हो जाता है ॥ ८५ ॥

लोकोपिच्यवतेधर्मात्कूटार्थेसंप्रवर्तते ।
अतिकामक्रोधलोभैर्व्यवहारः प्रवर्तते ८६ ॥

और जगतभी धर्मसे गिर जाता है और कपटमें प्रवृत्त होजाता है अत्यन्त काम क्रोध लोभ इनसेही व्यवहार (विवाद) प्रवृत्त होता है ॥ ८६ ॥

कर्तृनथोसाक्षिणश्चसभ्यान्राजानमेवच ।
व्याप्नोत्यतस्तुतन्मूलंछित्त्वातंविमृशन्नयेत् ॥

और वह करनेवाला साक्षी सभासद राजा इन सबमें फैलता है इससे राजा काम क्रोध लोभ मोह जो व्यवहारके मूल हैं उनको दूर करके विचारपूर्वक निर्णय करै ॥ ८७ ॥

अनर्थंचार्थवत्कृत्वादर्शयंतिनृपायये ।
अविचिंत्यनृपस्तथ्यंमन्यतेतैर्निदर्शितः ८८॥

जो सभासद राजाको अनर्थका अर्थ दिखावें और उनके कहे हुयेको राजा बिना विचारे सत्य मानले ॥ ८८ ॥

स्वयंकरोतितद्वत्तौभुज्यतोष्टगुणंत्वघम् ।
अधर्मतःप्रवृत्तंतंनोपेक्षेरन्सभासदः ॥ ८९ ॥

वा अर्थ तथा अनर्थको राजा स्वयं करै तो वे दोनों आठगुने पापको भोगते हैं, अधर्ममें प्रवृत्त हुए राजाकी सभासद उपेक्षा न करै ॥ ८९ ॥

उपेक्ष्यमाणाःसनृपानरकंयान्त्यधोमुखाः ।
धिग्दंडस्त्वथवाग्दंडःसभ्यायत्तौतुतावुभौ ९०

यदि उपेक्षा करैं तौ राजा और सभासद नीचेको मुख कारक नरकमें जाते हैं धिक्कार-

का दंड और वाणीका दंड ये दोनों सभासदों-
के आधीन होते हैं ॥ ९० ॥

अर्थदंडवधावुक्तौराजायत्तावुभावपि ।
तीरितंचानुशिष्टंचयोमन्येतविधर्मतः ॥ ९१॥

धनका दंड और वध ये दोनों राजाके आ-
धीन होते हैं जिस तीरित(हुक्म) और शि-
क्षाको राजा अधर्मसे कीहुई माने ॥ ९१ ॥

द्विगुणंदंडमादायपुनस्तत्कार्यमुद्धरेत् ।
साक्षिसभ्यावसन्नानांदूषणंदर्शनेपुनः ॥९२ ॥

सभासदोंसे दूना दंड लेकर दुबारा उसका-
र्यका उद्धार (प्रारंभ) करै यदि साक्षी सभा-
सद इनमें कोई दूषण पाया जाय तोभी पुनः
उद्धार करै ॥ ९२ ॥

स्वचर्यावसितानांचप्रोक्तःपौनर्भवोविधिः ।
अमात्यःप्राड्विवाकोवायेकुर्युःकार्यमन्यथा ॥

जो सभासद अपने कार्यमें भूल जाय तोभी
कार्य्यकी विधि पुनः कही है यदि मंत्री वा
प्राड्विवाक (वकील) कार्य्यको अन्यथा करदे
॥ ९३ ॥

तत्सर्वंनृपतिःकुर्यात्तान्सहस्त्रंतुदंडयेत् ।
नहिजातुविनादंडंकश्चिन्मार्गेवतिष्ठते ॥९४॥

उस संपूर्णकार्य्यको राजा करै और उन
दोनोंको सहस्त्रमुद्रा दंड दे क्योंकि विना दंड
कोई भी मार्गमें नहीं टिकता ॥ ९४ ॥

संदर्शितेसभ्यदोषेतदुद्धृत्यनृपोनयेत् ।
प्रतिज्ञाभावनाद्वाहिप्राड्विवाकादिपूजनात् ९५

यदि सभासदोंका कोई दोष दिखावा जाय
तो उस दोषको निकाल कर राजा स्वयं न्या-
य करै प्रतिज्ञाकी सत्यता और प्राड्विवाक
(वकील) आदिके पूजनसे ॥ ९५ ॥

जयपत्रस्यचादानाज्जयीलोकेनिगद्यते ।
सभ्यादिभिर्विनिर्णिक्तंविधृतंप्रतिवादिना९६॥

और जयपत्रके ग्रहणसे जगतमें जीतने
वालेको जयी कहते हैं। जो सभासदोंने
निर्णय किया हो और प्रतिवादीने मान लिया
हो ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वाराजातुजयिनेप्रदद्याज्जयपत्रकम् ।
अन्यथाह्यभियोक्तारंनिरुध्याद्बहुवत्सरम् ॥
मिथ्याभियोगसदृशमर्हयेदभियोगिनम् ।

ऐसे जयपत्रको देखकर राजा जीतने-
वालेको दे । अन्यथा (पूर्वोक्त न होय तो)
अभियोक्ता (अरजी देनेवाले) को बहुत वर्षत-
क कैद करै ॥ ९७ ॥ और मिथ्या अभियोग
(अर्जी) के समान अभियोगी (मुद्दायले)
का पूजन करै ॥

कामक्रोधौतुसंयम्ययोर्थान्धर्मेणपश्यति ९८॥
प्रजास्तमनुवर्तंतेसमुद्रमिवसिंधवः ।
जीवतोरस्वतंत्रःस्याज्जरयापिसमन्वितः ॥९९॥

जो राजा कामक्रोधको रोककर धर्म-
पूर्वक अर्थों (दावे) को देखता है ॥ ९८॥
उस राजाके अनुकूल प्रजा इस प्रकार होती
है जैसे समुद्रके नदी । माता पिताके
जीते हुए वृद्ध भी पुत्र स्वतंत्र नहीं होता॥९९॥

तयोरपिपिताश्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात् ।
अभावेबीजिनोर्माताततदभावेतुपूर्वजः ८०० ॥

उन दोनोंमेंभी बीजकी प्राधान्यता देखकर
पिता श्रेष्ठ है, और पिताके अभावमें माता
और माताके अभावमें जेठा भाई श्रेष्ठ होता
है ॥ ८०० ॥

स्वातंत्र्यंतुस्मृतंज्येष्ठेज्यैष्ठ्यंगुणवयःकृतम् ।
याःसर्वाःपितृपत्न्यःस्युस्तासुवर्तेतमातृवत् ॥

जेठ भाईको स्वतंत्रता कही है और गुण
अवस्थासे ज्येष्ठता होती है जो पिताकी
सपूण पत्नी हैं उन सबमें माताके समान
वर्ताव करै ॥ १ ॥

स्वसमैकेनभागेनसर्वास्ताःप्रतिपालयन् ।
अस्वतंत्राःप्रजाःसर्वाःस्वतंत्रःपृथिवीपतिः ॥

और अपने समान एक भागसे उन सबकी
अच्छी पालना करै सपूर्णप्रजा अस्वतंत्र(परा-
धीन) है और राजा स्वतंत्र है ॥ ८०२ ॥

अस्वतंत्रःस्मृतःशिष्यआचार्येतुस्वतंत्रता।
सुतस्यसुतदाराणांवशित्वमनुशासने ॥ ३ ॥

शिष्य अस्वतंत्र है और आचार्य्य स्वतंत्र है शिक्षा देनेके लिये लडके और लडकेकी स्त्री पिताके वशमें होती है ॥ ३ ॥

विक्रयेचैवदानेचवशित्वंनसुतेपितुः ।
स्वतंत्राःसर्वएवैतेपरतंत्रेपुनित्यशः ॥ ४ ॥

बेचने और दानके लिये लडका पिताके वशमें नहीं होता पराधीनके विषे भी ये सब स्वतंत्र होते हैं ॥ ४ ॥

अनुशिष्टौविसर्गेवाविसर्गेचेश्वरोमतः ।
मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपिताप्रभुः ॥५॥

शिक्षा, दान और अदानमें ये स्वतंत्र कहे हैं मणि, मोती, मूंगा इन सबका स्वामी (मालिक) पिता होता है ॥ ५ ॥

स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानापितामहः ॥
भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः ॥६॥

सम्पूर्ण स्थावर धनका स्वामी न पिता है न पितामह है। भार्या, पुत्र, दास ये तीनों अधन अर्थात् धनके अस्वामी कहे हैं ॥ ६ ॥

यत्तेसमधिगच्छंतियस्यैतेतस्यतद्धनम् ॥
दत्तेतेयस्ययद्धस्तेतत्तस्यस्वामीसएवन॥ ७ ॥

जो इनको मिलता है वहभी धन उसीका होता है जिसके ये तीनों होते हैं, जो धन जिसके हाथमें वर्ते उसका स्वामी वही नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अन्यस्वमन्यद्धस्तेषुचौर्याद्यैःकिन्नदृश्यते ।
तस्माच्छास्त्रतएवस्यात्स्वाम्यंनानुभवादपि८॥

क्योंकि चोरी करनेसे अन्यका धनभी अन्य के हाथ दीखता है, तिससे शास्त्रसे ही धनका स्वामी होता है अनुभवसे नहीं ॥ ८ ॥

अस्यापहृतमेतेननयुक्तंवक्तुमन्यथा ।
विदितोर्थागमःशास्त्रेतथावर्णः पृथक्पृथक्९॥

अन्यथा यह कहना अयोग्य होगा कि इसका धन इसने हरा धनका आगम और पृथक् २वर्ण शास्त्रमें विदित है ॥ ९ ॥

शास्तितच्छास्त्रधर्म्यंयन्म्लेच्छानामपितत्सदा ।
पूर्वाचार्यैस्तुकथितंलोकानांस्थितिहेतवे १० ॥

उस शास्त्रने जिस धर्मकी शिक्षा दी है वही धर्म म्लेच्छ आदिपर्यंत सदासे होता है क्योंकि पहिले आचार्योंने जगत्की मर्यादाके लिये कहा है ॥ १० ॥

समानभागिनःकार्याःपुत्राःस्वस्यचवैस्त्रियः ।
स्वभागार्धहराकन्यादौहित्रस्तुतदर्धभाक् ॥

पिता अपने पुत्र और स्त्रियोंको समान भाग दे और कन्याओंको आधाभाग और कन्याओं से दौहित्रको आधा भाग दे ॥ ११ ॥

मृतेपिपितुपुत्राद्याउक्तभागहराःस्मृताः ।
मात्रेदद्याच्चतुर्थांशंभगिन्यैमातुरर्धकम् १२ ॥

पिताके मरेपरभी पुत्र आदि सम भाग लेनेवाले ही कहे हैं माताको चौथा भाग और मातासे आधा भाग भागिनीको दे ॥ १२ ॥

तदर्धंभागिनेयायशेषंसर्वंहरेत्सुतः ।
पुत्रोनसाधनंपत्नीहरेत्पुत्रींचतत्सुतः १३ ॥

भगिनीसे आधा भानजेको दे और शेष सब, को पुत्र ग्रहण करै पुत्र न होय तो पत्नी पत्नी न होय तो पुत्री पुत्री न होय तो दौहित्र धनको ग्रहण करै ॥ १३ ॥

मातापिताचभ्राताचपूर्वलाभेचतत्सुतः ।
सौदायिकंधनंप्राप्यस्त्रीणांस्वातंत्र्यमिष्यते १४

माता, पिता, भाई, भाइ न होय तो उसका पुत्र धनको ग्रहण करै जो धन स्त्रियोंको सौ-दायिक मिलता है उस धनमें स्त्री स्वतंत्र होती है ॥ १४॥

विक्रयेचैवदानेचयथेष्टंस्थावरेष्वपि ।
ऊढयाकन्ययावापिपत्युःपितृगृहाच्चयत् १५॥

चाहे उसे बेचे और दान करै और वह धन स्थावर हो या जंगम विवाही हुइ कन्याको पति से और पिताके घरसे जो धन मिले ॥ १५ ॥

मातृपित्रादिभिर्दत्तंधनंसौदायिकंस्मृतम् ।
पित्रादिधनसंबंधहीनंयद्युपार्जितम् ॥१६ ॥

अथवा माता, पिता, जो दें उस धनको सौ-दायिक कहते हैं, जो पुत्र पिताके धनको न लगाकर धनका सञ्चय करले ॥ १६ ॥

स्येनकाममश्नीयाद्विभाज्यंधनंहितत् ।
जलतस्करराजाग्निव्यसनेसमुपस्थिते १७॥

वह पुत्र उसधनको अपनी इच्छाके अनुसार भोगे और अपने भाइयोंको न बांटे यदि जल चौर, राजा, अग्नि इनकी विपत्ति पिताके धन पर पडे ॥ १७॥

यस्तुस्वशक्त्यासंरक्षेत्तस्यांशोदशमःस्मृतः ।
हेमकारादयोयत्रशिल्पंसंभूयकुर्वते ॥ १८॥

जो पुत्र अपनी शक्तिसे उस धनकी रक्षा करै तो उसको दशवां भाग उसमेंसे मिलना कहा है जो सुनार आदि मिलकर कारीगरी करते हैं ॥ १८ ॥

कार्यानुरूपंनिर्वेशंलभेरंस्तेयथार्हतः ।
संस्कर्तातत्कलाभिज्ञःशिल्पीप्रोक्तोमनीषि-
भिः ॥ १९ ॥

वे अपने अपने कार्यके अनुसार नोकरीको यथायोग्य प्राप्त होते हैं, संस्कार करनेवाला जो कार्यकी कलाको भली प्रकार जानता हो उसको बुद्धिमान् शिल्पी कहते हैं ॥ १९ ॥

हर्म्यंदेवगृहंवापिवाटिकोपस्कराणिच ।
संभूयकुर्वतांतेषांप्रमुख्योद्व्यंशमर्हति २० ॥

महल, देवताओंका मंदिर, वाटिका और उपस्कर, इनको जो मनुष्य मिलकर करते हों उसमें जो मुख्य हो उसे दो भाग मिलने योग्य हैं ॥ २० ॥

नर्तकानामेवधर्मःसद्भिरेवउदाहृतः ।
तालज्ञोलभतेर्धांर्धंगायनास्तुसमांशिनः ॥ २१

नाचनेवालोंका यह सनातन धर्म सज्जनोंने कहा है कि तालके जाननेवालेको चौथाई भाग और गानेवालोंको सम (बराबर) मिलता है ॥ २१ ॥

परराष्ट्राद्धनंयत्स्याच्चौरैःस्वाम्याज्ञयाहृतम् ।
राज्ञेषष्ठांशमुद्धृत्याविभजेरन्समांशकम् ॥२२॥

पराये राज्यमेंसे जिस धनको अपने स्वामी की आज्ञासे चोर हरलावे उसका छठा भाग स्वामीको देकर शेष भागको समान बांटले२२॥

तेषांचेत्प्रसृतानांचग्रहणंसमवाप्नुयात् ।
तन्मोक्षार्थंचयद्दत्तंवहेयुस्तेसमांशतः ॥२३ ॥

उनके उस कामके करनेमें जो कोई बन्धन को प्राप्त हो जाय उसके छुटानेमें जो धन दिया हो उसको भी समभागसे बाँटकर भुगतलें ॥ २३ ॥

प्रयोगंकुर्वतेयेतुहेमाद्यन्यरसादिना ।
समन्यूनाधिकैरंशैर्लभस्तेषांतथाविधः २४ ॥

जो मनुष्य सुवर्ण आदि वा अन्य रस आदि से प्रयोग रसोंका बनाना करते हैं उन सबको समान न्यून वा अधिक अंशोंसे उसी प्रकार लाभ होता है कि ॥ २४ ॥

समोन्यूनोधिकोह्यंशोयेनक्षिप्तस्तथैवसः ।
व्ययंदद्यात्कर्मकुर्याल्लाभंगृह्णीतचैवहि २५ ॥

जिसने समान न्यून वा अधिक जैसा अंश व्ययको दिया हो वैसाही वह खर्च करै काम-को करै और लाभको ग्रहण करै ॥ २५ ॥

वणिजानांकर्षकाणामेषएवविधिःस्मृतः ।
सामान्यंयाचितंन्यासआधिर्दासश्चतद्धनम् २६

यह विधि व्यापारी और किसानोंकी कही है सामान्य, याचित न्यास (सोंपाहुआ द्रव्य) आधि (धरोहर) दास (दासका धन) ॥२६॥

अन्वाहितंचनिक्षेपःसर्वस्वंचान्वयेसति ।
आपत्स्वपिनदेयानिनववस्तूनिपंडितैः ॥ २७॥

अन्वाहित, निक्षेप और सब धन इन वस्तु-ओंको पंडित जन आपत्तिके समयमें भी न दे यदि अपने वंशमें कोई सन्तान होय ॥ २७ ॥

अदेयंयश्चगृह्णातियश्चादेयंप्रयच्छति ।
तावुभौचौरवच्छास्यौदाप्यौचोत्तमसाहसम् २८

जो मनुष्य देनेके अयोग्यको ग्रहण करता है अथवा देता है वे दोनों चौरके समान शिक्षा देने योग्य हैं और राजा उनको उत्तम साह-सका दंड दे ॥ २८ ॥

अस्वामिकेभ्यश्चौरेभ्योविगृह्णातिधनंतुयः ।
अव्यक्तमेवक्रीणातिसदंड्यश्चौरवन्नृपैः २९॥

जिनका कोई स्वामी न होय ऐसे चौरोंसे जो धनको लेता है और छिपकर खरीदता है उसको राजा चोरके समान दंड दे ॥ २९ ॥

ऋत्विग्याज्यमदुष्टंयस्त्यजेदनपकारिणम् ।
अदुष्टश्चर्त्विजंयाज्योविनेयौतावुभावपि॥ ३०॥

जो ऋत्विक् (यज्ञ करनेवाला) निरपराधी और अदुष्ट यज्ञ करनेवालेको त्याग दे और जो यज्ञ करनेवाला अदुष्ट सज्जन ऋत्विजको त्याग दे उन दोनोंको राजा शिक्षा दे ॥ ३० ॥

द्वात्रिंशांशंषोडशांशंलाभंपण्येनियोजयेत् ।
तान्यथातद्व्ययंज्ञात्वाप्रदेशाद्यनुरूपतः ३१ ॥

बत्तीसवां या सोलहवां लाभ दंड (बाजार) में राजा नित्य करै। देश और कालके अनुरूप उसके व्यय (खर्च) को जानकर अन्यथा न करै ॥ ३१ ॥

वृद्धिंहित्वाह्यर्धधनैर्वाणिज्यंकारयेत्सदा ।
मूलात्तुद्विगुणावृद्धिर्गृहीताचाधमर्णिकात् ३२॥

वृद्धि (नफा) को छोडकर व्यापारियोंपर आधे धनसे सदैव व्यापार करावे यदि उत्तमर्ण (देनेवाला) ने अधमर्ण (करजलेनेवाले) से मूलसे दूना व्याज ले लिया हो ॥ ३२ ॥

तदोत्तमर्णमूलंतुदापयेन्नाधिकंततः ।
धनिकाश्चक्रवृद्ध्यादिमिषतस्तुप्रजाधनम् ॥

तो उत्तमर्णके मूलको ही राजा दिलवावे उससे अधिक नहीं, क्योंकि धनी मनुष्य चक्रवृद्धि (सूदपरसूद) के बहानेसे प्रजाके धनको ॥ ३३ ॥

संहरंतिह्यतस्तेभ्योराजासंरक्षयेत्प्रजाम् ।
समर्थःसनददातिगृहीतंधनिकाद्धनम् ३४ ॥

हरते हैं, इससे राजा उनसे प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करै। जो समर्थ होकर धनीसे लिये हुए धनको न दे ॥ ३४ ॥

राजासंदापयेत्तस्मात्सामदंडविकर्षणैः ।
लिखितंतुयदायस्यनष्टंतेनप्रबोधितम् ३५ ॥

उससे राजा साम, दंड, भेदसे धनको दिलवाय दे और जिसका लिखा हुआ नष्ट हो जाय उसने नष्ट हुए लिखितको राजाको जता दिया हो ॥ ३५ ॥

विज्ञायसाक्षिभिःसम्यक्पूर्ववद्दापयेत्तदा ।
अदत्तंयश्चगृह्णातिसुदत्तंपुनरिच्छति ३६ ॥

तो साक्षियोंसे भलीप्रकार जान कर पूर्वके समान राजा दिवादे जो विना दिये को ले ले अथवा भली प्रकार देने पर भी पुनः इच्छा करे ॥ ३६ ॥

दंडनीयावुभावेतौधर्मज्ञेनमहीक्षिता ।
कूटपण्यस्यविक्रेतासदंड्यश्चौरवत्सदा ॥ ३७॥

तो धर्मका ज्ञाता राजा इन दोनोंको दंड दे जो खोटी वस्तुको बेचे उसे राजा चोर के समान दंड दे ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वाकार्याणिचगुणाञ्छिल्पिनांभृतिमावहेत् ॥
पंचमांशंचतुर्थांशंतृतीयांशंतुकर्षयेत् ३८ ॥

कारीगरोंके कार्य और गुणोंको देखकर भृति (नौकरी) दे पांचवां, चौथा वा तीसरा, भाग रुपेका देकर खेती करावे ॥ ३८ ॥

अर्धंवाराजताद्राजानाधिकंतुदिनेदिने ।
विद्रुतंनतुहीनंस्यात्स्वर्णपलशतंशुचि ३९ ॥

अथवा आधा देकर करावे अधिक नहीं यह प्रमाण एक दिनकी भृतिका है जो सौपल सोना गलानेसे कम न होय वह शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥

चतुःशतांशंरजतंताम्रंन्यूनंशतांशकम् ।
वंगंचजसदंसीसंहीनंस्यात्षोडशांशकम् ४०॥

और चार सौ पल चांदी, सौ पल तांबा और बंग जस्त शीसा सोलह पल गलाये जायँ तो प्रत्येकमें एक २ पल कम हो जाता है॥४०॥

अयोष्टांशंत्वन्यथातुदंड्यःशिल्पीसदानृपैः ।
सुवर्णद्विशतांशंतुरजतंचशतांशकम् ॥ ४१॥

लोहेमें आठवां भाग कम होता है इससे अधिक कम हो जाय तो राजा शिल्पीको दंड देने योग्य समझे सुवर्णके दो सौ तोलेमें और चांदीके सौ तोलेमें एक तोला ॥ ४१ ॥

हीनंसुघटितेकार्येसुसंयोगेतुवर्धते ।
षोडशांशंत्वन्यथाहिदंड्यःस्यात्स्वर्णकारकः॥

कम होता है और उसकी कोई वस्तु (गहना) बनवाया जाय तो सोलहवां भाग बढता है इससे अन्यथा होय तो सुनार दंड देने योग्य समझना ॥ ४२ ॥

संयोगघटनंदृष्ट्वावृद्धिंह्रासंप्रकल्पयेत् ।
स्वर्णस्योत्तमकार्येतुभृतिस्त्रिंशांशकीमता ४३॥

संयोग जोडोंकी घटनाको देखकर वृद्धि और भृतिकी कल्पना करै, सोनेके उत्तम कामोंके बनानेकी भृति (नौकरी) तीसवां भाग कही है ॥ ४३ ॥

षष्ट्यंशकीमध्यकार्येहीनकार्येतदर्धकी ।
तदर्धाकटकेज्ञेयाविद्रुतेतुतदर्धकी ॥ ४४ ॥

मध्यम कामकी भृति साठवें भागकी और हीन (सुगम) कामोंकी भृति उससे आधी कही है और उससे भी आधी कडे बनानेकी और उससे भी आधी सोनेके गलानेकी कही है ॥ ४४ ॥

उत्तमेराजतेस्वर्धातदर्धामध्यमास्मृता ।
हीनेतदर्धाकटकेतदर्धासंप्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥

चांदीके उत्तम कामोंकी भृति आधी और मध्यम कामोंकी चौथाई और हीन कामोंकी उससे आधी और उससे भी आधी कडा बनानेमें कही है ॥ ४५ ॥

पादमात्राभृतिस्ताम्रेवंगेचजसदेतथा ।
लोहेर्धावासमावापिद्विगुणात्रिगुणाथवा ॥४६॥

तांबेके कामोंकी भृति चौथाई और तिसी प्रकार रांग और जसतके कामोंमें होती है, लोहेकी भृति आधी वा बराबर दूनी वा तिगुनी होती है ॥ ४६ ॥

धातूनांकूटकारीतुद्विगुणोदंडमर्हति ।
लोकप्रचारैरुत्पन्नोमुनिभिर्विधृतःपुरा ॥४७॥

जो कारीगर धातुओंमें कपट करै वह दूने दंडके योग्य होता है लोकके प्रचारसे उत्पन्न हुआ और मुनियोंने पहिले कहा हुआ ॥ ४७ ॥

व्यवहारोनंतपथःसवक्तुंनैवशक्यते ।
उक्तंराष्ट्रप्रकरणंसमासात्पंचमंतथा ॥ ४८ ॥

व्यवहार अनेक हैं उनको कोई नहीं कह सकता । यह पांचवां राष्ट्र (राज्य) प्रकरण संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४८ ॥

अत्रानुक्तागुणादोषास्तेज्ञेयालोकशास्त्रतः ।
षष्ठंदुर्गप्रकरणंप्रवक्ष्यामिसमासतः ॥ ४९ ॥

इसमें जो गुण वा दोष नहीं कहे वे लोक और शास्त्रसे जानने । अब छठे दुर्ग (किला) प्रकरणको संक्षेपसे कहता हूं ॥ ४९ ॥

खातकंटकपाषाणैर्दुष्पथंदुर्गमैरिणम् ।
परितस्तुमहाखातंपारिखंदुर्गमेवतत् ॥५०॥

खात, कांटे, पत्थर, गुप्तमार्ग और ऊखर भूमि जिसके समीप होय उसे ऐरिण दुर्ग कहते हैं । जिसके चारों तरफ बडी खाई खुदी होय उसे पारिख दुर्ग कहते हैं ॥ ५० ॥

इष्टकोपलमृद्भित्तिप्राकारंपारिघंस्मृतम् ।
महाकंटकवृक्षौघैर्व्याप्तंतद्वनदुर्गमम् ॥ ५१ ॥

ईंट, पत्थर, मिट्टी, भीत इनका जिसमें परकोटा हो उसे पारिघ दुर्ग कहते हैं बडे २ कांटोंके वृक्षोंके समूहसे जो व्याप्त हो उसे वनदुर्ग कहते हैं ॥ ५१ ॥

जलाभावस्तुपरितोधन्वदुर्गंप्रकीर्तितम् ।
जलदुर्गंस्मृतंतज्ज्ञैरासमंतान्महाजलम् ५२ ॥

जिसके चारों तरफ जलका अभाव हो उसे धन्वदुर्ग कहते हैं और जिसके चारों तरफ बड़ा जल हो उसे शास्त्रके ज्ञाता जल दुर्ग कहते हैं ॥ ५२ ॥

सुवारिपृष्ठोच्चधरंविविक्तेगिरिदुर्गमम् ।
अभेद्यंव्यूहविद्वीरव्याप्तंतत्सैन्यदुर्गमम् ॥५३॥

जो जलके स्थानमें बडा ऊंचा एकान्तमें बनाया जाय उसे गिरिदुर्ग कहते हैं जिसमें कवायदके ज्ञाता बहुतसे शूरवीर हों और जो भेदनके अयोग्य हो उसे सैन्यदुर्ग कहते हैं५३॥

सहायदुर्गंतज्ज्ञेयंशूरानुकूलबांधवम् ।
पारिखादैरिणंश्रेष्ठंपारिघंतुततोवनम् ॥ ५४ ॥

जिसमें शूरवीरोंके अनुकूल बन्धुजन रहते हों उसे सहायदुर्ग कहते हैं, पारिखदुर्गसे

ऐरिण और ऐरिणसे पारिघ और उससे वन-दुर्ग श्रेष्ठ होता है ॥ ५४ ॥

ततोधन्वंजलंतस्माद्गिरिदुर्गंततःस्मृतम् ।
सहायसैन्यदुर्गेतुसर्वदुर्गप्रसाधिके ॥ ५५ ॥

उससे धन्वदुर्ग, धन्वसे जलदुर्ग और उससे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ कहा है, सहायदुर्ग और सैन्यदुर्ग ये दोनों तो सब दुर्गोंके साधन होते हैं ॥ ५५ ॥

ताभ्यांविनान्यदुर्गाणिनिष्फलानिमहीभुजाम्।
श्रेष्ठंतुसर्वदुर्गेभ्यःसेनादुर्गंस्मृतंबुधैः ॥५६॥

क्योंकि इन दोनोंके विना अन्य सब राजाओंके दुर्ग निष्फल होते हैं और सब दुर्गसे श्रेष्ठ तो पंडितजनोंने सेनादुर्ग कहा है ॥५६॥

तत्साधकानिचान्यानितद्रक्षेन्नृपातिःसदा ।
सेनादुर्गंतुयस्यस्यात्तस्यवश्यातुभूरियम् ५७॥

अन्य सब दुर्ग सेनाके ही साधक होते हैं इससे राजा सदैव सेनाकी रक्षा करै जिस राजाके सेनादुर्ग होता है उसके वशमें ही यह भूमि होती है ॥ ५७ ॥

विनातुसैन्यदुर्गेणदुर्गमन्यत्तुबंधनम् ।
आपत्कालेन्यदुर्गाणामाश्रयश्चोत्तमोमतः ॥

सैन्यदुर्ग विना अन्यदुर्ग बन्धन होते हैं और आपत्तिके समयमें अन्य दुर्गोंका आश्रय उत्तम कहा है ॥ ५८ ॥

एकःशतंयोधयतिदुर्गस्थोऽस्त्रधरोयदि ।
शतंदशसहस्राणितस्माद्दुर्गंसमाश्रयेत् ५९ ॥

जो दुर्गमें टिका हुआ एक भी शस्त्रधारी हो तो वह सौ योधाओंके संग युद्ध करै और सौ योधा १० सहस्र योधाओंके संग युद्ध करैं इससे राजा दुर्गका आश्रय ले ॥ ५९ ॥

शूरस्यसैन्यदुर्गस्यसर्वंदुर्गमिवस्थलम् ।
युद्धसंभारपुष्टानिराजादुर्गाणिधारयेत् ॥६०॥

और शूरवीर सैन्यदुर्गको तो सम्पूर्ण स्थल (मैदान) भी दुर्गके समान है राजा ऐसे दुर्गोंको धारण करै युद्धके सम्भारों (सामग्री) से पुष्ट (मजबूत) हों ॥ ६० ॥

धान्यवीरास्त्रपुष्टानिकोशपुष्टानिवैतथा ।
सहायपुष्टंयद्दुर्गंतत्तुश्रेष्ठतरंमतम् ॥ ६१ ॥

और अन्न, शूरवीर, अस्त्र, कोश इनसे भी पुष्ट हों और जो दुर्ग सहायकोंसे पुष्ट हो वह अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१ ॥

सहायपुष्टदुर्गेणविजयोनिश्चयात्मकः ।
यद्यत्सहायपुष्टंतुतत्सर्वंसफलंभवेत् ॥ ६२ ॥

सहायसे पुष्ट जो दुर्ग उससे विजय निश्चयसे होता है और जो२ सहायसे पुष्ट होता है वह संपूर्ण सफल होता है ॥ ६२ ॥

परस्परानुकूल्यंतुदुर्गाणांविजयप्रदम् ।
दौर्गसंक्षेपतःप्रोक्तंसैन्यंसप्तममुच्यते ६३ ॥

दुर्गोंकी जो परस्पर अनुकूलता है वह विजय देनेवाली होती है, यह संक्षेपसे दुर्ग-वर्णन किया अब सातवें सैन्य प्रकरणको कहते हैं ॥ ६३ ॥

सेनाशस्त्रास्त्रसंयुक्तामनुष्यादिगणात्मिका ।
स्वगमान्यगमाचेतिद्विधासैवपृथक्त्रिधा ॥

शस्त्र अस्त्रोंसे संयुक्त मनुष्योंके समूहको सेना कहते हैं । वह स्वगम (पियादे) और अन्यगम (सवार) भेदसे दो प्रकारकी और वही पृथक् २ तीन प्रकारकी होती है ॥ ६४ ॥

दैव्यासुरीमानवीचपूर्वपूर्वबलाधिका ।
स्वगमायास्वयंगत्रीयानगाऽन्यगमास्मृता ॥

दैवी, आसुरी, मानुषी, इन तीनोंमें पहली २ सेना बलमें अधिक होती है जो सेना अपने पैरोंसे चले वह स्वगमा और जो यानमें चढ़े वह अन्यगमा कहाती है ॥ ६५ ॥

पादातंस्वगमंवान्यद्रथाश्वगजगंत्रिधा ।
सैन्याद्विनानैवराज्यंनधनंनपराक्रमः ६६ ॥

अथवा पदातियोंकी सेना स्वगम और दूसरी रथ, अश्व, हाथीपर चलनेसे तीन प्रकारकी होती है, सेनाके विना न राज्य है न धन है और न पराक्रम ॥ ६६ ॥

बलिनोवशगाःसर्वेदुर्बलस्यचशत्रवः ।
भवंत्यल्पजनस्यापिनृपस्यतुनकिंपुनः ६७ ॥

बलवान् (सेनावाला) के संपूर्ण वशमें होते हैं और दुर्बलके संपूर्ण शत्रु हो जाते हैं चाहै वह साधारणभी मनुष्य हो राजाके तो क्यों न होंगे ॥ ६७ ॥

शारीरंहिबलंशौर्यबलंसैन्यबलंतथा ।
चतुर्थमास्त्रिकबलंपंचमंधीबलंस्मृतम् ६८ ॥

प्रथम बल शरीरका, २ बल शूर वीरताका, ३ बल सेनाका, ४ बल अस्त्रका, ५ बल बुद्धिका कहा है ॥ ६८ ॥

षष्ठमायुर्बलंत्वेतैरुपेतोविष्णुरेवसः ।
नबलेनविनाप्यल्पंरिपुंजेतुंक्षमःसदा ॥६९॥

छठा बल अवस्थाका है, इन छः बलोंसे युक्त राजा साक्षात् विष्णुरूप होता है, और बलके विना अल्पभी शत्रुके जीतनेमें सदैवसे समर्थ नहीं होता ॥ ६९ ॥

देवासुरनरास्त्वन्योपायैर्नित्यंभवंतिहि ।
बलमेवरिपोर्नित्यंपराजयकरंपरम् ॥ ७० ॥

देवता असुर और नर ये तीनों तो अन्य २ उपायोंसे नित्य होते हैं और शत्रुका ही बल नित्य पराजय करनेवाला होता है ॥ ७० ॥

तस्माद्बलममोघंतुधारयेद्यत्नतोनृपः ।
सेनाबलंतुद्विविधंस्वीयंमैत्रंचतद्द्विधा ॥ ७१ ॥

तिससे राजा अमोघ (सफल) बलको यत्नसे धारण करै और सेनाका बल अपनी और मित्रकी सेनाके भेदसे दोप्रकारका होता है ॥ ७१ ॥

मौलसाद्यस्कभेदाभ्यांसारासारंपुनर्द्विधा ।
अशिक्षितंशिक्षितंचगुल्मीभूतमगुल्मकम् ॥

मोल (सदाका) और साद्यस्क (तुरंतका) भेदसे दो प्रकारका है और वे दोनों भी सार और असार भेदसे दो प्रकारका है१ अशिक्षित (न सीखी) और २ शिक्षित सीखीहुई और गुल्मवाली विना गुल्मवाली ॥ ७२ ॥

दत्तास्त्रादिस्वशस्त्रास्त्रंस्ववाहिदत्तवाहनम् ।
सौजन्यात्साधकंमैत्रंस्वीयंभृत्याप्रपालितम् ॥

१ दत्तास्त्र जिसको राजाने अस्त्र दिये हों २ स्वशस्त्रास्त्र जिसके पास अपनेही शस्त्र अस्त्र हों, १ स्ववाही जिसपर अपनी सवारी हो २ दत्तवाहन (जिसको राजाने सवारी दी हो जो सेना सौजन्य (स्नेह) से कार्यसिद्धि करै वह मैत्र और जो भृति (नौकरी) देकर पाली हो वह स्वीय (अपनी) कहाती है ॥ ७३ ॥

मौलंबह्वनुबंधिस्यात्साद्यस्कंयत्तदन्यथा ।
सुयुद्धकामुकंसारमसारंविपरीतकम् ७४ ॥

जो सेना बहुत दिनकी हो वह मौल और इससे अन्यथा हो वह साद्यस्क कहाती है, जो सेना उत्तम युद्धकी इच्छा करै वह सार और इससे जो विपरीत वह असार कहाती है ॥ ७४ ॥

शिक्षितंव्यूहकुशलंविपरीतमशिक्षितम् ।
गुल्मीभूतंसाधिकारिस्वस्वामिकमगुल्मकम् ॥

जो सेना व्यूह (कवायद) में कुशल हो वह शिक्षित और इससे विपरीत अशिक्षित होती है, जिसका अधिकारी दूसरा हो वह गुल्मीभूत और जिसका स्वामी अन्य न हो वह अगुल्मीभूत होती है ॥ ७५ ॥

दत्तास्त्रादिस्वामिनायत्स्वशस्त्रास्त्रमतोन्यथा ।
कृतगुल्मंस्वयंगुल्मंतद्वच्चदत्तवाहनम् ॥७६ ॥

स्वामीने जिसको अस्त्र आदि दिये हों वह दत्तास्त्र और इससे विपरीत स्वशस्त्रास्त्र होती है । १ कृतगुल्म, २ स्वयंगुल्म और ३ दत्तवाहन ॥ ७६ ॥

आरण्यकंकिरातादियत्स्वाधीनंस्वतेजसा ।
उत्सृष्टंरिपुणावापिभृत्यवर्गेनिवेशितम् ७७ ॥

भील आदि जो अपने तेजसे स्वाधीन होते हैं उनकी सेना आरण्यक (वनकी) होती है जो सेना शत्रुने छोडदीहो और अपने भृत्योंमें मिला ली हो ॥ ७७ ॥

भेदाधीनंकृतंशत्रोःसैन्यंशत्रुबलंस्मृतम् ।
उभयंदुर्बलंप्रोक्तंकेवलंसाधकंनतत् ॥ ७८ ॥

वा जो शत्रुकी सेना भेदसे अपने आधीन करली हो वह शत्रुकी सेना कही है ये दोनों

दुर्बल कही हैं और अकेली ये दोनों कार्य सिद्धिको नहीं कर सकतीं ॥ ७८ ॥

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यायामैर्नतिभिस्तथा ।
वर्धयेद्बाहुयुद्धार्थभोज्यैः शारीरकैर्बलम् ७९

समान जो निरंतर युद्धमें कुशल उनके परस्पर युद्धसे, व्यायाम (कसरत) और नती (प्रार्थना) से और शरीरके पोषक उत्तम २ खानेके पदार्थोंसे बाहुयुद्धके लिये सेनाको बढावे ॥ ७९ ॥

मृगयाभिस्तुव्याघ्राणांशस्त्रास्त्राभ्यासतःसदा ।
वर्धयेच्छरसंयोगात्सम्यक्छौर्यबलंनृपः ८० ॥

सिंहोंकी मृगया, सदैव शस्त्र अस्त्रके अभ्यास और बाणोंके संयोग (चालना) से राजा भली भाँति शूरवीरोंकी सेनाको बढावै ॥ ८० ॥

सेनाबलंसुभृत्यातुतपोभ्यासैस्तथास्त्रिकम् ।
वर्धयेच्छास्त्रचतुरसंयोगाद्धीबलंसदा ८१ ॥

अच्छीभृति (नौकरी) से सेनाके बलको और तपके अभ्याससे अस्त्रके बलको शास्त्र और चतुरोंके सत्संगसे बुद्धिके बलको सदैव बढावै ॥ ८१ ॥

सत्क्रियाभिश्चिरस्थायिनित्यंराज्यंभवेद्यथा ।
स्वगोत्रेतुतथाकुर्यात्तदायुर्बलमुच्यते ८२ ॥

अच्छे २ कर्मोंसे अपने गोत्रकी परंपरामें रज्य चिरकालतक जिस प्रकार स्थिर रहै उस प्रकारही राजा आचरण करै उसको आयुबल कहते हैं ॥ ८२ ॥

यावद्गोत्रेराज्यमस्तितावदेवसजीवति ।
चतुर्गुणंहिपादातमश्वतोधारयेत्सदा ॥८३॥

जबतक राजाके गोत्रमें राज्य रहै तबतकही वह राजा जीता है, और सवारोंसे चौगुनी पदातियोंकी सेना राजा सदैव रक्खै ॥ ८३ ॥

पंचमांशांस्तुवृषभानष्टांशांश्चक्रमेलकान् ।
चतुर्थांशान्गजानुष्ट्रान्गजार्धांश्चरथान्सदा ॥

पांचवें अंशके बैल और आठवें अंशके खच्चर चौथाई हाथी तथा ऊंट और हाथियोंसे आधे रथ सदैव रक्खै ॥ ८४ ॥

रथात्तुद्विगुणंराजाबृहन्नालद्वयंतथा ।
पदातिबहुलंसैन्यंमध्याश्वंतुगजाल्पकम् ८५

रथोंसे दूने दो बडे तोपखाने राजा रक्खै जिसमें पदाति बहुत हों, घोडे मध्यम और हाथी अल्प हों उसे सैन्य कहते हैं ॥ ८५ ॥

तथावृषोष्ट्रसामान्यंरक्षेन्नागाधिकंनहि ।
सवयःसारवेषोच्चशस्त्रास्त्रंतुपृथक्शतम् ॥

तिसी प्रकार बैल और ऊंट जिसमें सामान्य हों उस सेनाकी राजा रक्षा करै और जिसमें हाथी अधिक हों उसकी नहीं जवान, उत्तम वेषधारी, उत्तम २ शस्त्र और अस्त्रधारी ये सब पृथक् २ सौ २ रखने ॥ ८६ ॥

लघुनालिकयुक्तानांपदातीनांशतत्रयम् ।
अशीत्यश्वान्रथंचैकंबृहन्नालद्वयंतथा ८७ ॥

बंदूकवाले पदाति तीनसौ हों, अस्सी घोडे, एक रथ और बडी दो तोप ॥ ८७ ॥

उष्ट्रान्दशगजौद्वौतुशकटौषोडशर्षभान् ।
तथालेखकषट्कंहिमंत्रित्रितयमेवच ॥८८॥

दश ऊंट, दो हाथी, दो गाडे, सोलह बैल और छः लिखारी और तीन मंत्री होने चाहिये ॥ ८८ ॥

धारयेन्नृपतिःसम्यग्वत्सरेलक्षकर्षभाक् ।
संभारदानभोगार्थंधनंसार्धसहस्रकम् ॥ ८९ ॥

इन सबको राजा भली प्रकार रक्खै और एक वर्षमें एक लक्ष रुपैयोंका संचय करै सामान दान और भोगके लिये डेढ सहस्र रुपया प्रतिमासमें रक्खे ॥ ८९ ॥

लेखकार्थेशतंमासिमंत्र्यर्थेतुशतत्रयम् ।
त्रिशतंदारपुत्रार्थेविद्वदर्थेशतद्वयम् ॥ ९० ॥

लिखनेके काममें सौ रुपये, मंत्रीके काममें तीनसौ रुपये, स्त्री और पुत्रोंके लिये तीन सौ रुपये, तथा पंडितोंके लिये दो सौ रुपये प्रति मासमें खर्च करै ॥ ९० ॥

साद्यश्वपदगार्थंहिराजाचतुःसहस्रकम् ।
गजोष्ट्रवृषनालार्थंव्ययीकुर्याच्चतुःशतम् ॥

सवार, घोडे, पदाति इनके लिये चार सहस्र रुपये और हाथी, ऊंट, बैल और तोपखाना इनके लिये चार सो रुपये प्रतिमासमें राजा खर्च करै ॥ ९१ ॥

शेषंकोशेधनंस्थाप्यंव्ययीकुर्यान्नचान्यथा ।
लोहसारमयश्चक्रसुगमोमंचकासनः ॥ ९२ ॥

शेष धनको कोश (खजाना) में स्थापन करै और अन्य किसी वृथा रीतिसे खर्च न करै जिस रथका चक्र लोहसार (उत्तम लोहा) का हो जिसकी गति (चलना) अच्छी हो और जिसमें बैठनेका आसन मंचक (खट्वा) के समान हो ॥ ९२ ॥

स्वादोलायितरूढस्तुमध्यमासनसारथिः ।
शस्त्रास्त्रसंधार्युदरइष्टच्छायोमनोरमः ॥ ९३ ॥

जिसकी दोला (कमानी) ओंपर सारथी बैठे व मध्यम आसन हो और जिस रथके भीतर शस्त्र अस्त्र सब आजांय और जिसकी छाया अच्छी हो और जो देखनेमें सुंदर हो ॥ ९३ ॥

एवंविधोरथोराज्ञारक्ष्योनित्यंसदश्वकः ॥
नीलतालुर्नीलजिह्वोवक्रदंतोह्यदंतकः ९४ ॥

ऐसे उत्तम अश्ववाले रथकी राजा सदैव रक्षा करै और जिसकी तालु और जिह्वा नीली हों और दांत टेढे हों और जिसके दांत न हों ॥ ९४ ॥

दीर्घद्वेषीक्रूरमदस्तथापृष्ठविधूनकः ।
दशाष्टोननखोमंदोभूविशोधनपुच्छकः ॥९५॥

जिसको बडा वैर हो, जिसमें बहुत मद हो और जिसकी पीठ कंपती हो और जिसके अठारहसे कम नख हों जो मंद हों और जिसकी पूछ भूमि पर लटकती हो ॥ ९५ ॥

एवंविधोऽनिष्टगजोविपरीतःशुभावहः ।
भद्रोमंद्रमृगोमिश्रोगजोजात्याचतुर्विधः ९६ ॥

ऐसा जो हाथी वह अनिष्ट होता है और इससे विपरीत शुभदायी होता है और भद्र- मंद्र, मृग, मिश्र इन चार जातियोंसे हाथी चार प्रकारका होता है ॥ ९६ ॥

मध्वाभदंतःसबलःसमांगोवर्तुलाकृतिः ।
सुमुखोवयवश्रेष्ठोज्ञेयोभद्रगजःसदा ९७ ॥

जिसका दांत मधुके समान हो, जो बलवान् हो, जिसके अंग सम हों, जिसका आकार गोल हो, सुन्दर मुख हो, अंग अच्छे हों ऐसे गजको सदैवसे भद्र कहते हैं ॥ ९७ ॥

स्थूलकुक्षिःसिंहदृक्चबृहत्त्वग्गलशुंडकः ।
मध्यमावयवोदीर्घकायोमंद्रगजःस्मृतः ९८

जिसकी कोख स्थूल हो, सिंहके समान दृष्टि हो, गला और शुण्ड बडे हों, अंग मध्यम हों, लंबी काया हो उस हाथीको मंद्र कहते हैं ॥ ९८ ॥

तनुकंठदंतकर्णशुंडःस्थूलाक्षएवहि ।
सुहृत्स्वाधरमेढ्रस्तुवामनोमृगसंज्ञकः ९९ ॥

जिसके कंठ, दांत, कान, शुन्ड ये सब पतले हों और नेत्र स्थूल (बडे) हों हृदय, ओष्ठ और लिंग ये सब सुन्दर हों और जो वामन (छोटा) हो उस हाथीको मृग कहते हैं ॥ ९९ ॥

एषांलक्ष्मैर्विमिलितोगजोमिश्रइतिस्मृतः ।
भिन्नंभिन्नंप्रमाणंतुत्रयाणामपिकीर्तितम् ॥

इन सबके चिह्न जिसमें मिले वह गज मिश्र कहा है और तीनोंका प्रमाणभी भिन्न २ कहा है ॥ १०० ॥

गजमानेह्यंगुलंस्यादष्टभिस्तुयवोदरैः ।
चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैःकरःप्रोक्तोमनीषिभिः१०१

हाथीके प्रमाणमें ऐसा अंगुल होता है जिसके बीचमें आठ जौ आजाय उन चौबीस अंगुलोंका बुद्धिमान मनुष्योंने क(हाथ) कहा है ॥ १०१ ॥

सप्तहस्तोन्नतिर्भद्रेह्यष्टहस्तप्रदीर्घता ।
परिणाहोदशकरउदरस्यभवेत्सदा ॥ २ ॥

भद्रहाथीकी उंचाई सात हाथकी लम्बाई आठ हाथकी और उदरका विस्तार दश हाथका सदैव रहता है ॥ २ ॥

प्रमाणंमंद्रमृगयोर्हस्तहीनंक्रमादतः ।
कथितंदैर्घ्यसाम्यंतुमुनिभिर्भद्रमंद्रयोः ३ ॥

मंद्र और मृग नामके हाथियोंका प्रमाण इससे एक हाथ कम होता है और चौडाईमें भद्र और मंद्रकी साम्यता (बराबरी) ही मुनियोंने कही है ॥ ३ ॥

बृहद्भ्रूगंडमालस्तुधृतशीर्षगतःसदा ।
गजःश्रेष्ठस्तुसर्वेषांशुभलक्षणसंयुतः ॥ ४ ॥

जिसकी भृकुटी गंडस्थल और मस्तक ये तीनों बडे हों और शिरकी गतिभी जिसकी सदैव अच्छी हो और जो उत्तम २ लक्षणोंसे युक्त हो ऐसा हाथी सब हाथियोंमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४ ॥

पंचयवांगुलैर्नैववाजिमानंपृथक्स्मृतम् ।
चत्वारिंशांगुलमुखोवाजीयश्चोत्तमोत्तमः ५ ॥

पांच जौके अंगुलसे घोडोंका प्रमाण भी पृथक् २ कहा है, चालीस अंगुलका जिसका मुख हो ऐसा जो घोडा वह उत्तमसे उत्तम होता है ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशदंगुलमुखोह्युत्तमःपरिकीर्तितः ।
द्वात्रिंशदंगुलमुखोमध्यमःसउदाहृतः ॥ ६ ॥

छत्तीस अंगुलका जिसका मुख हो वह उत्तम और बत्तीस अंगुलका जिसका मुख हो वह मध्यम कहा है ॥ ६ ॥

अष्टाविंशत्यंगुलोयोमुखेनीचःप्रकीर्तितः ।
वाजिनांमुखमानेनसर्वावयवकल्पना ॥ ७ ॥

जिस घोडेका मुख अट्ठाईस अंगुलका हो वह नीच कहा है और घोडोंके मुखसेही संपूर्ण अवयवोंकी कल्पना होती है कि ॥ ७ ॥

औच्चंतुमुखमानेनात्रिगुणंपरिकीर्तितम् ।
शिरोमणिंसमारभ्यपुच्छमूलांतमेवहि ॥ ८ ॥

मुखके प्रमाणसे तिगुनी उंचाई कही है और शिरकी मणिसे लकर पूछके मूल पर्यंत ॥ ८ ॥

तृतीयांशाधिकंदैर्घ्यमुखमानाच्चतुर्गुणम् ।
परिणाहस्तूदरस्यात्रिगुणस्त्र्यंगुलाधिकः ॥९ ॥

तीसरा अंश अधिक (चौगुणी) लंबाई होती है और वह मुखके प्रमाणसे चौगुणी समझनी और उदरका विस्तार तिगुना और तीन अंगुल होता है ॥ ९ ॥

श्मश्रुहीनमुखःकांतःप्रगल्भोतुंगनासिकः ।
दीर्घोद्धतग्रीवमुखोह्रस्वकुक्षिखुरश्रुतिः १० ॥

जिसके मुखपर श्मश्रु (बाल)नहीं,सुन्दर, प्रगल्भ हो और जिसकी नासिका ऊंची हो, जिसकी ग्रीवा और मुख ऊपरको ऊंचे उठ रहते हों और जिसकी कुक्षि छोटी हो और जिसके खुरोंका शब्द सुनता हो ॥ १० ॥

तुरप्रचंडवेगश्चहंसमेघसमस्वनः ।
नातिक्रूरोनातिमृदुर्देवसत्वोमनोरमः ॥११॥

शीघ्रतरमें जिसका वेग प्रचंड हो,हंस और मेघके समान जिसका शब्द हो और जो न अत्यन्त क्रोधी और न अत्यन्त कोमल हो और जो देवके समान बलवान् हो और सुन्दर हो ॥ ११ ॥

सुकांतिगंधवर्णश्चसद्गुणभ्रमरान्वितः ।
भ्रमतस्तुद्विधावर्तौवामदक्षिणभेदतः ॥ १२ ॥

जिसकी कांति गंध वर्ण ये सुन्दर हों और उत्तम गुण और भौंवरी हों, वाम और दक्षिण की तरफ भ्रमणके समय जिसके दो प्रकार आवर्त (भौंवरी) पडें ॥ १२ ॥

पूर्णोऽपूर्णःपुनर्द्वेधादीर्घोह्रस्वस्तथैवच ।
स्त्रीपुंदेहेवामदक्षौयथोक्तफलदौक्रमात् १३ ॥

और पूर्ण और अपूर्ण और तिसी प्रकार दीर्घ और ह्रस्व भौंवरी हों और घोडी और घोडा के देहमें वाईं और दाहिनी तरफ क्रमसे फलदायक होते हैं ॥ १३ ॥

नतथाविपरीतौतुशुभाशुभफलप्रदौ ।
नीचोर्ध्वतिर्यङ्मुखतःफलभेदोभवेत्तयोः ॥१४

और इससे विपरीत शुभ और अशुभ फलदायक नहीं होते नीचे ऊपर और तिरछे मुखसे उनके फलका भेद हो जाता है ॥ १४ ॥

शंखचक्रगदापद्मवेदिस्वतिकसन्निभः ।
प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः ॥१५॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेदी, स्वस्तिक (सतिया) इनके समान अथवा मंदिर, तोरण, धनुष, पूर्णकलश इनके तुल्य जिसका आकार हो ॥ १५ ॥

स्वस्तिकस्रङ्मीनखड्गश्रीवत्साभःशुभोभ्रमः

स्वस्तिक, माला, मीन, खड्ग श्रीवत्स इनकी कांतिके समान जो हो वह भोंवरी शुभ है।

नासिकाग्रेललाटेचशंखेकंठेचमस्तके ॥ १६ ॥

आवर्तोजायतेयेषांतेधन्यास्तुरगोत्तमाः ।

नासिकाके अग्रभागमें ललाटमें शंखमें कंठमें और मस्तकमें ॥ १६ ॥ जिन वाजियोंके आवर्त (भ्रमर) हो वे घोडोंमें उत्तम धन्य हैं ॥

हृदिस्कंधेगलेचैववकटिदेशेतथैवच ॥ १७ ॥

नाभौकुक्षौचपार्श्वाग्रेमध्यमाःसंप्रकीर्तिताः ।

हृदयमें स्कंधेपर गलेमें और कमरमें ॥ १७ ॥ और नाभि, कुक्षि और पार्श्वोंका अग्र भाग इनमें जिनके आवर्त हों वे घोडे मध्यम कहे हैं ॥

ललाटेयस्यचावर्तद्वितयस्यसमुद्भवः १८ ॥

मस्तकेहतृतीयस्यपूर्णहर्षोयमुत्तमः ।

जिसके ललाटमें दो आवर्त हों और मस्तकमें तीसरा आवर्त हो और आनंदसे पूर्ण हो वह घोडा उत्तम होता है ॥ १८ ॥

पृष्ठवंशेयदावर्तोयस्यैकःसंप्रजायते ॥ १९ ॥

संकरोत्यश्वसंघातान्स्वामिनःसूर्यसंज्ञकः ।

जिसकी पीठके बांसमें एक आवत हो वह सूर्य नामका घोडा अपने स्वामीके यहां घोडोंके समूहोंको इकठे करता है ॥ १९ ॥

त्रयोयस्यललाटस्थाआवर्तास्तिर्यगुत्तराः॥२०

त्रिकूटःसपरिज्ञेयोवाजिवृद्धिकरः सदा ।

और जिसके ललाटमें तीन आवर्त हों और बामकी तरफका आवर्त तिरछा हो उस घोडेको त्रिकूट कहते हैं और वह भी सदैव घोडोंकी वृद्धि करनेवाला होता है ॥ २० ॥

एवमेवप्रकारेणत्रयोग्रीवासमाश्रिताः २१ ॥

समावर्ताःसवाजीशोजायते नृपमंदिरे ।

इसी प्रकार तीन ग्रीवामें उत्तम आवर्त होंय तो वह घोडोंका स्वामी वाजी राजाके मंदिरमें ही होता है ॥ २१ ॥

कपोलस्थौयदावर्तौदृश्येतेयस्यवाजिनः ॥

यशोवृद्धिकरौप्रोक्तौराज्यवृद्धिकरौमतौ ।

जिस घोडेके कपोलों पर दो आवर्त दीखें वे दोनों आवर्त यश और राज्यकी वृद्धि करने वाले कहे हैं ॥ २२ ॥

एकोवाथकपोलस्थोयस्यावर्तःप्रदृश्यते २३ ॥

शर्वनामासविख्यातःसइच्छेत्स्वामिनाशनम् ।

अथवा जिसके कपोल पर एकही आवर्त दीखे उस घोडेका नाम शर्व विख्यात है और वह अपने स्वामीका नाश करता है ॥ २३ ॥

गंडसंस्थोयदावर्तोवाजिनोदक्षिणाश्रितः ॥

संकरोतिमहासौख्यंस्वामिनःशिवसंज्ञकः ।

तद्वद्वामाश्रितः क्रूरः प्रकरोति धनक्षयम् २५

जिस घोडेके दक्षिण गंडस्थल पर आवर्त हो ॥ २४ ॥ शिवनामक वह घोडा अपने स्वामीको महान् सुख करता है और जिसके बांये गंडस्थलमें आवर्त हो क्रूरनामक वह घोडा स्वामीके धनको नाश करता है ॥ २५ ॥

इंद्राभौतावुभौशस्तौनृपराजविवृद्धिदौ ।

कर्णमूलेयदावर्तौस्तनमध्येतथापरौ ॥ २६ ॥

विजयाख्यावुभौतौतुयुद्धकालेयशःप्रदौ ।

यदि ये दोनों गंडोंके आवर्त इंद्रके समान होय तो उत्तम राजाकी वृद्धिके देनेवाले होते हैं जिसके कान और स्तनोंके मध्यमें दो २ आवर्त हों विजय नामके वे दोनों घोडे युद्धके समय यशके दाता होते हैं ॥ २६ ॥

स्कंधपार्श्वेयदावर्तौसभवेत्पद्मलक्षणः २७ ॥

करोतिविविधांपद्मांस्वामिनःसततंसुखम् ।

स्कन्ध और पार्श्वोंमें जो आवर्त हो उसको पद्म लक्षण कहते हैं वह घोडा अपने स्वामीके यहां नाना प्रकारकी लक्ष्मी और निरन्तर सुख करता है ॥ २७ ॥

नासामध्येयदावर्तएकोवायदिवात्रयम् ॥२८॥
चक्रवर्तीसविज्ञेयोवाजीभूपालसंज्ञकः ।

जिसकी नाकम एक वा तीन आवर्त हों उस घोडेका नाम भूपाल होता है और वह राजा चक्रवर्ती जानना ॥ २८ ॥

कंठेयस्यमहावर्तएकःश्रेष्ठःप्रजायते ॥ २९ ॥
चिंतामणिःसविज्ञेयश्चिंतितार्थसुखप्रदः।
शुक्लाख्यौभालकंबुस्थौआवर्तौवृद्धिकीर्तिदौ ॥

जिसके कण्ठसे एक उत्तम आवर्त हो उस घोडेको चिन्तामणि कहते हैं वह घोडा चिंतित अर्थ और सुख देनेवाला होता है यदि मस्तक और ग्रीवामें सफेद आवर्त होंय तो वृद्धि और कीर्तिके दाता होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

यस्यावर्तौवक्रगतौकुक्ष्यंतेवाजिनोयदि ।
सनूनंमृत्युमाप्नोतिकुर्याद्वास्वामिनाशनम् ॥

जिस घोडेकी कुक्षिके अन्तमें तिरछे आवर्त हों वह घोडा या तो निश्चय मर जाय अथवा अपने स्वामीका नाश करै ॥ ३१ ॥

जानुसंस्थाअथावर्ताःप्रवासक्लेशकारकाः ।
वाजिमेंढ्रेयदावर्तोविजयश्रीविनाशनः ३२॥

जिसके घोटुओंपर तीन आवर्त हों वह घोडा प्रवास (परदेश) में क्लेशकारक होता है यदि घोडेके लिंगमें आवर्त होय तो विजय और श्रीका नाश करता है ॥ ३२ ॥

त्रिकसंस्थोयदावर्तस्त्रिवर्गस्यप्रणाशनः ।
पुच्छमूलेयदावर्तोधूमकेतुरनर्थकृत् ॥३३ ॥

जिसको पीठकी हड्डीमें आवर्त हो वह धर्म अर्थ कामका नाश करता है, यदि पूंछके मूलमें आवर्त हो तो धूमकेतु वह घोडा अनर्थ को करता है ॥ ३३ ॥

गुह्यपुच्छत्रिकावर्तीसकृतांतोभयप्रदः ।
मध्यदंडात्पार्श्वगमासैवशतपदीकचैः ॥३४॥

जिसकी गुदा पूंछ और पीठकी हड्डीमें आवर्त होय तो कालरूप वह घोडा भयका दाता होता है जिस घोडेकी शतपदी (पूंछ) के बाल मध्य दंडसे पार्श्वोंकी तरफ जायँ ३४॥

अतिदुष्टांगुष्ठमितादीर्घाऽदुष्टायथायथा ।
अश्रुपाताहनुगंडहृद्गलप्रोथबस्तिषु ॥ ३५ ॥

और वह अंगूठेके समान पतली होय तो अत्यन्त दुष्ट होती है, और जितनी २ मोटी हो उतनी ही उत्तम होती जिसके ठोडी, गंडस्थल, हृदय, गला, प्रोथ (पेह) और बस्तिपर आंसू गिरै ॥ ३५ ॥

कटिशंखजानुमुष्ककककुन्नाभिगुदेषुच ।
दक्षकुक्षौदक्षपादेत्वशुभोभ्रमरःसदा ॥ ३६ ॥

कमर, शंख, गोडे, अंडकोश, डांट, नाभि, गुदा, दक्षिणकोख, दक्षिणपाद इनमें भ्रमर होय तो सदैव अशुभ कहा है ॥ ३६ ॥

गलमध्येपृष्ठमध्येउत्तरोष्ठेऽधरेतथा ।
कर्णनेत्रांतरेवामकुक्षौचैवतुपार्श्वयोः ॥ ३७ ॥

गलेमें, पीठ और दोनों ओष्ठ, कान, नेत्र और बांई कोख और दोनों पार्श्वोंमें ॥ ३७ ॥

ऊरूषुचशुभावर्तौवाजिनामग्रपादयोः ।
आवर्तौसांतरौभालेसूर्यचंद्रौशुभप्रदौ ॥ ३८ ॥

दोनों ऊरु (जंघा) ओंमें और अगले पैरोंमें जो आवर्त हैं वे शुभ कहे हैं और मस्तकके बीचमें जो खाली आवर्त हैं वे सूर्यचन्द्र कहाते हैं और शुभदायक होते हैं ॥ ३८ ॥

मिलितौतौमध्यफलौह्यतिलग्नौतुदुष्फलौ ।
आवर्तत्रितयंभालेशुभंचोर्ध्वंतुसांतरम् ॥३९॥

जो वे दोनों आवर्त आपसमें कुछ मिले होंय तो मध्यफल और अत्यन्त मिले होंय तो बुराफल देते हैं, और मस्तकके ऊपर तीन आवर्त फरकसे होंय तो शुभ होते हैं ३९॥

अशुभंचातिसंलग्नमावर्तद्वितयंतथा ।
त्रिकोणत्रितयंभालेआवर्तानांतुदुःखदम् ४०॥

और अत्यन्त मिले हुये अशुभ होते हैं और ऐसे ही दो आवर्त समझने और मस्तकमें

त्रिकोने तीन आवर्त दुःखदायी होते हैं ॥४०॥

गलमध्येशुभस्त्वेकःसर्वाशुभनिवारणः।
अधोमुखःशुभःपादेभालेचोर्ध्वमुखोभ्रमः ॥

गलेके मध्यमें एक आवर्तसम्पूर्ण अशुभोंका नाशक होनेसे शुभ होता है और पैरोंमें अधोमुख और मस्तकमें ऊर्ध्वमुख आवर्त शुभ होते हैं ॥ ४१ ॥

नचैवात्यशुभापृष्ठमुखीशितपदीमता।
मेढ्रस्यपश्चाद्भ्रमरीस्तनीवाजीसचाशुभः ॥

पीछेको मुखवाली पूछ अत्यन्त अशुभ नहीं कही, जिसके लिङ्गके पीछे और स्तनोंमें भौंरी हो वह घोडा भी अशुभ होता है ॥४२॥

भ्रमाःकर्णसमीपेतुशृंगीचैकःसनिंदितः।
ग्रीवोर्ध्वपार्श्वेभ्रमरीह्येकरश्मिःसचैकतः ॥

जो कानोंके समीप एक सींगवाला आवर्त होय तो वह भी निन्दित है। ग्रीवाके ऊपरके पार्श्वमें जो एक रस्सीकी भौंरी हो और वह एक तरफ़ होय तो निन्दित होती है ॥ ४३ ॥

पादोर्ध्वमुखभ्रमरीकीलोत्पाटीसानिंदितः।
शुभाशुभौभ्रमौयस्मिन्सवाजीमध्यमःस्मृतः ॥

पैरोंमें जो ऊर्ध्वमुख भौंरी है उसको कीलोत्पाटी कहते हैं और वह भी निन्दित होती है, जिस घोडेमें शुभ और अशुभ दोनों आवर्त हों वह घोडा मध्यम होता है ॥ ४४ ॥

मुखेपत्सुसितःपंचकल्याणोऽश्वोसदामतः।
सएवहृदयेस्कंधेपुच्छेश्वेतोष्टमंगलः ॥ ४५ ॥

जिसका मुख और पैर सुफेद हो वह घोडा सदैव पंचकल्याण कहा है, यदि वही हृदय स्कन्ध और पुच्छमें सुफेद होय तो अष्ट मङ्गल होता है॥ ४५ ॥

कर्णेश्यामःश्यामकर्णःसर्वतस्त्वेकवर्णभाक्।
तत्रापिसर्वतःश्वेतोमध्यःपूज्यःसदैवाहि ४६ ॥

जिसके कर्ण श्याम हों और सब एक ही रंग हो वह श्यामकर्ण उसमें भी जो सम्पूर्ण श्वेत हो वह मध्यम और सदैव पूजने योग्य होता है ॥ ४६ ॥

वैडूर्यसान्निभेनेत्रेयस्यस्तोजयमंगलः।
मिश्रवर्णस्त्वेकवर्णःपूज्यःस्यात्सुन्दरोयदि ॥

जिसके नेत्र वैडूर्य मणिके तुल्य हों वह जयमङ्गल होता है और जो घोडा अनेक वर्ण हो अथवा एकही वर्ण हो और सुन्दर भी होय तो पूजनेयोग्य होता है ॥ ४७ ॥

कृष्णपादोहरिर्निंद्यस्तथाश्वेतैकपादपि।
रूक्षोधूसरवर्णश्चगर्दभाभोपिनिंदितः ॥४८ ॥

जिस घोडेके पैर काले हों अथवा एक ही पैर सफेद होय तो वह भी निन्दित होता है और जो रूखा गधेके समान धूसर वर्णका हो वह भी निन्दित होता है ॥ ४८ ॥

कृष्णतालुःकृष्णजिह्वःकृष्णोष्ठश्चविनिंदितः।
सर्वत्रःकृष्णवर्णोयःपुच्छेश्वेतःसनिंदितः ४९॥

जिसके तालु, जिह्वा और ओष्ठ ये सब काले हों वहभी अत्यन्त निंदित होता है और जो सब कृष्णवर्ण और पूंछमें सुफेद हो वहभी निंदित है ॥ ४९ ॥

उच्चैःपदन्यासगतिर्द्विपव्याघ्रगतिश्चयः।
मयूरहंसतित्तिरिपारावतगतिश्चयः ॥ ५० ॥

जिस घोडेकी गति (चाल) ऊंचे २ पैर उठाकर हो अथवा गैंडा, सिंह, मोर, हंस, तित्तिर और कबूतर इनके समान जिसकी गति हो ॥ ५० ॥

मृगोष्ट्रवानरगतिःपूज्योवृषगतिर्हयः।
अतिभुक्तोतिपीतोऽपियथासादीनपीडयेत् ५१॥

मृग ऊंट, वन्दर अथवा बैल इनके समान जिसकी गति हो वह घोडा पूजने योग्य होता है, जो घोडा अत्यन्त भूखा वा अत्यन्त प्यासा अपने सवारको पीडा न दे ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठागतिस्तुसाज्ञेयासश्रेष्ठस्तुरगोमतः।
सुश्वेतभालतिलकोविद्धोवर्णांतरेणच ॥ ५२ ॥

वह गति उत्तम जाननी और वही घोडा श्रेष्ठ माना है जिस घोडेके मस्तकका सुफेद तिलक दूसरे रंगसे विंधा हो अर्थात् उसमें कोई अन्य वर्णभी हो ॥ ५२ ॥

सवाजीदलभंजीतुयस्यतस्यातिनिंदितः ।
संहन्याद्वर्णजान्दोषान्स्निग्धवर्णोभवेद्यदि ५३

वह घोडा सेनाको नष्ट करनेवाला होता है और जिसका वह घोडा हो वहभी अत्यन्त निंदित होता है यदि घोडेका वर्ण स्निग्ध (चिकना) होय तो वर्णके जितने दोष हैं उन सबको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

बलाधिकश्चसुगतिर्महान्सर्वांगसुंदरः ।
नातिक्रूरःसदापूज्योभ्रमाद्यैरपिदूषितः ॥५४॥

जिस घोडेमें बल अधिक हो और अच्छी गति हो और मोटा और सब अंगोंमें सुंदर हो जो अत्यन्त क्रोधी नहीं वह चाहै आवर्त आदिसे दूषितभी हो तोभी सदैव पूजने योग्य है ॥ ५४ ॥

वाजिनामत्यवहनात्सुदोषाःसंभवंतिहि ।
कृशोव्याधिपरीतांगोजायतेत्यंतवाहनात् ॥५५

घोडोंसे जो सवारी न लेना उससे बहुतसे दोष होते हैं, जो घोडा दुबला, रोगी, अत्यन्त जोतनेसे हो जाय ॥ ५५ ॥

अवाहितोभवेन्मंदः सर्वकर्मसुनिंदितः ।
अपोषितोभवेत्क्षीणोरोगीचात्यंतपोषणात् ॥

और विना जोते मंद हो जाय वह सब कामोंमें निंदित होता है और जो विना पोषण (खवाये) क्षीण (थकना) होजाय और अत्यंत पोषणसे रोगी होजाता है ॥ ५६ ॥

सुगतिर्दुर्गतिर्नित्यंशिक्षकस्यगुणागुणैः ।
जान्वधश्चलपादःस्यादृजुकायःस्थिरासनः ॥

और जिसकी शिक्षकके गुण और अवगुणसे सुगति और दुर्गति होजाय और गोंडेके नीचे जिसके पैर हलते हों और काया कोमल और आसन स्थिर हो ॥ ५७ ॥

तुलाधृतखलीनःस्यात्कालेदेशेसुशिक्षकः ।
मृदुनानातितीक्ष्णेनकशाघातेनताडयेत् ॥ ५८

जो समय और देशके अनुसार एकसी खलीन (लगाम) को धारण करै वह अच्छा शिक्षक होता है जो कशा(कोरडा)कोमल हो और अतिकठिन न हो उससे ही घोडेकी ताडना करै ॥ ५८ ॥

ताडयेन्मध्यघातेनस्थानेस्वश्वंसुशिक्षकः ।
हेषितेकक्षयोर्हन्यात्स्खलितेपक्षयोस्तथा ५९॥

उत्तम शिक्षा देनेवाला श्रेष्ठघोडेको मध्यमरीतिसे उचित अंगमें ताडना दे,हिंसनेमें कोख और गिरनेके समय पंखोंमें ताडना दे ॥ ५९ ॥

भीतिकर्णांतरेचैवग्रीवामुन्मार्गगामिनि ।
कुस्थितेबाहुमध्येचभ्रांतचित्तेतथोदरे ६० ॥

डरनेपर कानोंमें कुमार्ग चलनेपर ग्रीवामें क्रोध होनेपर भुजाके मध्यमें, चित्तके भ्रम होनेपर पेटमें घोडेको ताडना दे ॥ ६० ॥

अश्वः संताड्यतेप्राज्ञैःनान्यस्थानेषुकर्हिचित् ।
अथवाहेषितेस्कंधंस्खलितेजघनांतरम् ६१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य किसी अन्य स्थानमें कभी भी ताडना नदे-अथवा हिंसने पर स्कंधों और पडनेपर जंघाओंके मध्यमें ताडना दे ॥ ६१ ॥

भीतेवक्षस्थलंहन्याद्वक्त्रमुन्मार्गगामिनि ।
कुपितेपुच्छसंध्यंतेभ्रान्तेजानुद्वयंतथा ॥ ६२॥

घोडेके डरजानेपर छातीपर कुमार्ग चलनेपर मुखमें, कोप होनेपर पूछके समीपमें और भ्रम होनेपर दोनों गोंडोंमें ताडना दे ॥ ६२ ॥

नासकृत्ताडयेदश्वमकालेचविदेशके ।
अकालास्थानघातेनवाजीदोषांस्तनोतिच ६३

वारंवार और कुसमयमें और कोमल देशमें अश्वको ताडना न दे क्यों कि कुसमय और विदेशकी ताडना देनेपर घोडा दोषोंको करता है अर्थात् अपने सवारके दाबमें नहीं रहता ॥ ६३ ॥

तावद्भवंतितेदोषायावज्जीवत्यसौहयः ।
दुष्टंदंडेनाभिभवेन्नारोहेद्दंडवर्जितः ॥ ६४ ॥

और वे दोष तबतक रहते हैं जब तक यह घोड़ा जीता है दुष्ट घोडेका दंडसे तिरस्कार करै और दंडके विना सवारभी न हो ॥ ६४ ॥

गच्छेत्षोडशमात्राभिरुत्तमोश्वोधिलुःशतम् ।
यथायथान्यूनगतिरश्वोहीनस्तथातथा ॥ ६५॥

जोघोडा सोलह मात्राओंके उच्चारण कालमें सौ धनुष चले वह उत्तम होता है इससे जितनी २ न्यूनगति जिसकी हो उतना २ ही वह हीन होता है ॥ ६५ ॥

सहस्रचापप्रमितंमंडलंगतिशिक्षणे ।
उत्तमंवाजिनोमध्यंनीचमर्धंतदर्धकम् ॥ ६६ ॥

और गतिकी शिक्षा देनेके समय सहस्र मंडल धनुषकी गतिका प्रमाण उत्तम घोडेका है उससे आधी गतिवाला मध्यम और उससे भी आधी गति जिसकी हो वह घोड़ा नीच होता है ॥ ६६ ॥

अल्पंशतधनुःप्रोक्तमत्यल्पंचतदर्धकम् ।
शतयोजनगंतास्याद्दिनैकेनयथाहयः ॥ ६७ ॥

सौ धनुषकी गति अल्प और पचास धनुषकी गति अत्यल्प होती है, जैस घोडा एक दिनमें सौ योजन चलनेवाला होजाय ॥६७॥

गतिंसंवर्धयेन्नित्यंतथामंडलविक्रमैः ।
सायंप्रातश्चहेमंतेशिशिरेकुसुमागमे ॥ ६८ ॥

उस प्रकार नित्य गतिको मंडल और बढावे, विक्रम (चाल) स हेमंत (जाडा) ऋतुमें सायंकाल और प्रातःकाल और शिशिर और वसंत ऋतुमें ॥ ६८ ॥

सायंग्रीष्मेतुशरदिप्रातरश्वंवहेत्सदा ।
वर्षासुनवहेदीषत्तथाविषमभूमिषु ॥ ६९ ॥

सायंकालको, ग्रीष्म (गरमी) और शरद ऋतुमें प्रातःकालके समय घोडेको नित्य चलावे और वर्षा तथा विषम भूमिमें कदाचित् भी न चलावे ॥ ६९ ॥

सुगत्याग्निर्बलंदार्ढ्यमारोग्यंवर्धतेहरेः ।
भारमार्गपरिश्रांतंशनैःश्चंक्रामयेद्धयम् ७० ॥

उत्तम गतिसे घोडेकी अग्निबल दृढता और आरोग्य बढते हैं और भार और मार्गसे थके हुये घोडेको शनैः २ चलावे (फेरै) ॥ ७० ॥

स्नेहंसंपादयेत्पश्चाच्छर्करासक्तुमिश्रितम् ।
हरिमंथाश्चमाषाश्चभक्षणार्थंमकुष्टकान् ॥ ७१ ॥

फिर खांड और सत्तुओंमें मिलाकर घीको खिलावे चने उडद और मठा ये सब घोडेके भक्षणके लिये हित हैं ॥ ७१ ॥

शुष्कानार्द्रांश्चमांसानिसुस्विन्नानिप्रदापयेत् ।
यद्यत्रस्खलितंगात्रंतत्रदंशंप्रपातयेत् ॥ ७२ ॥

सूखे और गीले पके हुए मांसोंको भी दे,जो गात्र घोडेका घाव आदिसे गिर जाय उस जगह मांसको भरदे ॥ ७२ ॥

नावतीरितपल्याणंहयंमार्गसमागतम् ।
दत्त्वागुडंसलवणंबलसंरक्षणायच ॥ ७३ ॥

जिस घोडेका पलाण नावसे उतारा हो और मार्गसे चलकर आया हो उसको लवण और गुड बलकी रक्षाके लिये देकर ॥७३॥

गतस्वेदस्यशांतस्यसुरूपमुपातिष्ठतः ।
मुक्तपृष्ठादिबंधस्यखलीनमवतारयेत् ७४ ॥

जब स्वेद (पसीना) शांत हो जाय, अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय और उसकी पीठका बंधन उतारकर खलीन (लगाम) को उतार ले ॥ ७४ ॥

मर्दयित्वातुगात्राणिपांसुमध्येविवर्तयेत् ।
स्नानपानावगाहैश्चततःसम्यक्प्रपोषयेत् ७५॥

और अंगोंको मलकर ऐसी जगह फेरे जहां धूली हो फिर स्नान, पान और मलकर भली प्रकार पुष्ट करै ॥ ७५ ॥

सर्वदोषहरोश्वानांमद्यजांगलयोरसः ।
शक्त्यासंपादयेत्क्षीरंघृतंवावारिसक्तुकम् ॥

मदिरा और जगलीमांसका रस घोडोंके सब रोगोंको हरता है और यथाशक्ति दूध, घी और जलमिले सत्तुओंको खिलावे ॥ ७६ ॥

अन्नंभुक्त्वाजलंपीत्वातत्क्षणाद्वाहितोहयः ।
उत्पद्यंतेतदाश्वानांकासश्वासादिकागदाः ॥

अन्नको खिलाकर और जलको पिलाकर उसी क्षणमें चलाया हुआ जो घोडा उसके कास और श्वास आदि अनेक रोग पैदा होते हैं ॥ ७७ ॥

यवाश्चचणकाःश्रेष्ठामध्यामाषामकुष्ठकाः ।
नचिमसूरामुद्गाश्चभोजानार्थंतुवाजिनः॥७८॥

घोडेको जौ और चने श्रेष्ठ, उडद और माठा मध्यम होते हैं और मसूर और मूंग भोजनके लिये निंदित होते हैं ॥ ७८ ॥

पादैश्चतुर्भिरुत्प्लुत्यमृगवत्साप्लुतागतिः।
असंवलितपद्भ्यांतुसुव्यक्तंगमनंतुरम्॥७९॥

जो घोडा चारों पैरोंसे मृगके समान कूद कर चले वह गति प्लुत होती है और पैरोंको नहीं मिलाकर जो प्रगट रीतिसे चलै उस गतिको तुर (वेगवती) कहते हैं ॥ ७९ ॥

धौरीतकंचतज्ज्ञेयंरथसंवाहनेवरम्।
प्रसंवलितपद्भ्यांयोमयूरोद्धृतकंधरः ॥८०॥

जो घोडा रथके ले चलनेमें उत्तम हो उसे धौरीतक कहते हैं जो घोडा मिले हुये पैरोंसे कंधरा उठाय ले उसे मयूर कहते हैं ॥ ८० ॥

दोलायितशरीरार्धकायोगच्छतिवल्गितम्।
गतयःषड्विधाधारास्कंदितंरेचितंप्लुतम् ८१ ॥

जो घोडा आधे शरीरको हिंडोलेके समान उठाकर चलै उसकी गतिको वल्गित कहते हैं और घोडेकी गति छः प्रकारकी होतीहै धारा, आस्कंदित, रेचित, प्लुत ॥ ८१ ॥

धौरीतकंवल्गितंचतासांलक्ष्मपृथक्पृथक्।
धारागतिःसाविज्ञेयायातिवेगतरामता ॥८२॥

धौरीतक और वल्गित, उनके लक्षणभी पृथक् २ हैं जो अत्यन्त वेगसे हो वह गति धारा जाननी ॥८२ ॥

पार्ष्णितोदातितुदितोयस्यांभ्रांतोभवेद्धयः।
आकुंचिताग्रपादाभ्यामुत्प्लुत्योत्प्लुत्ययागतिः

पार्ष्णि (एडी) के लगानेसे अत्यंत प्रेरित किया घोडा अत्यन्त भ्रांत होजाता है किंचित सुकडे हुए अगले पैरोंसे कूद २ कर जो गति है ॥ ८३ ॥

आस्कंदिताचसाज्ञेयागातिविद्भिस्तुवाजिनाम्।
ईषदुत्प्लुत्यगमनमखंडरेचितंहितत् ॥ ८४ ॥

उसको घोडोंकी गतिके ज्ञाता आस्कंदित कहते हैं किंचित् कूदकर जो अखंड गति है उसको रेचित कहते हैं ॥ ८४ ॥

परिणाहोवृषमुखादुदरेतुचतुर्गुणः।
सककुत्रिगुणोच्चस्तुसार्धत्रिगुणदीर्घता ॥८५॥

बैलके मुख विस्तारसे उदरका चौगुणा विस्तार होताहै और ककुद (ढांठ) सहित तिगुनी उचाई और साढे तीन गुनी लंबाई होतीहै८५॥

सप्ततालोवृषःपूज्योगुणैरेभिर्युतोयदि।
नस्थायीनचवैमंदःसुवोढासर्वांगसुंदरः ८६ ॥

यदि पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त होय तो सात तालका बैल पूजने योग्य होता है और जो न स्थायी (खडा रहै) हो और न मंद हो और जिसके सब अंग सुंदर हों ॥ ८६ ॥

नातिक्रूरःसुपृष्ठश्चवृषभःश्रेष्ठउच्यते।
त्रिंशद्योजनगंतावाप्रत्यहंभारवाहकः ८७ ॥

और जो भारको ले चले जो न अत्यन्त क्रूर हो और जिसकी पीठ सुन्दर हो वह बैल श्रेष्ठ कहा है और प्रतिदिन तीस योजन भारको लेकर चलसके ॥ ८७ ॥

नवतालश्चसुदृढःसुमुखोष्ट्रःप्रशस्यते।
शतमायुर्मनुष्याणांगजानांपरमंस्मृतम् ८८

नौ ताल जिसका प्रमाण हो और मुखसुन्दर हो ऐसा ऊंट श्रेष्ठ कहा है मनुष्य और हाथियोंकी अवस्था सौ वर्षकी परम कही है॥८८

मनुष्यगजयोर्बाल्यंयावद्विंशतिवत्सरम्।
नृणांहिमध्यमंयावत्षष्टिवर्षवयःस्मृतम् ८९ ॥

मनुष्य और हाथीकी बाल्य अवस्था बीस वर्षतक होती है और मनुष्योंकी मध्यम अवस्था साठवर्षतक कही है ॥ ८९ ॥

अशीतिवत्सरंयावद्गजस्यमध्यमंवयः।
चतुस्त्रिंशत्तुवर्षाणामश्वस्यायुःपरंस्मृतम् ॥

अस्सी वर्षतक हाथीकी मध्यम अवस्था होती है चौंतीस वर्षकी अवस्था घोडेकी परम पूरी होती है ॥ ९० ॥

पंचविंशतिवर्षंहिपरमायुर्वृषोष्ट्रयोः।
बाल्यमश्ववृषोष्ट्राणांपंचसंवत्सरंमतम् ॥ ९१॥

बैल और ऊंटकी पूरी अवस्था पच्चीस वर्षकी होती है और घोडा बैल ऊंट इनकी बाल्य अवस्था पांच वर्षकी कही है ॥९१॥

मध्यंयावत्षोडशाब्दंवार्धक्यंतुततःपरम् ।
दंतानामुद्गमैर्वर्णैरायुर्ज्ञेयंवृषाश्वयोः॥ ९२ ॥

सोलह वर्षतक मध्यम आयु और उससे परे वृद्ध अवस्था होती है और दांतोंके निकलने और वर्ण (आकार) से बैल और घोडेकी अवस्था जाननी ॥ ९२ ॥

अश्वस्यषट्सितादंताःप्रथमाब्देभवंतिहि ।
कृष्णलोहितवर्णास्तुद्वितीयेब्देह्यधोगताः ॥

घोडेके छः दांत सफेद पहिले वर्षमें और दूसरे वर्षमें काले और लाल वर्णके और नीचेकी तरफ ही होते हैं ॥ ९३ ॥

तृतीयेब्देतुसंदंशौक्रमात्कृष्णौषडब्दतः ।
नवमाब्दात्क्रमात्पीतौतौसितौद्वादशाब्दतः ॥

तीसरे वर्षमें क्रमसे बराबर हो जाते हैं और छठे वर्षमें काले हो जाते हैं और नवे वर्षमें पीले और बारहवें वर्षमें सुफेद हो जाते हैं ॥ ९४ ॥

दशपंचाब्दतस्तौतुकाचाभौक्रमतःस्मृतौ ।
अष्टादशाब्दतस्तौहिमध्वाभौभवतःक्रमात् ॥

और पंद्रहवें वर्षमें वे दोनों दांत काचके समान और अठारहवें वर्षमें मधु (शहद) के समान क्रमसे होजाते हैं ॥ ९५ ॥

शंखाभौचैकविंशाब्दाच्चतुर्विंशाब्दतःसदा ।
छिद्रंसंचलनंपातोदंतानांचत्रिकेत्रिके ९६ ॥

इक्कीसवें वर्षमें शंखके समान हो जाते हैं और चौवीस वर्षसे तीसरे २ वर्षमें दांतोंमें छेद हिलना और पडना होने लगता है ॥९६॥

प्रोथेसवलयस्तिस्रःपूर्णायुर्यस्यवाजिनः ।
यथायथातुहीनास्ताहीनमायुस्तथातथा ९७ ॥

जिस घोडेकी नाकके आगे त्रिवली होय उसकी पूर्ण अवस्था होती है और जैसी २ त्रिवली कम होय उतनीही कम होती है ९७ ॥

जानुस्थातात्वोष्ठवाद्योधूतपृष्ठोजलासनः ।
गतिमध्यासनःपृष्ठपातीपश्चाद्गमोर्ध्वपात् ॥

गोडेसे जो घोडा खडा होय और होठ जिसके बजे पीठ कंपे जलमें बैठ जाय गति जिस-की मध्यम हो पीठ जिसकी लगती होय पीछे को हटता होय, ऊपरको पैर उठाता होय और ॥ ९८ ॥

सर्पजिह्वश्चर्क्षकांतिर्भीरुश्चवोतिनिंदितः ।
सच्छिद्रभालातिलकीनिंद्यआश्रयकृत्तथा ॥९८

सांपके समान जिह्वा और रीछकीसी कांति डरपोक होय ऐसा घोडा अत्यंत निंदित होता है जिसके मस्तकके तिलकमें छिद्र होय और जो ढीला और आश्रय चाहता होय वह घोडा भी निंदित होता है ॥ ९९ ॥

वृषस्याष्टौसितादंताश्चतुर्थेब्देऽखिलाः स्मृताः।
द्वावंत्यौपतितोत्पन्नौपंचमेब्देहितस्यवै १०००॥

बैलके दांत चौथे वर्षमें आठ और सपेद होतेहैं और पांचवें वर्षमें पिछले दो टूटकर पैदा होते हैं ॥ १००० ॥

पृष्ठेतूपांत्यौभवतःसप्तमेतत्समीपगौ ।
अष्टमेपतितोत्पन्नौमध्यमौदशनौखलु॥१००१

और उनके पासके दो दांत छठे वर्षमें और उनके भी पासके दो दांत सातवें वर्षमें और बीचके दोनों आठवें वर्षमें गिरकर दुबारा पैदा होते हैं ॥ १००१ ॥

कृष्णपीतसितारक्तशंखच्छायौद्विकेद्विके ।
क्रमाद्ब्देचभवतश्चलनंपतनंततः ॥१००२॥

और दो दो वर्षके अन्तरसे दांतोंकी कांति काली, पीली, सपेद,लाल और शंखके समान हो जाती है और उसके बाद दांतोंका हिलना और पडना होने लगता है ॥ १००२ ॥

उष्ट्रस्योक्तप्रकारेणवयोज्ञानंतुवाभवेत् ।
प्रेरकाऽऽकर्षकमुखोऽङ्कुशोगजविनिग्रहे ॥ ३॥

ऊंटकी भी अवस्थाका ज्ञान पूर्वोक्त प्रकारसे होता है, हाथीको शिक्षा देनेके लिये ऐसा अंकुश हो जिसका मुख तिरछा हो और जो घुस सके ॥ ३ ॥

हास्तिपकैर्गजस्तेनाविनेयःसुगमोयदि ।
खलीनस्योर्ध्वखंडौद्वौपार्श्वगौद्वादशांगुलौ ॥

उस अंकुशसे भली प्रकार चलनेके लिये पीलवान हाथीको शिक्षादे खलीन (लगाम) के

ऊपर लोखंडके दोनों बाजू बारह २ अंगुलके होते हैं ॥ ४ ॥

तत्पार्श्वांतर्गताभ्यांतुसुदृढाभ्यांतथैवच ।
वारकाकर्षखंडाभ्यांरज्ज्वर्थवलयैर्युतौ ॥ ५ ॥

और वे दोनों ऐसे होयँ जिनके पासमें लगे हुए और बडे दृढ हटाने और खींचनेके खंड लगे होयँ और रस्सीको डोरभी लगी होय ॥ ५ ॥

एवंविधखलीनेनवशीकुर्यात्तुवाजिनम् ।
नासिकाकर्षरज्ज्वातुवृषोष्ट्रंविनयेद्वशम् ॥

ऐसे खलीनसे घोडेको वशमें करै और नासिकामें लगी हुई खींचनेकी रस्सीसे बैल और ऊँटको वशमें करै ॥ ६ ॥

तीक्ष्णाग्रकःसप्तफालःस्यादेषांमलशोधने ।
सुताडनैर्विनेयाहिमनुष्यैःपशवः सदा ॥ ७ ॥

और इनकी मलशुद्धिके लिये तीखे अग्रवाला सात फालोंकी दंताली करना, मनुष्य पशुओंको सदैव भली प्रकार ताडनासे शिक्षा दे ॥ ७ ॥

सैनिकास्तुविशेषेणनतेवैधनदंडतः ।
अनूपेतुवृषाश्वानांगजोष्ट्राणांतुजांगले ॥ ८ ॥

और सेनाके मनुष्योंको तो विशेष कर ताडनासे शिक्षित करै धन दंडसे नहीं बैल और घोडोंको जलवाले देशमें हाथी और ऊंटोंको जंगलमें ॥ ८ ॥

साधारणेपदातीनांनिवेशाद्रक्षणंभवेत् ।
शतंशतंयोजनांतेसैन्यंराष्ट्रेनियोजयेत् ॥ ९ ॥

पदाति मनुष्योंको साधारण देशमें निवास करनेसे रक्षा होती है, राजा अपने राज्यमें योजनके अंतरपर सौसौ सेनाको नियुक्त करे अर्थात् छावनी डाले ॥ ९ ॥

गजोष्ट्रवृषभाश्वाःप्राक्श्रेष्ठाःसंभारवाहने ।
सर्वेभ्यःशकटाःश्रेष्ठावर्षाकालंविनास्मृताः १०

हाथी, ऊंट, बैल, घोडे, इनमें पहिला २ बोझ लेचलनम श्रेष्ठ होता है और वर्षाके समयको छोडकर सबसे उत्तम बोझ लेचलनेमें शकट (गाडी) होते हैं ॥ १० ॥

नचाल्पसाधनोगच्छेदपिजेतुमरिंलघुम् ।
महतात्यंतसाध्यस्तुवलेनैवसुबुद्धियुक् ॥ ११ ॥

थोडे सामानवाला राजा छोटेभी शत्रुके जीतनेके लिये गमन न करै वा बुद्धिमान् मनुष्य बडी सेनासे शत्रुओंके अंतको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अशिक्षितमसारंचसादयस्कंबलवच्चतत् ।
युद्धंविनान्यकार्येषुयोजयेन्मतिमान्सदा १२ ॥

बुद्धिमान् राजा ऐसी सेनाको युद्धसे भिन्न कार्योंमें नियुक्त करै जो अशिक्षित, असार, साद्यस्क, (नवीन) बलवान् होय ॥ १२ ॥

विकर्तुंयततेऽल्पेपिप्राप्तेप्राणात्ययेऽनिशम् ॥
नपुनः किंतुबलवान्विकारकरणक्षमः ॥ १३ ॥

छोटाभी शत्रु प्राणोंका नाश होना देखकर विरोध करनेके लिये जब यत्न करता है तो बलवान् मनुष्य विकार करनेको क्यों न समर्थ होगा ॥ १३ ॥

अपिबद्धबलोऽशूरोनस्थातुंक्षमतेरणे ।
किमल्पसाधनाच्छूरः स्थातुं शक्तोऽरिणा समम् ॥ १४ ॥

अशूर (कायर) भी मनुष्य अधिक सेना होने पर संग्राममें टिकनेको समर्थ नहीं और अल्प सामानवाला शूर शत्रुके संग टिकनेको समर्थ क्या हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सुसिद्धाल्पबलःशूरोविजेतुंक्षमतेरिपुम् ।
महान्सुसिद्धबलयुक्छूरःकिन्नविजेष्यति १५ ॥

भली प्रकार सन्नद्ध थोडीभी सेनावाला शूरवीर शत्रुके जीतनेको समर्थ होता है और भलीप्रकार सन्नद्ध सेनावाला और महान् शूरवीर शत्रुकी सेनाको क्यों नहीं जीतेगा ॥ १५ ॥

मौलशिक्षितसारेणगच्छेद्राजारणेरिपुम् ।
प्राणात्ययेपिमौलंनस्वामिनंत्यक्तुमिच्छति १६ ॥

मौल (पुस्तैनी नौकर) और सीखी सेनाको लेकर राजा रणमें शत्रुपर चढे क्योंकि मौल

सेना प्राणोंके नाश समयमें भी अपनेस्वामीको त्यागना नहीं चाहती ॥ १६ ॥

वाग्दंडपरुषेणैवभृतिह्रासेनभीतितः ।
नित्यंप्रवासायासाभ्यांभेदोवश्यंप्रजायते १७॥

कटु वचन और भृति (नोकरी) की न्यूनता करनेके भयसे और प्रतिदिन परदेशमें भेजने और परिश्रमसे सेनाका अवश्य भेद (फटना) हो जाता है ॥ १७ ॥

बलंयस्यतुसंभिन्नमनागपिजयःकुतः ।
शत्रोःस्वल्पापिसेनाया अतोभेदंविचिंतयेत् १८

जिस राजाकी थोडी ही सेना भिन्न हो गई होय उसकी जय कहां, इससे शत्रुके थोडीभी सेनाके भेदकी चिंता करै ॥ १८ ॥

यथाहिशत्रुसेनायाभेदोवश्यंभवेत्तथा ।
कौटिल्येनप्रदानेनद्राक्कुर्यान्नृपतिःसदा १९॥

जैसी शत्रुकी सेनाका अवश्य भेद होय तिसप्रकार कुटिलाई और द्रव्यके देनेसे राजा शीघ्र आचरण करै ॥ १९ ॥

सेवयाऽत्यंतप्रबलंनत्याचारिंप्रसाधयेत् ।
प्रबलंमानदानाभ्यांयुद्धैर्हीनबलंतथा २०॥

अत्यन्त प्रबल शत्रुको सेवा और नति (नवना)से साधे, प्रबलको मान और दानसे और हीन बलको युद्धसे सिद्धकरै ॥ २० ॥

मैत्र्याजयेत्समबलंभेदैःसर्वान्वशंनयेत् ।
शत्रुसंसाधनोपायोनान्यःसुबलभेदतः॥२१॥

समान बलवाले शत्रुको मित्रतासे जीते और सब प्रकारके शत्रुओंको भेदोंसे वशमें करै सेनाके भलीप्रकार भेदसे इतर शत्रुओं के जीतनेका उपाय नहीं है ॥ २१ ॥

तावत्परोनीतिमान्स्याद्यावत्सुबलवान्स्वयम् ।
मित्रंतावच्चभवतिपुष्टाग्नेःपवनोयथा २२॥

इतने राजा दृढ बलवान् रहै इतने नीतिमें तत्पर रहै और इतने ही मित्र होता है जैसे प्रबल अग्निको पवन ॥ २२ ॥

त्यक्तंरिपुबलंधार्यंनसमूहसमीपतः ।
पृथङ्नियोजयेत्प्राग्वायुद्धार्थंकल्पयेच्चतत् २३

शत्रुकी त्यागी हुई सेनाके समूहको अपने समीप न रक्खै यातो उसे अपनी सेनासे पृथक् काममें लगावे अथवा सबसे पहिले युद्धमें नियुक्त करै ॥ २३ ॥

मैत्र्यमारात्पृष्ठभागेपार्श्वयोर्वावलंव्यसेत् ।
अस्यतेक्षिप्यतेयत्तुमंत्रयंत्राग्निभिश्चतत् २४॥

मित्रकी सेनाको अपने समीप पीठके भागमें अथवा पार्श्व (आसपास) भागोंमें रक्खे जो मंत्र यंत्र अग्नि इन तीनोंसे चलाया जाय उसे ॥ २४ ॥

अस्त्रंतदन्यतःशस्त्रमसिकुंतादिकंचयत् ।
अस्त्रंतुद्विविधंज्ञेयंनालिकंमांत्रिकंतथा॥२५॥

अस्त्र कहते हैं उससे जो भिन्न तलवार भाला आदि हैं उनको शस्त्र कहते हैं अस्त्र दो प्रकारके होते हैं १ नालिक २मांत्रिक॥२५॥

यदातुमांत्रिकंनास्तिनालिकंतत्रधारयेत् ।
सहशस्त्रेणनृपतिर्विजयार्थंतुसर्वदा ॥२६॥

जो मांत्रिक अस्त्र न होय तो नालिक अस्त्रको शस्त्रसहित राजा विजयके लिये सदैव धारण करै ॥ २६ ॥

लघुदीर्घाकारधाराभेदैःशस्त्रास्त्रनामकम् ।
प्रथयंतिनवंभिन्नंव्यवहारायतद्विदः ॥ २७ ॥

लघु और बड़े हो आकार और धाराभेदसे शस्त्र और अस्त्रोंके संग्रामके जाननेवाले नवीन, २ भिन्न २ नामोंसे विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥

नालिकंद्विविधंज्ञेयंबृहत्क्षुद्रविभेदतः ।
तिर्यगूर्ध्वच्छिद्रमूलंनालंपंचवितस्तिकम् २८॥

बडे और क्षुद्र (छोटेके) भेदसे नालिक दो प्रकारका है तिरछा ऊपरको छिद्र और जड़के भेदसे पांच बिलस्तका नाल होता है ॥ २८ ॥

मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदितिलबिंदुयुतंसदा ।
यंत्राघाताग्निकृद्ग्रावचूर्णधृक्कर्णमूलकम् ॥२९॥

मूल और अग्र भागसे जो ऐसे लक्ष्य (निसानें) को जो तिल और बिन्दुके समान

हो भेदनेवाला जिसमें यंत्रके दबानेसे अग्नि लगे और पिसाहुआ चून (दारू) पडा होय ॥ २९ ॥

सुकाष्ठोपांगबुध्नंचमध्यांगुलविलांतरम् ।
स्वांतेग्निचूर्णसंधात्रीशलाकासंयुतंदृढम् ॥ ३० ॥

जिसमें दृढ काठ हो भीतरसे एक अंगुल पोली हो जिसमें अग्निचूर्ण पडा हो और शलाका (लोहेका गज) सेभी युक्त और दृढ होय ॥ ३० ॥

लघुनालिकमप्येतत्प्रधार्यंपत्तिसादिभिः ।
यथायथातुत्वक्सारंयथास्थूलविलांतरम् ॥ ३१ ॥

ऐसी लघुनालिका (बंदूक) को पदाति और सवार धारण करै और जितनी २ मोटी त्वचा होय और बीचका जितना २ विल जिसका मोटा हो ॥ ३१ ॥

यथादीर्घंबृहद्गोलंदूरभेदितथातथा ।
मूलकीलोद्भमाल्लक्ष्यसमसंधानभाजियत् ॥ ३२ ॥

जितनी लम्बी होय और जितना बडा गोला आवै और दूरके निसानेकोभी भेदन करै और मूलकी कील उखाड़नेसे जो निशान समान लगे ॥ ३२ ॥

बृहन्नालिकसंज्ञंतत्काष्ठबुध्नाविवर्जितम् ।
प्रवाह्यंशकटाद्यैस्तुसुयुक्तंविजयप्रदम् ॥ ३३ ॥

एसी बृहन्नालिका (तोप) जो काष्ठ बुध्न (ऊपरका काठ) से वर्जित हो और भलीप्रकार लगानेसे विजयको देनेवाली वह शकट आदिसे चलाने योग्य होती है ॥ ३३ ॥

सुवर्चिलवणात्पंचपलानिगंधकात्पलम् ।
अंतर्धूमविपक्वार्कस्नुह्याद्यंगारतःपलम् ॥ ३४ ॥

जिसमें पांच पल सोरेका लवण एकपल गंधक और अग्निसे पके हुए आक, स्नुही (सेहुड) वा केले इनके पलभर कोइले होयँ ॥ ३४ ॥

शुद्धात्संग्राह्यसंचूर्ण्यसंमील्यप्रपुटेद्रसैः ।
शुद्धार्कोणां रसोतस्यशोषयेदातपेनच ॥ ३५ ॥

इन सबको शुद्ध २ लेकर पीसले आँक और रसौतके रसमें मिलाकर पुट दे और धूपमें सुखा ले ॥ ३५ ॥

पिष्ट्वाशर्करवच्चैतदग्निचूर्णंभवेत्खलु ।
सुवर्चिलवणाद्भागाःषड्वाचत्वारएववा ॥ ३६ ॥

यह अग्निचूर्ण पीसकर खांड़के समान हो जाता है सोरेके लवणके ६ छः वा चार भाग ले ॥ ३६ ॥

नालास्त्रार्थाग्निचूर्णेतुगंधांगारौतुपूर्ववत् ।
गोलोलोहमयोगर्भगुटिकाःकेवलोपिवा ॥ ३७ ॥

गंधक और कोयले पूर्वके समान तोपके लिये बारूद बनानेकी यह रीति है और डालनेका गोला सब लोहेका हो अथवा जिसके भीतर छोटी २ गोली हों ऐसा हो ॥ ३७ ॥

सीसस्यलघुनालार्थेह्यन्यधातुभवोपिवा ।
लोहसारमयंवापिनालास्त्रेत्वन्यधातुजम् ॥ ३८ ॥

बन्दूकके लिये सीसेका अथवा अन्यधातुका गोला होता है और तोपके लिये लोहसारक अथवा अन्यधातुका होता है ॥ ३८ ॥

नित्यसंमार्जनस्वच्छमस्त्रपातिभिरावृतम् ।
अंगारस्यैवगंधस्यसुवर्चिलवणस्यच ॥ ३९ ॥

उसको नित्य मांजना स्वच्छ रखना और गोलंदाजोंसे युक्त रखना चाहिये और कोयले गंधक सोरेका नोन ॥ ३९ ॥

सिलायाहरितालस्यतथासीसमलस्यच ।
हिंगुलस्यतथाकांतरजसःकर्परस्यच ॥ ४० ॥

मनसिल, हरताल, सीसेका मल, हिंगुल, कांतिसार, लिहा, खपरिया ॥ ४० ॥

जतोर्नील्याश्चसरलनिर्यासस्यतथैवच ।
समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ॥ ४१ ॥

लाख वा राल नील-(देवदारु) सरलका गोंद इन सबके समान वा कम ज्यादे अंशोंसे अनेक प्रकारकी दारू बनती है ॥ ४१ ॥

कल्पयंतिचतद्विद्याश्चंद्रिकाभादिमंतिच ।
क्षिपंतिचाग्निसंयोगाद्गोलंलक्ष्येसुनालगम् ॥

और दारूके जाननेवाले चांदनीके समान प्रकाश करनेवाली अनेक प्रकारकी दारूओंको

कल्पना करते हैं और तोपके गोलेको अग्निके संयोगसे निशाने पर फेंकते हैं ॥ ४२ ॥

नालस्त्रंशोधयेदादौदद्यात्तत्राग्निचूर्णकम् ।
निवेशयेत्तंदंडेननालमूलेयथादृढम् ॥ ४३ ॥

पहिले तोपको भलीप्रकार शुद्ध करै फिर उसमें दारूको डालदे फिर उस दारूको दंड (गज)से तोपकी जडमें दृढतासे जमादे ॥४३॥

ततःसुगोलकंदद्यात्ततःकर्णेग्निचूर्णकम् ।
कर्णचूर्णाग्निदानेनगोलंलक्ष्येनिपातयेत् ४४ ॥

फिर उसके ऊपर गोला रखदे फिर तोपके कानमें दारूको रखदे फिर कानके दारूमें अग्निको लगाकर गोलको निशाने पर फेंक दे ॥४४ ॥

लक्ष्यभेदीयथाबाणोधनुर्ज्याविनियोजितः ।
भवेत्तथातुसंधायद्विहस्तश्चशिलीमुखः ॥४५॥

जैसे बाण धनुषज्यापर लगाया हुआ निशानेको बींधे, इसप्रकार दो हाथके बाणको धनुषपर रक्खै ॥ ४५ ॥

अष्टास्त्रापृथुबुध्नातुगदाहृदयसंमिता ।
पट्टीशात्मसमोहस्तबुध्नश्चोभयतामुखः ४६॥

आठ कोनकी मोटी छातीकी बराबर गदा होती है और पट्टी अपनी बराबर दोनों तरफ मुखवाला हाथमें रखनेके लिये होता है ॥ ४६॥

ईषद्वक्रश्चैकधारोविस्तारेचतुरंगुलः ।
क्षुरप्रांतोनाभिसमोदृढमुष्टिःसुचंद्ररुक् ॥४७॥

कुछ टेढा एक धारवाला और चार अंगुल चौडा नाभितक ऊंचा छूरीके समान पैना और दृढ जिसकी मूठ हो चंद्रमाके समान कांति हो ॥ ४७ ॥

खड्गःप्रासश्चतुर्हस्तंदडबुध्नःक्षुराननः ।
दशहस्तमितःकुंतःफालाग्रःशंकुबुध्नकः ४८॥

ऐसा खड्ग होता है चार हाथ लंबा छूरेके समान मुखवाला मोटा प्रास (फरसा) होता है दश हाथका भालेके समान जिसके अग्रभाग, आगेसे पैना कुन्त (भाला) होता है ॥ ४८ ॥

चक्रंषड्ढस्तपरिधिःक्षुरप्रांतंसुनाभियुक् ।
त्रिहस्तदंडस्त्रिशिखोलोहरज्जुःसपाशकः ॥४९

छः हाथकी जिसकी परिधि (फर) हो छूरीके समान जिसका प्रान्त हो और अच्छी नाभि (धुरेकी जगे) हो ऐसा चक्र होता है तीन हाथका जिसका दंड हो तीन शिखा हो और फांसी जिसमें हो ऐसी लोहेकी रज्जु होती है ॥ ४९ ॥

गोधूमसंमितस्थूलपत्रंलोहमयंदृढम् ।
कवचंसशिरस्त्राणमूर्ध्वकायविशोभनम् ५० ॥

गेहूंके समान जिसके स्थूल पत्ते हों, जो सब लोहेका दृढ हो और शिरका त्राण (रक्षा) सहित हो ऊपरको ऊंचा और शोभित हो ऐसा कवच होता है ॥ ५० ॥

योवैसुपुष्टसंभारस्तथाषड्गुणमंत्रवित् ।
बह्वस्त्रसंयुतोराजायोद्धुमिच्छेत्सएवहि ५१ ॥

जिस राजाके भलीप्रकार पुष्ट सामान हो जो षड्गुण मंत्रको जानता हो जिसके यहां बहुतसे अस्त्र भी हों वही राजा युद्ध करनेकी इच्छा करै ॥ ५१ ॥

अन्यथादुःखमाप्नोतिस्वराज्याद्भ्रश्यतेपिच ।
शत्रुभावमागतयोरुभयोःसंयतात्मनोः ५२ ॥

अन्यथा दुःखको प्राप्त होता है और अपने राज्यसे भी जाता रहता है जो दोनों शत्रु भावको प्राप्त होगये हों और जिनके मनमें उद्योगभी हो और जिनके मनमें परस्पर लडाईके उद्योग हों ॥ ५२ ॥

अस्त्राद्यैःस्वार्थसिद्ध्यर्थंव्यापारोयुद्धमुच्यते ।
मंत्रास्त्रैर्दैविकंयुद्धंनालाद्यस्त्रैस्तथाऽऽसुरम् ॥

अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिये दोनोंके अस्त्र आदिसे परस्पर व्यापारको युद्ध कहते हैं, मन्त्रसे अस्त्रोंका जो युद्ध उसे दैविक और तोप आदि अस्त्रोंसे जो युद्ध उसे आसुर कहते हैं ॥ ५३ ॥

शत्रुबाहुसमुत्थंतुमानवंयुद्धमीरितम् ।
एकस्यबहुभिःसार्धंबहूनांबहुभिश्चवा ॥ ५४ ॥

शत्रुओंकी परस्पर भुजाओंसे जो युद्ध उसे मानव कहते हैं और एकका बहुतोंके संग और बहुतोंका बहुतोंके संग ॥ ५४ ॥

एकस्यैकेनवाद्वाभ्यांद्वयोर्वातद्भवेत्खलु ।
कालंदेशंशत्रुबलंदृष्ट्वास्वीयबलंततः ॥ ५५ ॥

वा एकका एकके संग वा दोका दोके संग जो युद्ध उसे मानव कहते हैं, काल, देश, शत्रुका बल और अपना बल देख कर ॥ ५५ ॥

उपायान्षड्गुणंमंत्रंसंभूयाद्युद्धकामुकः ।
शरद्धेमंतशिशिरकालोयुद्धेषुचोत्तमः॥५६॥

छः हैं गुण जिसमें ऐसे मंत्रोंके उपायोंको युद्धकी कामनावला मनुष्य संग्रह करै युद्ध के लिये शरत, हेमन्त, शिशिरका समय उत्तम होता है ॥ ५६ ॥

वसंतोमध्यमोज्ञेयोऽधमोग्रीष्मःस्मृतःसदा ।
वर्षासुनप्रशंसंतियुद्धंसामस्मृतंतदा ॥ ५७ ॥

वसंत मध्यम जानना और ग्रीष्म सदैव अधम कहा है, वर्षाके समय युद्धकी कोई भी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि उस समय शांति करना ही कहा है ॥ ५७ ॥

युद्धसंभारसंपन्नोयदाधिकबलोनृपः ।
मनोत्साहीसुशकुनोत्पातीकालस्तदाशुभः ॥

जब तक राजा युद्धके सामानसे संपन्न हो अधिक बलवान हो मनमें उत्साही हो और अच्छे शकुन होते हों उस कालको शुभ जानना ॥ ५८ ॥

कार्येऽत्यावश्यकेप्राप्तेकालोनोचेद्यदाशुभः ।
विधायहृदिविश्वेशंगेहेचिह्नप्रियात्तदा ॥५९ ॥
नकालनियमस्तत्रगोस्त्रीविप्रविनाशने ।

जब अत्यंत आवश्यककार्य आन पडे और समयभी शुभ न हो तो हृदयमें परमेश्वरकी स्थापना करके और घरमें परमेश्वरके चिह्न बनाकर गमन करै ॥ ५९ ॥ गो स्त्री ब्राह्मण इनके विनाशमें और पूर्वोक्तकालमें समयका नियम नहीं है ॥

यस्मिन्देशेयथाकालंसैन्यव्यायामभूमयः ।
परस्यविपरीतश्चस्मृतोदेशःसउत्तमः ॥६० ॥

जिस देशमें समयके अनुसार अपनी सेना के कवायदकी अच्छी भूमिहो॥ ६० ॥ शत्रुकी इससे विपरीत हो वह देश लड़ाईके लियेउत्तम कहा है ॥

आत्मनश्चपरेषांचतुल्यव्यायामभूमयः ६१ ॥
यत्रमध्यमउद्दिष्टोदेशःशास्त्रविचिंतकैः ।

जिस देशमें अपनी और पराई सेनाकी कवायदके लिये समान भूमि हो ॥ ६१ वहदेश शास्त्र की चिन्ता करने वालोंने मध्यम कहा है ।

आरातिसैन्यव्यायामसुपर्याप्तमहीतलः ॥६२॥
आत्मनोविपरीतश्चसवैदेशोऽधमःस्मृतः ।

जिस देशमें शत्रुकी सेनाकेलिये कवायदकी भूमि पूरी हो ॥ ६२ ॥ और अपनी सेनाकी उससे विपरीत होय उस देशको अधम कहाहै॥

स्वसैन्यात्तुतृतीयांशहीनंशत्रुबलंयदि ॥ ६३ ॥
अशिक्षितमसारंवासाध्यस्कंस्वजयायन ।

यदि अपनी सेनाके तीसरा भाग कम शत्रुकी सेना हो ॥ ६३ ॥ और अपनी सेना अशिक्षित होय सारहीन वा नई हो तो अपना जय न हो सकेगा ॥

पुत्रवत्पालितंयत्तुदानमानविवर्द्धितम् ६४ ॥
युद्धसंभारसंपन्नंस्वसैन्यंविजयप्रदम् ।

जो सेना पुत्रके समान पाली हो दान और मानसे बड़ाई हो ॥ ६४ ॥ युद्धकी सामग्रियोंसे युक्त हो ऐसी सेना विजय देने वाली होती है ॥

संधिंचविग्रहंयानमासनंचसमाश्रयम् ६५ ॥
द्वैधीभावंचसंविद्यान्मंत्रस्यैतांस्तुषड्गुणान् ।

संधि, विग्रह, यान (चढाई), आसन, समाश्रय (आधीन होना) ॥ ६५ ॥ द्वधी-भाव (भेद) इन मंत्रके छः गुणोंको राजा भली प्रकार जाने ॥

आभिःक्रियाभिर्बलवान्मित्रतांयातिवैरिणः ६६
साक्रियासंधिरित्युक्ताविमृशेत्तांतुयत्नतः ।

जिन कामोंके करनेसे बलवान्भी वैरी मित्र होजाय ॥६६॥ उस क्रिया (कर्म) को सन्धि कहते हैं उसको यत्नसे राजा विचारे ॥

विकर्षितःसन्नाधीनोभवेच्छत्रुस्तुयेनवै ॥ ६७॥
कर्मणाविग्रहस्तंतुचिंतयेन्मंत्रिभिर्नृपः ।

जिस कामसे भेदन किया हुआ शत्रु अपने आधीन होजाय ॥ ६७ ॥ उस विग्रह (लडाई) को मंत्रिओंके संग राजा विचारे ॥

शत्रुनाशार्थगमनंयानंस्वाभीष्टसिद्धये ६८ ॥
स्वरक्षणंशत्रुनाशोभवेत्स्थानात्तदासनम् ।

अपने अभीष्ट सिद्धिके लिये शत्रुके नाशार्थ मनुष्यसे यान (चढाई) कहते हैं ॥६८॥ अपनी रक्षा शत्रुका नाश (जिस स्थानसे बैठ रहना) होय उसको आसन कहते हैं ॥

यैर्गुप्तोबलवान्भूयाद्दुर्बलोपिस आश्रयः ६९ ॥
द्वैधीभावःस्वसैन्यानांस्थापनंगुल्मगुल्मतः ।

जिनकी रक्षासे दुर्बलभी बलवान् होजाय उसे आश्रय कहते हैं ॥ ६९ ॥ गुल्म २ (मौका) पर अपनी सेनाओंको टिकानेको द्वैधीभाव कहते हैं ॥

बलीयसाभियुक्तस्तुनृपोनान्यप्रतिक्रियः ॥
आपन्नःसंधिमन्विच्छेत्कुर्वाणःकालयापनम् ।
एकएवोपहारस्तुसंधिरेषमतोहिनः ॥ ७१ ॥

बलवान्का दबायाहुआ राजा जब अन्य प्रतीकार न करसके तो ॥ ७० ॥ विपत्तिको प्राप्त हुआ और कालको विताता हुआ शत्रुके संग संधि (मेल) की इच्छा करै और दूसरे को भेट देदेना यह मुख्य सधि हमको भी सम्मत है ॥ ७१ ॥

उपहारस्यभेदास्तुसर्वेन्येमैत्रवर्जिताः ।
अभियोक्ताबलीयस्त्वादलब्ध्वानानिवर्तते ७२॥

मित्रताको छोडकर उपहारके अन्य भी भेद बहुतसे होते हैं जहां अभियोक्ता (चढनेवाला) शत्रु बलवान् होनेसे विना भेट लिये निवृत्त न होय ॥ ७२ ॥

उपहाराद्विनेयस्मात्तत्संधिरन्योनविद्यते ।
शत्रोर्बलानुसारेणउपहारंप्रकल्पयेत्॥७३॥

वहांपर उपहारसे दूसरी संधि नहीं होती किन्तु शत्रुके बलानुसार भेटको दे दे ॥ ७३ ॥

सेवांवापिचस्वीकुर्याद्दद्यात्कन्यांभुवंधनम् ।
स्वसामंतांश्चसंधीयान्मंत्रेणान्यजयायवै ॥

अथवा शत्रुकी सेवाका स्वीकार करै व कन्या, भूमि, धन इनको शत्रुको दे दूसरेकी जयके लिये अपने सामन्तों (समीपके राजा) के संग सन्धि करै ॥ ७४ ॥

संधिःकार्योप्यनार्येणसंप्राप्योत्सादयेद्धिसः ।
संघातवान्यथावेणुर्निबिडैःकंटकैर्वृतः ॥७५॥

अनार्य मनुष्यकी कीहुई सन्धि शत्रुको उखाड देती है, जैसे सघन कांटोंसे रोका हुआ वेणु समूहवाला होकर ॥ ७५ ॥

नशक्यतेसमुच्छेत्तुंवेणुःसंघातवांस्तथा ।
बलिनासहसंधायभयेसाधारणेयदि॥७६॥

छेदनेको शक्य नहीं होता इसी प्रकार सन्धिवाला राजाभी उखाडनेके अयोग्य होता है, यदि राजाको साधारण भय होय तो बलवानके संग मिलकर ॥ ७६ ॥

आत्मानंगोपयेत्कालेबह्वमित्रेषुबुद्धिमान् ।
बलिनासहयोद्धव्यमितिनास्तिनिदर्शनम्॥

बहुत शत्रुओंके होनेपर बुद्धिमान् राजा उस कालमें अपने आत्माकी रक्षा करै क्यों कि यह शास्त्रमें नहीं लिखा कि बलवानके संग युद्ध करना ॥ ७७ ॥

प्रतिवातंहिनघनःकदाचिदापसर्पति ।
बलीयसिप्रणमतांकालेविक्रमतामपि७८ ॥

क्यों कि छोटा बादल पवनके सामने कदाचित् भी नहीं चलता जो राजा बलवान् शत्रु को मानते हैं और समयपर पराक्रम भी करते हैं ॥ ७८ ॥

संपदोनविसर्पंतिप्रतीपामिवनिम्नगाः ।
राजानगच्छेद्विश्वासंसंधितोपिहिबुद्धिमान्८०

उनकी सम्पदा इस प्रकार कही नहीं जाती जसे ऊँचेपर नदी, बुद्धिमान राजा मेल होने पर भी शत्रुका विश्वास न करै ॥ ७९ ॥

अद्रोहसमयंकृत्वावृत्रमिंद्रःपुराऽवधीत् ।
आपन्नोभ्युदयाकांक्षीपीड्यमानःपरेणवा ॥

क्योंकि स्नेहकी प्रतिज्ञा करके भीपूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरको मार दिया था आपत्तिको प्राप्त हुआ शत्रुसे पीडित राजा अपना उदय चाहे ता ॥ ८० ॥

देशकालबलोपेतःप्रारभेतचाविग्रहम् ।
प्रहीनबलमित्रंतुदुर्गस्थंह्यंतरागतम् ८१॥

देश, काल, बल, इनसे जब युक्त हो उस समय लडाईका प्रारम्भ करै जिस शत्रुके बल और मित्र हीन हों दुगमें टिका हो दो शत्रुओं के बीच हो ॥ ८१ ॥

अत्यन्तंविषयासक्तंप्रजाद्रव्यापहारकम् ।
भिन्नमंत्रिबलंराजापीडयेत्परिवेष्टयन् ॥ ८२ ॥

अत्यन्त विषयोंमें आसक्त हो प्रजाके द्रव्यका हरता हो मंत्री और सेना जिसे फटी हो ऐसे शत्रुको चारों तरफसे लपेटकर पीडित (दबाव) करै ॥ ८२ ॥

विग्रहःसचविज्ञेयोह्यन्यश्चकलहःस्मृतः ।
बलीयसात्यल्पबलःशूरेणनचविग्रहम्॥८३॥

इसीको विग्रह कहते हैं इससे अन्य कलह कहा है बलवानके संग अल्प बलवाले शूरवीरके संग जो लडाई ॥ ८३ ॥

कुर्याच्चविग्रहेपुंसांसर्वनाशःप्रजायते ।
एकार्थाभिनिवेशित्वंकारणंकलहस्यवा ॥८४॥

कर्त्ता है उस लडाईमें पुरुषोंका सर्वनाश होता है एक वस्तुकी अभिलाषा करनी इसीको लडाईका कारण कहते हैं ॥ ८४ ॥

उपायांतरनाशेतुततोविग्रहमाचरेत् ।
विगृह्यसंधायतथासंभूयाथप्रसंगतः ॥ ८५ ॥

जब दूसरा कोई उपाय न होय तो लडाईको करै लडाईके लिये मिलकर इकट्ठा होकर और प्रसंगसे ॥ ८५ ॥

उपेक्षयाचनिपुणैर्यानंपंचविधंस्मृतम् ।
विगृह्ययातिहियदासर्वाञ्छत्रुगणान्बलात् ८६

उपेक्षासे यह पांच प्रकारका यान (चढाई) विद्वानोंने कहा है जब शत्रुओंके गणके ऊपर बलसे लडाई करके गमन करै उसको ॥ ८६॥

विगृह्ययानंयानज्ञैस्तदाचार्यैःप्रचक्षते ।
अरिमित्राणिसर्वाणिस्वमित्रैःसर्वतोबलात् ८७

यानके जाननेवाले आचार्य विगृह्ययान कहते हैं अथवा सपूर्ण शत्रुके मित्रोंको अपने सब मित्रोंके संग बलसे ॥ ८७ ॥

विगृह्यचारिभिर्गंतुंविगृह्यगमनंतुवा ।
संधायान्यत्रयात्रायांपार्ष्णिग्राहेणशत्रुणा ८८

लडाकर शत्रुपर जो चढना उसको विगृह्यगमन कहते हैं अन्यपर चढाईके समय पीछेके शत्रुके साथ सन्धि करके जो गमन ॥ ८८ ॥

संधायगमनंप्रोक्तंतज्जिगीषोःफलार्थना ।
एकोभूपो यदैकत्रसामंतैःसांपरायिकैः ॥८९॥

उसे जीतनेवाले फलके अभिलाषी राजाका सन्ध्यागमन कहते हैं जब एक राजा अपने सामंत साथी उन राजाओंके संग ॥ ८९ ॥

शक्तिशौर्ययुतैर्यानंसंभूयगमनंहितत् ।
अन्यत्रप्रस्थितःसंगादन्यत्रैवचगच्छति ९०॥

मिलकर गमन करै जो सामर्थ्य और बलसे युक्त होय उसे संभूय गमन कहते हैं यदि अन्यपर चढाईके लिये प्रस्थित राजा संगसे अन्यत्र ही चला जाय ॥ ९० ॥

प्रसंगयानंतत्प्रोक्तंयानविद्भिश्चमंत्रिभिः ।
रिपुंयातस्यबलिनःसंप्राप्यविकृतंफलम् ९१ ॥

जो यानके ज्ञाता मंत्रीजन उसे प्रसंगयान कहते हैं, जो बलवान् राजा शत्रुपर गमन करै वहां विपरीत फल मिल जाय ॥ ९१ ॥

उपेक्ष्यतस्मिन्तद्यानमुपेक्षायानमुच्यते ।
दुर्वृत्तेऽप्यकुलीनेतोबलंदातारिज्यते ॥ ९२॥

तो उसकी उपेक्षा (छोडना) करनेको उपेक्षायान कहते हैं, जो दुराचारी कुलहीन

होय ऐसे राजापर चढ करना अच्छा होता है ॥ ९२ ॥

हृष्टंकृत्वास्वीयबलंपारितोष्यप्रदानतः ।
नायकःपुरतोयायात्प्रवीरपुरुषावृतः ॥९३॥

अपनी सेनाको प्रसन्न और धन आदि देनेसे उनको सन्तोष करके बडे २ वीर पुरुषोंसे युक्त सेनाका नायक (सेनापति) सबसे आगे चले ॥ ९३ ॥

मध्येकलत्रंकोशश्चस्वामीफल्गुचयद्धनम् ।
ध्वजिनींचसदोद्युक्तःसंगोपायेद्दिवानिशम् ९४

सेनाके बीचमें स्त्री, कोश स्वामी और सामान्य धन, इनको रक्खे और रात्रि दिन सदैव बडे यत्नसे अपनी सेनाकी रक्षा करै ॥ ९४ ॥

नद्यद्रिवनदुर्गेषुयत्रयत्रभयंभवेत् ।
सेनापतिस्तत्रतत्रगच्छेद्व्यूहकृतैर्बलैः ॥९५॥

नदी, पर्वत, वन, दुर्ग, आदिमें जहां २ भय होय वहां २ सेनाके व्यूह बनाकर सेनापति गमन करै ॥ ९५ ॥

यायाद्व्यूहेनमहतामकरेणपुरोभये ।
श्येनेनोभयपक्षेणसूच्यावाधीरवक्त्रया ॥९६॥

यदि सेनाके आगे भय होय तो बडे मकरके आकारके व्यूहसे सेनापति चले अथवा शिखरके दोनों पक्षके समान व्यूहसे अथवा बडी पैनी है धार जिसकी ऐसी सूचीके व्यूहसे सेनापति गमन करै ॥ ९६ ॥

पश्चाद्भयेतुशकटंपार्श्वयोर्वज्रसंज्ञिकम् ।
सर्वतःसर्वतोभद्रंचक्रंव्यालमथापिवा ॥ ९७ ॥

यदि पीछे भय हो तो शकटव्यूहसे, पार्श्वोंमें (दोनों तरफ) भय हो तो वज्रव्यूहसे चारों तरफसे भय हो तो सर्वतोभद्रव्यूहसे अथवा सर्पव्यूहसे सेनापति गमन करै ॥९७॥

यथादेशंकल्पयेद्वाशत्रुसेनाविभेदकम् ।
व्यूहरचनसंकेतान्वाद्यभाषासमीरितान् ।

देशके अनुसार शत्रुकी सेनाके भलीप्रकार भेद (तोडने) का यत्न करै और पूर्वोक्त व्यूहोंकी रचनाके ऐसे संकेत (इशारे) जो बाजोंके बजनेसे मालूम हो सकें ॥ ९८ ॥

स्वसैनिकैर्विनाकोपिनजानातितथाविधान् ।
नियोजयेच्चमतिमान्व्यूहान्नानाविधान्सदा ९९

और उन संकेतोंको अपनी सेनाके मनुष्योंसे इतर कोई भी न जाने और बुद्धिमान् राजा सदैव अनेक प्रकारके व्यूहोंको नियत करै ॥ ९९ ॥

अश्वानांचगजानांचपदातीनांपृथक्पृथक् ।
उच्चैःसंश्रावयेद्व्यूहसंकेतान्सैनिकान्नृप १०० ॥

सवार, हाथीवान, पदाति इनको और सेनाके इतर मनुष्योंको राजा व्यूहके संकेतोंको ऊंचे शब्दसे सुनवा दे ॥ १०० ॥

वामदक्षिणसंस्थोवामध्यस्थोवाग्रसंस्थितः ।
श्रुत्वातान्सैनिकैःकार्यमनुशिष्टंयथातथा ॥१॥

राजा वाम, दक्षिण वा मध्य वा अग्रभागमें स्थित रहे सेनाके मनुष्य उन संकेतोंको सुनकर यथार्थ रीतिसे उक्तसंकेतोंके अनुसार राजाकी शिक्षाके अनुसार कामको करै ॥ १ ॥

संमीलनंप्रसरणंपरिभ्रमणमेवच ।
आकुंचनंतथायानंप्रयाणमपयानकम् २ ॥

संमीलन (मिलना) प्रसरण (चलना) चारोंतरफ घूमना आकुंचन (सुकुडना) शनैः २ गमन अच्छी रीतिसे गमन अपयान (उलटा चलना) ॥ २ ॥

पर्यायेणचसांमुख्यंसमुत्थानंचलुंठनम् ।
संस्थानंचाष्टदलवच्चक्रवद्गोलतुल्यकम् ॥ ३ ॥

क्रमसे गमन, सन्मुख गमन, खडा होना, लोटना, आठ दलके समान टिकना अथवा चक्रकी गोलाईके तुल्य टिकना ॥ ३ ॥

सूचीतुल्यंशकटवदर्धचंद्रसमंतुवा ।
पृथग्भवनमल्पाल्पैःपर्यायैःपंक्तिवेशनम् ४

सुईके समान, शकट वा आधे चन्द्रके समान अथवा थोडी २ सनाको पृथक् करना, या क्रमसे पंक्तियोंमें बैठाना ॥ ४ ॥

शस्त्रास्त्रयोर्धारणंचसंधानंलक्ष्यभेदनम् ।
मोक्षणंचतथास्त्राणांशस्त्राणांपरिवातनम् ॥५॥

शस्त्र अस्त्रका धारण संधान (धनुषपर बाण लगाना) निशानेका भेदन अस्त्रोंका छोडना और शस्त्रोंका चलाना ॥ ५ ॥

द्राक्संधानंपुनःपातोग्रहोमोक्षःपुनःपुनः ।
स्वगूहनंप्रतीघातःशस्त्रास्त्रपदविक्रमैः ॥ ६ ॥

बाणोंका शीघ्र लगाना, छोडना, फिर ग्रहण करना, वारंवार फिर छोडना, शस्त्र, अस्त्र, पैरोंके उठावसे अपना गूहन (छिपना) और शत्रुको मारना ॥ ६ ॥

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिर्वापंक्तितोगमनंततः ।
तथाग्राक्भवनंचापसरणंतूपसर्जनम् ॥ ७ ॥

फिर दो २ तीन २ वा चार २ की पंक्ति बनाकर गमन करना और कभी सनासे आगे होना कभी पीछे कभी पृथक् होजाना ॥ ७ ॥

अपसृत्यास्त्रसिद्ध्यर्थमुपसृत्यविमोक्षणे ।
आक्भूत्वामोचयेदस्त्रंव्यूहस्तःसैनिकः सदा ८

अस्त्रोंकी सिद्धिके लिये पीछे हटना और अस्त्रोंके छोडनेके लिये आगे जाना, व्यूहमें टिकाहुआ युद्ध करनेवाला सैनिक सदैव अस्त्रको छोडे ॥ ८ ॥

आसीनःस्याद्विमुक्तास्त्रःप्राग्वाचापसरेत्पुनः ।
प्रागासीनंतूपसृतोदृष्ट्वास्वास्त्रंविमोचयेत् ॥९॥

अस्त्रके छोडनेपर खडा होजाय अथवा फिर सेनाके आगे चला जाय और आगे जाकर अपने सन्मुख खडे हुए शत्रुको देखकर अस्त्रको छोडे ॥ ९ ॥

एकैकशोद्विशोवापिसंघशोबोधितोयथा ।
क्रौंचानांखेगतिर्यादृक्पंक्तितःसंप्रजायते १०॥

जैसे आकाशमें क्रौञ्च पक्षियोंकी गति एक २ दो दो वा समूह २ से पंक्तीसेही होती है उसी प्रकार संकेतसे सेनाके मनुष्य चलैं ॥१०॥

तादृक्संचयेत्क्रौंचव्यूहंदेशबलंयथा ।
सूक्ष्मग्रीवंमध्यपुच्छंस्थूलपक्षंतुपंक्तितः ११ ॥

उसी प्रकार देश और बलके अनुसार क्रौंच व्यूहकी रचनाको सेनापति रचै जिसकी ग्रीवा सूक्ष्म होय पूंछ मध्यम और पक्ष मोटे हों ऐसी पंक्ति बनावै ॥ ११ ॥

बृहत्पक्षंमध्यगलपुच्छंश्येनंमुखेतनु ।
चतुष्पान्मकरोदीर्घस्थूलवक्त्रद्विरोष्ठकः १२

जिसके पक्ष बडे हों गला और पूंछ मध्यम हो मुख सूक्ष्म हो उसे सेनाव्यूह कहते हैं जिसके चौपायेका आकार हो लम्बा हो स्थूलमुख हो और दो ओष्ठ हों उस व्यूहको मकर कहते हैं ॥ १२ ॥

सूचीसूक्ष्ममुखोदीर्घसमदंडांतरंध्रयुक् ।
चक्रव्यूहश्चैकमार्गोह्यष्टधाकुंडलीकृतः १३ ॥

जिसका सूक्ष्म मुख हो, समान लम्बा विस्तार हो और बीचमें खाली हो उसे सूचीव्यूह कहते हैं जिसका एक मार्ग हो और आठ कुंडली हों उसे चक्रव्यूह कहते हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दिक्ष्वष्टपरिधिःसर्वतोभद्रसंज्ञकः ।
अमार्गश्चाष्टवलयीगोलकःसर्वतोमुखः ॥

जिसकी चारों दिशाओंमें आठ परिधि (फेर) हों उस व्यूहको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥१४॥

शकटःशकटाकारोव्यालोव्यालाकृतिःसदा ।
सैन्यमल्पंबृहद्वापिदृष्ट्वामार्गंरणस्थलम् १५

जिस सेनाका आकार शकट (गाडा) के समान हो उसे शकट और जिसका सर्पके समान हो उसे व्यालव्यूह कहते हैं सेनाकी अल्पता वा अधिकताको और रणभूमिको देखकर ॥ १५ ॥

व्यूहैर्व्यूहेनव्यूहाभ्यांसंकरेणापिकल्पयेत् ।
यंत्रास्त्रैःशत्रुसेनायाभेदोयेभ्यःप्रजायते १६

सेनाके अनेक,एक वा दोव्यूहोंकी वा संकर (इकट्ठी) की रचनाको करै, जहां यंत्रके अस्त्रोंसे शत्रुकी सेनाका भेद (पराजय) हो जाय ॥ १६ ॥

स्थलेभ्यस्तेषुसंतिष्ठेत्ससैन्योह्यासनंहितत् ।
तृणान्नजलसंभारायेचान्येशत्रुपोषकाः १७ ॥

ऐसे स्थलोंमें जो सेना सहित राजाका टिकना उसको आसन कहते हैं तृण, अन्न और जलके संचय और जो शत्रुके पोषण करनेवाले पदार्थ हैं ॥ १७ ॥

सम्यङ्निरुध्यतान्यत्नात्परितश्चिरमासनात् ।
विच्छिन्नविविधासारंप्रक्षीणयवसेंधनम् ॥ १८ ॥

उन सबको चारों तरफसे चिरकालतक आसनमें टिका हुआ राजा भलीप्रकार रोक और शत्रुके भार ढोनेके वीवध (बँहिगी) इनको और भुसई धनको और मार्गको नष्ट करदे ॥ १८ ॥

विगृह्यमाणप्रकृतिंकालेनैववशंनयेत् ।
अरेश्चविजिगीषोश्चविग्रहेहीयमानयोः ॥ १९ ॥

और शत्रुकी प्रजामें जिस समय राजाके संग लडाई देखे उस समय शत्रुको वशमें करले, जब शत्रु जीतनेवाला ये दोनों लडाईमें हीन होजायं ॥ १९ ॥

संधाययदवस्थानंसंधायासनमुच्यते ।
उच्छिद्यमानोबलिनानिरुपायप्रतिक्रियः ॥

उस समय मिलकर जो बैठ रहना, उसे संधाया आसन कहते हैं बलवाले शत्रुका उखाडा हुआ उपाय और प्रतीकार करनेमें असमर्थ राजा ॥ २० ॥

कुलोद्भवंसत्यमार्यमाश्रयेतबलोत्कटम् ।
विजिगीषोस्तुसाह्यार्थाःसुहृत्संबंधिबांधवाः २१

कुलीन, सत्यवादी, सज्जन और अपनेसे बलमें अधिकका आश्रय ले जीतनेवाले राजाकेही मित्र संबंधी और बांधव सहायक होते हैं ॥ २१ ॥

प्रदत्तभृतिकाह्यन्येभूपाअंशप्रकल्पिताः ।
सेवाश्रयस्तुकथितोदुर्गाणिचमहात्माभिः २२॥

जिनको राजाने वेतन दियाहो वा और कोई राजा, अथवा जिन्हें भूमिका भाग दियाहो उनका जो आश्रय लेना अथवा किलेमें बैठरहना उसीको महात्मा लोग आश्रय कहते हैं ॥ २२ ॥

अनिश्चितोपायकार्यःसमयानुचरोनृपः ।
द्वैधीभावेनवर्तेतकाकाक्षिवदलक्षितम् २३ ॥

जब राजाको समयके अनुसार अपने कार्यका उपाय निश्चित न हो उस समय काकके नेत्रसमान द्वैधीभावसे वर्ते और किसीको प्रतीत न हो ॥ २३ ॥

प्रदर्शयेदन्यकार्यमन्यमालंबयेच्च वा ।
सदुपायैश्चसन्मंत्रैःकार्यसिद्धिरथोद्यमैः ॥ २४ ॥

अन्य कामको दिखावे और अन्यको ग्रहण करै अच्छे उपाय, अच्छे मन्त्र और उद्यमोंसे कार्य्यकी सिद्धि ॥ २४ ॥

भवेदल्पजनस्यापिकिंपुनर्नृपतेर्नहि ।
उद्योगेनैवसिध्यंतिकार्याणिनमनोरथैः ॥ २५ ॥

तुच्छ जनकी भी होजाती है राजाकी तो क्यों न होगी उद्योगसे काय सिद्ध होते हैं मनोरथ करनेसे नहीं ॥ २५ ॥

नहिसुप्तमृगेंद्रस्यनिपतंतिगजामुखे ।
अयोभेद्यमुपायेनद्रवतामुपनीयते ॥ २६ ॥

क्योंकि सोते हुए सिंहके मुखमें हाथी नहीं गिरते जो पदार्थ लोहेसे विंधताहै वह भी उपायसे द्रव (पतला) होजाता है ॥ २६ ॥

लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारिवह्नेर्नियामकम् ।
उपायोपगृहीतेनतेनैतत्परिशोष्यते ॥ २७ ॥

यह बात जगतमें प्रसिद्ध है कि जलसे अग्नि शान्त होती है यदि उपाय किया जाय तो अग्निही जलको शोष लेती है ॥ २७ ॥

उपायेनपदंमूर्ध्निन्यस्यतेमत्तहस्तिनाम् ।
उपायेषूत्तमोभेदःषड्गुणेषुसमाश्रयः २८ ॥

उन्मत्त हाथियोंके मस्तकपर भी उपायसे चरण रक्खा जाता है सब उपायोंमें उत्तम गुण भेद है और६गुणोंमें उत्तम गुण समाश्रय है२८॥

कार्यौद्वौसर्वदातौतुनृपेणविजिगीषुणा ।
ताभ्यांविनानैवकुर्याद्युद्धंराजाकदाचन २९ ॥

इन दोनोंको विजयकी इच्छावाला राजा सदैव करे इन दोनोंके विना युद्धको कदाचित् भी न करै ॥ २९ ॥

परस्परंप्रातिकूल्यंरिपुसेनपमंत्रिणाम् ।
भवेद्यथातथाकुर्यात्तत्प्रजायाश्चतत्स्त्रियाः ३०॥

जिस प्रकार शत्रुका सेनापति और मन्त्री ये परस्पर प्रतिकूल (विरुद्ध) हो जायँ और शत्रुकी प्रजा तथा स्त्रियोंमें भी प्रतिकूलता हो ऐसा आचरण राजा करे ॥ ३० ॥

उपायान्षड्गुणान्वीक्ष्यशत्रोःस्वस्यापिसर्वदा ।
युद्धंप्राणात्ययेकुर्यात्सर्वस्वहरणेसति ॥ ३१ ॥

शत्रुके और अपने उपाय और ६ गुणोंको सदैव देखकर और सर्वस्वके हरने पर प्राणोंके नाश आनेपर युद्धको करे ॥ ३१ ॥

स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौचगोविनाशेपिब्राह्मणैः ।
प्राप्तेयुद्धेकचिन्नैवभवेदपिपराङ्मुखः ॥ ३२॥

यदि स्त्री ब्राह्मण इनको विपत्ति हो गौओंका नाश हो ब्राह्मणोंका परस्पर युद्ध हो ऐसे समयमें कभी भी युद्धसे न हटे ॥ ३२ ॥

युद्धमुत्सृज्ययोयातिसदेवैर्हन्यतेभृशम् ।
समोत्तमाधमैराजात्वाहूतःपालयन्प्रजाः ३३॥
ननिवर्तेतसंग्रामात्क्षात्रधर्ममनुस्मरन् ।

जो राजा युद्धको छोडकर भागता है उसको देवता सदैव नष्ट करते हैं प्रजाओंकी पालना करते हुए राजाको यदि युद्धके लिये समान उत्तम अधम बुलावे तो ॥ ३३ ॥ क्षत्रियोंके धर्मका स्मरण करता हुआ राजा संग्रामसे न हटे ॥

राजानंचाप्ययोद्धारंब्राह्मणंचाप्रवासिनम् ।३४
निगीलतिभूमिरेतौसर्पोबिलशयानिव ।

जो राजा होकर युद्ध न करे और ब्राह्मण होकर परदेशमें न जाय ॥ ३४ ॥ इन दोनोंको भूमि इस प्रकार ग्रस लेती है जैसे सांप बिलमें सोने वालों (चूहों) को ॥

ब्राह्मणस्यापिचापत्तौक्षत्रधर्मेणवर्ततः ॥ ३५ ॥
प्रशस्तंजीवितंलोकेक्षत्रंहिब्रह्मसंभवम् ।

ब्राह्मण आपत्तिमें जो क्षत्रियोंके धर्म (युद्धादि) से वर्तता है ॥ ३५ ॥ जगतमें उसका ही जीवन श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणसे ही क्षत्त्रियोंकी उत्पत्ति है ॥

अधर्मःक्षत्रियस्यैषयच्छय्यामरणंभवेत् ३६ ॥
विसृजञ्श्लेष्मपित्तानिकृपणंपरिदेवयन् ।

क्षत्रियका यह महान् अधर्म है कि शय्यापर पडे पडे मरन ॥ ३६ ॥ जो क्षत्री अपने देहमेंसे कफ और पित्तको गेरता और दीन वचन कहता हुआ ॥

अविक्षतेनदेहेनप्रलयंयोधिगच्छति ॥ ३७ ॥
क्षत्रियोनास्यतत्कर्मप्रशंसंतिपुराविदः ।

देहमें घाव आये विना जो मर जाता है ॥ ३७ ॥ पुरातन ऋषि उस क्षत्रीके इस कर्मकी प्रशंसा नहीं करते ॥

नगृहेमरणंशस्तंक्षत्रियाणांविनारणात् ॥३८॥
शौंडीराणामशौंडीरमधर्मंकृपणंचयत् ।

क्योंकि रणके विना क्षत्रियोंका घरमें मरना अच्छा नहीं ॥३८॥ और शत्रुमें कुशलोंके मध्यमें अकुशलता करनी अधर्म और कृपणता भी क्षत्रियोंको अच्छा नहीं ।

रणेषुकदनंकृत्वाज्ञातिभिःपरिवारितः ३९ ॥
शस्त्रास्त्रैःसुविनिर्भिन्नःक्षत्रियोवधमर्हति ।

रणमें शत्रुओंका कदन (हिंसा) करके अपनी जातिके परिवारसहित और शस्त्र और अस्त्रोंसे भली प्रकार विंधा हुआ क्षत्त्री मारनेके योग्य होता है ॥ ३९ ॥

आहवेषुमिथोन्योन्यंजिघांसंतोमहीक्षितः४०॥
युध्यमानाःपरंशक्त्यास्वर्गंयांत्यपराङ्मुखाः ।

संग्राममें परस्पर मारते हुए राजा शक्तिके अनुसार युद्धको करते और न हटते हुए स्वर्गमें जाते हैं ॥ ४० ॥

भर्तुरर्थेचयःशूरोविक्रमेद्वाहिनीमुखे ॥ ४१ ॥
भयान्नविनिवर्तेततस्यस्वर्गोह्यनंतकः ।

जो शूरवीर अपने स्वामीके लिये सेनाके मुखपर पराक्रम करता है ॥ ४१ ॥ और भयसे हटता नहीं उसको अनन्त स्वर्ग मिलता है ॥

आहवेनिहतंशूरंनशोचेतकदाचन ॥ ४२ ॥
निर्मुक्तःसर्वपापेभ्यःपूतोयातिसलोकताम् ।

संग्राममें मरे हुए शूरवीरको कदाचित् भी न सोचे ॥ ४२ ॥ क्योंकि सब पापोंसे निवृत्त और पवित्र हुआ वह अच्छे लोकोंमें जाता है ।

वराप्सरःसहस्त्राणिशूरमायोधनेहतम् ॥ ४३ ॥
त्वरमाणाःप्रधावंतिममभर्ताभवेदिति ।

और संग्राममें मरे हुए शूरवीरके लिये हजारों उत्तमोत्तम अप्सरा ॥ ४३ ॥ शीघ्रतासे दौडती हैं कि यह मेरा भर्त्ता हो ॥

मुनिभिर्दीर्घतपसाप्राप्यतेयत्पदंमहत् ॥ ४४ ॥
युद्धाभिमुखनिहतैःशूरैस्तद्द्रागवाप्यते ।

चिरकालतक तप करनेसे मुनिलोग जिस महान्पदको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ वही पद युद्धमें सन्मुख रहते हुए शूरवीरको शीघ्र मिलता है ।

एतत्तपश्चपुण्यंचधर्मश्चैवसनातनः ॥ ४५ ॥
चत्वारआश्रमास्तस्ययोयुद्धेनपलायते ।

यह ही तप यह ही पुण्य यह ही सनातन धर्म है ॥ ४५ ॥ और उसीके ४ आश्रम हैं जो युद्धमेंसे नहीं हटता ॥

नहिशौर्यात्परंकिंचित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ४६ ॥
शूरःसर्वंपालयतिशूरेसर्वंप्रतिष्ठितम् ।

तीनों लोकोंमें शूरवीरतासेही परे और कोई उत्तम नहीं है ॥४६॥ शूरवीर ही सबकी पालना करता है और शूरवीरकेही सब आश्रय रहते हैं ॥

चराणामचराअन्नमदं ्रादंष्ट्रिणामपि ४७ ॥
अपाण्यःपाणिमतामन्नंशूरस्यकातराः ॥

चरों (मनुष्य) के अन्न स्थावर और दाढवालोंके अन्न विना दाढवाले होते हैं॥४७॥ हाथवालोंके अन्न विना हाथवाले और शूरवीर के अन्न कायर होते हैं ॥

द्वाविमौपुरुषौलोकेसूर्यमंडलभेदिनौ ४८ ॥
परिव्राड्योगयुक्तोयोरणेचाभिमुखंहतः ।

ये दो पुरुष सूर्यमंडलको भेदन करनेवाले होते हैं कि ॥ ४८ ॥ योगसे युक्त सन्यास और संग्राममें सन्मुख मरा हुआ शूरवीर ॥

आत्मानंगोपयेच्छक्तोवधेनाप्याततायिनः ॥
सुविद्योब्राह्मणगुरुर्युयुधेश्रुतिदर्शनात् ।

और समर्थ मनुष्य आततायी (शस्त्रधारी) के मारनेसे अपने आत्माकी रक्षा करै ॥ ४९ ॥ क्योंकि वेदकी आज्ञासे विद्यावान और ब्राह्मण भी द्रोणाचार्यने युद्ध किया ॥

आततायित्वमापन्नोब्राह्मणःशूद्रवत्स्मृतः ॥
नाततायिवधेदोषोहंतुर्भवतिकश्चन ।

ब्राह्मण भी आततायी शूद्रके समान कहा है ॥ ५० ॥ आततायीके मारनेमें मारनेवालेको कोई भी दोष नहीं होता ॥

उद्यम्यशस्त्रमायातंभ्रूणमप्याततायिनम् ॥५१
निहत्यभ्रूणहानस्यादहत्वाभ्रूणहाभवेत् ।

जो आततायी शस्त्र उठाकर आता हो चाहे वह भ्रूण (बालक) भी हो ॥ ५१ ॥ उसको मारकर भ्रूणहत्या नहीं लगती और न मारे तो लगती है ॥

अपसर्पतियोयुद्धाज्जीवितार्थीनराधमः ॥५२॥
जीवन्नेवमृतःसोपिभुंक्तेराष्ट्रकृतंत्वघम् ।

जो मनुष्योंमें नीच जीनेके लिये युद्धसे हटता है ॥ ५२ ॥ वह जीवता हुआही मरा है और सब देशके पापको भोगता है ॥

मित्रंवास्वामिनंत्यक्त्वानिर्गच्छतिरणाच्चयः ॥
सोंतेनरकमायातिसजीवोनिंद्यतेऽखिलैः ।

जो मनुष्य मित्र वा अपने स्वामीको त्याग कर रणमेंसे भागता है ॥ ५३ ॥ जीते हुए उसकी सब निंदा करते हैं और अंत समयमें नरकको जाता है ॥

मित्रमापद्गतंदृष्ट्वासहायंनकरोतियः॥५४ ॥
अकीर्तिंलभतेसोऽत्रमृतोनरकमृच्छति ।

जो मनुष्य अपने मित्रकी आपत्ति देखकर सहायता नहीं करता ॥ ५४ ॥ वह इस लोकमें अकीर्तिको प्राप्त होता है और मरकर नरकमें जाता है ॥

विरुत्रंभाच्छरणंप्राप्तंयःसंत्यजतिदुर्मतिः॥५९॥
सयातिनरकेघोरेयावदिंद्राश्चतुर्दश।

जो दुर्मति मनुष्य विश्वाससे शरण आयेको त्यागता है॥ ५५॥ वह चौदह इन्द्रोंके राज्य तक घोर नरकमें जाता है॥

सुदुर्वृत्तंयदाक्षत्रंनाशयेयुस्तुब्राह्मणाः ५६॥
युद्धंकृत्वापिशस्त्रास्त्रैर्नतदापापभाजिनः।

यदि दुराचारी क्षत्रीको ब्राह्मण नष्ट करदें॥ ५६॥ उस समय शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्ध करकेभी ब्राह्मण पापके भागी नहीं होते॥

हीनंयदाक्षत्रकुलंनीचैर्लोकःप्रपीड्यते॥ ५७॥
तदापिब्राह्मणायुद्धेनाशयेयुस्तुतान्ध्रुवम्।

और जब क्षत्रियोंका कुल हीन (असमर्थ) हो जाय और नीच जगत्को पीडा देते हों॥ ५७॥ उस समयमेंभी युद्ध करके ब्राह्मण उन नीचोंको अवश्य नष्ट करें॥

उत्तमंमांत्रिकास्त्रेणनालिकास्त्रेणमध्यमम्॥
शस्त्रैःकनिष्ठयुद्धंतुबाहुयुद्धंततोऽधमम्।

मन्त्रके अस्त्रोंसे युद्धको उत्तम और तोपके अस्त्रोंसे युद्धको मध्यम॥ ५८॥ और शस्त्रोंके युद्धको कनिष्ठ और भुजाओंके युद्धको अधम॥

मंत्रेरितमहाशक्तिबाणाद्यैःशत्रुनाशनम्॥५९॥
मांत्रिकास्त्रेणतद्युद्धंसर्वयुद्धोत्तमंस्मृतम्।

मन्त्रसे फेंकी हुई महा शक्ति (बरछी) और बाणोंसे जो शत्रुका नाश॥ ५९॥ मन्त्रके अस्त्रोंसे किये हुए उस उद्यमको सब युद्धोंमें उत्तम कहते हैं॥

नालाग्निचूर्णसंयोगाल्लक्ष्येगोलनिपातनम् ६०॥
नालिकास्त्रेणतद्युद्धंमहाह्रासकरंरिपोः।

तोपमें दारूके संयोगसे जो लक्ष्य पर गोलेका गेरना॥ ६०॥ नालिक अस्त्रसे किया हुआ वह युद्ध शत्रुकी बडी हानि करता है॥

कुंतादिशस्त्रसंघातैरिपूणांनाशनंचयत्॥
शस्त्रयुद्धंतुतज्ज्ञेयंनालास्त्राऽभावतःसदा।

कुंत आदि शस्त्रोंके समूहसे जो शत्रुओंको नष्ट करना॥ ६१॥ नाल अस्त्रोंके न होने पर किये हुए युद्धको सदैव शस्त्रयुद्ध कहते हैं॥

कर्षणैःसंधिमर्माणांप्रातिलोमानुलोमतः॥
बंधनैर्घातनंशत्रोर्युक्त्यातद्बाहुयुद्धकम्।

उलटे पलटे शत्रुकी सन्धिके मर्मों को जो खींचना॥ ६२॥ और युक्तिसे बांध कर शत्रुको मारना उसे बाहुयुद्ध कहते हैं॥

नालास्त्राणिपुरस्कृत्यलघूनिचमहांतिच॥
तत्पृष्ठगांश्चपादातान्गजाश्वान्पार्श्वयोःस्थितान्।
कृत्वायुद्धंप्रारभेतभिन्नामात्यबलारिणा॥ ६४

छोटे और बडे नालास्त्रोंको आगे कर॥६३॥ उनके पीछे पदातियोंको और दोनों तरफ आसपासमें हाथी और घोडोंको करके ऐसे शत्रुके संग युद्धका प्रारंभ करै जिसके मंत्री फटगये हों॥ ६४॥

सांख्येनसुप्रपातेनपार्श्वाभ्यामपयानतः।
युद्धानुकूलभूमेस्तुयावल्लाभस्तथाविधम् ६५॥

सांख्य (मोरचा) से और भली प्रकार प्रपाते (फरें) से और पार्श्वोंकी तरफसे लौटनेसे युद्ध करै, जिस प्रकारकी युद्धके अनुकूल और जितनी भूमि मिले॥ ६५॥

सैन्यार्धांशेनप्रथमंसेनयोर्युद्धमीरितम्।
अमात्यगोपितैःपश्चादमात्यैःसहतद्भवेत्॥

उसमें सेनाके आधे २ भागसे दोनों सेनाओंका युद्ध कहा है और पीछेसे मंत्री की सेना वा मंत्रियोंके संग युद्ध होता है॥६६॥

नृपसंगोपितैःपश्चात्स्वतःप्राणात्ययेचतत्।
दीर्घाध्वनिपरिश्रांतंक्षुत्पिपासाहितश्रमम्॥

फिर राजाके सेवकोंके संग और पीछेसे प्राणोंका नाश होता दीखै तो स्वयं राजाकोही युद्ध करना कहा है, मार्गसे थकित हो अथवा क्षुधा और तृषासे युक्त हो॥ ६७॥

व्याधिदुर्भिक्षमरकैःपीडितंदस्युविद्रुतम्।
पंकपांसुजलस्कंधव्यस्तंश्वासातुरंतथा ६८॥

अथवा व्याधि, अकाल और मरीसे पीडित हो अथवा चोरोंकी भगायी हुई हो वा कीच और धूलका जल पीली हो जिसके स्कंध अस्त व्यस्त हों और जिसका वाहभी अच्छा न हो ॥ ६८ ॥

प्रसुप्तंभोजनेव्यग्रमभूमिष्ठमसंस्थितम् ।
घोराग्निभयवित्रस्तंवृष्टिवातसमाहतम् ॥ ६९ ॥

सोती हो अथवा भोजन करती हो, भूमिमें टिकी न हो, बिगडी हो, घोर अग्निसे दुखी हो अधिक वृष्टि वा पवनसे पीडित हो ॥६९॥

एवमादिषुजातेषुव्यसनेष्वसमाकुलम् ।
स्वसैन्यंसाधुरक्षेत्तुपरसैन्यंविनाशयेत् ॥७० ॥

इत्यादि पूर्वोक्त कारण होनेपर और व्यसनोंसे युक्त अपनी सेनाकी तो राजा रक्षा करै और पराई सेनाको नष्ट करे ॥ ७० ॥

उपायान्षड्गुणान्मंत्रंशत्रोःस्वस्यापिचिंतयेत् ।
धर्मयुद्धैःकूटयुद्धैर्हन्यादेवरिपुंसदा ॥ ७१ ॥

शत्रुके और अपने उपाय और छः गुणोंवाले मन्त्रीकी चिंता करै (विचारै) धर्मके अथवा छलके युद्धोंसे सदैव शत्रुको मारै ॥ ७१ ॥

यानेसपादभृत्यातुस्वभृत्यावर्धयेन्नृपः ।
स्वदेहंगोपयन्युद्धेचर्मणाकवचेनच ॥ ७२ ॥

यानके समयमें योद्धाओंकी भृति (नौकरी) को एक चौथाई बढावे और युद्धके समयमें चर्म (ढाल) और कवचसे अपने देहकीभी रक्षा करै ॥ ७२ ॥

पाययित्वामदंसम्यक्सैनिकाञ्छौर्यवर्धनम् ।
नालास्त्रेणचखड्गाद्यैःसैनिकैर्दारयेदरीन् ॥

सेनाके वीरोंकी जिसमें शूरवीरता बढे ऐसे मद (मदिरा) को पिलाकर नालास्त्र (तोप) से और खड्ग (तलवार) आदिसे सैनिकों पर शत्रुओंको मरवावे ॥ ७३ ॥

कुंतेनसादिंबाणेनरथिनंरथगोपिच ।
गजोगजेनयातव्यस्तुरगेणतुरंगमः ॥ ७४ ॥

भालावाला सवारके संमुख और रथवाला रथवानके, हाथी हाथीके और घोडा घोडेके सामने चले ॥ ७४ ॥

रथेनचरथोयाज्यःपत्तिनापत्तिरेवच ।
एकेनैकश्चशस्त्रेणशस्त्रमस्त्रेणवास्त्रकम् ७५ ॥

रथके संग रथको और पदातिके संग पदातिको एकके संग एकको और शस्त्रके संगशस्त्रको और अस्त्रके संग अस्त्रको मिलावे ॥ ७५ ॥

नचहन्यात्स्थलारूढंनक्लीबंनकृतांजलिम् ।
नमुक्तकेशमासीनंनतवास्मीतिवादिनम् ॥

स्थल (मैदान) में खडे और नपुंसक और कृतांजलि (हाथ जोडे हुए) को और जिसके केश खुले हों और जो स्वस्थ बैठा हो और जो तेराही मैं हू ऐसे कहता हो ॥ ७६ ॥

नसुप्तंनविसन्नाहंननग्नंननिरायुधम् ।
नयुध्यमानंपश्यंतयुध्यमानंपरेणच ॥ ७७ ॥

बहुत थकाहुआ कवचहीन नग्न आयुधरहित हो जो युद्ध करते हुए किसीको देखता हो अथवा दूसरेके संग युद्ध करता हो ७७ ॥

पिबंतंनचभुंजानमन्यकार्याकुलंचन ।
नभीतंनपरावृत्तंसतांधर्ममनुस्मरन् ७८ ॥

और जो जल पीता हो भोजन करता हो अथवा किसी अन्य कार्यमें व्याकुल हो भयभीत हो युद्धसे जो पराङ्मुख (हटा) होइतने शत्रुओंको सत्पुरुषोंके धर्मको स्मरण करता हुआ राजा कभी न मारे ॥ ७८ ॥

वृद्धोबालोनहंतव्योनैवस्त्रीकेवलोनृपः ।
यथायोग्यंहिसंयोज्यनिघ्नन्धर्मोनहीयते ॥

वृद्ध, बालक, स्त्री, अकेला राजा इनको भी न मारे योग्यसे योग्यको मिलाकर शत्रुके मारनेमें धर्म नष्ट नहीं होता ॥ ७९ ॥

धर्मयुद्धेतुकूटेवैनसंतिनियमाअमी ।
नयुद्धंकूटसदृशंनाशनंबलवद्रिपोः ॥ ८० ॥

ये नियम धर्मयुद्धमें हैं छलके युद्धमें कोई नियम नहीं है बलवान् शत्रुको नष्ट करनेवाले कूटयुद्धके समान और युद्ध नहीं है ॥ ८० ॥

रामकृष्णेंद्रादिदेवैःकूटमेवादृतंपुरा ।
कूटेननिहतोवालिर्यवनोनमुचिस्तथा ८१ ॥

पहले भी राम कृष्ण इन्द्र आदि देवताओंने कूट युद्धकाही आदर किया है बाली कालयवन नमुचि ये सब कूटयुद्धसेही मारे हैं॥८१॥

मुकुलवदनेनैवतथाकोमलयागिरा।
क्षुरधारेणमनसारिपोश्छिद्रंसुलक्षयेत् ॥८२॥

मुँहकी प्रफुल्लता और कोमलवानी छूरेकी धारा समान मन इनसे शत्रुके छिद्रको भली प्रकार देखे ॥ ८२ ॥

मंचासीनः शतानीकःसेनाकार्यंविचिंतयन्।
सदैवव्यूहसंकेतवाद्यशब्दांतवर्तिनः ॥८३॥

मंचपर बैठा हुआ सेनापति सेनाके कार्यको विचारे व्यूहके सकेतोंके जो बाजे उनके शब्दोंके अनुसार ॥ ८३ ॥

संचरेयुःसैनिकाश्चराजराष्ट्रहितैषिणः।
भेदितांशत्रुणादृष्ट्वास्वसेनांयातयेच्चताम् ॥

सैनिक राजा और देशके हितको चाहते हुए विचारें, शत्रुसे भेदन की हुई अपनी सेनाको देखकर यत्नसे रक्षा करे ॥ ८४॥

प्रत्यग्रकर्मणिकृतेयोधैर्दद्याद्धनंचतान्।
पारितोष्यंवाधिकारंक्रमेर्णार्हन्नृपःसदा ॥८५॥

सेनाके योद्धाओंमें यदि कोई योद्धा किसी भारी कामको करे तो उसको धन दे अथवा पारितोषिक वा उत्तम अधिकार क्रमसे सदैव दे ॥ ८५ ॥

जलान्नतृणसंरोधैःशत्रून्संपीडययत्नतः।
पुरस्ताद्विषमेदेशेपश्चाद्धन्यात्तुवेगवान् ८६ ॥

जल अन्न तृण इनके रोकनेसे यत्न पूर्वक शत्रुओंको दुःखी करके अपने आगे विषमदेशमें टिके शत्रुको पीछेसे सेनाका वेग बढाकर नष्ट करे ॥ ८६ ॥

कूटस्वर्णमहादानैर्भेदयित्वाद्विषद्बलम्।
नित्यविस्रंभसंसुप्तप्रजागरकृतश्रमम् ८७ ॥

झूठे सोनेका महान् दान देदेकर शत्रुकी सेनाको तोडे और प्रतिदिन विश्वाससे सोती और जागनेके श्रमसे युक्त ॥ ८७ ॥

विलोभ्यापिपरानीकमप्रमत्तोविनाशयेत्।
तत्सहायबलंनैवव्यसनात्प्रपिकाचित् ८८ ॥

शत्रुकी सेनाको विशेष लोभ देकर भी सावधान राजा नष्ट करै शत्रुके सहायककी सेनाको संकटके समयमें कदाचित् भी न मारे ॥ ८८ ॥

स्वसमीपतरंराज्यंनान्यप्रग्राहयेत्कचित्।
क्षणंयुद्धायसज्जेतक्षणंचापसरेत्पुनः ॥ ८९ ॥

जो राज्य अपने राज्यके अत्यन्त समीप हो उसको दूसरे राजाको कदाचित् न लेने दे क्षण मात्रमेंही युद्धकेलिये तैयार हो जाय और फिर क्षणमात्रमेंही युद्धसे हटजाय ॥ ८९ ॥

अकस्मान्निपतेद्दूराद्दस्युवत्परितः सदा।
रूप्यंहेमचकुप्यंचयोयज्जयतितस्यतत् ॥९०॥

और अचानक दूरसेही चोरके समान चारों तरफ सदैव प्रहार करे, चांदी सोना और धन ये सब जिस योधाने जीते हों उसकेही होते हैं ॥ ९० ॥

दद्यात्कार्यानुरूपंचहृष्टोयोधान्प्रहर्षयन्।
विजित्यैवरिपूनेवंसमादद्यात्करंतथा ॥ ९१ ॥

प्रसन्न हुआ योधाओंकी प्रसन्नताके लिये कामके अनुसार वस्तुओंको दे इसप्रकार राजा शत्रुओंको जीतकर उनसे करका ग्रहण करे ॥ ९१ ॥

राज्यांशंवासर्वराज्यंनंदयीततत: प्रजाः।
तूर्यमंगलघोषेणस्वकीयंपुरमाविशेत् ९२ ॥

वह कर जो राज्यका भाग अथवा सम्पूर्ण राज्य हो फिर शत्रुकी प्रजाको प्रसन्न करे और मंगलके बाजे बजाता हुआ अपने पुरमें प्रवेश करे ॥ ९२ ॥

तत्प्रजाःपुत्रवत्सर्वाःपालयीतात्मसात्कृताः ॥
नियोजयेन्मंत्रिगणमपरंमंत्रचिंतने ॥ ९३ ॥

उस शत्रुकी सम्पूर्ण प्रजाको अपने अधीन करके पुत्रके समान पालन करे और मन्त्रके विचारमें दूसरे मन्त्रियोंके समूहको नियुक्त करे ॥ ९३ ॥

देशेकालेचपात्रेचह्यादिमध्यावसानतः ।
भवेन्मंत्रफलंकीदृगुपायेनकथंत्विति । ९४ ॥

देश काल पात्र आदि मध्य अन्त इनमें किस प्रकार उपाय करनेसे मन्त्रका फल क्या होगा इसको ॥ ९४ ॥

मंत्र्याद्यधिकृतःकार्यंयुवराजायबोधयेत् ।
पश्चाद्राज्ञेतुतैःसाकंयुवराजानिवेदयेत् ९५ ॥

मन्त्री आदि अधिकारी इस कार्यको युवराजको कहैं फिर मन्त्री आदि सहित युवराज राजाके प्रति निवेदन करै ॥ ९५ ॥

राजासंशासयेद्यदादौयुवराजंततस्तुसः ।
युवराजोमंत्रिगणान्राजाग्रेतेधिकारिणः॥९६॥

राजा प्रथम युवराजको शिक्षा दे फिर युवराज मन्त्री आदि समूहको शिक्षित करै क्योंकि राजाके आगे वेही अधिकारी होते हैं ॥ ९६ ॥

सदसत्कर्मराजानंबोधयेद्धिपुरोहितः ।
ग्रामाद्बहिःसमीपेतुसैनिकान्धारयेत्सदा ९७॥

राजाके सत् असत कर्मका पुरोहित बोधन करै और ग्रामसे बाहर समीपमेंही सैनिकोंको सदैव टिकावे ॥ ९७ ॥

ग्राम्यसैनिकयोर्नस्यादुत्तमर्णाधमर्णता ।
सैनिकार्थंतुपण्यानिसैन्येसंधारयेत्पृथक्॥९८

ग्रामके निवासी और सैनिकोंका उत्तमर्ण अधमर्ण व्यवहार (लेन देन) न होने दे सनिकोंके लिये सेनामेंही पृथक् बाजार बनवावे ॥ ९८ ॥

नैकत्रवासयेत्सैन्यंवत्सरंतुकदाचन ।
सेनासहस्रंसज्जंस्यात्क्षणात्संशासयेत्तथा॥९९ ॥

एक स्थानपर एक वर्ष सेनाको कदाचित न बसावे जिस प्रकार हजारों सेना एक क्षणमेंही तयार होजायँ ऐसी शिक्षा दे ॥ ९९ ॥

संशासयेत्स्वनियमान्सैनिकानष्टमोदिने ।
चंडत्वमाततायित्वंराजकार्येविलंबनम् १२००॥

और आठवें दिन सनिकोंको अपने नियमकी शिक्षा दता रहै कि क्रोध आततायी राजाके कायम विलम्ब ॥ १२०० ॥

अनिष्टोपेक्षणंराज्ञःस्वधर्मपरिवर्जनम् ।
त्यजंतुसैनिकानित्यंसंलापमपिवापरैः१२०१

राजाकेअनिष्टकी उपेक्षा अपने धर्मका परित्याग शत्रुओंके संग सम्भाषण इन सबको सेनाके मनुष्य प्रतिदिन त्याग दें ॥ १२०१ ॥

नृपाज्ञयाविनाग्रामंनविशेयुःकदाचन ।
स्वाधिकारिगणस्यापिह्यपराधंदिशंतुनः ॥

राजाकी आज्ञाके विना कदाचित् ग्राममें न जायँ और अपने अधिकारी गणका जो अपराध हो उसे न कहैं॥ १२०२ ॥

मित्रभावेनवर्तध्वंस्वामिकृत्येसदाऽखिलाः ।
सूज्ज्वलानिचरक्षंतुशस्त्रास्त्रवसनानिचं ॥

और स्वामीके कार्य्यमें सम्पूर्ण सदैव मित्रभावसे वर्ताव करैं । अपने शस्त्र अस्त्र और वस्त्रोंको उज्ज्वल रक्खें और रक्षा करैं ॥ ३ ॥

अन्नंजलंप्रस्थमात्रंपात्रंवह्वन्नसाधकम् ।
शासनादन्यथाचारान्विनेष्यामियमालयम्४ ॥

अन्न और जल ये प्रस्थभर और जिसमें बहुत अन्न आजाय ऐसा पात्र हो जो मेरी शिक्षाका भंग करेगा उसे यमराजके स्थानपर पहुँचाऊंगा ॥ ४ ॥

भेदयित्वारिपुधनंगृहीत्वादर्शयंतुमाम् ।
सैनिकैरभ्यसेन्नित्यंव्यूहाद्यनुकृतिंनृपः ॥ ५ ॥

भेदन किये हुए शत्रुके धनको हमें दिखाओ राजा भी सैनिकोंके संग सेनाके व्यूहोंका प्रतिदिन अभ्यास करै ॥ ५ ॥

तथाऽयनेऽयनेलक्ष्मस्त्रपातैर्विभेदयेत् ।
सायंप्रातःसैनिकानांकुर्यात्संगणनंनृपः ६ ॥

तिसी प्रकार अयन २ (मौके २) पर अस्त्रोंको फेंककर लक्ष्यको बींधै और सायंकाल और प्रातःकालके समय राजा सैनिकोंकी गिनती करै ॥ ६ ॥

जात्याकृतिवयोदेशग्रामवासान्विमृश्यच ।
कालंभृत्यवधिंदेयंदत्तंभृत्यस्यलेखयेत् ॥ ७ ॥

भृत्यकी जाति, आकार, अवस्था, देश,ग्राम को वास और समय भृतिकी अवधि दिया

हुआ और देने योग्य द्रव्य इन सबको लिखै ॥ ७ ॥

कतिदत्तंहिभृत्येभ्योवेतनेपारितोषिकम् ।
तत्प्राप्तिपत्रंगृह्णीयाद्दद्याद्वेतनपत्रकम् ॥ ८ ॥

वेतनमें भृत्योंको कितना पारितोषिक दिया उसकी प्राप्तिका पत्र (रसीद) ले, और वेतन (नौकरी) का पत्र उसको दे दे ॥ ८ ॥

सैनिकाःशिक्षितायेयेतेषुपूर्णाभृतिःस्मृता ।
व्यूहाभ्यासेनियुक्तायेतेष्वर्धांभृतिमावहेत् ९ ॥

जो सैनिक शिक्षित हैं उन २ की भृति (नौकरी) पूर्ण देनी कही है और जो सैनिक व्यूहके अभ्यासमें नियुक्त हैं उनको उनसे आधी भृतिको दे ॥ ९ ॥

असत्कर्त्राश्रितंसैन्यंनाशयेच्छत्रुयोगतः ।
नृपस्यासद्गुणरताःकेगुणद्वेषिणोनराः ॥१० ॥

शत्रुके योग (बहकाना) से जो सेना असत् कामको करै उसको नष्ट करै राजाकी बुराईमें कौन तत्पर हैं और कौन मनुष्य राजाके गुणोंका द्वेष करते हैं ॥ १० ॥

असद्गुणोदासीनाःकेहन्यात्तान्विमृशन्नृपः ।
सुखासक्तांस्त्यजेद्भृत्यान्गुणिनोपिनृपःसदा ११

कौन असद्गुणी है और कौन उदासीन हैं उन सबको विचार २ कर राजा नष्ट करै, जो भृत्य सुखमें आसक्त हों वे चाहै गुणवानभी हों तथापि राजा उनको सदैव त्याग दे ॥११॥

सुस्वांतलोकविश्वस्तायोज्यास्स्वंतःपुरादिषु ।
धार्याःसुस्वांतविश्वस्ताधनादिव्ययकर्मणि१२

भली प्रकार स्वयं जांचे और जगत्में विश्वास वाले जो भृत्य उनको अन्तःपुर (रनवास) में नियत करै और भलीप्रकार स्वयं जिनका विश्वास कर लिया हो उनको धनके व्यय (खर्च) करनेमें नियुक्त करै ॥ १२ ॥

तथाहिलोकोविश्वस्तोबाह्यकृत्येनियुज्यते ।
अन्यथायोजितास्तेतुपरिवादायकेवलम् १३ ॥

इसी प्रकार जगत्के विश्वासीको बाहिरके कृत्यमें नियुक्त करै यदि इन पूर्वोक्तोंको अन्यथा नियुक्त करै तो केवल अपयशके लियेही होते हैं ॥ १३ ॥

शत्रुसंबंधिनोयेयेभिन्नामंत्रिगणादयः ।
नृपदुर्गुणतोनित्यंहृतमानगुणाधिकाः १४ ॥

जो २ भृत्य शत्रुके संबंधी हों और जो २ मंत्रियोंके भिन्न गण (फटे) हों राजाके दुष्ट गुणोंसे गुणोंमें अधिक भी उनके मान(सत्कार) को हरले ॥ १४ ॥

स्वकार्यसाधकायेतुसुभृत्यापोषयेच्चतान् ।
लोभेनासेवनाद्भिन्नास्तेष्वर्धांभृतिमावहेत् ॥

जो अच्छे भृत्य अपने कार्यके साधक हों उनका पोषण करै जो लोभसे और सेवा करनेसे भिन्न (विमुख) हों उनको आधी भृति दे ॥ १५॥

शत्रुत्यक्तान्सुगुणिनःसुभृत्यान्पालयेन्नृपः ।
परराष्ट्रेहृतेदद्याद्भृतिंभिन्नावधिंतथा ॥१६ ॥

जिन अच्छे गुणवालोंको शत्रुने त्याग दिया हो उनकी अच्छी भृति देकर पालना करै जिस समय पराया देश लिया जाय उससमय भिन्नावधि(भत्ता)और भृति उसको दे ॥१६॥

दद्यादर्धंतस्यपुत्रेस्त्रियैपादमितंकिल ।
हृतराज्यस्यपुत्रादौसद्गुणेपादसंमितम् ॥

और उसके पुत्रको आधी और उसकी स्त्रीको चौथाई दें, जिसका राज्य हरा हो अच्छे गुणी उसके पुत्र आदिको चौथाई राज्य दे ॥ १७ ॥

दद्याद्वातद्राज्यतस्तुद्वात्रिंशांशंप्रकल्पयेत् ।
हृतराज्यस्यनिचितंकोशंभोगार्थमाहरेत्॥ १८॥

अथवा उसके राज्यमेंसे बत्तीसवां भाग और जिसका राज्य हरा हो उसके संचित कोश (खज़ाना) को भोगनेके लिये ले आवे ॥ १८ ॥

कौसीदंवातद्धनस्यपूर्वोक्तार्धंप्रकल्पयेत् ।
तद्धनंद्विगुणंयावन्नतदूर्ध्वंकदाचन ॥ १९ ॥

अथवा उसके धनमेंसे आधे धनको व्याज पूर्वोक्तसे आधा द्रव्य दे परन्तु इतनेही दे जबतक उसके धनसे दूना व्याज पहुँचे फिर उसके पीछे कदाचित् न दे ॥ १९ ॥

स्वमहत्त्वद्योतनार्थंहृतराज्यान्प्रपालयेत् ।
आक्रमानैर्यदि सद्वृत्तान्दुर्वृत्तांस्तु प्रपीडयेत् ॥

अपनी बडाईके जतानके लिये जिनका राज्य हराहो उनकीभी पालना करै यदि वे मान आदिसे पहिले सदाचारी हों यदि दुराचारी होंय तो पीडित करै ॥ २० ॥

अष्टधा दशधा वापि कुर्यात् द्वादशधापि वा ।
यामिकार्थमहोरात्रं यामिकान्वीक्ष्य नान्यथा ॥

आठ वा दश, अथवा बारह यामिकों (पहरेदार) देखकर यामिक (पहरा) के लिये रातदिनमें नियत करै ॥ २१ ॥

आदौ प्रकल्पितानंशान्भजेयुर्यामिकास्तथा ।
आद्यः पुनस्त्वंतिमांशः स्वपूर्वांशं ततोपरे ॥ २२ ॥

नियत होनेके समय जितना भाग पहरेके लिये नियत हुआ हो उसकी सब यामिक पालना करैं, पहिले भागको पहिला उससे अगले भागको दूसरा और अपनेसे पूर्व अंशको वे ल जो अन्य हैं ॥ २२ ॥

पुनर्वा योजयेत्तद्वदाद्यं त्वंत्यं चांतिमं ततः ।
स्वपूर्वांशं द्वितीये ह्नि द्वितीयादिः क्रमागतम् ॥

अथवा फिर (बदली) अन्त्य (पिछला) को आद्य समयमें और आद्यको अन्त्य समयमें दूसरे दिन अपने पूर्व अंशमें द्वितीय आदि क्रमसे नियत करै ॥ २३ ॥

चतुर्भ्यस्त्वधिकान्नित्यं यामिकान्योजयेद्दिने ।
युगपद्योजयेद्दृष्ट्वा बहून्वा कार्यगौरवम् ॥ २४ ॥

एक दिनमें चारसे अधिक यामिकोंको सदैव नियत करै और कार्यका गौरव (भारी) देखकर एक वारही बहुत यामिकोंको नियत करै ॥ २४ ॥

चतुरूनान्यामिकांस्तु कदा नैव नियोजयेत् ।
यद्रक्ष्यमुपदेक्ष्यं यत्तद्देश्यं यामिकाय तत् ॥ २५ ॥

और चारसे कम यामिकोंको तो कदाचित भी नियुक्त न करै, जिसकी रक्षा करनी हो अथवा जो उपदेशके योग्य हो उसे यामिकों को बताय दे ॥ २५ ॥

तत्समक्षं हि सर्वं स्याद्यामिकोपि च तत्तथा ।
कीलकोष्ठे तु स्वर्णादि रक्षेन्नियमितावधि ॥ २६ ॥

उसीके सामने सब हो और यामिक भी उसे उसी प्रकार करै और जिसमें कील लगी हो ऐसे कोठेमें नियमसे स्वर्ण आदिकी रक्षा करै ॥ २६ ॥

स्वांशांते दर्शयेदन्ययामिकं तु यथार्थकम् ।
क्षणे क्षणे यामिकानां कार्यं दूरात्सुबोधनम् २७ ॥

पहिला यामिक अपने भागके अन्तमें दूसरे यामिकको यथार्थ रीतिसे दिखादे, क्षण २ में यामिकोंके कार्यको दूरसेही समझा दे ॥ २७ ॥

सत्कृतान्नियमान्सर्वान्यदा संपालयेन्नृपः ।
तदैव नृपतिः पूज्यो भवेत्सर्वेषु नान्यथा ॥ २८ ॥

जब राजा अपने किये हुए सब नियमोंकी पालना करता है तभी राजा सब मनुष्योंके बीचमें पूजा (बडाई) के योग्य होता है अन्यथा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्यास्ति नियतं कर्म नियतः सद्ग्रहो यदि ।
नियतोऽसद्ग्रहत्यागो नृपत्वं सोश्नुते चिरम् २९

जिस राजाका काम नियत है और जिसका आग्रह भी अच्छा ही नियत है और असत (बुरा) आग्रहका त्यागभी नियत है वही राजा चिरकालतक राज्यको भोगता है ॥ २९ ॥

यस्यानियमितं कर्म साधुत्वं वचनं त्वपि ।
सदैव कुटिलः स स्तु स्वपदाद्राग्विनश्यति ॥ ३० ॥

जिस राजाके कामका नियम नहीं उसके चाहै वचन अच्छे भी हों तो भी वह सदैव कुटिल है और वह अपने पद (राजगद्दी) से शीघ्रही पतित (गिरना) होता है ॥ ३० ॥

नापि व्याघ्रगजाः शक्ता मृगेंद्रं शासितुं यथा ।
न तथा मंत्रिणः सर्वे नृपं स्वच्छंदगामिनम् ३१ ॥

जसे भिडा और हाथी सिंहको शिक्षा देने के लिये समर्थ नहीं होते तिसीप्रका

अधिपोंके गण स्वच्छंदचारी राजाको शिक्षा नहीं दे सकते ॥ ३१ ॥

निर्मृताधिकृतास्तेननिःसारत्वंहितेष्वतः ।
गजोनिबध्यतेनैवतूलभारसहस्रकैः ॥ ३२ ॥

वे मंत्री राजानेही पाले हैं और राजानेही उनको अधिकार दिया है इससे उनमें सब (दृढता) नहीं होता रूईके सहस्रों भारोंसेभी हाथी नहीं बांधा जा सकता ॥ ३२ ॥

उद्धर्तुंद्रागगजः शक्तःपंकलग्नंगजबली ।
नीतिभ्रष्टनृपंत्वन्यनृपउद्धारणक्षमः ॥ ३३ ॥

और बलवान् हाथी पंक (कीच) में फसे हुए दूसरे हाथीको जैसे शीघ्रही उद्धार कर सकता है इसी प्रकार नीतिसे भ्रष्ट (हीन) राजाकोभी अन्य राजा उद्धार करनेको समर्थ होता है ॥ ३३ ॥

बलवन्नृपभृत्येऽल्पेऽपिश्रीस्तेजोयथाभवेत् ।
तथानहीननृपतौतन्मंत्रिष्वपिनोतथा ॥३४ ॥

बलवान् राजाके पीछे भी भृत्यमें जैसे लक्ष्मी और तेज होता है वैसा तेजहीन राजामें और उसके मन्त्रियोंमें भी नहीं होता ॥३४॥

बहूनामैकमत्यंहिनृपतेर्बलवत्तरम् ।
बहुसूत्रकृतोरज्जुःसिंहाद्याकर्षणक्षमः ॥३५ ॥

बहुत मन्त्री आदिकी जो एकमति वही राजाका अधिक बल है क्योंकि बहुतसे सूतोंकी बनाई हुई रज्जु (रस्सी) सिंह आदिकोभी खींचनेमें समर्थ होती है ॥ ३५ ॥

हीनराज्योरिपोर्भृत्योनसैन्यंधारयेद्बहु ।
कोशवृद्धिंसदाकुर्यात्स्वपुत्राद्यभिवृद्धये ३६॥

जिसका राज्य छीन गया हो और शत्रुकी सेवा करता हो ऐसा राजा अधिक सेनाको न रक्खे और राजा अपने पुत्र आदिकी वृद्धिके लिये कोश (खजाना) की वृद्धि सदैव करै ॥ ३६ ॥

क्षुधयानिद्रयासर्वमशनंशयनंशुभम् ।
भवेद्यथातथाकुर्यादन्यथाशुदरिद्रकृत् ३७ ॥
दिशानयाव्ययंकुर्यान्नृपोनित्यंनचान्यथा ।

क्षुधा होनेपर भोजन और निद्राके आनेपर भलीप्रकार शयन जैसे होय तैसेही करै इससे जो अन्यथा करता है वह शीघ्रही दरिद्री होता है ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार राजा सदा व्यय (खर्च) को करै अन्यथा न करै ॥

धर्मनीतिविहीनायेदुर्बलाअपिवैनृपाः ३८ ॥
सुधर्मबलयुग्राज्ञादंड्यास्तेचौरवत्सदा ।

जो दुर्बल राजा धर्म और नीतिसे हीन हैं ॥ ३८ ॥ उन सबको उत्तम बल और धर्मसे युक्त राजा सदैव चौरके समान दंडदे ॥

सर्वधर्मावनान्नीचनृपोपिश्रेष्ठतामियात् ३९
उत्तमोपिनृपोधर्मनाशनान्नीचतामियात् ।

सबके धर्मकी रक्षा करनेसे नीच राजाभी श्रेष्ठ होजाता है ॥ ३९ ॥ और उत्तम भी राजा सबके धर्म नाश करनेसे नीचताको प्राप्त होता है।

धर्माधर्मप्रवृत्तौतुनृपएवहिकारणम् ॥ ४० ॥
सहिश्रेष्ठतमोलोकेनृपत्वंयःसमाप्नुयात् ।

क्योंकि धर्म और अधर्मकी प्रवृत्तिमें राजा ही कारण होता है ॥ ४० ॥ वही जगत्में अत्यन्त श्रेष्ठ है जो राज्यको प्राप्त होता है ॥

मन्वाद्यैरादृतोयोर्थस्तदर्थोभार्गवेणवै॥ ४१ ॥
द्वाविंशतिशतंश्लोकानीतिसारेप्रकीर्तिताः ॥

जो अर्थ मनु आदिने मानेहैं वेही अर्थ शुक्राचार्यने माने हैं ॥ ४१ ॥ इस नीति सारमें २२०० बाईससो श्लोक कहे हैं ॥

शुक्रोक्तनीतिसारंयाश्चिंतयेदनिशंनृपः ४२ ॥
व्यवहारधुरंवोढुंसशक्तोनृपतिर्भवेत् ।

शुक्रके कहे हुए इस नीतिसारको जो राजा रात दिन चिन्ता (विचार) करता है ॥ ४२ ॥ वही राजा व्यवहारके भार उठानेमें समर्थ होता है ॥

नकवेःसदृशीनीतिस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ४३ ॥
काव्यैवनीतिरन्यातुकुनीतिर्व्यवहारिणाम् ।

शुक्रनीतिके समान इतर कोई नीति तीनों लोकोंमें नहीं है ॥ ४३ ॥ व्यवहारी मनु-

क्योंके लिये शुक्रकी नीतिही है और सब कुनीति हैं ॥

नाश्रयंतिचयेनीतिंमंदभाग्यास्तुतेनृपाः ४४ ॥
कातर्याद्धनलोभाद्वास्युर्वैनरकभाजनाः ।
इतिशुक्रनीतौचतुर्थेमिश्रप्रकरणं समाप्तम् ।

जो राजा इस नीतिका आश्रय नहीं लेते वे मन्दभागी जानने ॥४४॥ और कायर पन और धनके लोभसे वे नरकगामी होते हैं । शुक्रनीतिमें यह चौथा मिश्र प्रकरण समाप्त हुआ४५॥

नीतिशेषंखिलेवक्ष्येह्यखिलेशास्त्रसंमतम् ।
सप्तांगानांतुराज्यस्यहितंसर्वजनेषुवै ॥ ४६ ॥

अब सब शास्त्रोंका सम्मत और सम्पूर्ण नीतिका जो शेष है उसको कहता हूं । जिस प्रकार सब मनुष्योंका हित हो उसी प्रकार राज्यके सातों अङ्गोंको रक्खे ॥ ४६ ॥

शतसंवत्सरांतेपिकारंष्याम्यात्मसाद्रिपुम् ।
इतिसंचिंत्यमनसारिपोश्छिद्राणिलक्षयेत् ॥

और मनसे यह विचार कर शत्रुके छिद्रोंको देखै कि १०० सौ वर्षके अततक भी शत्रुको अपने आधीन (वशमें) करूंगा ॥ ४७ ॥

राष्ट्रभृत्यविशंकीस्याद्धीनमंत्रबलोरिपुः ।
युक्त्यातथाप्रकुर्वीतसुमंत्रबलयुक्स्वयम् ॥

श्रेष्ठ मंत्र और बलसे युक्त राजा युक्तिपूर्वक ऐसा यत्न करै कि शत्रुको राज्य और भृत्योंकी शंका हो और मंत्र तथा सेनासे रहित हो जाय ॥ ४८ ॥

सेवयावावणिग्वृत्त्यारिपुराष्ट्रंविमृश्यच ।
दत्ताभयंसावधानोव्यसनासक्तचेतसम् ४९ ॥

सेवा वा व्यापारकी वृत्तिसे शत्रुके देशको विचार (देख) कर और शत्रुको अभयदान देकर सावधान हुआ राजा व्यसनमें लगा है चित्त जिसका ऐसे शत्रुको ॥ ४९ ॥

मार्जारलुब्धकइवसंतिष्ठन्नाशयेदरिम् ।
सेनांयुद्धेनियुंजीतप्रत्यनीकविनाशिनीम् ५०॥

इस प्रकार टिककर शत्रुको नष्ट करै जैसे बिलावको लुब्धक (व्याध) और युद्धमें ऐसी सेनाको नियुक्त करै जो शत्रुकी सेनाको नष्ट कर सके ॥ ५० ॥

नयुंज्याद्रिपुराष्ट्रस्थांमिथःस्वद्वेषिणींत्रच ।
ननाशयेत्स्वसेनांतुसहसायुद्धकामुकः ५१ ॥

शत्रुके देशकी और परस्पर वैर करनेवाली सेनाको नियुक्त न करै युद्धके इच्छावाला राजा विना विचारे अपनी सेनाको नष्ट न करै ॥ ५१ ॥

दानमानैर्विंयुक्तोपिनभृत्योभूपतिंत्यजेत् ।
समयेशत्रुसान्नैवगच्छेज्जीवधनाशया ॥५२॥

दान और मानसे हीनभी भृत्य अपने राजाको न त्यागै जीव और धनकी इच्छासे समय पर शत्रुके आधीन न होवे ॥ ५२ ॥

मेघोदकैस्तुयापुष्टिःसाकिंनद्यादिवारितः ।
प्रजापुष्टिर्नृपद्रव्यैस्तथाकिंधनिनांधनात् ५३॥

जो पुष्टि मेघके जलोंसे होती है वह पुष्टि क्या नदी आदिके जलसे होती है प्रजाकी जो पुष्टि राजाके द्रव्योंसे होती है क्या वह पुष्टि धनियोंके धनसे होतीहै ? ॥ ५३ ॥

दर्शयन्मार्दवंनित्यंमहावीर्यबलोपिच ।
रिपुराष्ट्रंप्रविश्यादौतत्कार्यसाधकोभवेत् ५४ ॥

महान् वीर्य और बलवालाभी राजा प्रतिदिन नम्रता दिखाता हुआ प्रथम शत्रुके राज्यमें प्रविष्ट होकर शत्रुके कार्योंका साधक हो जाय ॥ ५४ ॥

संजातबद्धमूलस्तुतद्राज्यमखिलंहरेत् ।
अथतद्विष्टदायादान्सेनपानंशदानतः ॥५५॥

और जब वह मूल (जड) बध जाय तो उसके सब राज्यको हरले फिर शत्रुके वैरी और दायाद (हिस्सेदार) और सेनापति इनको वह कुछ भाग देनेसे ॥ ५५ ॥

तद्राज्यस्यवशीकुर्यान्मूलमुन्मूलयन्बली
तरोःसंक्षीणमूलस्यशाखाःशुष्यंतिवैयथा५६॥

वशमें करै जो शत्रुके राज्यकाही हो और बलसे शत्रुके मूलको उखाड दे जैसे जिसका मूल कटगया हो उस वृक्षके शाखा सूख जाती हैं ॥ ५६ ॥

सद्यः केचिच्च कालेन सेनपाद्याः पतिं विना ।
राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कंधाश्च मंत्रिणः ५७

इसी प्रकार सेनापति आदि संपूर्ण कोई शीघ्र और समय पाकर राजाके विना सूख जाते हैं, राज्यरूपी वृक्षका मूल राजा होता है और मन्त्री स्कन्ध (डाले) होते हैं॥ ५७॥

शाखाः सेनाधिपाः सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च ।
प्रजाः फलानि भूभागा बीजं भूमिः प्रकल्पिता ॥

सेनाके अधिप शाखा, सेना पत्ते, प्रजा फूल और पृथिवीके भाग फल, भूमि बीज होती है॥ ५८॥

विश्वस्तान्यनृपस्यापि न विश्वासं समाप्नुयात् ।
नैकांते न गृहे तस्य गच्छेदल्पसहायवान् ५९ ॥

विश्वासके योग्यभी दूसरे राजाका विश्वास कदाचित् न करै और अल्प सहायक होने पर एकांत समयमें शत्रुके घरमें न जाय॥५९॥

स्ववेषरूपसदृशान्निकटे रक्षयेत्सदा ।
विशिष्टचिह्नगुप्तः स्यात्समयेऽन्यादृशो भवेत् ॥

अपने समान वेष और रूपवाले भृत्योंकी अपने निकट सदैव रक्षा करै और विशिष्ट (श्रेष्ठ) चिह्नसे अपनी रक्षा करै और युद्ध आदिके समय अन्य अन्य रूपोंको धारण करै॥ ६०॥

वेश्याभिश्च नटैर्मद्यैर्गायकैर्मोहयेदरिम् ।
सुवस्त्राभरणैर्नैव नकुटुंबेन संयुतः ॥ ६१ ॥

शत्रुको वेश्या, नट, मदिरा, गानेवाले इनसे मोहित करै उत्तम वस्त्र, आभूषण और कुटुंब इनको लेकर युद्धमें कदाचित् प्रवृत्त न हो॥६१॥

विशिष्टचिह्नितोभीतो युद्धं गच्छेन्नवैकाचित्।
क्षणं नासावधानः स्याद्भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु ६२॥

विशिष्ट चिह्न (राजा) को धारण किये और डरता हुआ युद्धमें कदाचितभी न जाय, और भृत्य स्त्री पुत्र और शत्रु इनमें क्षण मात्रभी असावधानी न करै॥ ६२॥

जीवन्सन्स्वामितां पुत्रे न दद्यात्प्याखिलां क्वचित् ।
स्वभावसद्गुणेयस्मान्महाऽनर्थमदावहा ॥६३॥

जीवता हुआ राजा अपनी स्वामिता पूरी २ अपने पुत्रको कदाचित न दे क्योंकि स्वभावसे सद्गुणोंको भी स्वामिता महान् अनर्थ और मदको देती है॥ ६३॥

विष्णवाद्यैरपि नो दत्तास्वपुत्रे स्वाधिकारता ।
स्वायुषः स्वल्पशेषे तु सत्पुत्रे स्वाम्यमादिशेत् ॥

विष्णु आदिकोंनेभी अपना अधिकार अपने पुत्रको नहीं दिया किन्तु जब अपनी अवस्था अल्प रहै उस समय सज्जन पुत्रको अपनी स्वामिता दे॥ ६४॥

नाराजकं क्षणमपि राष्ट्रं धर्तुं क्षमाः किल ।
युवराजादयः स्वाम्यलोभं चापलगौरवात् ६५॥

युवराज आदि विना राजाके क्षणमात्रभी राष्ट्र(देश)के धारण (पालन) करनेको समर्थ नहीं होते और स्वामिताका लोभ, चपलता गौरव (बडाई) से॥ ६५॥

प्राप्योत्तमं पदं पुत्रः सुनीत्या पालयन्प्रजाः ।
पूर्वामात्येषु पितृवद्गौरवं संप्रधारयेत् ॥ ६६ ॥

पुत्र उत्तम पदको प्राप्त होकर और उत्तम नीतिसे प्रजाओंका पालन करता हुआ पहिले मंत्रियोंका पूर्वके समान गौरव (बडाई) माने॥ ६६॥

तस्यापि शासनं तैस्तु प्रधार्यं पूर्वतोधिकम् ।
युक्तं चेदन्यथा कार्यं निषेध्यं कालळंबनैः॥६७॥

और मंत्री आदिभी उसकी आज्ञाको पूर्वसे भी अधिक माने यदि अन्यथा करै तो काल विलंब आदिसे निषेध करैं॥ ६७॥

तदनीत्यानवर्तेयुस्तेन साकं धनाशया ।
वर्तते यदनीत्या ते तेन साकं पतंत्यरात् ॥ ६८ ॥

राजाकी अनीतिमें उसके संग मंत्री आदि धन लोभसे न वर्तें यदि वे अनीतिसे वर्ताव करैं तो राजाके संग शीघ्रही नरकमें जाते हैं॥ ६८॥

कुलभक्तांश्च यो द्वेष्टि नवीनं भजते जनम् ।
स गच्छेच्छत्रुसाद्राजा धनप्राणैर्वियुज्यति ६९॥

अपने कुलके भक्तों (पालेहुओं) से जो युवराज वैर करता है और नवीन जनको

सेवता है वह राजा शत्रुके आधीन हो जाता है और धन और प्राणोंसे वियुक्त हो जाता है ॥ ६९ ॥

गुणीसुनीतिर्नव्योपिपरिपाल्यस्तुपूर्ववत् ।
प्राचीनैःसहतंकार्येह्यनुभूयानियोजयेत् ७० ॥

गुणी नीतिका ज्ञाता नवीन जनको भी पूर्वके समान पालकर प्राचीन मंत्री आदिको के संग देखभालकर कार्यों में नियत करै ॥ ७० ॥

अतिमृदुस्तुतिनतिसेवादानप्रियोक्तिभिः ।
मायिकःसेव्यतेयावत्कार्यंनित्यंतुसाधुभिः ७१

अत्यन्त कोमल, स्तुति, नमन, सेवा, दान और प्रिय वचन इनसे जबतक मायावी सेवै तबतक उस कार्यको करै जिसे साधुजन कहैं ॥ ७१ ॥

प्रत्यक्षंवापरोक्षंवासत्यवाग्भिर्नृपोऽपिच ।
याथार्थ्यंतस्तयोरेहिगंतरंखंभुवोर्यथा ७२ ॥

प्रत्यक्ष (सामने) वा परोक्ष (पीछेसे) सत्य वाणियोंसे उनके इस प्रकार अन्तर (फरक) को राजाभी जान ले जैसे आकाश और भूमिका अन्तर होता है ॥ ७२ ॥

मायायाजनकाधूर्तजारचौरबहुश्रुताः ।
प्रतिष्ठितोयथाधूर्तोनतथातुबहुश्रुतः ॥ ७३ ॥

मायाके पैदा करनेवाले, धूर्त, जार, चौर और बहुश्रुत (जिसने बहुत बातें सुनी हों) ये होते हैं और जैसा मायावी प्रतिष्ठित धूर्त होता है ऐसा बहुश्रुत नहीं होता ॥ ७३ ॥

परस्वहरणेलोकेजारचौरौतुनिंदितौ ।
तावप्रत्यक्षंहरतःप्रत्यक्षंधूर्तएवहि ॥ ७४ ॥

जगतमें पराये धन हरनेवाले चोर और जार ये दोनों निन्दित कहे हैं परन्तु ये दोनों अप्रत्यक्ष (पीछे) हरते हैं धूर्त तो सामनेही धनको हरता है ॥ ७४ ॥

हितंत्वहितवच्चापिअहितंहितवत्सदा ।
धूर्ताःसंदर्शयित्वाऽज्ञंस्वकार्यंसाधयंतिते॥७५॥

धूर्तजन समीप हितको भी अहितके समान और अहितको हितके समान मूर्खको दर्शा कर अपने कार्यको सिद्ध करते हैं ॥ ७५ ॥

विस्रंभयित्वाचात्यर्थंमाययाघातयन्तिते ।
यस्यवाप्रियमन्विच्छेत्तस्यकुर्यात्सदाप्रियम् ॥

और वे मायासे अत्यन्त विश्वास देकर मार देते हैं, जिसके अप्रियकी इच्छा करै उसका सदैव प्रिय करै ॥ ७६ ॥

व्याधोमृगवधंकर्तुंगीतंगायतिसुस्वरम् ।
मायांविनामहाद्रव्यंद्राङ्नसंपाद्यतेजनैः॥७७॥

मृगोंका वध करता हुआ व्याध उत्तम स्वरसे गीत गाता है और मायाके विना मनुष्योंको अत्यन्त धन नहीं मिलता ॥ ७७ ॥

विनापरस्वहरणान्नकश्चित्स्यान्महाधनः ।
माययातुविनातद्धिनसाध्यंस्याद्यथेप्सितम् ॥

पराये धनके हरने विना कोई भी महाधनी नहीं होता और मायाके विना वह धन अपनी इच्छाके अनुसार मिलभी नहीं सकता ॥ ७८ ॥

स्वधर्मंपरमंमत्वापरस्वहरणंनृपाः ।
परस्परंमहायुद्धंकृत्वाप्राणांस्त्यजंत्यपि॥७९॥

पराये धनके हरनेको अपना परम धर्म मानकर राजा लोग परस्पर महायुद्ध करके प्राणोंको भी त्याग देते हैं ॥ ७९ ॥

राज्ञोयदिनपापंस्याद्दस्यूनामपिनोभवेत् ।
सर्वंपापंधर्मरूपंस्थितमाश्रयभेदतः ॥ ८० ॥

यदि राजाको पाप न होय तो चोरोंको भी न होना चाहिये इससे सम्पूर्ण पाप आश्रय (कर्ता) के भेदसे धर्मरूपसे स्थित हैं ॥ ८० ॥

बहुभिर्यस्तुतोधर्मोनिंदितोऽधर्मएवसः ।
धर्मतत्त्वंहिगहनंज्ञातुंकेनापिनोचितम् ॥८१॥

जिसकी बहुत जन स्तुति करैं वह धर्म और जिसकी निन्दा करैं वह अधर्मही है धर्मके गहन (गहरा) तत्त्वको कोई भी नहीं जान सकता ॥ ८१ ॥

प्रतिदानतपःसत्ययोगोदारिद्र्यकारिवह ।
धर्मार्थौयत्रनस्यातांतद्वाकामंनिरर्थकम् ॥८२॥

अत्यन्त दान देना, तप, सत्य बोलना ये सब इस जगत्में दरिद्रता करनेवाले हैं, जिस काममें धर्म वा अर्थ (धन) न हो वह निरर्थक (वृथा) है ॥ ८२ ॥

अर्थस्यपुरुषोदासोदासस्त्वर्थोनकस्यचित् ।
अतोर्थाययतेतैवसर्वदायत्नमास्थितः ॥ ८३ ॥

यह पुरुष अर्थका दास है और अर्थ किसी का भी दास नहीं है इससे यत्नमें तत्पर मनुष्य अर्थके लिये अवश्य यत्न करै ॥ ८३ ॥

अर्थाद्धर्मश्चकामश्चमोक्षश्चापिभवेन्नृणाम् ।
शस्त्रास्त्राभ्यांविनाशौर्यंगार्हस्थ्यंतुस्त्रियंविना ॥

अर्थसे धर्म काम और मोक्ष ये तीनों मनुष्यों को प्राप्त होते हैं शस्त्र और अस्त्रके विना शूर वीरता, और स्त्रीके विना गृहस्थ ॥ ८४ ॥

ऐकमत्यंविनायुद्धंकौशल्यंग्राहकंविना ।
दुःखायजायतेनित्यंसुसहायंविनाविपत् ॥ ८५ ॥

एक मतिके विना युद्ध और ग्राहक (करदान) के विना कुशलता और पदातियों के विना अच्छी सहायता ये सदा दुःखदायी ही होते हैं ॥ ८५ ॥

न विद्यतेतुविपदिसुसहायंसुहृत्समम् ।
लघोरप्यपमानस्तुमहावैरायजायते ॥ ८६ ॥

और विपत्तिके समय मित्रके समान दूसरा सहायक नहीं होता, तुच्छ मनुष्यका भी अपमान महान् वैरके लिये होता है ॥ ८६ ॥

दानंमानंसत्यशौर्यंमृदुताहिसुहृत्करम् ।
सर्वानापदिरहसिसमाहूयलघून्गुरून् ॥ ८७ ॥

दान, मान, सत्य, शूरता, मृदुता, (कोमल पना) मित्रका कार्य इन सबको आपत्तिके समय सब लघु गुरु (छोटे बडे) ओंको ॥ ८७ ॥

भ्रातॄन्बंधूंश्चभृत्यांश्चज्ञातीन्सभ्यान्पृथक्पृथक् ।
यथार्हंपूज्यविनतंस्वाभीष्टंयाचयेन्नृपः ॥

और भाई, बन्धु, भृत्य, ज्ञाति, सभासद इन सबको यथायोग्य पृथक् २ पूजा कर नम्र हुआ राजा अपने अभीष्ट (मनोरथ) को याचना करै ॥ ८८ ॥

आपदंप्रतरिष्यामोयूयंयुक्त्यावदिष्यथ ।
भवंतोममित्राणिभवत्सुनास्तिभृत्यता ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार आपत्तिसे पार हों वह युक्ति आप लोग कहो तुम मेरे मित्र हो और भृत्यपना तुममें नहीं है ॥ ८९ ॥

नभवत्सदृशास्त्वन्येसहायाःसंतिमेह्यतः ।
तृतीयांशंभृतेर्ग्राह्यमर्धंवाभोजनार्थकम् ९० ॥

जिससे तुम्हारे समान अन्य कोई मेरे सहायक नहीं हैं अब भोजनके लिये अपनी भृति (नोकरी) का तीसरा वा आधा भाग आप लोग ग्रहण करो ॥ ९० ॥

दास्याम्यापत्समुत्तीर्णःशेषंप्रत्युपकारवित् ।
भृतिंविनास्वामिकार्यंभृत्यःकुर्यात्समाष्टकम् ॥

इस आपत्तिसे पार होकर शेष भृतिको उपकारको जाननेवाला मैं दूंगा, अपने स्वामीके कामको भृतिके विना भी आठ वर्ष तक भृत्य करै ॥ ९१ ॥

षोडशाब्दंधनीयःस्यादितरोर्थानुरूपतः ।
निर्धनैरन्नवस्त्रंतुनृपाद्ग्राह्यंनचान्यथा ॥ ९२ ॥

जो भृत्य धनवान् हो वह सोलह वर्षतक करै और उससे इतर अपने धनके अनुसार करै और निर्धन भृत्य राजासे अन्न वस्त्रको ही ग्रहण करै अन्यथा न करै ॥ ९२ ॥

यतोभुक्तंसुखंसम्यक्तद्दुःखैर्दुःखितोनचेत् ।
विनिंदतिकृतघ्नस्तुस्वामीभृत्योन्यएववा ९३

जिससे भली प्रकार सुख भोगा हो उसके दुःखोंसे दुःखी न हो तो उसको स्वामी वा अन्य भृत्य यह निन्दा करते हैं कि यह कृतघ्न है ॥ ९३ ॥

सकृत्सुभुक्तंयस्यापितदर्थंजीवितंत्यजेत् ।
भृत्यःसएवसुश्लोकोनापत्तौस्वामिनंत्यजेत् ९४

जिसका एक वार भी खाया हो उसके लिये भी जीवित (प्राण) को त्याग दे वही भृत्य प्रशंसाके योग्य होता है जो आपत्तिके समय स्वामीको न त्यागे ॥ ९४ ॥

स्वामीसएवविज्ञेयोभृत्यार्थेजीवितंत्यजेत् ।
नरामसदृशोराजापृथिव्यांनीतिमानभूत् ॥९५

और स्वामी भी वही जानना जो भृत्यके लिये जीवितको त्याग दे, रामचन्द्रके समान कोई भी राजा पृथिवीमें नीतिवाला नहीं हुआ ॥ ९५ ॥

सुभृत्यतातुयन्नीत्यावानरैरपिस्वीकृता ।
अपिराष्ट्रविनाशायचोराणामेकचित्तता ॥ ९६

और उनकी श्रेष्ठ भृत्यता भी नीतिसे वानरोंने स्वीकार की जब देशके नष्ट करनेके लिये चोरोंका भी एक चित्त हो जाता है तो ॥ ९६॥

शक्ताभवेन्नकिंशत्रुनाशायनृपभृत्ययोः ।
नकूटनीतिरभवत्श्रीकृष्णसदृशोनृपः ॥९७॥

क्या स्वामी और भृत्यकी एकता शत्रुके नाशार्थ न होगी और कूट (झूठी) नीतिवाला राजा श्रीकृष्णचन्द्रके समान कोई नहीं हुआ ॥ ९७ ॥

अर्जुनात्ग्राहितास्वस्यसुभद्राभगिनछिलात् ।
नीतिमतांतुसायुक्तिर्याहिस्वश्रेयसेखिला ९८॥

अपनी बहिन भी सुभद्रा जिन्होंने छलसे अर्जुनको विवाह दी नीतिमान् राजाओंकी जो युक्ति है वही सब अपने कल्याणके लिये होती है ॥ ९८ ॥

नात्मसंगोपनेयुक्तिंचिन्तयेत्सपशोर्जडः ।
जारसंगोपनेछद्मसंश्रयंतिस्त्रियोऽपिच ॥९९ ॥

जो मनुष्य अपनी रक्षाकी युक्तिको न विचारै वह जड़ और पशु है स्त्री भी जार मनुष्यके छिपानेमें छल करती हैं ॥ ९९ ॥

युक्तिश्छलात्मिकाप्रायस्तथान्यायोजनात्मिका
यच्छद्मचारिभवर्ततेनच्छद्मसमाचरेत्१३००

और युक्ति प्रायः सब छलरूप होती है दूसरी युक्ति, योजन (मिलाप) रूप होती है जो मनुष्य छल करै उसके संग आप भी छल करे ॥ १३०० ॥

अन्यथाशीलनाशायमहतामपिजायते ।
अस्तिबुद्धिमतांश्रेणिर्नत्वेकोबुद्धिमानतः ॥

अन्यथा छल करना बड़ोंके भी शीलको नष्ट करता है और बुद्धिमान् मनुष्योंको भी श्रेणी (बहुत) होती है एक ही मनुष्य बुद्धिमान् नहीं होता ॥ १३०१ ॥

देशेकालेचपुरुषेनीतिंयुक्तिमनेकधाम् ।
कल्पयंतिचतद्विद्यांदृष्ट्वारुद्धांतुप्राक्तनाम्॥२॥

उस बुद्धिके ज्ञाता देश और कालके अनुसार अनेक प्रकारकी उन नीति और युक्तियों को देख कर कल्पना कर लेते हैं जो पुरानी हैं परन्तु छिपी हैं ॥ १३०२ ॥

मंत्रौषधिपृथग्वेषकालवागर्थसंश्रयात् ।
छद्मसंजनयंतीहतद्विद्याकुशलाजनाः ॥ ३ ॥

छलकी विद्यामें कुशल जन मन्त्र, औषध, पृथक् वेष, काल, वाणी अर्थ इनके आश्रयसे छलको पैदा कर लेते हैं ॥ ३ ॥

लोकोऽधिकारीप्रत्यक्षंविक्रीतंदत्तमेववा ।
वस्त्रभांडादिकंक्रीतंस्वचिह्नैरंकयेच्चिरम् ॥४ ॥

जगत्में जो जिसका अधिकारी है वह अपने बेचे और दिये वस्त्र पदार्थको भांड आदि सबके सामने अपने नामके चिह्नोंसे अंकित कर दे ॥ ४ ॥

स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थंराजज्ञानंसमाचरेत् ।
जडांधबालद्रव्याणांदद्याद्वृद्धिंनृपःसदा ॥५॥

चोरीके और छलके पदार्थ जैसे प्रतीत न हों उस प्रकार राजाको भी ज्ञात करा दे और जड अन्ध बाल इनके जो द्रव्य उनको सदैव वृद्धि (ब्याज) को राजा दे ॥ ५ ॥

स्वीयातथाचसामान्यापरकीयातुस्त्रीयथा ।
त्रिविधोभृतकस्तद्वदुत्तमोमध्यमोऽधमः ॥६ ॥

जैसी अपनी पराई और सामान्य ये तीन प्रकारकी स्त्री होती है इसी प्रकार उत्तममध्यम अधमरूप तीन प्रकारका भृत्य होता है ॥ ६ ॥

स्वामिन्येवानुरक्तोयोभृतकस्तूत्तमःस्मृतः ।
सेवतेपुष्टभृतिदंप्रकरंसचमध्यमः ॥ ७ ॥

जो भृत्य अपने स्वामीमेंही प्रीति रखता हो वह उत्तम कहा है जो उसी समृद्धकी सेवा

करै जो अधिक भृति (नोकरी) दे वह मध्यम होता है ॥ ७ ॥

पुष्टोपिस्वामिनाऽव्यक्तंभजतेन्यंसचाधमः ।
उपकरोत्यपकृतोप्युत्तमोप्यन्यथाधमः ॥ ८ ॥

जो अपने स्वामीने पुष्टभी किया हो तोभी छिपकर दूसरेकी सेवा करै वह अधम होता है और जो तिरस्कार करने परभी उपकार करै वह उत्तम और अन्य अधम होता है ॥८॥

मध्यमःसाम्यमन्विच्छेद्यरः स्वार्थतत्परः ।
नोपदेशंविनासम्यक्प्रमाणैर्ज्ञायतेखिलम् ॥

जो अपनी समानताको चाहै वह मध्यम और जो अपने स्वार्थमें तत्पर हो वह अधम होता है और उपदेशके विना किसी प्रमाणसे भी सबका ज्ञान नहीं होता ॥ ९ ॥

बाल्यंवाप्यथतारुण्यंमारंभितसमाप्तिदम् ।
मायोबुद्धिमतांज्ञेयंनवार्धक्यंकदाचन ॥ १०॥

बालपन अथवा वृद्धपन ये दोनों प्रारंभ किये कामकी समाप्तिके होनेसे बुद्धिमान् मनुष्यके जानने योग्य होते हैं और वृद्धता कदाचित्भी नहीं होती ॥ १० ॥

आरंभंतस्यकुर्याद्धियत्समाप्तिंसुखंव्रजेत् ।
नारंभोबहुकार्याणामेकदैवसुखावहः ॥११ ॥

उसी कामका प्रारंभ करै जिसकी सुखसे समाप्ति हो जाय एकवारही बहुतसे कामोंका प्रारंभ सुखदायी नहीं होता ॥ ११ ॥

नारंभितसमाप्तिंतुविनाचान्यंसमाचरेत् ।
संपाद्यतेनपूर्वंहिनापरंलभ्यतेयतः ॥ १२ ॥

प्रारंभ किये हुए कार्योंकी समाप्तिके विना अन्य कामको न करै क्योंकि यदि प्रथमही काम न हुआ तो दूसरा भी न होगा ॥ १२ ॥

कृतीतत्कुरुतेनित्यंयत्समाप्तिंव्रजेत्सुखम् ।
ईर्ष्यालोभोमदःप्रीतिःक्रोधोभीतिश्चसाहसम् ॥

शक्तिके अनुसार प्रारंभ किये कामको नित्य करै जिससे उसकी सुखसे समाप्ति हो ईर्ष्या, लोभ, मद, प्रीति, क्रोध, भीति, और साहस ॥ १३ ॥

प्रवृत्तिच्छिद्रहेतूनिकार्येसप्तबुधाजगुः ।
यथाछिद्रंभवेत्कार्यंतथैवेहसमाचरेत् ।

ये सब प्रवृत्तिके छिद्रमें हेतु पंडित कहे हैं इस जगतमें कामको उसी करै जैसे उत्तम कोई छिद्र न हो ॥ १४ ॥

अविसंवादिविद्वद्भिःकालेतीतेपिचापदि ।
दशग्रामीशतानीकोपरिचारकसंयुतौ १५

और सत्यवादी विद्वानोंने कला बीतनेपर आपत्तिके समयमें पूर्वोक्त छिद्रका न होना कहा है दशग्रामोंका स्वामी और सौ सैनिकोंका सेनापति ये दोनों अपने सेवकों सहित ॥ १५ ॥

अस्वस्थौविचरेयातांग्रामपाश्चापिचाश्वगाः ।
साहस्रिकःशतग्रामीएकाश्वरथवाहनौ १६ ॥

अस्वस्थ (व्याकुल) हुए और ग्रामके पति (चौधरी) और असवार नित्य विचार करै सहस्र मनुष्य और सौ ग्रामोंका स्वामी एक घोडेके यानमें बैठकर चलै ॥ १६ ॥

सहस्रग्रामपोनित्यंनरयानाश्वयानगः ॥
अयुतिकोविंशतिभिःसेवकैर्हस्तिनाव्रजेत् १७॥

सहस्र ग्रामोंका स्वामी नरयान (पालकी) वा अश्वयानमें बैठकर, और दश सहस्र सेनाओंका स्वामी बीस सेवकों समेत हाथीपर चढकर गमन करै ॥ १७ ॥

अयुतग्रामपः सर्वयानैश्चचतुरश्वगैः ॥
पंचायुतीसेनपोपिसंचरेद्बहुसेवकः ॥ १८ ॥

दश सहस्रग्रामोंका स्वामी चारघोडोंके सब यानोंमें बैठकर गमन करै और पचास सहस्र सेनाओंका स्वामीभी बहुतसे सेवकों सहित विचरै ॥ १८ ॥

यथाधिकाधिपत्यंतुवीक्ष्याधिक्यंमकल्पयेत् ।
कल्पयेच्चयथाधिक्यंधनिकेषुगुणिष्वपि १९॥

जितना अधिक अधिपति (स्वामी) हो उस को देखकर ही यान आदिकी अधिकताको करै इसी प्रकारः धनी और गुणवानोंमें भी धन गुणकी अधिकता देखकर यान आदिकी अधिकता करै ॥ १९ ॥

...धिकोपिन ।
...स्तथा ॥२०॥
...र न्यून (छोटा) ...हो वह रीति अपने ...लाषी राजा करै २०॥

...मिभूमिंप्रकल्पयेत् ।
...त्तनेपिनृपः सदा ॥ २१॥
...हीन मध्यम उत्तम हों उनके ...कुछ भूमि नियत करै और कुटुं- ...धरके लिये तो राजा सदैव पत्तन ...हर) ऐसी भूमिको नियत करै ॥ २१ ॥

द्वात्रिंशत्प्रमितैर्हस्तैर्दीर्घार्धाविस्तृताधमा ।
उत्तमादिगुणामध्यासार्धमानायथार्हतः २२॥

जो बत्तीस हाथ लंबी और सोलह हाथ चौडी हो वही उत्तम कही है और उससे आधे प्रमाणकी जो हो वह यथायोग्य मध्यम और अधम होती है ॥ २२ ॥

कुटुंबसंस्थितिसमानन्यूनानाधिकापिन ।
ग्रामाद्बहिर्वसेयुस्तेयेयेत्वधिकृतानृपैः २३ ॥

वह भूमि कुटुंबकी स्थितिके सम (बराबर) हो, न उससे न्यून हो और न कमही, जिन जिनको राजाने अधिकार दिया हो वे सब ग्रामसे बाहिर बसैं ॥ २३ ॥

नृपकार्यंविनाकश्चिन्नग्रामेसैनिकोविशेत् ।
तथानपीडयेत्कुत्रकदापिग्रामवासिनः ॥ २४॥

राजाके कार्यके विना कोईभी सैनिक ग्राम म न घसै, और किसी प्रकार किसीभी ग्राम-वासीको पीडा (दुःख) न दे ॥ २४ ॥

सैनिकैर्नव्यवहरेन्नित्यंग्राम्यजनोपिच ।
श्रावयेत्सैनिकान्नित्यंधर्मशौर्यविवर्धनम् २५॥

और ग्रामके जनभी सैनिकोंके संग प्रति दिन व्यवहार न करैं, और सेनाके मनुष्योंको शूरवीरता बढानेवाले धर्मको नित्य श्रवण करवावे ॥ २५ ॥

सुवाद्यनृत्यगीतानिशौर्यवृद्धिकराण्यपि ।
युद्धक्रियांविनाशौर्ययोजयेन्नान्यकर्मणि २६

श्रेष्ठ बाजे, नृत्य, गीत इनकोभी ऐसोंकोही सुनावै जिनसे शूरवीरताकी वृद्धि हो और युद्धके काम विना शूरवीरको किसी अन्य काममें न लगावे ॥ २६ ॥

सत्याचारास्तुधनिकाव्यवहारेहतायदि ।
राजासमुद्धरेत्तांस्तुतथान्यांश्चकृषीवलान् ॥२७

जो सत्य आचरण करनेवाले धनवान व्यवहारमे बिगडगये हों उनका और अन्य वैसेही किसानोंका राजा उद्धार करै अर्थात् धन देकर उनकी सहायता करै ॥ २७ ॥

यैसैन्यधनिकास्तेभ्योयथार्हभृतिमावहेत् ।
सारदेश्यंचत्रिंशांशमधिकंतद्धनव्ययात् ॥ २८

जो सेनाके मनुष्य धनवान् हों उनसे यथा-योग्य भृति ले, जो परदेशी हों उनसे तीसवां भाग वा अधिक धनके व्यय (खर्चा) के अनुसार ले ॥ २८ ॥

धनंसंरक्षयेत्तेषांयत्नतःस्वात्मकोशवत् ।
संहरेद्धनिकात्सर्वंमिथ्याचाराद्धनंनृपः ॥२९॥

और उनके धनकी अपने कोशके समान बडे यत्नसे रक्षा करै और जो धनवान् मनुष्य मिथ्याचारी हो राजा उसके सब धनको हरले ॥ २९ ॥

मूलाच्चतुर्गुणावृद्धिर्गृहीताधनिकेनच ।
अधमर्णान्नदातव्यंधनिनेतुधनंतदा ॥ ३० ॥

जब धनवान् मनुष्यने अधमर्णसे मूल धन-की अपेक्षा चौगुनी वृद्धि (व्याज) लेली हो तो वह धनीको कुछभी धन न दे ॥ १२३० ॥

इति शुक्रनीतिः समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस
कल्याण-बम्बई.